निमाड़ी और उसका साहित्य

निमाड़ी और उसका साहित्य

(नागपुर विश्वविद्यालय-द्वारा स्वीकृत थीसिस का संक्षिप्त रूप)

डा० कृष्णलाल हंस
एम० ए०, पी-एच० डी०

१९६०

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

'निमाड़ी और उसका साहित्य' हिन्दी की एक उपभाषा-विशेष का अध्ययन प्रस्तुत करता है। हिन्दी-प्रदेश की उपभाषाओं में 'निमाड़ी' का उल्लेख पूर्ववर्ती काल के भाषाविज्ञों ने गौणरूप से किया है। सर जार्ज ग्रियर्सन 'निमाड़ी' को दक्षिणी राजस्थानी के अंतर्गत मानते थे। डा० कृष्णलाल हंस ने अपने प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में 'निमाड़ी' के स्वरूप तथा उसके ध्वनि-तत्वों का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए सिद्ध किया है कि निमाड़ी न तो दक्षिणी राजस्थानी है और न हिन्दी की पूर्वीवर्ग की भाषा ही, वरन् यह पश्चिमी हिन्दी वर्ग की एक जीवन्त उपभाषा है।

डा० कृष्णलाल हंस ने इस ग्रंथ को प्रस्तुत करते हुए जिस अध्यवसाय और पैनी दृष्टि का परिचय दिया है, वह सराहनीय है। डा० हंस ने निमाड़ी-प्रदेश के लोक-साहित्य के अध्ययन को भी इस ग्रंथ में संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया है। इस प्रकार से यह ग्रंथ भाषा-शास्त्र तथा लोक-साहित्य, दोनों वर्ग के पाठकों एंव विद्यार्थियों के लिए उपादेय हो गया हैं।

आशा है, हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रस्तुत इस विशेष प्रकाशन का आदर विद्वान् और विद्यार्थी समान रूप से करेंगे।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी,
उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

विद्याभास्कर
मंत्री तथा कोषाध्यक्ष

अपनी बात

यह मेरे नागपुर विश्वविद्यालय-द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत "निमाड़ी और उसका लोक साहित्य" अनुसन्धान-ग्रन्थ का संक्षिप्त रूप है, जिसे हिन्दी संसार को भेंट करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष होता है। पूर्ण ग्रन्थ दो खण्डों में विभाजित है। मैंने इसके प्रथम खण्ड में "निमाड़ी भाषा" तथा द्वितीय खण्ड में "निमाड़ी साहित्य" पर अपना अध्ययन प्रस्तुत किया है। मुझे प्रकाशन की कठिनाई के कारण द्वितीय खण्ड अपेक्षाकृत संक्षिप्त कर देना पड़ा, तथापि इस संक्षिप्तीकरण में भी निमाड़ी-साहित्य के पूर्ण सन्दर्भ को यथा सम्भव सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया है। निमाड़ी का उपलब्ध साहित्य विशाल है; अतः द्वितीय खण्ड में इस साहित्य का जो संक्षिप्त परिचय दिया गया है, उसे उदाहरण-मात्र ही कहा जा सकता है। यदि प्रकाशन सम्भव हुआ, तो निकट भविष्य में निमाड़ी के लोक-साहित्य पर एक विस्तृत ग्रन्थ प्रस्तुत करने का प्रयत्न करूँगा।

निमाड़ी-भाषी क्षेत्र का एक भाग मध्यभारत क्षेत्र के अन्तर्गत तथा दूसरा भाग महाकोशल क्षेत्र के अन्तर्गत है। अब ये दोनों भाग गत १ नवम्बर १९५६ से वर्तमान मध्यप्रदेश के ही दो जिले बन गये हैं। इसमें से एक खरगोन-निमाड़ और दूसरा खण्डवा-निमाड़ कहलाता है। मैंने समूचे क्षेत्र में पाँच बार भ्रमण कर निमाड़ी-लोक साहित्य की मूल्यवान् सामग्री पर्याप्त प्रमाण में प्राप्त करने के साथ ही निमाड़ के लोक-जीवन को समीप से देखा और निमाड़ी-भाषियों के रीति-रिवाज, रहन-सहन, धार्मिक व्रत-त्यौहार, सामाजिक संस्कार, विश्वास, धारणाएँ, खानपान, जीविकोपर्जन के साधन, मनोरंजन आदि का अध्ययन किया है। मेरे द्वारा संकलित सामग्री में लगभग दो-सौ महिलाओं द्वारा विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले गीत, लगभग डेढ़-सौ पुरुषों-द्वारा गाये जाने वाले गीत, लगभग दो-सौ सिंगाजी, दलूदास, धनजीदास आदि निमाड़ी सन्तों-द्वारा रचित समझे जाने वाले गीत, लगभग ढाई-सौ अनामी सम्प्रदाय के साधकों की रचनाएँ, बत्तीस लोकगाथाएँ, लगभग एक-सौ पचीस लोककथाएँ, तीन-सौ से अधिक लोकोक्तियाँ, लगभग चार-सौ मुहावरे और लगभग सौ प्रहेलिकाएँ हैं।

इनमें से लगभग दो-सौ गीतों के एक विवेचनात्मक संग्रह पर मध्यप्रदेश-शासन ने मुझे एक हजार रुपए का पुरस्कार तथा प्रशंसा-पत्र प्रदान कर अनुगृहीत किया है। इसी संगृहीत सामग्री में से सम्पादित मेरे निमाड़ी लोककथाओं के

दो संग्रह भी आत्माराम एन्ड सन्स, दिल्ली से प्रकाशित हुए हैं। इस सामग्री के संकलन में मुझे सर्व श्री विश्वनाथ सखाराम खोडे खरगोन, बैजनाथ महोदय इंदौर, भीकाजी बिल्लौरे इंदौर, सुमनाकर तथा ओंकार लाल माखन ऊन, हरिनारायण मलतारे धरमपुरी, जगदीश विद्यार्थी सनावद, बलराम पगारे खंडवा, रामनारायण उपाध्याय कालमुखी, ठाकुर कालूसिंह सहजला, मांगीलाल महन्त सिंगाजी आदि अनेक सज्जनों से मूल्यवान् सहायता प्राप्त हुई है; तदर्थ मैं इन सबका अत्यन्त अनुगृहीत हूँ।

अपने विषय के वैज्ञानिक अध्ययन में मुझे नागपुर विश्वविद्यालय-द्वारा नियुक्त अपने विद्वान् निरीक्षक डा० हीरालाल जी जैन, एम० ए० डी० फिल् के अतिरिक्त भाषा-विज्ञान के प्रकांड पंडित डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या कलकत्ता, प्रयाग विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष एवं भाषा-विज्ञान के आचार्य डा० बाबूराम जी सक्सेना, हिन्दी भाषा और साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् डा० धीरेन्द्र वर्मा प्रयाग तथा प्रयाग विश्वविद्यालय के विद्वान् प्राध्यापक डा० उदयनारायण तिवारी से जो पथ-प्रदर्शन और प्रोत्साहन मिला, उसे मैं कभी विस्मृत नहीं कर सकता। मैं अपने दोनों सुविज्ञ विद्वान् परीक्षकों——डा० विश्वनाथ प्रसाद, पटना विश्वविद्यालय एवं डा० हरदेव बाहरी, प्रयाग विश्वविद्यालय का विशेष रूप से अनुगृहीत हूँ, जिनकी क्षीर-नीर-विवेचिनी प्रखर दृष्टि ने मुझे अपने अनुसंधान-ग्रन्थ को वास्तविक रूप में प्रस्तुत कर डाक्टरेट प्राप्त करने की क्षमता प्रदान की; तदर्थ मैं इन विद्वान-द्वय का भी कम आभारी नहीं हूँ।

ग्रन्थ के प्रथम खंड के प्रथम अध्याय में निमाड़ी-भाषी प्रदेश का परिचय, द्वितीय अध्याय में भारतीय आर्यभाषाओं में निमाड़ी का स्थान, तृतीय अध्याय में निमाड़ी के स्वरूप तथा चतुर्थ अध्याय में निमाड़ी की सीमावर्ती बोलियों के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् पंचम एवं षष्ट अध्याय में क्रमशः निमाड़ी के ध्वनितत्वों का विवरणात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन और सप्तम एवं अष्टम अध्याय में निमाड़ी के रूप-तत्वों का विवेचन किया गया है। द्वितीय खंड में मूल अनुसंधान-ग्रन्थ में बारह अध्याय हैं, जिनमें क्रमशः लोक-साहित्य के विवेचन, निमाड़ी लोक-साहित्य का सामान्य परिचय, संस्कार सम्बन्धी गीत, ऋतु सम्बन्धी गीत, धार्मिक गीत, जीवन गीत, विविध गीत, निमाड़ी की लोकगाथाएँ, निमाड़ी की लोककथाएँ, निमाड़ी लोककथाओं की विशेषताएं, निमाड़ी की लोकोक्तियाँ, निमाड़ी के मुहावरे एवं निमाड़ी की प्रहेलिकाओं पर प्रकाश डाला गया है, किन्तु इस ग्रन्थ में मैंने यह पूर्ण सामग्री केवल चार अध्यायों में ही सीमित कर दी है। इन अध्यायों में क्रमशः निमाड़ी साहित्य का सामान्य परिचय,

निमाड़ी के गीत-साहित्य, निमाड़ी के कहानी-साहित्य एवं निमाड़ी के प्रकीर्ण-साहित्य पर संक्षिप्त में प्रकाश डाला गया है।

निमाड़ी में मुद्रित-साहित्य नाममात्र का ही है। दूसरे इस लोक-भाषा एवं इसके साहित्य के विशेष अध्ययन की दिशा में अभी तक किसी का ध्यान आकर्षित न हुआ था। यह देखते हुए मुझे विश्वास है कि मेरा यह प्रथम अनुसन्धान-प्रयास अन्यों के लिए प्रेरणाप्रद प्रमाणित होगा।

अन्त में मैं हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित कर देना आवश्यक समझता हूँ, जिसके सहयोग से मेरा यह प्रयत्न प्रकाशन का रूप ग्रहण कर हिन्दी-संसार में प्रवेश कर रहा है।

सीताबर्डी, नागपुर
बसन्त पंचमी, सं० २०१६ वि०

कृष्णलाल हंस

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

संस्कृत

१ उत्तर रामचरित (भवभूति) १९२९ (सं० पी. व्ही. काणे)
प्र०—पाण्डुरंग वामन काणे, गिरगाँव रोड, बम्बई

२ कथा सरित्सागर, १९३० (वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री)
प्र०—पाण्डुरंग जावजी, बम्बई

३ जैमिनी अश्वमेघ, शके १८२८ (श्रीधर स्वामी)
प्र०—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई

४ पञ्चतन्त्र, १९१९ (Arthor W. Ryder.)
प्र०—Jaico Publishing House, Calcutta

५ पद्म पुराण, १८९७ (विश्वनाथ नारायण शास्त्री)
प्र०—आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना

६ पातञ्जलि महाभाष्य, १९५९ (काशीनाथ वासुदेव अभ्यंकर)
प्र०—डेक्कन एजूकेशन सोसाइटी, पूना

७ मत्स्य पुराण, १८७४ (जनार्दनाचार्य)
प्र०—जगद्हितेच्छु प्रेस, पूना

८ महाभारत, शके १८३१ (विद्यावाचस्पति अप्पाजी शास्त्री)
प्र०—गणेश विष्णु चिपलूणकर आणि मंडली, पूना

९—रघुवंश (कालिदास), शके १८३७ (कृष्णराव महादेव जोगलेकर)
प्र०—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई

१० हरिवंश पुराण, शके १८३४ (महादेव हरि मोड़क)
प्र०—चिपलूणकर आणि मंडली, पूना।

हिन्दी

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय : बोलचाल
प्र०—इंडियन प्रेस, इलाहाबाद

२ अनामी सम्प्रदाय के भजन, १९५१ (अनामी मठ, सनावद)

३ उदयनारायण तिवारी : भोजपुरी भाषा और साहित्य, १९५४
प्र०—बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना

४ उदयनारायण तिवारी : हिन्दी का उद्भव और विकास, सं० २०१२ वि०
प्र०—भारती भंडार, इलाहाबाद

५ कामताप्रसाद गुरु : हिन्दी व्याकरण, सं० १९८४ वि०
प्र०—इंडियन प्रेस, प्रयाग

६ खेमदास : सिंगाजी की परिचरिया, १८९४
प्र०—व्यंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

७ चिन्तामन विनायक वैद्य : महाभारत मीमांसा, १९२०
प्र०—बालकृष्ण पाण्डुरंग ठकार, पूना

८ दीनदास पदावली, सं० १९९२ वि०
प्र०—काशीराम तिवारी, हर्दा

९ धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी भाषा का इतिहास, १९५३
प्र०—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

१० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रजभाषा १९५४
प्र०—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

११ धीरेन्द्र वर्मा : ब्रजभाषा व्याकरण, १९३७
प्र०—रामनारायणलाल, इलाहाबाद

१२ बाबूराम सक्सेना : सामान्य भाषा विज्ञान, सं० २००६ वि०
प्र०—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

१३ रंकनाथ पदावली, सं० १९९२ वि०
प्र०—काशीराम तिवारी, हर्दा

१४ रामनारायण उपाध्याय, निमाड़ी लोकगीत, १९५१
प्र०—मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागपुर

१५ वासुदेवशरण अग्रवाल : पृथ्वीपुत्र, १९४९
प्र०—सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

१६ श्यामसुन्दरदास : भाषा विज्ञान, सं० २००७ वि०
प्र०—इंडियन प्रेस, इलाहाबाद

१७ शिवानन्द ब्रह्मचारी : श्रीराम विनय, सं० १९८५ वि०
प्र०—सन्तोष कुटी, भामगढ़ (खण्डवा)

१८ शुकदेव : सलिलानो याव, सं० १९६६ वि०
प्र०—जगदीश प्रेस, बम्बई

१९ सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, १९४९
प्र०—साहित्य रत्न-भण्डार, आगरा

२० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : राजस्थानी, १९४९
प्र०—राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर

२१ सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : ऋतम्भरा, १९५१
प्र०—साहित्य भवन लि०, प्रयाग

२२ हरदेव बाहरी : प्राकृत और उसका साहित्य, (प्र० संस्करण)
प्र०—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

२३ बृहत् हिन्दी कोश
प्र०—ज्ञान मंडल, काशी

हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ

१. वाणी, खरगोन, १९३२-३३
२. जाति-सुधार, खंडवा, १९११-१२
३. हिन्दुस्तानी, प्रयाग, अप्रैल १९३९

अमुद्रित

१. अठवार सिंगाजी—महन्त मांगीलाल, सिंगाजी
२. आतम ध्यान — „ „ „
३. ख्याल कलगी-तुर्रा—भारती महाराज, चोली ग्राम
४. ठाकुर आदोराव, खगोन के प्राचीन पत्र
५. जयदेव महाराज की आठरपद—महन्त मांगीलाल, सिंगाजी
६. जाप—महन्त मांगीलाल, सिंगाजी
७. दलूदास के भजन—विभिन्न व्यक्तियों से
८. नराजन—महन्त मांगीलाल, सिंगाजी
९. पद्रतीत—महन्त मांगीलाल, सिंगाजी
१०. भागवत महापुराण द्वादस स्कन्द—महन्त मांगीलाल, सिंगाजी
११. महिम्न स्तोत्र—महन्त मांगीलाल, सिंगाजी
१२. वाणावढ़े—महन्त मांगीलाल, सिंगाजी
१३. सलिलानो याव—गोपालदास वैरागी, उमरखली
१४. सिंगाजी का दृढ़ उपदेश—महन्त मांगीलाल, सिंगाजी
१५. सिंगाजी की परचुरी—महन्त मांगीलाल, सिंगाजी
१६. सिंगाजी के भजन—विभिन्न व्यक्तियों से

मराठी

१ ग. ब. ग्रामोपाध्ये : पेशवे दफ्तरांतील मराठी भाषे चे स्वरूप, शके १८६३।
प्र०—नेवलेकर प्रकाशन, पूना

अंग्रेजी

1. B. R. Saxena—Evolution of Oudhi, 1937
Indian Press Allahabad.

2. C. E. Laurd—Indore State Gazetteer, Vol. I 1907
   Superintendent, Govt. Printing, Calcutta.
3. C. Thomson—Rudiment of Bhil Language
4. D. N. Majumdar—The Reciology of Bhils, 1944
   Universal Publishers, Lucknow.
5. Edward C. Sachau—Alberuni's India Vol. I, 1880
   Trubnar and Co. London.
6. Encyclopaedia Britannica Vol. IX
   The Encyclopaedia Britannica Co. Ltd. London
7. Encyclopaedia of Religion and Ethics, Part III
8. Frazer J. G.—Golden Baugh, Part IX, 1913
   Macmillan and Co. London
9. Griarson G. A.—Linguistic Survey of India, Vol. I.
   Part I, 1908.
10. Griarson G. A.—Linguistic Survey of India, Vol. IX
    Part I and II 1916.
    Superintendent Govt. Printing, Calcutta.
11. Gomme George Laurence—Enthrology in Folklore.
12. Gomme Goerge Lawrence—Folklore as an Historical
    Science.
13. G. W. Cox—Mythology of Aryan Nations, 1870.
    Longman Green and Company, London.
14. I. S. Taraporewala—Elements of Language.
15. F. J. Child—English and Scottish Popular Ballads
    (Ist Edition)
    George G. Harrap and Co. Ltd., London.
16. John Malcom—Memoir of Central India Part I 1880
    Thacker Spink and Co., Calcutta.
17. Maxmuller—Lectures on Science of Language 1862
    Longman Green and Co., London.
18. Mount Stuart Elphinstone—History of India, 1889
    John Murrey, London.
19. Nandlal Dey—Geographical Dictionary of Ancient and
    Medeaval India, 1927.
    Luzoc and Co. London.
20. P. G. Shah—Non-Hindu Elements in the culture of
    Bhils
21. Karoda Ramkrishnaih—Studies in Dravidian Philology 1935, University of Madras.

22. R. V. Rusell—Nimad District Gazetteer, 1908
Pioneer Press, Allahabad.
23. V. A. Smith—Early History of India
Oxford University Press, London.
24. V. S. Apte—Sanskrit English Dictionary, 1890
Sherolkar and Co., Poona.
25. V. G. Relic—The Vaidic Gods as Figures of Biology
26. Verges—Antiquities of Kathiawad and Katch
27. Warrier Elwin—Folktales of Mahakaushal, 1946
Oxford University Press, London.
28. William H. Robinson—Legends of India.

Reports

1. Census Reports for the year of 1931 and 1951
2. Forsyth—Settlement Report of Nimar Prant, 1864.
3. Rakhaldas Bandopadhyaya—Progressive Report of the
Archiological Survey of India, 1918-19.

Periodicals

1. Indian Antiquary, 1931.
2. Indian Historical Quarterly, Decr. 1943.
3. Journal of Guj. Res. Sec. Vol. X April 1948.
4. Journal of Royal Asiatic Society, 1910-11.

—o—

संकेत-सूची

— दो शब्दों का संयोजन अथवा सामासिक सम्बन्ध-सूचक संकेत।
= समानार्थी वाचक संकेत।
् व्यंजन के नीचे हलन्त (स्वर-रहित स्थिति) बोधक संकेत।
- वर्ण के ऊपर निर्बल उच्चारण-बोधक।
। वर्णों पर स्वराघात-बोधक संकेत।
˘ ह्रस्वोच्चारण-बोधक संकेत।
˘ द्रुतोच्चारण-बोधक संकेत।
ऽ विलम्बित-बोधक संकेत।
> से विकसित शब्द
< का मूल रूप।

अ०	अरबी
अ० त०	अर्ध तत्सम
अ० का०	अधिकरण कारक
अनु०	अनुच्छेद
अवि०	अविकारी
अ० पु०	अन्य पुरुष
आ० भा० आ० भा०	आधुनिक भारतीय आर्यभाषा।
ई०	ईस्वी
उ० पु०,	उत्तम पुरुष
ऋग०	ऋग्वेद
ए० व०	एक बचन
कठ०	कठोपनिषद्
का०	कारक
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण
गु०	गुजराती
गु० वा०	गुण वाचक
डा०	डाक्टर
छां० उ०	छान्दोग्योपनिषद्
तै० उ०	तैत्तरीयोपनिषद्
तृ० पु०	तृतीय पुरुष

द्वि०	द्वितीय
द्वि० प्रे०	द्वितीय प्रेरणार्थक
नं०	नम्बर
प० नि०	पश्चिमी निमाड़ी
प० हिं०	पश्चिमी हिन्दी
पा०	पाली
पु०	पुल्लिग
पू० नि०	पूर्वी निमाड़ी
प्र० पु०	प्रथम पुरुष
प्र० प्रे०	प्रथम प्रेरणार्थक
प्र० श०	प्रतिशत
प्रा०	प्राकृत
प्रा० भा० आ० भा०	प्राचीन भारतीय आर्य भाषा
पृ०	पृष्ठ
फा०	फारसी
ब० व०	बहुवचन
बु०	बुन्देली
भा०	भाग
म०	मराठी
म० पु०	मध्यम पुरुष
मनु०	मनुस्मृति
म० भा० आ० भा०	मध्य भारतीय आर्य भाषा
मा०	मालवी
मार०	मारवाड़ी
रघु०	रघुवंश
रा०	राजस्थानी
लिं० स०	लिंग्विस्टिक सर्वे आव इंडिया
वि०	विक्रमीय
विशे०	विशेषण
वै० सं०	वैदिक संस्कृत
श० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
शके	शक सम्वत्
शौ०	शौरसेनी

शौ० प्रा० — शौरसेनी प्राकृत
स० — सम्बत्
सं० — सम्पादक
सम्प्र० — सम्प्रदान कारक
सम्ब० — सम्बन्ध कारक
स्त्री लिं० — स्त्रीलिंग

विषय-सूची

प्रथम-खण्ड

द्वितीय-खण्ड

परिशिष्ट

निमाड़ी और उसका साहित्य

प्रथम-खण्ड

निमाड़ी भाषा

प्रथम खण्ड

पहिला अध्याय

निमाड़ी भाषी प्रदेश

निमाड़ी मध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग में स्थित मुख्यत: दो जिलों की भाषा है। ये जिले २१·४ और २२·५ उत्तर अक्षांश तथा ७४·४ और ७७·३ पूर्व देशांश के बीच स्थित हैं। इस भू-भाग के उत्तर में वर्तमान मध्यप्रदेश के धार, इंदौर और देवास जिले, दक्षिण में खानदेश तथा विदर्भ के बुलढाना और अमरावती जिले, पूर्व में होशंगाबाद और बेतूल जिला तथा पश्चिम में बम्बई प्रान्त है। विन्ध्याचल इस भू-भाग की उत्तरी सीमा पर और सतपुड़ा दक्षिणी सीमा पर इसके अडिग प्रहरी हैं। मेकल-सुता नर्मदा इसके उत्तरी अंचल में और ताप्ती इसकी आग्नेय सीमा का निर्माण करती हुई प्रवाहित होती है। शासन की दृष्टि से यह भू-प्रदेश दो जिलों में विभाजित है, पर दोनों जिलों की भाषा के अतिरिक्त रहन-सहन, पोशाक, धार्मिक विश्वास, सामाजिक संगठन और भौगोलिक स्थिति में भी कोई अन्तर नहीं है। इनमें से एक जिला खण्डवा-निमाड़ और दूसरा खरगोन-निमाड़ कहलाता है।

नामकरण

इस भू-भाग का नाम 'निमाड़, पड़ने के अनेक तर्क उपस्थित किये जाते हैं। कुछ लोग फारसी के 'नीम' शब्द से निमाड़ बनना बतलाते हैं। उनके मतानुसार फारसी में 'नीम' का अर्थ 'आधा' है। इस भू-भाग ने नर्मदा नदी का आधा भाग अपने अंचल में छिपा रखा है; इसलिये इसे निमाड़ कहते हैं, किन्तु वस्तु-स्थिति ऐसी नहीं है। एक तो यह नर्मदा के उद्‌गम-स्थान की अपेक्षा मुख से अधिक निकट है और दूसरे 'नीम' शब्द के आगे 'आड़' प्रत्यय कैसे लग गया और किस अर्थ में स्पष्ट नहीं है। अत: यह मत मान्य नहीं है। फोर्सिथ ने भी अपनी सेटलमेण्ट रिपोर्ट में 'निमाड़' नाम पड़ने के इस तर्क का खण्डन किया है। वे 'निमाड़' फारसी नहीं, पर हिन्दू (हिन्दी) शब्द मानते हैं। उन्होंने लिखा है:—

"It has always been talked of as a 'Prant' and never gave a name to any Mohamedan territorial division. I think there is no doubt to its being a Hindoo term"[1]

1. Forsyth Settlement Report (1864), Para 1.

दूसरे निमाड़ में प्रवेश करने वाला प्रथम मुसलमान शासक अलाउद्दीन खिलजी था, जो सन् १२९१ में यहाँ आया[1]। यदि निमाड़ मुसलमानी नाम हो, तो इस भाग का यह नाम सन् १२९१ के पश्चात् ही पड़ना चाहिये; जब कि ११ वीं शताब्दी में आने वाले अरब यात्री अलबरूनी ने भी अपने यात्रा-वर्णन में इस प्रदेश का नाम 'निमाड़ प्रान्त' लिखा है[2]।

कुछ लोग इसका पूर्व नाम 'नीमवाड़' बतलाते हैं, जिसका अर्थ है 'नीम (एक वृक्ष) का प्रदेश।' इस प्रदेश में नीम के अधिक वृक्ष देखकर इसके नाम-करण के सम्बन्ध में यह अनुमान किया जाता है। यद्यपि यह तर्क प्रथम तर्क से अधिक पुष्ट है, फिर भी संतोषजनक नहीं जान पड़ता।

इस सम्बन्ध में भवभूति-कृत 'उत्तररामचरितम्' की कुछ पंक्तियाँ भी विचारणीय हैं। विन्ध्या के समीप आने पर लक्ष्मण ने सीता से कहा—

'एष विन्ध्याटवीमुखे विराधसंरोधः।'

'यह विन्ध्य की उपत्यका है, जहाँ हमें विराध ने अवरोध किया था। विराध का स्मरण आते ही सीताजी के कोमल हृदय पर आघात हुआ। यह देखकर राम ने कहा :—

'एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषु
वैखानसाश्रिततरूणि तपोवनानि।
येष्वातिथेयपरमाः यमिनो भजन्ते।
नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि॥'

—प्रथमांक—२५

उक्त श्लोक की अन्तिम पंक्ति में प्रयुक्त 'नीवार' शब्द से तात्पर्य है जंगल में उत्पन्न होने वाले एक प्रकार के चाँवल से, जिसे अरण्य में वास करने वाले ऋषि-मुनि सेवन करते थे। यह जिस स्थान का वर्णन है, वह विन्ध्य की उपत्यका है, जहाँ आज हम निमाड़ी-भाषी भाग को बसा पाते हैं। अतः यह भी सम्भव है कि इस भाग में उत्पन्न होने वाले इस 'नीवार' शालि की बहुतायत से इस भू-भाग का नाम पहिले 'नीवार' पड़ा हो और कुछ समय के पश्चात् 'निमाड़' अथवा 'नीमाड़' कहलाने लगा हो।

हमारा ख्याल है कि निमाड़ मालवा राज्य का दक्षिणी भाग है, जिसे हम 'निम्न' भाग भी कह सकते हैं। 'वाड़' का अर्थ 'स्थान' है; जैसा कि हम

1. Mount Stuart Elphinstone: History of India (1889), p. 386
2. Sachou's Albaiuni's India (1880) Vol. I P. 203

मारवाड़, झालावाड़, मेवाड़, काठियावाड़ आदि नामों में देखते हैं। अतः इसका पूर्व नाम 'निम्नवाड़' होना चाहिये, जो लोकवाणी में 'निमाड़' हो गया है। देश अथवा प्रदेश की सीमाएँ सदैव बदलती रहती हैं और मालव अथवा मालवा की सीमा भी बदलती रही है। तृतीय शताब्दी और इसके पूर्व से भी इस भाग में युद्ध होते रहे और परिणाम-स्वरूप विभिन्न विजेताओं के हस्तगत मालव राज्य की सीमा पृथक्-पृथक् बनती रही, पर निमाड़ी भाषी भाग सदैव ही मालवा का एक भाग बना रहा है। प्राकृतिक रचना की दृष्टि से भी यह भाग अवश्य ही उत्तरी भाग की तुलना में समुद्र-तट से नीचा है। इस भाग से लगे भाग की मालवी-भाषा में निम्न भाग को 'निमानी' कहते भी हैं। यह देखते हुए 'निम्नवाड़' से ही निमाड़ नाम पड़ने की अधिक सम्भावना जान पड़ती है।

भौगोलिक सीमा

पूर्ण निमाड़ी-भाषी भू-भाग केवल भाषा की दृष्टि से ही नहीं, वरन् अपनी प्राकृतिक रचना की दृष्टि से भी अन्य भागों से पृथक् है। इस भाग के उत्तर में विशाल विन्ध्य-शैल और दक्षिण में अपनी सात शाखाओं वाला सतपुड़ा पर्वत है। इन्हीं दोनों भागों के बीच निमाड़ी-भाषी भू-भाग बसा हुआ है। सतपुड़ा की ही एक शाखा इसके मध्य भाग तक फैली हुई है। सप्तपुड़ा की श्रेणियाँ लघु और विशाल रूप में उत्तर-पश्चिम की ओर बढ़ती गईं और विन्ध्य की एक श्रेणी उत्तर-पश्चिम की ओर बढ़ गई हैं। इस प्रकार इन दोनों पर्वतों की शाखाएँ झाबुआ जिले के नैऋत्य भाग में नर्मदा के समीप आकर परस्पर मिलती-सी जान पड़ती हैं। यहाँ दोनों पर्वतों के बीच इतना सकरा स्थान है, जिसे हिरण भी छलांग मार कर पार कर सकता है; इसलिए यह स्थान 'हिरण फाल' कहलाता है। यहीं निमाड़ी-भाषी भाग की पश्चिमी सीमा समाप्त होती है। सप्तपुड़ा की जो शाखा मध्य निमाड़ की ओर गई है, उसका सर्वोच्च शिखर 'ताजुद्दीन' कहलाता है। इसी शिखर पर मुस्लिम सन्त ताजुद्दीन की समाधि है। यह शिखर समुद्र-सतह से लगभग ३३९० फुट ऊँचा है। इस शिखर से थोड़ी दूरी पर लगभग ९ वर्गमील क्षेत्रफल की एक उच्च समभूमि है, जो 'सिरेबल' कहलाती है। यह उच्च समभूमि समुद्र-सतह से लगभग २५०० फुट ऊँची है।

इस प्रकार इस निमाड़ी-भाषी क्षेत्र की उत्तरी और दक्षिणी सीमाओं का निर्माण विन्ध्य और सप्तपुड़ा पर्वत के द्वारा स्वाभाविक रूप से ही होता है। श्री आर० व्ही० रसेल ने इसकी पूर्वी सीमा गंजाल तक बतलाई है।[1] यदि

---

1. R. V. Russell : Nimar District Gazetteer Vol. A (1908) p. 20

भाषा की दृष्टि से गंजाल को पूर्वी सीमा मान लें, तो होशंगाबाद जिले की हर्दा तहसील पूर्ण रूपेण इसी क्षेत्र में आ जाती है, जब कि हर्दा तहसील की भाषा निमाड़ी नहीं, वरन् निमाड़ी-प्रभावित बुन्देली है। इस तरह इस तहसील की लोकभाषा निमाड़ी की समीपता के कारण उससे प्रभावित भले ही हो और ऐसा होना स्वाभाविक भी है, पर वह निमाड़ी नहीं कही जा सकती। इस प्रभाव का एक कारण यह भी है कि इस तहसील के अनेक स्थानों में नार्मदीय ब्राह्मण जाकर बसे हैं, जिनकी मातृभाषा निमाड़ी है। अतः हमें वर्तमान होशंगाबाद जिले की पश्चिमी सीमा से ही निमाड़ी भाषी क्षेत्र की पूर्वी सीमा मानना अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है।

पूर्वी सीमा की तरह इस क्षेत्र की पश्चिमी सीमा भी किंचित् विवाद-पूर्ण समझी जा सकती है, पर इस लोकभाषा के विस्तार पर निष्पक्ष दृष्टि डालने से हमें इसमें विवाद का कोई स्थान दृष्टिगोचर नहीं होता। जिस प्रकार इस क्षेत्र की पूर्वी सीमा से मालवी-भाषी भाग आरम्भ होता है, उसी प्रकार इसकी पश्चिमी सीमा से भीली-भाषी भाग आरम्भ होता है; इसीलिये पश्चिमी भाग की निमाड़ी भीली से पर्याप्त प्रभावित है और भीली-भाषी भाग पर निमाड़ी का भी स्पष्ट प्रभाव है। निमाड़ी की पश्चिमी सीमा भौगोलिक दृष्टि से पुराने बढ़वानी राज्य की सीमा के साथ समाप्त हो जाती है, जहाँ हमने 'हिरणफाल' बतलाया है।

क्षेत्रफल और जन-संख्या

खण्डवा-निमाड़ का क्षेत्रफल ४२२७ वर्गमील और खरगोन-निमाड़ का क्षेत्रफल ५२०८ वर्गमील है। पूर्ण निमाड़ी भाषी क्षेत्र की पूर्व-पश्चिम लम्बाई १५६·८ मील है और उत्तर-दक्षिण की अधिक से अधिक चौड़ाई ६३·६ मील है। इस प्रकार पूर्ण क्षेत्र ९४३५ वर्गमील के क्षेत्र में स्थित है। खण्डवा-निमाड़ की वर्तमान जन-संख्या ५,२३,४९६ और खरगोन-निमाड़ की जन-संख्या ६,६६,२९७ है। इस प्रकार पूर्ण निमाड़ की जन-संख्या ११,८९,७९३ है; किन्तु इनमें सभी निमाड़ी भाषी नहीं है। खरगोन-निमाड़ में १,५७,८६९, धार में १५,९२०, देवास में ३,३४२, झाबुआ में २,९९१, इंदौर जिले में ११५, उज्जैन में ५ तथा गुना जिले में इस भाषा के बोलनेवालों की संख्या १ है। इस प्रकार इस क्षेत्र में निमाड़ी-भाषियों की संख्या सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार १,८०,६८४ है।

खण्डवा-निमाड़ के ४,२२७ वर्गमील के क्षेत्र म सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार निमाड़ी-भाषियों की संख्या १,१०,४०६ है। इनके अतिरिक्त

कुछ दूसरे जिलों में भी इस लोक-भाषा के बोलने वाले १,१७१ व्यक्ति निवास करते हैं। इस प्रकार खण्डवा-निमाड़ के कुल १,११,५७७ व्यक्ति निमाड़ी बोलते हैं। अतः निमाड़ी-भाषियों की कुल संख्या २,९२,२६१ समझी जानी चाहिये। दोनों निमाड़ी-भाषी जिलों की सम्पूर्ण जन-संख्या में से बुरहानपुर तहसील की जन-संख्या निकाल देने पर शेष १०,१३,३६३ जन-संख्या में सन् १९५१ के जन-गणना विवरण के अनुसार निमाड़ी-भाषियों की संख्या केवल २,९२,२६१ है। यह पूर्ण जन-संख्या की लगभग पंचमांश है, जब कि पूर्ण जन-संख्या की अधिक से अधिक एक पंचमांश जनता ही अ-निमाड़ी-भाषी हो सकती है। अतः हमारी दृष्टि में जन-गणना विवरण के अंक विश्वसनीय नहीं हैं। बुरहानपुर तहसील निमाड़ का एक भाग है, किन्तु अन्य तहसीलों की तुलना में यहाँ निमाड़ी बोलनेवालों की संख्या १,७६,४१० में से केवल ७५१ ही है। इसीलिये हमने इस तहसील को निमाड़ी भाषी भाग में स्थान नहीं दिया (नक्शा देखिये)।

इतिहास

प्राचीन काल में इस भू-भाग का क्या नाम था अथवा इसका कितना भाग किस राज्य में था, कहना कठिन है। प्रागैतिहासिक काल में भारत में बहुत छोटे-छोटे अनेक राज्य थे। श्री चिन्तामण विनायक वैद्य ने अपने "महाभारत-मीमांसा" नामक ग्रन्थ में लिखा है:—

"कुरुक्षेत्र के दक्षिण की ओर चलने पर हमें पहिले शूरसेन देश मिलता है। इसकी राजधानी मथुरा यमुना के किनारे प्रसिद्ध ही है। इसके पश्चिम की ओर मत्स्य देश था, जो जयपुर अथवा अलवर के उत्तर में था। जब पाण्डव अज्ञातवास के लिये निकले, तब वे गंगा के किनारे से नैऋत्य की ओर गये। वे आगे यमुना के दक्षिण तीर के पर्वत और अरण्य को लांघकर पांचाल देश के दक्षिण की ओर से और दशार्ण देश के उत्तर की ओर से यकृल्लोम और शूरसेन देश में शिकार करते हुए और यह कहते हुए कि हम बहेलिये हैं, विराट देश को गये। इससे यह जान पड़ता है कि दशार्ण और यकृल्लोम देश यहीं कहीं पास ही रहे होंगे। इसके बाद कुंतिभोजों का देश चर्मण्वती (चम्बल) नदी पर था। इसके बाद निषध देश हमारे ध्यान में आता है। यह निषध देश राजा नल का है। यह देश आजकल के नरवर प्रदेश में माना जाता है।

'नल-दमयन्ती' आख्यान में भी निषध से बन जाते समय नल ने दमयन्ती को यह संकेत करते हुए कि तुम अपने पिता के घर विदर्भ जाओ, जो मार्ग

दिखलाया है, वह भी इसी देश के लिये उपयुक्त होता है।[1] उसे नल ने विदर्भ जाने का जो मार्ग मार्ग बतलाया है, वह अवन्ती और ऋक्षवन्त पर्वत को लांघ कर विन्ध्य महाशैल और पयोष्णि[2] नदी की ओर बतलाया है[3]।

इससे पयोष्णि से लगे हुए दक्षिण के भाग में विदर्भ का होना प्रमाणित होता है, जहाँ कि वह आज भी है, पर उसकी सीमा आज की तरह संकुचित न थी। वह उन दिनों का एक विशाल और अत्यन्त महत्वपूर्ण देश था। ताप्ती आज के निमाड़ी-भाषी भाग की आग्नेय-दक्षिण सीमा से बहती है। रघुवंश में विदर्भ-कुमारी इंदुमति के स्वयंवर में जाते समय महाराज अज को मार्ग में नर्मदा नदी मिलने का वर्णन है[4]। पर आज के विदर्भ की उत्तरी सीमा पर बहने वाली पयोष्णि (ताप्ती) के मिलने का उल्लेख नहीं है। इससे यह भी सम्भव है कि प्राचीन विदर्भ की उत्तरी सीमा नर्मदा और ताप्ती के बीच कहीं रही हो। ऐसी स्थिति में यह समझना असंगत न होगा कि वर्तमान निमाड़ी-भाषी प्रदेश का कुछ भाग प्राचीन विदर्भ राज्य में भी रहा हो।

---

१. एते गच्छन्ति बहवः पन्थानो दक्षिणापथम्
अवन्तीमृक्षवन्तं च समतिक्रम्य पर्वतम् ॥ २० ॥
एष विन्ध्यो महाशैलः पयोष्णी च समुद्रगा।
आश्रमाश्च महर्षीणामयं बहुमूलफलान्विताः ॥ २१ ॥
एष पन्था विदर्भाणामसौ गच्छन्ति कौसलान्
अतः परं च देशोऽयं दक्षिणे दक्षिणापथः ॥ २२ ॥
—महाभारत वन पर्व अ० ५८

२. वर्तमान ताप्ती नदी का प्राचीन नाम पयोष्णि है। इस सम्बन्ध में मतभेद नहीं है। Historical Atlas of India, by Charles Jopen के पृष्ठ ६ पर इस सम्बन्ध में लिखा है—Other Aryans settled on the Godavari, on the Payoshni (Tapti) and on the coast land South of the Payoshni which was called Prabhasa".

३. महाभारत मीमांसा (१९२०) (चिन्तामण विनायक वैद्य-अनु-माधवराव सप्रे) पृष्ठ ३९३-९४।

४. स नर्मदारोधसि सीकरार्द्रैर्मरुद्भिरानर्तितनक्तमाले
निवेशयामास विलङ्घिताध्वा क्लान्तं रजोधूसरकेतु सैन्यम् ॥
रघु॰ ५। ४२

हरिवंश से जान पड़ता है कि जब भगवान कृष्ण रुक्मिणी को हरण कर ले गये, तब रुक्म ने उनका पीछा किया और उन्हें नर्मदा के तट पर देखा।[1]

इससे विदर्भ की राजधानी पयोष्णि और नर्मदा के कहीं बीच में होना जान पड़ता है। हरिवंश की "विन्ध्यस्य दक्षिणपार्श्वे विदर्भायां न्यवेशयत्[2]" पंक्ति से विदर्भ का विन्ध्य के पार्श्व में होना स्पष्ट है। इससे हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि आज का विदर्भ भले ही निमाड़ी-भाषी भाग (निमाड़) के दक्षिण में हो, पर प्रागैतिहासिक काल में इसका एक बड़ा भाग विदर्भ राज्य में अवश्य था।

रघुवंश के इंदुमती-स्वयंवर प्रकरण में स्वयंवर-भवन में उपस्थित राजाओं में अनूप देश के राजा का भी उल्लेख है, जो इस प्रकार है—

अस्यांकलक्ष्मीर्भव दीर्घबाहोर्माहिष्मती वप्रनितम्बकाञ्चीम्।

प्रासादजालैर्जलवेणिरम्यां रेवां यदि प्रेक्षितुमस्ति कामः॥ ६॥४३

इससे अनूपदेश की राजधानी रेवा के तट पर स्थित माहिष्मती का होना स्पष्ट है। निमाड़ी-भाषी प्रदेश के पूर्वी भाग में नर्मदा के तट पर अवस्थित आज का महेश्वर ही प्राचीन माहिष्मती जान पड़ता है। राइस ने अपनी 'माइसोर' पुस्तक में भी वर्तमान माइसोर अथवा महेश्वर को प्राचीन माहिष्मती होना बतलाया है, किन्तु फ्लीट ने प्राचीन माहिष्मती को वर्तमान महेश्वर के समीप बतलाया है।[3] पातंजलि ने अपने महाभाष्य में पाणिनि के 'हेतुमतिच' सूत्र पर १५ वार्तिक दिये हैं। इनमें से १० वें तथा १५ वें वार्तिक में माहिष्मती का जो उल्लेख किया गया है, उससे वर्तमान महेश्वर का ही माहिष्मती होना प्रमाणित होता है। उन्होंने लिखा है—

उज्जयिन्याः प्रस्थितो माहिष्मत्यां सूर्योद्गमने सम्भावते।"

महाभाष्य ३–१–२६

श्री नन्दलाल डे ने भी वर्तमान महेश्वर को ही प्राचीन माहिष्मती होना स्वीकार किया है।[4]

---

१. ते गत्वा दूरमध्वानं सरितं नर्मदामनु।
गोविन्दं ददृशुः क्रुद्धाः सहैव प्रिययास्थितम्॥

हरिवंश विष्णुपर्व पु० ६०। ६

२. हरिवंश विष्णुपर्व पु० ५९। १०

३. रायल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल १९१०-११

4. N. L. Dey : Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India P. 215

इससे अनूप देश का अवन्ती राज्य के दक्षिण-पश्चिम के भाग में होना निश्चित है, जिसमें खरगोन-निमाड़ का वर्तमान महेश्वर नगर स्थित है। अतः वर्तमान निमाड़ी-भाषी प्रदेश का एक भाग प्राचीन अनूपदेश के अन्तर्गत भी होना चाहिये। इन प्रमाणों के आधार पर हम वर्तमान निमाड़ को प्राचीन निषध या अनूपदेश तो पूर्णांश में नहीं कह सकते, पर यह प्राचीन निषध, विदर्भ और अनूपदेश में विभाजित कहा जा सकता है।

निमाड़ी-भाषी भू-भाग का इतिहास तीसरी शताब्दी से किसी न किसी रूप में प्राप्त है। तीसरी शताब्दी में इसके उत्तरी भाग पर हैहयवंशीय राजाओं का अधिकार था, जिसकी राजधानी माहिष्मती (महेश्वर) थी। ऐसा ज्ञात होता है कि यह वंश सर्व प्रथम सन् २४० में महेश्वर आया और यहीं से कुछ हैहयवंशी पूर्व की ओर जाकर बुन्देलखण्ड में बसे।[1]

स्मिथ के मतानुसार सन् ३६० से ५३३ ई० तक इस भाग पर गुप्त राजाओं का राज्य रहा। यद्यपि इनके पश्चात् ही सन् ५०० में मगध-नरेश और मध्यभारत के राजा यशोवर्धन ने हूणों को पराजित कर उन्हें इस क्षेत्र से निकाल दिया।[2]

असीरगढ़ के एक शिलालेख में मौखरी राजाओं का उल्लेख है, जिन्होंने यशोवर्धन पर विजय प्राप्त की थी। इसी वंश के राजा ने हर्षवर्धन की बहिन राज्यश्री को अपनी कैद में रखा था। हर्षवर्धन ने इस राजा को पराजित कर मालवा पर अधिकार किया। सन् ६४८ तक निमाड़ पर वर्धनों का ही राज्य रहा।[3] इसके पश्चात् वाकटकवंशीय राजाओं ने यहाँ आठवीं सदी तक राज्य किया। ९ वीं और १२ वीं सदी तक इस प्रदेश का उत्तरी भाग धार के पँवार राजाओं के अधिकार में और असीरगढ़ तथा उसके समीप का भाग राजपूतों के अधिकार में रहा, जो "टाँक" कहलाते थे।[4]

मान्धाता में प्राप्त एक शिलालेख में, जो सन् १०५५ का बतलाया जाता है, निमाड़ प्रदेश के उत्तरी भाग पर परमार राजा जयसिंह देव का राज्य होने का उल्लेख है। हरसूद के एक सन् १२१८ ई० के शिलालेख से भी ज्ञात होता

१. इंदौर स्टेट गजेटियर पृ० ४९०

2. V. A. Smith :—Early History cf India P. 213, 2nd Edition.

3. Smith Early Hertory of India P. 285-86

4. Tod's Rajasthan (1832) Vol. I. p. 28 to 38 and Vol. II p. 442

है कि इन दिनों इस भू-भाग पर धार के परमार राजा का राज्य था। मान्धाता के सिद्धेश्वर मंदिर से सन् १२६० के प्राप्त एक शिलालेख में इस भाग पर जयवर्धन का राज्य होना बतलाया गया है। आर० वी० रसेल का मत है कि इस भाग पर नवीं सदी से १२ वीं सदी तक मालवा के परमार अथवा पँवार राजाओं का राज्य था। इनके पश्चात् यहाँ क्रमशः तोमर और चौहान वंशीय राजाओं का राज्य रहा।[1]

सन् १२९१ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने दक्षिण भारत पर आक्रमण किया। उस समय असीरगढ़ चौहानों के अधिकार में था। रसेल ने लिखा है कि अलाउद्दीन ने सारे राज-परिवार की हत्या कर दी। उनमें से केवल एक बालक बचा, जो चितौर भाग गया, जिसके वंशजों ने पुनः यहाँ अधिकार किया। चौदहवीं सदी में खेड़ला (बैतूल) के गोंड राजा ने इस भाग पर आक्रमण किया और कई वर्ष तक युद्ध कर चौहानों को पराजित किया। सन् १४२३ ई० में होशंगशाह ने खेड़ला के किले पर अधिकार करने के पश्चात् निमाड़ प्रदेश भी जीता और वह वहाँ राज्य करने लगा। निमाड़ के एक भाग बुरहानपुर पर सन् १३७० ई० में मलिक रजा फारुकी ने अधिकार किया और सन् १५२० तक उसी के वंशज यहाँ राज्य करते रहे, पर इसके पश्चात् मालवा के राजा बहादुरशाह ने इस वंश का राज्य समाप्त कर दिया। बहादुरशाह ने मृत्यु के समय बुरहानपुर से माँडवगढ़ तक का राज्य गुजरात के राजा को दे दिया। इसकी मृत्यु होने पर उसके भाई मीर मुबारिक खाँ ने खानदेश से निमाड़ तक अपना राज्य स्थापित कर 'शाह' की उपाधि धारण की। सन् १५६१ ई० में मुगलों ने इस भाग के राजा बाजबहादुर को पराजित कर अपना अधिकार जमाया।

सन् १५६७ ई० में मीर मुबारिक खां की मृत्यु होने पर उसका भाई रजा अलीखाँ गद्दी पर बैठा, जिसकी दक्षिण के युद्ध में बारूद से जलकर मृत्यु हो गई। बुरहानपुर की जुमा मस्जिद इसी की बनवाई हुई है। असीरगढ़ के एक शिलालेख में इसके पुत्र बहादुरखाँ का मांडव में अकबर के सेनापति खानखाना से युद्ध होने का उल्लेख है। बुरहानपुर से दक्षिण-पश्चिम में ३ मील की दूरी पर स्थित बहादुरपुर इसी के द्वारा बसाया गया कहा जाता है। लगभग २३० वर्ष युद्ध करने के पश्चात् फारुकी वंश के राज्य का अन्त हो गया। अकबर के शासन-काल में निमाड़ प्रदेश का अधिकांश भाग खानदेश में मिला दिया गया।

रसेल ने आगे लिखा है कि सन् १६१४ में अंग्रेजी राजदूत सर थामस मनरो बुरहानपुर आए थे। उस समय शाहजादा परवेज मुगल शासन की ओर

---

1. Nimad District Gazetteer p. 25-26

से यहाँ राज्य करते थे। तब बुरहानपुर बड़ा शहर न था, पर दक्षिण का द्वार होने के कारण उसका अधिक महत्व था। सन् १६७० ई० में मराठों ने प्रथम बार इस भाग पर आक्रमण किया और उनके सेनापति प्रतापराव गूजर ने इस पर अपना अधिकार कर लिया। सन् १६४८ ई० में औरंगजेब ने दक्षिण जाते समय इस प्रदेश पर अपना अधिकार जमाया, पर उसके बुरहानपुर से हटते ही पुनः यह भाग मराठों के अधिकार में आ गया।[1]

सन् १७२० में आसफजाह निजामुलमुल्क ने दक्षिण हैदराबाद में अपना राज्य स्थापित किया और बुरहानपुर तथा असीरगढ़ को भी अपने अधिकार में करना चाहा। परिणाम-स्वरूप निजाम और मराठों में युद्ध हुआ। सन् १७४० ई० की संधि के अनुसार आज का पूर्ण निमाड़ प्रदेश पेशवा को जागीर के रूप में मिल गया। सन् १७५१ ई० में पेशवा ने रामचन्द्र बल्लाल भुस्कुटे को इस प्रदेश का सूबेदार बना दिया, जैसा कि बालाजी पेशवा द्वारा उन्हें दी गई सनद से जान पड़ता है।[2]

सर जान मालकम हैली ने लिखा है कि सन् १७७८ ई० में पेशवा ने पूर्ण निमाड़ प्रदेश होल्कर और सिंधिया को दे दिया। सन् १८०२ ई० में होल्कर ने सिंधिया को पराजित कर उसके अधिकार का निमाड़ प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। इसके पश्चात् ही पिंडारियों के हमले आरम्भ हो गए और सारे निमाड़ प्रदेश में अशान्ति फैल गई। सन् १८१४ ई० में सिंधिया ने पिंडारियों का आतंक रोकने के लिए उन्हें पाँच परगने दे दिए, पर इससे कोई लाभ न हुआ। सन् १८१७ ई० में लार्ड हेस्टिंग्ज ने सिंधिया होल्कर और पेशवा की सहायता से पिण्डारियों का दमन कर दिया। इसके पश्चात् सन् १८६४ ई० तक इस भू-भाग पर अंग्रेजों का ही अधिकार बना रहा और सर जान मालकम उनके प्रतिनिधि के रूप में यहाँ शासन करते रहे।[3]

पिण्डारियों का दमन होने पर भी उनका नेता शेखदुल्ला बचा रहा और वह लगातार आठ वर्ष तक उत्पात मचाता रहा। वह अपने एक साथी के विश्वासघात से बरार के एक ग्राम में मारा गया।

सन् १८५७ के विद्रोह के दिनों में इस भू-भाग पर अंग्रेजों की ओर से केप्टिन कीटिंग्ज शासन करते थे। सन् १८५८ में इतिहास-प्रसिद्ध तातिया टोपे

1. Nimad District Gazetteer. P. 23-28

2. Memoir of Central India (1880) by Sir John Malcolm Part I, P. 10

3. Malcolm : Memoir of Central India (1880) III Edition Part I, P. 10-20.

ने लगभग दस हजार विद्रोहियों के साथ निमाड़ प्रदेश में प्रवेश किया और पिपलोद, सनावद, खण्डवा आदि स्थानों से होते हुए मध्यभारत की ओर चला गया।

सन् १८६० ई० में पूर्ण निमाड़ प्रदेश अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। इसके पश्चात् निमाड़ का वह भाग, जो आजकल खरगोन-निमाड़ कहलाता है, होल्कर को दे दिया गया। भारतीय स्वतन्त्रता के पश्चात् देशी राज्यों का विलीनीकरण होने पर काँग्रेस सरकार ने खरगोन-निमाड़ को मध्यभारत का एक जिला बना दिया। अब यह वर्तमान मध्यप्रदेश का जिला है।

दूसरा अध्याय

भारतीय आर्य भाषाओं में निमाड़ी का स्थान

भारत में आर्यों का प्रसार

इतिहास से स्पष्ट है कि आज भारत में जो लोग रह रहे हैं, उनमें से अधिकाँश यहाँ के मूल निवासी नहीं है। सभी के पूर्वज कभी न कभी अन्य देशों से आकर यहाँ बसे थे। आरम्भ में जो यहाँ आकर बसे, वे विभिन्न देशों से विभिन्न समय यहाँ आये थे। सबकी संस्कृति और भाषा भी भिन्न थी। कुछ विद्वानों का मत है कि सर्व प्रथम अफ्रिका के निग्रों (Negroid) इस देश में आकर बसे, पर अफ्रिका से आने वाले इन निग्रो या निग्रोबटु लोगों की मूल भाषा सुरक्षित न रह सकी। इसका कारण यह था कि इस जाति का कोई विकास न हो सका और इसलिए इनके पश्चात् आनेवाली विकसित जातियों ने अपनी संस्कृति और भाषा के प्रभाव से इनकी मूल संस्कृति और भाषा नष्ट कर दी।

अफ्रिका के निग्रो अथवा निग्रोबटु जाति के पश्चात् जो जाति यहाँ आई, उन्हें डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने प्राथमिक दक्षिणाकार (Proto Austradoids) कहा है। य एक बड़ी संख्या में यहाँ आये और भारत में फैल गये। वर्तमान गोंड, भील, कोल आदि इन्हीं की सन्तानें हैं। डा० चाटुर्ज्या का यह भी मत है कि इनकी भाषा का प्रसार भारत में ही नहीं, पर भारत के निकटस्थ अन्य भागों में भी हुआ। उनका अनुमान है कि कोल अथवा मुंडा वर्ग की भाषाएँ, आसाम की खासी भाषा और भारत-चीन के दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व के द्वीप-समूहों की विभिन्न भाषाओं का जन्म आस्ट्रिक अथवा दक्षिण भाषा से ही हुआ है। इसी जाति के लोगों को भारत आनेवाले आर्यों ने निषाद कहा है। इसी जाति के द्वारा इस देश में कृषि-मूलक सभ्यता की नींव पड़ी। ये गंगा-यमुना के कछार से विन्ध्य तक फैले हुए थे। राजस्थान, मध्यभारत और मालवा में रहने वाले भील-भिलाले इन्हीं निषादों की सन्तानें हैं। इन भागों में आर्यों के पहुँचने पर उनकी संस्कृति और भाषा से ये अत्यधिक प्रभावित हुए और परिणाम-स्वरूप इनकी संस्कृति और भाषा क्रमशः लुप्त हो गई। इनकी भाषा के अवशेष आज की कोरकू, भील, गोंड, संथाल, मुंडा आदि जातियों की भाषाओं में किसी न किसी रूप में देखे जा सकते हैं।[1]

---

१. डा० चाटुर्ज्या : राजस्थानी भाषा (१९४९) पृ० ३७-३८

प्राथमिक दाक्षिणाकारों के पश्चात् भू-मध्यसागर के तट पर बसने वालों का एक दल यहाँ आया। ये ही कुछ समय के पश्चात् द्रविड़ कहलाये। ये निग्रोबटु तथा निषाद जाति से अधिक सभ्य थे। ये एक निश्चित धर्म और संस्कृति के अनुयायी थे तथा इनकी अपनी एक भाषा भी थी। शूरवीर भी कम न थे। आर्यों ने यहाँ आने पर पूर्व अविकसित जातियों से अपना आधिपत्य स्वीकार करा लिया, पर द्रविड़ों से उन्हें वर्षों युद्ध करना पड़ा। युद्ध में परास्त होने के पश्चात् भी ये अपनी संस्कृति और भाषा की रक्षा में समर्थ रहे। इन पर आर्य-संस्कृति का तो प्रभाव पड़ा ही, पर इनकी संस्कृति से भी आर्य कम प्रभावित न हुए। दोनों जातियों के परस्पर सम्पर्क में आने के पश्चात् इनकी संस्कृति और धर्मों के मिश्रण से ही भारत की प्राचीन हिन्दू जाति, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्म का निर्माण हुआ।[१]

यद्यपि द्रविड़ों की अधिक संख्या दक्षिण भारत में ही थी; तथापि आरम्भ में ये पंजाब, सिंध, गुजरात तथा पूर्व भारत में ही जाकर बसे और फैले थे। अतः इन भागों से इनके दक्षिण भारत में चले जाने पर भी इन स्थानों में कुछ द्रविड़ अवश्य रह गये थे। इन भागों में आर्यों की संख्या अधिक थी, जिनकी भाषा का निषाद, कोल, द्रविड़ आदि लोगों की भाषा पर बहुत प्रभाव पड़े बिना न रहा। परिणाम-स्वरूप इनकी भाषा के कुछ शब्द भी किंचित् परिवर्तन के साथ आर्यों की भाषा में आकर मिल गये। 'ट' वर्ग की अधिकाँश ध्वनियाँ और कर्म कारक की विभक्ति 'को' द्रविड़ भाषा से ही आर्य-भाषा में आई। इसी प्रकार आर्य-भाषा में संयुक्त क्रिया का प्रयोग द्रविण भाषा के अनुकरण से ही आरम्भ हुआ।

इसके पश्चात् सन्-ई० से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व मंगोल जाति के लोग यहाँ आये। ये जो भाषा बोलते थे, वह चीन भोट (Sino Tibeton) वर्ग की एक भाषा थी। ये सर्व प्रथम नैपाल, बंगाल-बिहार के उत्तरी भाग तथा आसाम और पूर्व बंगाल में आकर बसे और धीरे-धीरे वहीं के निवासियों में मिल गये। आर्यों की भाषा अधिक समृद्ध थी; अतः अन्य भाषा-भाषी जातियों का उससे प्रभावित होना स्वाभाविक था। इन अनार्य जातियों की भाषा और उच्चारण-प्रणाली का आर्य-भाषा पर भी प्रभाव पड़ा और परिणाम-स्वरूप उसके रूप में परिवर्तन होने लगा।

आर्यों के भारत में आने का समय सन् ई० के दो हजार वर्ष पूर्व से १५०० वर्ष पूर्व तक माना जाता है। उन्हें इस देश को अपना स्थायी निवास बनाने में

---

१. डा० चाटुर्ज्या: ऋतम्भरा (१९५१) 'भारतीय संस्कृति का सूत्रपात' निबंध।

अनेक शताब्दियाँ लग गईं। इस लम्बी अवधि में उनकी भाषा का पूर्व रूप स्थिर न रह सका।

आर्य लोग पहिले पंजाब में आकर बसे और सम्भवतः वहीं उन्होंने ऋग्वेद के अधिकाँश भाग की रचना की, पर उनके आगे बढ़ने का क्रम चलता रहा। इस प्रसार-काल में वे अपनी भाषा और संस्कृति को पूर्णरूपेण अप्रभावित न रख सके। अनार्यों के सम्पर्क से उनके मौलिक रूप में परिवर्तन होता रहा। इसी परिवर्तन के कारण हमें 'यजुर्वेद संहिता' में मूर्द्धन्य व्यञ्जनों का प्रयोग पूर्वापेक्षा अधिक मिलता है। यह परिवर्तन का क्रम आगे भी बढ़ता ही रहा। उनकी भाषा से अनेक प्राचीन शब्द लुप्त हो गए और उनका स्थान अन्य नवीन शब्दों ने ग्रहण कर लिया। इसी परिवर्तन ने आगे चलकर 'संस्कृत' भाषा को जन्म दिया।

भाषा शास्त्रियों ने आर्यों की प्राचीनतम भाषा को 'छान्दस' नाम दिया है, जिसमें ऋग्वेद से लेकर उपनिषदों तक की रचना हुई। यह साहित्य की भाषा थी। इसके अतिरिक्त ऐसी भी अनेक भाषाएँ थीं, जिन्हें विभिन्न कोटि की सामान्य जनता बोलती थी, किन्तु उनका कोई साहित्य उपलब्ध न होने से हम उनके तत्कालीन स्वरूप से परिचित नहीं हो सकते। सभी स्थानों में सदैव से एकाधिक भाषाएँ रही हैं। उनमें किन्हीं एक-दो भाषाओं को साहित्यिक सम्मान प्राप्त रहा और शेष भाषाएँ सामान्य जन-भाषाओं के रूप में व्यवहृत होती रहीं। हमने ऊपर ऋग्वेद-कालीन जिस भाषा के रूप-परिवर्तन की बात कही है, उसके उस परिवर्तन का कारण काल-परिवर्तन और स्थान-परिवर्तन के साथ पड़नेवाले विभिन्न प्रभावों के अतिरिक्त इन जन-भाषाओं का प्रभाव भी था। इन समस्त प्रभावों का एकीकरण ही वैदिक भाषा का रूप क्रमशः सरल बनाता गया और परिणाम-स्वरूप संस्कृत भाषा का आविर्भाव हुआ।

संस्कृत का जन्म

हमें 'संस्कृत' शब्द सर्व प्रथम 'पाणिनीय शिक्षा' में ही मिलता है। यह नामकरण पाणिनि ने सन् ई० से कोई चार सौ वर्ष पहिले किया था। इस भाषा को सुव्यवस्थित रूप देने के लिए ही पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' की रचना की। 'संस्कृत' नाम से ऐसा जान पड़ता है कि इस भाषा को स्वरूप प्राप्त होने के पूर्व कोई ऐसी भाषा अथवा भाषाएँ अवश्य थीं, जिनका संस्कार कर पाणिनि ने 'संस्कृत' भाषा का रूप सँवारा था। ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार उन दिनों भारत के उत्तरी भाग में एक भाषा विशेष प्रचलित थी, जो 'उदीच्य' कहलाती थी। इसके सिवाय मध्यदेश की भी एक भाषा थी, जिसका कोई नाम ज्ञात न होने के कारण ही कदाचित् भाषा-शास्त्रियों ने इसे मध्यदेशीय भाषा कहा है। भारत के पूर्वी भाग की भाषा इससे भी भिन्न थी, जो 'प्राच्य'

कहलाती थीं। ये साहित्यक भाषाएँ नहीं, वरन् लोक-भाषाएँ थीं। पाणिनि ने अष्टाध्यायी की रचना कर जिस भाषा के रूप को व्यवस्था और स्थिरता प्रदान की, उसे उन्होंने 'लोक-प्रचलित' आदर्श भाषा कहा है, जिसे हम आज संस्कृत के नाम से जानते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि पाणिनि ने लोक-प्रचलित विभिन्न भाषाओं में सामंजस्य स्थापित कर 'संस्कृत' भाषा का निर्माण किया था और इसीलिए उन्होंने इसे 'लोक प्रचलित' आदर्श भाषा कहा है।

प्राकृत

इस नव निर्मित भाषा में ग्रन्थ-रचना तो होने लगी, पर उसके व्याकरण के नियमों से आबद्ध होने से वह अधिक विकसित न हो सकी, जब कि विभिन्न लोकभाषाएँ स्वच्छन्द गति से विकसित होती जा रही थीं।

ये ही लोकभाषाएँ आगे चलकर 'प्राकृत' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इनमें से 'प्राच्य प्राकृत' को अशोक के राज्यकाल में राज-भाषा होने का गौरव प्राप्त हुआ था। अशोक ने अनेक स्थानों में इसी भाषा में अपनी धर्माज्ञाएँ खुदवाई थीं। अशोक की ये धर्माज्ञाएँ कहीं-कहीं अन्य भाषाओं में भी मिलती हैं। यथा जयपुर-बैराट की धर्माज्ञा शुद्ध प्राच्य में और गिरनार (काठियावाड़) की धर्माज्ञा सौराष्ट्री में है। इसी प्रकार शाहबाजगढ़ी धर्माज्ञा की भाषा 'उदीच्य' है। गिरनार की धर्माज्ञा में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, वह उस समय की सौराष्ट्र की भाषा कही जाती है, पर यह अभी तक नहीं जाना जा सका कि यह भाषा वहाँ कहाँ से आई।

इस समय संस्कृत को ही साहित्यिक भाषा होने का गौरव प्राप्त था, किन्तु वह सर्व साधारण की भाषा न होने के कारण प्रयोक्ता के मुख अथवा लेखनी से प्रत्येक भाव की अभिव्यक्ति के लिये स्वभावतः न निकल कर उसके प्रयत्न की अपेक्षा रखती थी। दूसरे उसके प्रयोगकर्ता किसी एक प्रदेश में ही सीमित न होकर उत्तरोत्तर अपना विस्तार करते, अन्य भाषा-भाषियों से सम्पर्क बढ़ाते तथा नित्य नये भावों और उनके अभिव्यंजक साधनों का आदान-प्रदान करते जाते थे। इससे प्राकृतों का महत्व बढ़ गया। महावीर स्वामी और बुद्ध देव ने प्राकृत में ही अपना धर्मोपदेश आरम्भ किया था। इन दो धर्म-संस्थापकों का आश्रय पाकर प्राकृत बोलियाँ चमक उठीं और धीरे-धीरे इन्हें भी साहित्यक रूप प्राप्त होने लगा।

जब प्राकृत ने साहित्यिक रूप धारण किया, तब उसका विकास पाँच रूपों में हुआ—शौरसेनी प्राकृत, मागधी प्राकृत, अर्ध मागधी प्राकृत, महाराष्ट्री प्राकृत और पैशाची प्राकृत। यही साहित्यिक प्राकृत द्वितीय प्राकृत कही जाती है। इसके ये रूप स्थान-विशेष के द्योतक हैं। जिन दिनों प्राकृत को साहित्यिक

मर्यादा प्राप्त हुई, उन दिनों भी अन्य कालों की तरह भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न बोलियाँ प्रचलित थीं। इन्हीं बोलियों के प्रभाव-स्वरूप मूल प्राकृत के रूप में परिवर्तन हुए थे। इसी परिवर्तन पर इसके उपर्युक्त पाँच विभाजन आधारित थे। इनमें से महाराष्ट्री प्राकृत एक अत्यन्त समृद्ध भाषा थी। प्राकृत साहित्य का एक बड़ा भाग इसी भाषा में मिलता है। प्राकृत का यह रूप उस समय सम्पूर्ण राष्ट्र में प्रचलित था; सम्भवत: इसके इसी व्यापकत्व के कारण इसे महाराष्ट्री कहलाने का गौरव प्राप्त हुआ और आचार्य दण्डी ने "महाराष्ट्राश्रयां भाषा प्राकृष्टं प्राकृतं विदु:" कहकर इसे सर्वोत्कृष्ट प्राकृत स्वीकार किया है।

शौरसेनी प्राकृत

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह शूरसेन प्रदेश अथवा मध्यदेश की भाषा थी। यह भारत के उस भू-खण्ड की भाषा थी, जहाँ वैदिक भाषा संस्कृत और पाली के समान साहित्य-विपुला भाषाओं का विकास हुआ था। साहित्यिक प्राकृतों में यह प्राचीनतम है। सुरक्षा के अभाव में इसका रूप आज कुछ प्राचीन नाटकों में ही देखा जा सकता है। अश्वघोष, भास, कालि-दास आदि नाटककारों के मध्यमवर्गीय पात्रों की यही भाषा है। इसके अतिरिक्त कुछ जैन ग्रंथों में भी इसका धार्मिक साहित्य सुरक्षित है। यह संस्कृत भाषा के अधिक निकट है। उदाहरणार्थ निम्नांकित शब्द तालिका देखी जा सकती है।[१]

संस्कृत	शौरसेनी
रजत	रअद
पाषाण	पासाण
गदा	गदा
इति	इदि
जानाति	जाणादि
भवति	भोदि
नाथ	णाध, णाह
आर्य्य	अय्य.
सूर्य्य	सुय्य, सुज्ज
आत्मा	अत्ता

सामान्य विशेषताएँ[२]

(१) स्वर मध्यग द्, ध (मूल तथा त्, थ् के परिवर्तित रूप) सुरक्षित हैं। यथा – आगत: 7 आवदो, कथयत् 7 कधेदु, कृत 7 कद, किद।

१. डा० हरदेव बाहरी : प्राकृत और उसका साहित्य, प्र० सं० पृ० ६२

२. डा० उदयनारायण तिवारी : हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास पृ ११५

(२) क्ष 7 क्ख यथा – कुक्षि 7 कुक्खि, इक्षु 7 इक्खु ।

(३) इसके विविधरूप (Optative) संस्कृत के समान ही बनते हैं, जैसा कि ऊपर दी गई शब्द-तालिका से ज्ञात होता है।

(४) शौरसेनी में 'य' प्रत्यय का प्रतिरूप 'ई अ' हो जाता है यथा – पुच्छी – अदि 7 पृच्छ्यति, गमीअदि 7 गम्यति ।

(२) मागधी प्राकृत

यह मगध और उसके निकटवर्ती पूर्वी भाग की भाषा थी। इसी का प्राचीन रूप पाली के नाम से प्रचलित था। अशोक-कालीन पूर्वी और उत्तरी भारत के शिलालेख इसी भाषा में अंकित हैं। संस्कृत के 'मृच्छकटिक' नाटक में इसका रूप देखा जा सकता है। संस्कृत के नाटककारों ने निम्नश्रेणी के पात्रों के द्वारा इसी भाषा का प्रयोग कराया है। इसकी विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

(१) 'र्' के स्थान पर 'ल्' का प्रयोग – राजा 7 लाजा, पुरुषः 7 पुलिशे, समर = शमल ।

(२) ज् के स्थान में 'य्' तथा झ् के स्थान में य्ह (य्ह) का प्रयोग—जानाति 7 याणादि, जनपद 7 यणवद, झटिति 7 य्हति ।

(३) स्, ष् के स्थान पर श् का प्रयोग – शुष्क 7 शुश्क, समर 7 शमल ।

(४) द्य, र्ज्, र्य् के स्थान में य्य का प्रयोग – अद्य 7 अय्य, अर्जुन 7 अय्युण, आर्य 7 अय्यं ।

(५) च्छ के के स्थान में श्च, क्ष के स्थान में श्क, तथा ण्य्, न्य्, ज्ञ् और ञ्ज् के स्थान में ञ्ञ का प्रयोग – गच्छ 7 गश्च, पक्ष 7 पश्क, पुण्य 7 पुञ्ञ, अन्य 7 अञ्ञ, राज्ञः 7 लञ्ञो, ।

(३) अर्ध मागधी

यह शूरसेन और मगध प्रदेश के मध्य भाग की भाषा थी। इसमें शौरसेनी और मागधी दोनों के लक्षण उपलब्ध हैं, पर इसकी प्रवृत्ति शौरसेनी की ओर ही अधिक दृष्टिगोचर होती है। कुछ विद्वानों ने इसे ही 'आर्ष भाषा' कहा है। भगवान बुद्ध ने मागधी में और भगवान महावीर ने अर्ध मागधी में ही अपना उपदेश दिया था। इस भाषा की सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार है।[१]

स्वरों के मध्यवर्ती क, ग, च, ज, त, द और ध के स्थान में य के अतिरिक्त अनेक शब्दों में त का प्रयोग मिलता है—

---

१. डा० बाहरी—प्राकृत और उसका साहित्य, पृ० २८

आराधक 7 आराहत, नरकात् 7 नरताती, अतिग 7 अतित, नारान 7 णारात, प्रवचन 7 पावतण, पूजा 7 पूता, राजेश्वर 7 रातीसर, नदी 7 नती, कदाचित 7 कतानि, सामयिक 7 सामातित, नायक 7 णातग।

इसकी एक विशेषता स्वर मध्यग लुप्त स्पर्श व्यजंनों के स्थान में 'य्' का प्रयोग होना है। यथा—सागर 7 सायर, स्थित 7 ठिय, कृत 7 कय।

(४) महाराष्ट्री प्राकृत

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है साहित्यिक प्राकृतों में महाराष्ट्री प्राकृत ही सर्वाधिक विकसित भाषा थी। गाथासप्तशती, वज्जालग्ग, रावणवहो, गउड वहो, कुमार पाल चरिउ आदि ग्रंथों की रचना इसी भाषा में हुई है। यह आरम्भ से ही पद्य की भाषा रही है, जिससे इसमें काव्य-ग्रंथों का ही निर्माण हुआ है। डा० मनमोहन घोष महाराष्ट्री को शौरसेनी की उत्तर-कालीन शाखा मानते हैं। चाहे जो हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि पाँचवीं और छठवीं शती में महाराष्ट्री-साहित्य से यह महान राष्ट्र प्रभावित था।

इस भाषा की प्रमुख विशेषता इसमें स्वर मध्यग व्यंजनों—क्, त्, प्, ग्, द्, ब् का लोप होकर ख्, ध्, घ्, थ्, भ् के स्थान पर केवल प्राण ध्वनि 'ह्' का शेष रह जाना है। इसका यही रूपान्तर इसे शौरसेनी से पृथक् करता है। इस प्राकृत के दक्षिण में पहुँचने पर यह वहाँ की लोकभाषाओं से प्रभावित हुई और परिणाम-स्वरूप इसने एक नया रूप धारण कर लिया, जो मराठी के नाम से प्रसिद्ध है। इसे हम शौरसेनी प्राकृत तथा शौरसेनी अपभ्रंश के मध्य की भाषा भी कह सकते हैं।

सामान्य विशेषताएँ[१]

(१) कहीं-कहीं ऊष्म व्यंजन ध्वनि के स्थान पर 'ह्' हो गया है—पाषाण 7 पाहाण, अनुदिवसं 7 अनुदिअहं।

(२) अपादान एकवचन में साधारणतः 'अहि' प्रत्यय लगता है—दूराहि 7 दूरात।

(३) अधिकरण एकवचन के रूप 'म्मि' अथवा 'ए' के योग से बनते हैं—लोअस्मि 7 लोकस्मिन।

(४) 'कृ' धातु के रूप वैदिक भाषा के समान निष्पन्न होते हैं—कुणइ 7 कृणोति।

(५) 'आत्मन्' का प्रतिरूप 'अप्प' हो गया है।

---

१. डा० उदयनारायण तिवारी : हिन्दी का उद्गम और विकास, पृ० ११८-१९

(६) क्रिया के कर्मवाच्य का 'य्' प्रत्यय 'इज्ज' में परिवर्तित हो गया है—पृच्छ्यते > पुच्छिज्जइ, गम्यते > गमिज्जइ ।

(५) पैशाची

वाग्भट ने इसे पिशाचों अथवा भूतों की भाषा कहा है; इसलिए यह भूतभाषा अथवा भूत-भाषित भी कही गई है। वररुचि शौरसेनी को पैशाची का मूल कहते हैं। होर्नले के मतानुसार यह एक द्रविड़ भाषा थी। इस प्राकृत का प्रमुख क्षेत्र पश्चिमोत्तर सीमा प्रदेश, जिसमें पेशावर है, समझा जाता है। गुणाढ्य की बृहत् कथा (बड्ड कहा) इसी भाषा में लिखी गई थी, जो अब अप्राप्य है । इसके संस्कृत रूपान्तर मात्र कथासरित्सागर (सोमदेव), वृहत्कथा मंजरी (क्षेमेन्द्र) आदि के रूप में देखे जा सकते हैं । गुणाढ्य प्रतिष्ठान के राजा शालिवाहन के आश्रित बतलाए जाते हैं । इनका समय सन् ७८ ई० के लगभग है । हम्मीर मद-मर्दन और मोहराज पराजय आदि नाटकों के कुछ पात्र पैशाची बोलते दिखाए गए हैं । इस भाषा की निम्नांकित विशेषताएँ हैं[1] :—

(१) स्वरों के मध्यवर्ती ल के स्थान में 'ळ्' का प्रयोग – शील > सीळ, कुल > कुळ ।

(२) सघोष व्यञ्जन के स्थान में अघोष व्यञ्जनों का प्रयोग – नगर > नकर ।

(३) द् के स्थान में त् का प्रयोग – सद् > सत, मदन > मतन ।

(४) ण् के स्थान में न् का प्रयोग – गुण > गुन ।

इन प्राकृतों के साहित्यिक रूप हम आज भी प्राकृत ग्रंथों में देख सकते हैं, पर इनके असाहित्यिक रूप - बोलचाल के रूप उपलब्ध नहीं हैं, जिससे हम इन तत्कालीन प्राकृतों के विभिन्न रूप जानने में असमर्थ हैं ।

अपभ्रंश भाषाएँ (सन् ६०० ई० से १२०० ई० तक)

जिस प्रकार पाणिनि ने संस्कृत को व्याकरण के कठोर नियमों में आबद्ध कर उसका स्वाभाविक विकास अवरुद्ध कर दिया था, उसी प्रकार प्राकृतों के व्याकरण बनने पर इनका विकास भी रुक गया, पर लोकभाषाओं पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा । पतंजलि के समय संस्कृत का व्याकरण जानने वाले ही शुद्ध संस्कृत बोल सकते थे और अन्यों-द्वारा बोली जानेवाली संस्कृत 'अशुद्ध संस्कृत' समझी जाती थी । इसी अशुद्ध समझी जाने वाली संस्कृत ने आगे चलकर प्राकृत का रूप ग्रहण किया था । यही स्थिति प्राकृत के व्याकरण

१. डा० बाहरी : प्राकृत और उसका साहित्य, पृ० ३०

बनने पर भी उत्पन्न हो गई। प्राकृत के व्याकरण तत्कालीन लोकभाषाओं के प्रवाह को अवरुद्ध न कर सके; वे स्वाभाविक गति से विकसित होती गईं। प्राकृत के वैयाकरणों की दृष्टि में ये सामान्य जनों-द्वारा बोली जानेवाली बोलियाँ अशुद्ध समझी जाती थीं; अत: वे इन्हें अपभ्रंश कहने लगे।

अपभ्रंश शब्द का प्रयोग सम्भवत: प्राकृत वैयाकरण चण्ड ने सर्व प्रथम अपने ग्रंथ 'प्राकृत-लक्षणम्' में किया है।[१] आचार्य भामह ने भी अपने 'काव्यालंकार' ग्रंथ में इसे संस्कृत और प्राकृत के साथ स्थान दिया है।[२] इससे यह स्पष्ट है कि उस समय कोई भाषा ऐसी अवश्य थी, जिसे अपभ्रंश कहा जाता था। इसका ९वीं शती तक क्रमश: विकास होता गया और उसे स्थान-भिन्नता के साथ भिन्नता भी प्राप्त होती गई। ग्यारहवीं शती में प्राकृत वैयाकरण पुरुषोत्तम ने इसे शिष्टों की भाषा कहा है। इससे मालूम होता है कि इस समय तक इसे साहित्यिक मर्यादा प्राप्त हो गई थी। इसके पश्चात् ही आचार्य हेमचन्द्र ने इस भाषा का व्याकरण बना कर इसे कुछ निश्चित नियमों में आबद्ध किया था।

हमें सर्व प्रथम भरत के नाट्य-शास्त्र में अपभ्रंश का रूप मिलता है, पर वह प्राकृत से इतना अधिक प्रभावित है कि हम उसे अपभ्रंश का प्रारम्भिक रूप मात्र कह सकते हैं। इसका स्पष्ट रूप हमें कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय, नाटक की कुछ पंक्तियों में ही मिलता है।[३] आचार्य चण्ड ने अपभ्रंश को 'आभीरादिगिर:' कहा है। इससे ६वीं शती में इसका अहीरों की भाषा होना प्रमाणित होता है। सम्भव है कुछ अन्य जातियाँ भी इसे बोलती रही हों। इससे ६वीं शती इस भाषा का आरम्भ-काल माना जा सकता है।

कवि राजशेखर ने मरुभूमि, टक्क और मादानक को अपभ्रंश का क्षेत्र कहा है। इससे राजशेखर के समय तक राजस्थान और पंजाब तक अपभ्रंश का विस्तार जान पड़ता है।

अपभ्रंश की सामान्य विशेषताएँ[४]

(अ) **ध्वनि-विकारों में**—(१) संस्कृत एवं प्राकृत से प्राप्त अन्त्य स्वरों का ह्रास, (२) उपान्त्य स्वरों की मात्रा की सुरक्षा, (३) आद्याक्षरों में क्षतिपूरक दीर्घीकरण-द्वारा व्यञ्जन-द्वित्व के स्थान पर एक व्यञ्जन का प्रयोग तथा (४) समीपवर्ती स्वरों का संकोच।

---

१. 'प्राकृत-लक्षणम्' ३—३७, २. 'काव्यालंकार' १—२६, ३. विक्रमोर्वशीय (चतुर्थ अंक)।

४. डा० उदयनारायण तिवारी — हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० १२४।

(ब) पद-विधान में—(१) अकारान्त पुल्लिग शब्द-रूपों की प्रधानता (२) लिंग-भेद प्रायः समाप्त, (३) प्रथमा-द्वितीया-सम्बोधन में विभक्ति प्रत्ययों का अप्रयोग, (४) सविभक्तिक कारकों के केवल दो समूह – तृतीया-सप्तमी और चतुर्थी-पंचमी-षष्टी तथा इनके रूपों में भी सम्मिश्रण और परसर्गों का प्रयोग, (५) पुरुष वाचक सर्वनामों के रूपों में स्वल्पता, (६) विशेषण-मूलक सर्वनामों के रूप प्रायः नामों के अनुसार, (७) धातुओं के काल-रूपों में विविधता की न्यूनता तथा (८) कृदन्त-रूपों का अधिक प्रयोग।

कोई भाषा कितनी ही समुन्नत और समृद्धशाली क्यों न हो, किन्तु उसका अस्तित्व तब तक ही सुरक्षित रह सकता है, जब तक उसे जन-स्वीकृति और जन-सहयोग प्राप्त है। व्याकरण के नियमों से आबद्ध होने पर प्राकृत भाषाएँ केवल विद्वानों की ही भाषाएँ रह गईं। परिणाम-स्वरूप जन-सहयोग के अभाव में उनका ह्रास आरम्भ हो गया। एक दिन आया, जब साहित्यिक प्राकृत भाषाएँ मृत भाषाएँ समझी जाने लगीं और उनका महत्व अपभ्रंश समझी जाने-वाली भाषाओं को प्राप्त हो गया। वास्तव में अपभ्रंश कोई प्राकृत-विरोधी बोलियाँ नहीं, पर प्राकृतों के ही जन-प्रयुक्त रूप थे। जब अपभ्रंशों में ग्रंथ-रचना आरम्भ हुई, तब विभिन्न प्राकृतों के विभिन्न अपभ्रंश रूपों ने साहित्यिक स्वरूप धारण कर लिया। प्रत्येक प्राकृत के अपभ्रंश-रूप ग्रंथ-रचना के माध्यम बन गए, जिन्हें हम शौरसेनी अपभ्रंश, मागधी अपभ्रंश, महाराष्ट्री अपभ्रंश आदि नामों से जानते हैं।

शौरसेनी अपभ्रंश के सम्बन्ध में डा० चाटुर्ज्या ने लिखा है कि यह शूरसेन या मध्यदेश में प्रचलित बोली के आधार पर बनी थी, पर इस पर राजस्थान, गुजरात तथा पंजाब की और कोशल की अपभ्रंश का भी प्रभाव था। एक समय यह इतनी लोकप्रिय हो गई थी कि समग्र मध्यदेश, काशी और कोशल के पूर्वी प्रान्त, उत्तर-पश्चिम भारत अर्थात् पंजाब तथा गुजरात और राज-पूताना के विशाल भू-खण्ड में इसे साहित्यिक मर्यादा मिल गई।[१]

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ

शौरसेनी अपभ्रंश से पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती और पहाड़ी भाषाओं का विकास हुआ। इनमें राजस्थानी, गुजराती तथा पहाड़ी भाषाएँ नागर अपभ्रंश से सम्बन्धित हैं। बंगला, बिहारी, उड़िया और असम का विकास मागध अपभ्रंश से, पूर्वी हिन्दी का अर्ध मागधी से और मराठी का विकास महाराष्ट्री अपभ्रंश से हुआ। मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं

१. डा० चाटुर्ज्या: राजस्थानी की पूर्व पीठिका (१९४९)

के अन्तिम रूप—अपभ्रंशों से आधुनिक आर्यभाषाओं का आविर्भाव दशवीं शताब्दी के लगभग माना जाता है, पर इसका साहित्यिक प्रयोग बारहवीं शताब्दी से ही आरम्भ होता है।

हिन्दी का सम्बन्ध वास्वत में उसी भू-भाग से है, जहाँ हिन्दी और उसकी बोलियाँ बोली जाती हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने इस भू-भाग की सीमाएँ पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर-पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में शिमला से नैपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश के दक्षिणी भाग, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खंडवा तक मानी हैं।[१]

इस समूल क्षेत्र में हिन्दी की पाँच उपभाषाएँ प्रचलित हैं—(१) राजस्थानी, जिसमें राजस्थान और मध्यभारत क्षेत्र के उत्तरी भाग में बोली जानेवाली समस्त बोलियाँ, (२) बिहारी, जिसमें सम्पूर्ण बिहार और उत्तर प्रदेश के बनारस-गोरखपुर क्षेत्र की बोलियाँ, (३) पहाड़ी, जिसमें उत्तरी पहाड़ी प्रदेशों की बोलियाँ, (४) पश्चिमी हिन्दी, जिसमें वर्तमान मध्यप्रदेश तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश की बोलियाँ और (५) पूर्वी हिन्दी, जिसमें शेष उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ विभाग की बोलियों का स्थान है।

निमाड़ी का स्थान

ग्रियर्सन ने खड़ी बोली, बांगरु, ब्रज, कन्नौजी और बुंदेली को पश्चिमी हिन्दी की बोलियाँ तथा अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी को पूर्वी हिन्दी की बोलियाँ कहा है। अतः डा० ग्रियर्सन के मतानुसार राजस्थानी हिन्दी के क्षेत्र से बाहर है। डा० ग्रियर्सन ने राजस्थानी को पाँच विभागों—पश्चिमी राजस्थानी, उत्तरी-पूर्वी राजस्थानी, मध्यपूर्वी राजस्थानी, दक्षिण-पूर्वी राजस्थानी और दक्षिणी राजस्थानी में विभाजित किया है। अपने इस विभाजन में वे 'निमाड़ी' को दक्षिणी राजस्थानी कहते हैं। डा० ग्रियर्सन की यही दक्षिणी राजस्थानी अर्थात् 'निमाड़ी' इस ग्रंथ का मुख्य विषय है, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या डा० ग्रियर्सन के इस विभाजन से सहमत नहीं हैं। वे पश्चिमी राजस्थानी और मध्यपूर्वी राजस्थानी को निश्चित रूप से राजस्थानी की शाखाएँ स्वीकार करते हैं, किन्तु अन्यों के राजस्थानी की शाखाएँ होने में उन्हें सन्देह है।[२]

मैंने अपने अनुसंधान के आधार पर निमाड़ी के स्वरूप, उसकी अन्तर्गत बोलियाँ तथा निमाड़ी के ध्वनि-तत्व और रूप-तत्व का जो तुलनात्मक

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी भाषा का इतिहास (१९५३), पृष्ठ ५९

२. डा० चाटुर्ज्या : राजस्थानी भाषा, पृ० १०

अध्ययन आगे उपस्थित किया है, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि निमाड़ी पश्चिमी हिन्दी के जितने निकट है, उतने निकट राजस्थानी के नहीं है; अतः यह डा० ग्रियर्सन के अनुसार राजस्थानी की नहीं, वरन ब्रज, बुंदेली, खड़ी बोली आदि की तरह पश्चिमी हिन्दी की ही एक बोली है। भाषा शास्त्री राजस्थानी को हिन्दी के अन्तर्गत मानें या एक पृथक् स्वतंत्र भाषा मानें, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि दोनों स्थितियों में निमाड़ी पश्चिमी हिन्दी की ही एक बोली कहलाने की अधिकारिणी है। यह अवश्य है कि इस बोली में राजस्थानी के कुछ शब्द भी आ गये हैं, किन्तु कुछ शब्दों के आजाने मात्र से यह राजस्थानी की बोली नहीं हो सकती। निमाड़ी में जिस प्रमाण में राजस्थानी के शब्द प्रयुक्त होते हैं, उससे कम प्रमाण में (पश्चिमी निमाड़ी में) गुजराती के शब्द भी प्रयुक्त नहीं हुए हैं। यदि इसमें कुछ राजस्थानी शब्दों का प्रयोग होने से ही यह राजस्थानी की बोली हो सकती है, तो गुजराती शब्दों के प्रयोग से यह गुजराती की भी बोली हो सकती है। पर वास्तविकता यह है कि यह न तो राजस्थानी की बोली है और न गुजराती की ही बोली है, यह वास्तव में पश्चिमी हिन्दी की ही एक बोली है, जिस पर सीमावर्ती भाषाओं--राजस्थानी और गुजराती का कुछ प्रभाव देखा जाता है। इस प्रभाव के अनेक कारण हैं, जिन पर आगे यथास्थान प्रकाश डाला जायगा।

तीसरा अध्याय

निमाड़ी का स्वरूप

निमाड़ी की स्थिति

§१ निमाड़ी-भाषी प्रदेश अनेक भाषाओं से घिरा एक क्षेत्र है। इसके उत्तर में मालवी-भाषी क्षेत्र है, जो इसकी लगभग १५० मील पूर्व-पश्चिम परिधि से आरम्भ होता है। दक्षिण में इसकी पूर्व-पश्चिम लगभग १६० मील लम्बी परिधि को छूता हुआ मराठी तथा उसकी एक बोली खानदेशी का क्षेत्र आरम्भ होता है। पूर्व में लगभग ६० मील उत्तर-दक्षिण परिधि से सम्पर्कित निमाड़ी-प्रभावित बुंदेली तथा पश्चिम में लगभग इतनी ही विस्तृत परिधि मे भीली-भाषी क्षेत्र आरम्भ होता है। निमाड़ी की इस स्थिति का इसके स्वरूप-निर्माण पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है।

निमाड़ी पर विभिन्न मत

§२ भाषा-शास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान डा० जार्ज ग्रियर्सन ने अपने 'लिग्विस्टिक सर्वे आव् इण्डिया (Linguistic Survey of India) के प्रथम खण्ड और नवें खण्ड के प्रथम तथा द्वितीय भाग में 'निमाड़ी' पर अपना मत व्यक्त किया है। उन्होंने प्रथम खण्ड में लिखा है—'उत्तरी निमाड़ और उससे लगे हुए मध्यभारत के भोपावर राज्य में मालवी खानदेशी और भीली से इस प्रकार मिल गई है कि वह एक नई बोली का रूप धारण कर अपनी विशेषताओं के साथ निमाड़ी कहलाती है। जिस अर्थ में राजस्थानी की मेवाड़ी, जयपुरी, मेवाती और मालवी को बोली कहा जा सकता है, उस अर्थ में निमाड़ी कठिनाई से एक बोली कही जा सकती है। यह वास्तव में मालवी के साथ अनेक भाषाओं का एक मिश्रण है।'[1]

---

1. In the North Nimad and the adjoining portion of the Bhopawar Agency of Central India, Malvi has become so mixed with Khandeshi and Bhil languages that it has become a new dialect, called Nimadi and possessing peculiarities of its own. Nimadi can, however, hardly be called a true dialect, in the sense in which we call Marwari, Jaipuri Mewadi and Malvi dialects of Rajasthani. It is rather a mixed form made up of several languges with Malvi for its basis.

Linguistic Survey of India Vol, I part I p. 172

§३ इसके पश्चात् जब वे आगे चलकर राजस्थानी का विभाजन करते हैं, तब निमाड़ी को राजस्थानी का दक्षिणी रूप और मालवी को राजस्थानी का दक्षिण-पूर्वी रूप बतलाते हैं।[1] इस प्रकार वे निमाड़ी को अनेक भाषाओं का मिश्रण बतलाने के पश्चात् राजस्थानी की एक बोली मानते हैं।

§४ इसके आगे डा० ग्रियर्सन कहते हैं कि 'निमाड़ी वास्तव में मालवी का ही एक रूप है, पर इसकी कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनके कारण हमें इस पर एक स्वतंत्र बोली मानकर ही विचार करना चाहिये।'[2]

§५ अब 'निमाड़ी' पर एक दूसरे पाश्चात्य विद्वान श्री फोर्सिथ का मत भी देखिए। वे कहते हैं :—

"The Nemari dialect is a mixture of the common Hindi of Malwa and the upper Nerbudda Valley with Marathi, considerably dashed with high flown persian words and idioms bequeathed to it by its numerous Mohammadan population of former times, and often strongly mingled in their modern uses. The Hindi element preponderates north of the Central hills range and the Marathi to the south of it. Gujerati is also much used by the mercantile classes in Burhanpur"[3]

§६ श्री फोर्सिथ के कथनानुसार 'निमाड़ी' मालवा और नर्मदा के उत्तर में बोली जानेवाली सामान्य हिन्दी के साथ मराठी और फारसी शब्दों का एक मिश्रण है। इससे फोर्सिथ का इसे डा० ग्रियर्सन के अनुसार—राजस्थानी की एक बोली न मानना स्पष्ट है। वे इसे हिन्दी को ही एक बोली मानते हैं।

§७ हमें निमाड़ी में अनेक भाषाओं के शब्दों का मिश्रण देखकर तथा उसका मालवी से अधिक साम्य पाकर इसे डा० ग्रियर्सन के अनुसार मालवी के आधार पर बनी एक संकर लोकभाषा स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं जान पड़ती, किन्तु हम इसे राजस्थानी भाषा-परिवार में स्थान न दे पश्चिमी हिन्दी की बोलियों के अन्तर्गत ही स्थान देना अधिक युक्तिसंगत मानते हैं। अपने इस कथन की पुष्टि के लिए हम आगे निमाड़ी के विभिन्न कालीन रूप प्रस्तुत कर इस दृष्टि से इसका परीक्षण करेंगे।

---

1. Lingistic Survey of India Vol IX Part II P. 2

2. Nimadi is really a form of Malvi dilect of Raiasthani but it has such marked peculiorities of its own that it must be considered separately—L. S. I- Vol. 9 Part II, P. 60.

3. Forsyth Settlement Report of Nemar prov. (1865) Para 1.

निमाड़ी का ऐतिहासिक स्वरूप

§८ मुझे अपने अनुसन्धान में निमाड़ी का जो विभिन्नकालीन साहित्य प्राप्त हुआ है, उसकी शृंखला लगभग सम्वत् १५५५ वि० से आरम्भ होती है; अत: हम इसी काल से निमाड़ी की परम्परा मान सकते हैं। इसका अर्थ यह न समझा जाना चाहिये कि यही निमाड़ी बोली का जन्म-काल है। इसके पूर्व भी निमाड़ी बोली रही होगी और यह भी सम्भव है कि उसमें कोई रचना भी की गई हो, किन्तु इसके पूर्व की कोई प्रामाणिक सामग्री प्राप्त न होने से हम निमाड़ी के पूर्ववर्ती स्वरूप पर प्रकाश डालने में असमर्थ हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से निमाड़ी का विभिन्नकालीन स्वरूप और विकास के विभिन्न सोपानों को समझने के लिये यह संकलित सामग्री निम्नांकित काल-क्रम में रखी जा सकती है:—

सं० १५५० वि०

§९ हमें निमाड़ी में सबसे अधिक प्राचीन रचना ब्रह्मगिर की मिली है। ये निमाड़ी के सुप्रसिद्ध लोक-गायक सन्त सिंगा के गुरु मनरंगिर के गुरु थे। सिंगाजी के महन्त से प्राप्त प्राचीन साहित्य में 'सिंगाजी की परचुरी' नामक एक हस्तलिखित पुस्तक भी है। इस पुस्तक के अनुसार सन्त सिंगा की मृत्यु ९० वर्ष की अवस्था में संवत् १६६४ वि० में हुई थी।[१] तदनुसार इनका जन्म संवत् १५७४ वि० होना चाहिये। इनके गुरु मनरंगिर स्वाभाविक ही अवस्था में इनसे बड़े होने चाहिये और उनके गुरु ब्रह्मगिर उनसे भी कुछ बड़े होने ही चाहिये। यदि हम इस गुरु-परम्परा की एक-एक पीढ़ी केवल २५ वर्ष की मान लें, तो ब्रह्मगिर सिंगाजी से ५० वर्ष बड़े होते हैं। इस प्रकार उनका जन्म-संवत् १५२४ वि० के लगभग जान पड़ता है। यह देखते हुए हम ब्रह्मगिर की रचना लगभग संवत् १५५० वि० को मान सकते हैं। इनका एक पद इस प्रकार है:—

निरगन ब्रह्म कौ चीना,
जद भूल गया सब कीना।
सोहं सबद ह सार,
सब घटमूँ संचरा चार।
जहाँ लाग रहा एक तार,
सब घटमूँ श्री ओंकार।
कोई मीन मारग ढूँढ लीना॥

१. सिंगाजी की परचुरी (हस्तलिखित) अन्तिम पृष्ठ।

जिसे लाग गई आवन की
उसे लाज नही दुनिया की।
सिर चोट पड़त है घनकी,
मूरख क्या जाने तनकी।
कोई फाजल हो कभी ना॥[१]

§१० निमाड़ी के सन्त कवि ब्रह्मगिर हिन्दी के रहस्यवादी कवि कबीर के समकालीन थे। ब्रह्मगिर की उपर्युक्त पंक्तियों में भी हम कबीर की विचार-धारा से साम्य देखते हैं। शब्द और रूप की दृष्टि से इस पद का विश्लेषण इस प्रकार होगा :—

(१) संस्कृत के शब्द—

तत्सम — घट, ब्रह्म, सोहं, श्री ओंकार, मीन।
अर्धतत्सम—निरगुन, सबद, संचरा, मारग, मूरख।

तद्भव—जद, भूल गया, सब, चीना, कीना, है, सार, सब, चार, एक, जहां, लाग रहा, तार, सब, लाज, कोई, ढूंढ लीना, जिसे लाग गई, आवन, उसे, नहीं, सिर, चोट पड़त है, घन, क्या, जाने, तन, कोई कभी, ना।

(२) विदेशी शब्द—

फारसी—फाजल
अरबी—दुनिया

इस प्रकार इस पद के ९६ प्रतिशत संस्कृत के तत्सम, अर्धतत्सम और तद्भव शब्द तथा ४ प्रतिशत विदेशी शब्द हैं।

रूप

§११ इस पद में निम्नांकित रूप है :—

(१) पूर्वी हिन्दी के रूप—चीना, कीना, ढूंढ लीना, लाग रहा, लाग गई।

(२) पश्चिमी हिन्दी के रूप—पूर्वी हिन्दी के उपर्युक्त क्रिया-रूपों के अतिरिक्त अन्य सभी पश्चिमी हिन्दी के रूप हैं। यथा—

संज्ञा के रूप—ब्रह्म, सोहं, सबद, सार, घट, तार, श्री ओंकार, मीन, मारग, लाज, दुनिया, सिर, चोट, घन, मूरख, तन।

सर्वनाम के रूप—सब, कोई, जिसे, उसे, क्या।

विशेषण के रूप—निरगुन, सब, चार, एक।

१. सिंगाजी के महन्त श्री माँगीलालजी के अमुद्रित संग्रह से।

क्रिया के रूप—भूल गया, है, संचरा, पड़त है, जाने, हो।
क्रियार्थक संज्ञा—आवन
क्रिया विशेषण के रूप—जहाँ, नहीं, कभी ना।
अव्यय के रूप—जद
कर्ता कारक के रूप—सोहं, तार, श्री ओंकार, कोई, चोट, मूरख।
कर्म कारक के रूप—ब्रह्म, कोई, जिसे, उसे।
सम्बन्धकारक के रूप—आवन की, दुनिया की, घनकी, तनकी।
अधिकरण कारक के रूप—घटमूं (में), सिर (पर)।

§१२ रूप की दृष्टि से ५ पूर्वी हिन्दी के क्रिया-रूप और शेष ४१ पश्चिमी हिन्दी के विविध रूप हैं।[१] इस प्रकार इस पद में ९० प्रतिशत पश्चिमी हिन्दी के तथा १० प्रतिशत पूर्वी हिन्दी के रूप हैं।

सम्वत् १६०० वि०

§१३ सन्त सिंगा इसी काल के लोकगायक हैं। इनका एक पद देखिये :—[२]

'निरगुन ब्रह्म है न्यारा,
कोई समजो समजनहारा॥
खोजत ब्रह्म जलम सिरानो,
मुनिजन पार न पावे।
खोजत-खोजत सिवजी थाके,
ऐसो अपरम्पारा॥
वेद कहे एक अगम बानी,
सुरता करो विचारा।
काम, क्रोध, मद, मत्सर, व्यापे,
झूठा कलप पसारा॥
त्रिकुटी महल में अनहद बाजे,
होत सबद झनकारा।
सुकमन सेज सुन्न में झूले,
सोहं पुरस हमारा॥

१. जिन शब्दों की पुनरावृत्ति हुई है, उनकी गणना हमने दूसरी बार नहीं की है। आगे के उद्धरणों में भी यही दृष्टिकोण रखा है।

२. सिंगाजी के महन्त श्री माँगीलालजी के अमुद्रित संग्रह से।

§१४ शब्द और रूप की दृष्टि से उपर्युक्त पद का विश्लेषण निम्न प्रकार होगा :—

(१) संस्कृत के शब्द—

तत्सम—ब्रह्म, मुनिजन, अपरम्पार, वेद, अगम, काम, क्रोध, मद, मत्सर, व्यापे, त्रिकुटी, सोहं।

अर्ध तत्सम—निरगुन, सिव, बानी, कलप, सबद।

तद्भव—है, न्यारा, कोई, समजो, समजनहारा, खोजत, जलम, सिरानो, पार, न, पावे, थाके, ऐसो, कहे, एक, सुरता, करो, विचारा, झूठा, पसारा, अनहद, बाजे, होत, झनकारा, सुकमन, सेज, सुन्न, झूले, पुरस, हमारा।

(२) अरबी शब्द-महल।

इस पद के ४८ शब्दों में १२ संस्कृत के तत्सम शब्द, ५ अर्धतत्सम शब्द, ३० तद्भव शब्द और १ विदेशी भाषा (अरबी) का शब्द है। इस प्रकार ९८ प्रतिशत शब्द संस्कृत के तथा २ प्रतिशत विदेशी शब्द हैं।

रूप

§१५ इस पद के सभी रूप पश्चिमी हिन्दी के हैं। यथा—

संज्ञा—ब्रह्म, जनम, समजनहारा (कर्तृवाच्य कृदन्त), मुनिजन, पार, सिवजी, वेद, बानी, सुरता, विचार, काम, क्रोध, मद, मत्सर, कलप, पसारा, त्रिकुटी, महल, अनहद, सबद, झनकार, सुकमन, सेज, सुन्न, सोहं, पुरस।

सर्वनाम— कोई

विशेषण—निरगुन, अपरम्पार, एक, अगम, झूटा, हमारा।

क्रिया—है, समजो, खोजत, सिरानो, पावे, थाके, कहे, करो, व्यापे, बाजे, होत।

क्रियाविशेषण—न्यारा, ऐसो।

कर्ता कारक—ब्रह्म, कोई, समजनहारा, जलम, मुनिजन, सिवजी, वेद, सुरता, काम, क्रोध, मद, मत्सर, पसारा, अनहद, सेज, पुरस।

कर्म कारक—ब्रह्म, पार, बानी।

सम्बन्ध कारक—त्रिकुटी, सबद, सुकमन, हमारा।

अधिकरण—महल में, सुन्न में।

सम्वत् १८५५ वि०

§१६ हमें अपने अनुसन्धान में खरगोन के ठाकुर यादोराव अमृतराव सरकानूनगो के प्राचीन कागज-पत्रों में निमाड़ी में लिखे हुए पत्र भी मिले हैं,

जो निमाड़ी के प्राचीन गद्य-रूप और उसमें क्रमशः होनेवाले परिवर्तन को समझने में विशेष सहायक हैं। इनमें से सबसे प्राचीन पत्र श्रावण कृष्ण सप्तमी सं० १८५५ वि० का लिखा हुआ है, जिसमें निमाड़ी का आज से लगभग १५८ वर्ष पूर्व का गद्य-रूप देखा जा सकता है। पत्र इस प्रकार है :—

"लिखतंग लिख दिया रावत रतनसिंग वल्द मोहनसिंग मौजा दोड़वा परगना भीकनगाँव वाला ने रावत निहालसिंग वल्द रतनसिंग प्रतापसिंग व मोहकमसिंग सुत उमेदसिग ने सदनसिंग इन्होंने अपने आपसी वतन के हिस्सा बांटा चार भले आदमी वो जमीदारों को तुमारे उनकू मुवाफी सौंपी की इनका हिस्सा बाटे का तहट वगेरे का सो हमने कबूल किया वो वास्ते देहणा तपसील कलममिति सरावन बदी सातो संवत १८५५।"

§१७ इस उद्धरण के शब्दों का विभाजन इस प्रकार होगा :—

(१) **संस्कृत के शब्द**

तत्सम—मिति, संवत।

तद्भव—लिखतंग, लिख दिया, रावत, रतनसिंग, मोहनसिंग, दोड़वा, भीकनसिंग, निहालसिंग, रतनसिंग, प्रतापसिंग, वो मोहकमसिंग, सुत, उमेदसिंग, सदनसिंग, इन्होंने, अपने, आपसी, चार, भले, तुमारे, उनकू, सोंपी की, इनका, सो, हमने, किया, सरावन, बदी, १८५५।

(२) मराठी—वाटा, वाटे।

(३) भीली—तहट, देहणा।

(४) **विदेशी शब्द**—

फारसी—वल्द, परगना, वाला, जमीदारों, मुवाफी, वगेरे, तपसील।

अरबी—मौजा, वतन, हिस्सा, आदमी, कबूल, वास्ते, कलम।

उपर्युक्त उद्धरण में २ संस्कृत के तत्सम और ३१ तद्भव शब्द, २ मराठी भाषा के और २ भीली भाषा के शब्द तथा विदेशी भाषाओं में से ७ फारसी के और ७ अरबी भाषा के शब्द हैं। जिन शब्दों की पुनरावृत्ति हुई है, उनकी गणना इनमें नहीं की गई है। इस प्रकार इस उद्धरण में लगभग ६४ प्रतिशत संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्द, लगभग ४ प्रतिशत मराठी के, लगभग ४ प्रतिशत भीली के और लगभग २८ प्रतिशत विदेशी भाषा के शब्द हैं।

रूप

§१८ रूप की दृष्टि से सभी शब्दों में पश्चिमी हिन्दी का रूप है। यथा-संज्ञा—लिखतंग, रतनसिंग, वल्द, मोहनसिंग, मौजा, दोड़वा, परगना, **भीकमगांव,** निहालसिंग, प्रतापसिंग, मोहकमसिंग, सुत, उमेदसिंग, सदनसिंग,

वतन, हिस्सा, वाटा, आदमी, जमीदारों, मुनादी, तहट (निपटारा) दहणा (इकरारनामा), तपसील, कलम, मिति, सराबन, बदी, (कृष्ण प्रतिपदा) संवत्।

सर्वनाम—इन्होंने, अपने, तुमारे, उनकू, इनका, हमने।

विशेषण—रावत, आपसी, चार, भले, सातो, १८५५।

क्रिया—लिख दिया, सोंपी, कबूल किया।

अव्यय—वो, की (कि)।

कर्ता कारक—भीकनगाँववाला ने, उमेदसिंग ने, इन्होंने।

कर्म कारक—लिखतंग (लेख), आदमी, जमींदारों, उनकू (को) मुवाफी।

सम्प्रदान कारक—वास्ते, देहणा।

सम्बन्ध कारक—वतन के, तुम्हारे, इनका, हिस्सा-बाटे का, वगेरे का। इस काल की कोई पद्य रचना उपलब्ध नहीं है।

सम्वत् १८७५ वि०

§१९ निमाड़ी भाषा के रूप की दृष्टि से हमें बीच में एक सुदीर्घकाल तक की रचना प्राप्त नहीं है। इस दृष्टि से रंकनाथ की कुछ पंक्तियाँ ही विचारणीय हैं। इनका जन्म संवत १८४८ में हुआ था। इन्होंने निम्नांकित पद की रचना कब की यह निश्चित रूप से कहना तो कठिन है, पर उनके जन्म-काल को देखते हुए यह पद सं० १८७५ वि० के लगभग रचित कहा जा सकता है। इनकी ब्रजभाषा, निमाड़ी, गुजराती, मराठी और राजस्थानी में भी कुछ रचनाएँ प्राप्त हैं। इनके एक निमाड़ी पद की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं, जो राजस्थानी से पर्याप्त प्रभावित है :—

"जो हुसो सो थारो म्हारो काँई जाय मुरारी।।
राजा की खासदारनी, कोई-न आबरू पाड़ी।
खासदार को काँई गयो रे, गई राजा की सारी।।
पुरुस-त्रिया खेलई जुवा, दाव मूंड सब हारी।
त्रिया तो निरबल छे, पुरुस की निन्दा करे सारी।।"

§२० इस उद्धरण के शब्दों का विभाजन इस प्रकार होगा—

(१) संस्कृत के शब्द—

तत्सम—त्रिया, निंदा।

अर्ध तत्सम—मुरारी, पुरुस, निरबल।

तद्भव—जो, हुसो, थारो, म्हारो, काई, जाय, राजा, काई, पाड़ी, गयो, गई, सारी, खेलई, जुवा, दाव, मूंड, सब, हारी, तो, छे, करे।

(२) विदेशी शब्द—

अरबी—खासदार, खासदारनी

फारसी—आबरू

इस पद में संस्कृत के २ तत्सम शब्द, ३ अर्ध तत्सम शब्द, २२ तद्भव शब्द तथा ३ विदेशी भाषा (अरबी-फारसी) के शब्द हैं। इस प्रकार ९० प्रतिशत संस्कृत के शब्द तथा १० प्रतिशत विदेशी भाषा के शब्द हैं।

रूप

§२१ इस पद में निम्नांकित रूप हैं:—

राजस्थानी के रूप—हुसो, थारो, म्हारो, कांई।

राजस्थानी और गुजराती—छै।

पश्चिमी हिन्दी के रूप—उपर्युक्त पाँच रूपों के अतिरिक्त सभी रूप पश्चिमी हिन्दी के हैं। यथा—

संज्ञा—मुरारी, राजाकी, खासदारनी, आबरू, खासदार को, पुरुस, त्रिया, जुवा, दाव, मूंड, निन्दा।

सर्वनाम—जो, सो, कोई।

विशेषण—सारी, सब, निरबल।

क्रिया—जाय, पाड़ी, गयो, गई, खेलई, हारी, करे।

अव्यय—तो

कर्ता कारक—कोई-न (ने), पुरुस-त्रिया, त्रिया।

कर्म कारक—आबरू, जुवा, दाव, निन्दा।

सम्बन्ध कारक—राजा की, खासदार को (का), पुरुस की।

सम्बोधन कारक—मुरारी।

इस प्रकार इस उद्धरण में ८४ प्रतिशत पश्चिमी हिन्दी के, १३ प्रतिशत राजस्थानी के और ३ प्रतिशत गुजराती तथा राजस्थानी के रूप हैं।

इस काल का कोई गद्य प्राप्त नहीं है।

सम्वत् १६०२ वि०

§२२ अब एक दूसरा पत्र देखिये जो आज से लगभग ११० वर्ष पूर्व और प्रथम पत्र के ४७ वर्ष पश्चात् आषाढ़ कृष्ण ४ सम्वत् १९०२ वि० में लिखा गया था। पत्र इस प्रकार है:—

"राजैश्री सुक्ल बासुदेव जी मुक्काम सहर बरातपुर जोग लि० कसबे खरगोन से ठाकुर बाबाराम जी वो बाबाभटजी वो राजाभाऊ वौ मेरुभट

जी वो फकीरचंद जी वो तानोबा वो विट्ठल पटेल वो नायक गणेसदास जी वो दफ्तरी गणपत वो रामाजी पंडत वो मंडलोई अनन्दराम जी वो पं० बनाजी वो पं० बाबाजी वो नायक बुराम राम राम बंचना।"

"आगो येकसुद जो की सदाराम वो इदसहरवाला इनू की लड़की केसव पटवारी बरुड़ वाला के लड़के कू दिवी है सो उसकी माँगणी मू तुमने दक्षिणा बावत रु० लियो अयसा होताने तुम वा लड़की से बाव कारणों कू गये हैं सो अयसा हवाल मालूम हुआ जिस पर से ये बात तुम न पंच के आदनत उटाल कर ये काम करणो नहीं ये तो पर तुम पंचन की न मानता उलटा चलोगा तो पंच पावणा न्हीं तुम हमारा पूज होना ये काम करणे लगे तो ठीक पड़ने का न्हीं येता पर मरजी तुमारी।

मिति असाड़ बदी ४ संवत् १६०२।"

§२३ भाषा की दृष्टि से इस पत्र के शब्दों का विभाजन निम्न प्रकार होगा :—

(१) संस्कृत शब्द—

तत्सम—दक्षिणा, नायक, पंच, मिति, संवत्।

अर्धतत्सम—राजश्री, पंडत, केसव, पूज।

तद्भव—सुक्ल, वासुदेवजी, बरातपुर, जोग, लि०, ठाकुर, वो, भटजी, राजामाऊ, भेरुभट, विट्ठल, पटेल, गनेसदास, गणपत, रामाजी, मंडलोई, अनन्द-राम, राम राम वंचना, आगो, जो, की सदाराम, इनू लड़की, पटवारी, खरगोन, लड़के, दिवी है, सो, उसकी, मांगणी, तुमने, रु०, लियो अयसा, होताने, तुम, बाव, कारणो, गये हैं, हुआ, जिन पर से, ये बात, उटालकर, काम, बाव, नहीं, येतोपर, पंचन, न, हवाल, मानता, उलटा, चलोगा, तो, पावणा, हमारा, होना, करणे लगे, पड़ने, येतापर, तुमारी, असाड़, बदी, ४, १९०२।

(२) देशी शब्द—बाबा। 'बाबा' शब्द प्राकृत के 'बप्प' से उद्भूत है। यह शब्द फारसी म भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

(३) मिश्र देशी शब्द—बाबाराम, तानोबा, बाबाजी, बरुड़वाला, ऊपर।

मिश्र देशी शब्दों में हमने उन शब्दों को स्थान दिया है, जो देशी और संस्कृत के तत्सम या तद्भव शब्दों के योग से बने हैं।

(४) विदेशी शब्द—

फारसी—सहर, येकसूद, बाबत, आदनत, ठीक, मरजी।

अरबी—मुक्काम (मुकाम), कसबे, दफ्तरी, मालूम।

फकीरचन्द शब्द में फारसी शब्द फकीर और संस्कृत शब्द 'चन्द' (चन्द्र) का योग है।

बनाजी, बराम और इदसहरवाला शब्दों का विभाजन उनकी व्युत्पत्ति के अभाव में सम्भव नहीं है।

उपर्युक्त विभाजन के अनुसार इस पत्र में ५ संस्कृत के तत्सम शब्द, ४ अर्ध तत्सम शब्द, ६९ तद्भव शब्द, १ देशी शब्द, ४ मिश्रदेशी शब्द, १० फारसी-अरबी के विदेशी शब्द तथा ३ अन्य शब्द हैं। इनमें पुनरावृत्ति वाले शब्दों की गणना नहीं है। इस प्रकार पूर्ण पत्र में लगभग ८४ प्रतिशत संस्कृत के, १ प्रतिशत देशी, ४ प्रतिशत मिश्रदेशी, ८ प्रतिशत विदेशी और लगभग ३ प्रतिशत अन्य शब्द हैं।

रूप

§२४ रूप की दृष्टि से सभी रूप पश्चिमी हिन्दी के हैं। यथा—व्यक्तियों और गाँवों के नाम तथा सुकल, पटवारी आदि जातिवाचक शब्द संज्ञा; इनू, तुमने, तुम, ये, तुमारी, हमारा, सर्वनाम; अयसा विशेपण, लिखा, वचन, दिवी है, लियो, गयें हैं, चलोगा, होना, करणो लगे और पड़ने, क्रिया; मांगणी कारणो और होने का क्रियार्थक संज्ञा, होताने, उटालकर तथा मानता पूर्वकालिक क्रिया एवं आगो, कि, की, सो, उलटा, ठीक अव्यय शब्द हैं।

इस पत्र में प्रयुक्त निम्नांकित कारकों के रूप भी पश्चिमी हिन्दी के ही हैं:—

कर्ता—तुमने, तुम-न, तुम।

कर्म—प्रथम अंश (पेराग्राफ) के सब व्यक्तियों के नाम तथा रामाराम, लड़के कू, रु०, काम।

सम्प्रदान—करणो कू (करने के लिये)।

सम्बन्ध—इनूकी, बरुड़काला के, उसकी, हमारा, तुमारी, पंचन की।

अधिकरण—मागणी मूँ।

§२५ 'दीनदास' इसी काल के एक लोककवि हैं। अतः भाषा के रूप की दृष्टि से उपर्युक्त गद्यांश के साथ ही उनकी एक रचना पर भी विचार करना उचित होगा। श्री दीनदास का एक पद इस प्रकार है:—

"मन रघुबर क्यों नाहिं गावे,
हरि छांड़ अवर कस भाव रे।
गयो कुपथ करी दुर्जन संगत,
लघु-लालच-ख-चाहे।

कल्पवृक्ष सम संत समागम,
अवध राम रस भावे रे।
बहु साधन फल देतु न कलि-मूँ,
स्रम करि वय-ख गमावे।
दीनदयाल आलसी कुपात्र-से,
राम के पेट समावे रे।"

§२६ इस पद में विदेशी शब्द एक भी नहीं हैं। सभी संस्कृत के शब्द हैं, जो इस प्रकार हैं:—

तत्सम—मन, हरि, कुपथ, दुर्जन, लघु, कल्पवृक्ष, सम, सन्त, समागम, राम, रस, साधन, बहु, फल, कलि, वय, कुपात्र।

अर्ध तत्सम—संगत, स्रम।

तद्भव—रघुबर, क्यों, नहिं, गावे, छाँड़, अवर, कस, भावे, भयो, करी, लालच, जाहे, अवध, भावे, देतु, करि, गमावे, दीनदयाल, आलसी, से, पेट, समावे।

§२७ रूप की दृष्टि से भी सभी पश्चिमी हिन्दी के रूप हैं। ये रूप इतने स्पष्ट है कि पूर्व उद्धरणों की तरह उनके स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है।

सम्वत् १६६२ वि०

इस काल का एक पत्र निम्नांकित है :—

"संवत् श्री सरब उपमा लायक सदा राजमाने राजेश्री रावत गुलाबचंद वल्द दुल्लवराम जी जोग लिख्यो मदरान्या से पलारसिंग जी बल्द कानसिंग केन रामरामी बाचणो जी। आगे हकीगत अयसी की हम न धाज तुमारा पास भेजो छे सो तुमन नगर की चिट्ठी कराई देणो। माधा का हात रुपया पांच दिया छे सो तुमन काम को निकास करी देणू ये काम करा लाईक छे जी। गरीबा गरीबी को कास छे। मिति जेठ बदी ग्यारस संवत् १६६२।"

§२८ शब्दों के अनुसार इसका विश्लेषण निम्नांकित होगा :—

(१) संस्कृत शब्द

तत्सम—संवत्, श्री, उपमा, नगर, मिति।

अर्थ तत्सम—सरब (सर्व)।

तद्भव—सदा, राजमाने, राजेश्री, रावत, दूल्लवराम, जोग, लिख्यो, पलारसिंग, मानसिंग, रामरामी, बाचणो, आगे, अयसी, की, हम, तुमारा, पास, छे, सो, तुम, चिट्ठी, कराई देणो, हात, रुपया, पांच, दिया छे, काम, निकास, करीदेणू, ये, जेठ, बदी, ग्यारस, १९६२।

(२) देशी शब्द—धाज (भीली में निजी नौकर), माघा (भीली में 'आने वाला')।

(३) विदेशी शब्द—

अरबी—लायेक, वल्द, हकीगत (हकीकत), गरीवा गरीवी।

(४) मिश्र शब्द—गुलाबचन्द (फा० और सं०), करा लाईक (सं० और अ०) इस पत्र में ५ संस्कृत के तत्सम, १ अर्ध तसत्म, ३४ तद्भव शब्द, २ देशी शब्द, ४ विदेशी शब्द और २ मिश्र शब्द हैं। तदनुसार लगभग ८४ प्रतिशत संस्कृत शब्द, ४ प्रतिशत देशी शब्द, ८ प्रतिशत विदेशी शब्द और ४ प्रतिशत मिश्र शब्द हैं।

रूप

§२९ पत्र में प्रयुक्त दो रूपों के अतिरिक्त सभी रूप पश्चिमी हिन्दी के हैं। यथा—

संज्ञा—संवत्, श्री, उपमा, लायेक (विशेषण संज्ञा-रूप में), रावत, गुलाबचंद, वल्द, दुल्लंवराम, मदरान्या, पलारसिंग, मानसिंग, रामरामी, हकीगत, धाज, नगर, चिट्ठी, माघा, हात, रुपया, काम, निकास, गरीबा-गरीबी, मिति, जेठ, बदी, ग्यारस।

सर्वनाम—हम, तुमारा, तुमने।

विशेषण—सरब, राजमाने, राजेश्री, जोग, पाँच, ये, करालाईक, १९६२।

क्रिया—लिख्यो, बाचणो, भेजो छे, कराई देणो, दिया छे, करी देणू।

अव्यय—सदा, आगे, अयसी, की, पास, सो।

कर्ता—हम-न, तुम-न।

कर्म—गुलाबचन्द, रामरामी, धाज, चिट्ठी, रुपया।

अपादान—मदरान्या से।

सम्बन्ध—मानसिंग केन (की), तुमारा, नगर की, माघा का, काम को (का), गरीवा-गरीबी को (का)

अधिकरण—हाल (में विभक्ति लुप्त है)।

राजस्थानी के रूप—भेजो छे, काम छे।

इसमें ९६ प्रतिशत पश्चिमी हिन्दी के रूप और ४ प्रतिशत राजस्थानी के रूप हैं।

§३० इस गद्यांश के साथ इस काल की पद्य-रचना पर भी विचार कर लें। फकीरादास इसी काल के लोककवि हैं। इनका एक पद इस प्रकार है :—

भीलनी का बोर सुदामा का तन्दुल,
खिचड़ी खाई बाई करमा ।
बिदुर की भाजी पर मन हुओ राजी,
प्रेम-सी जिमऽ घनश्यामा ॥
नागनाथ को देउळक फिरायो,
आयो पंढरपुर गामा ।
बादशाह घर जाई दाम चुकायो,
भगत बचायो श्रीदामा ॥
गुरु का चरन-सी कयऽ नाथ फकीरा,
अरज सुणो म्हारी रामा ।
गाँव उमरखली प्रभु सुणजो सामल,
ते पोहचनी धामा-धामा ॥

§३१ इस पद में निम्न प्रकार के शब्द हैं :—

(१) संस्कृत शब्द—

तत्सम—मन, प्रेम, नागनाथ, नाथ, प्रभु, गुरु ।

अर्ध तत्सम—घनश्यामा, श्रीदामा, चरन, रामा, धामा ।

तद्भव—भीलनी, बोर, सुदामा, तन्दुल, खाई, बाई, करमा, बिदुर, हुओ, जिम, देउळ, फिरायो, आयो, पण्ढरपुर, गामा, घर, जाई, दाम, चुकायो, भगत, बचायो, कय, सुणो, म्हारी, गांव, सुणजो, सामल, ते, पोहचनी ।

(२) देशी शब्द—खिचड़ी, भाजी, अरजी (फारसी में भी यह शब्द प्रयुक्त होता है ।

(३) विदेशी शब्द—

फारसी—बादशाह, उमरखली ।

अरबी—राजी, फकीरा ।

उपर्युक्त विश्लेषण के अनुसार इस गीत में ६ संस्कृत के तत्सम, ५ अर्ध-तत्सम, २९ तद्भव, ३ देशी शब्द और ४ विदेशी शब्द हैं । तदनुसार इसमें लगभग ८७ प्रतिशत संस्कृत के शब्द और लगभग ६ प्रतिशत देशी तथा ७ प्रतिशत विदेशी शब्द हैं ।

रूप

§३२ रूप की दृष्टि से 'म्हारी' के अतिरिक्त सभी रूप पश्चिमी हिन्दी के हैं । यथा—

संज्ञा—भीलनी, बोर, सुदामा, तन्दुल, खिचड़ी, बाई, करमा, विदुर, भाजी, मन, प्रेम, घनश्याम, नागनाथ, देउव्ठ, पण्ढरपुर, गामा, बादशाह, घर, दाम, भगत. श्रीदामा, गुरु, चरन, नाथफकीरा, अरज, रामा, गाँव, उमरखली, प्रभु, सामल, पोहचनी (पहुँच), धायी।

सर्वनाम—ते।

क्रिया—खाई, हुओ, जिम, फिरायो, आयो, जाई, चुकाओ, बचायो, कय, सुणो, सुणलो।

कर्ता—मन, घनश्याम, नाथ फकीरा, उमरखली।

कर्म—बोर, तन्दुल, खिचड़ी, देउव्ठ, पण्ढरपुर, गामा, दाम, श्रीदामा, चरन-सी (यहाँ 'सी' को विभक्ति के रूप में प्रयुक्त हुआ है) अर्जी, पोहचनी।

करण—प्रेम-सी।

सम्बन्ध—भीलनी का (के), सुदामा का, बाई करमा (की), विदुर नागनाथ को (का), बादशाह-घर, गुरु का, ते (तुम्हारी)।

अधिकरण—भाजी, धामा-धामा (धाम-धाम में)।

सम्बोधन—रामा, प्रभु, सामल।

राजस्थानी का रूप—म्हारी।

इस पद में लगभग ९८ प्रतिशत पश्चिमी हिन्दी के और लगभग २ प्रतिशत राजस्थानी के रूप हैं।

सम्वत् १९७६ वि०

§३३ इस काल का एक उद्धरण देखिए :—

बापसी जादा तमारो बेटा-बेटी पर प्यार रहेज। बाप कदी मारज तो बालक रड़तो माय पासज आवत, पण माय मारज तो छोरो बाप पास नी जातो। जादा रड़तो देखी न मायज बालक ख पाछ गला सी लगा लेय अन समझावज। छोरा-छोरी को माय-सी जादा कोई हितू नी। एकावास्तऽ आपणा छोरा-छोरीनख कोरा आदमीन का भरोसाज पर मत रहण देओ। उनका भणावण गुणावण की तुम खुद कालजी राखो। मास्तर जो बरसभरीन नी भणावती ते तुम दुई महिना म भणाई सकोज।"[1]

---

१. वाणी—निमाड़ अंक, २ पृ० ९३।

विश्लेषण

§३४ इस उद्धरण के शब्दों का विभाजन निम्न प्रकार होगा :—

(१) संस्कृत शब्द

तत्सम—बालक

तद्भव—तमारो, प्यार, रहेज, कदी, मारज, तो, रड़तो, माय, जातो, देखीन, पाछ, गला, लगईलेज, अन, समझावज, कोई, हितू, आपणा, रहण-देओ, उन, भणावण, गुणावण, तुम, कालजी, राखो, जो, बरसभरी, भणावतो, ते, दुई, महिना, भणाईसको।

(३) देशी शब्द—बाप, बेटा, बेटी, छोरो, छोरी, कोरा, भरोसा।

(४) विदेशी शब्द—

फारसी—जादा, खुद।

अरबी—आदमी।

अंग्रेजी—मास्तर।

(५) मिश्र शब्द—एकावास्तऽ।

इस विश्लेषण के अनुसार उपर्युक्त उद्धरण में १ संस्कृत का तत्सम शब्द, ३७ तद्भव शब्द, ७ देशी शब्द, ४ विदेशी शब्द और १ मिश्र शब्द है। तदनुसार इनमें ७६ प्रतिशत संस्कृत शब्द, १४ प्रतिशत देशी शब्द, ८ प्रतिशत विदेशी शब्द और २ प्रतिशत मिश्र शब्द हैं।

रूप

§३५ इस उद्धरण के सभी रूप पश्चिमी हिन्दी के हैं। यथा—

संज्ञा—बाप, बेटा, बेटी, प्यार, बालक, माय, छोरो, गला, छोरा, छोरी हितू, आदमी, भरोसा, कालजी, मास्तर, बरस, महिना।

क्रियार्थक संज्ञा—भणावण, गुणावण।

सर्वनाम—तमारो, आपणा, उन, तुम, खुद, जो, ते।

विशेषण—जादा, कोई, दुई।

क्रिया—रहेज, मारज, रड़तो, आवज, जातो, लगइलेज, समझावज, रहणदेओ, राखो, भणावणो, भणाई सकोज।

अव्यय—कदी, तो, पास, पण, नी, पाछ, एकावास्त, कौरा, मत।

पूर्वकालिक क्रिया—देखीन।

कर्ता—प्यार, बाप, बालक माय, छोरो, हितू, तुम, खुद, मास्तर, तुम।

कर्म—बालक, छोरा-छोरीनख, उनख, कालजी।

अपादान—बापसी, गलासी, मायसी।

सम्बन्ध—तमारो, माय, बाप, छोरा-छोरी को (का) आपणा, आदमी का, गुणावण की।

अधिकरण—बेटा-बेटी पर, भरोसा पर, बरस भरीम, महिना म।

§३६ इसी काल की एक पद्य-रचना की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

असाड़ महना की जिकर दोस
एक बात बुरी हुई रे।
सातो रे सोमवार नरबदा-मऽ
नाव डूबी गई रे॥
दूर-दूर का रे आया लोग,
जद काक-घटा छई रे।
अरे भरी नाव का बीच
एन पापण बठि गई रे।
काञ्ठ कऽ दई रया ललकार
जम्म की चादर बिछी गी रे॥

विश्लेषण

§३७ उपर्युक्त पद्य-पंक्तियों के शब्दों का विभाजन इस प्रकार होगा—

(१) संस्कृत शब्द

तत्सम—घटा, दूर।

अर्ध तत्सम—काञ्ठ।

तद्भव—असाढ़, महना, एक, बात, हुई, सातों, सुमवार, नाव, डूबी गई, आया, लोग, जव, छई, भरी, बीच, पापण, बठिगई, दई, रया, ललकार, जम्म, बिछीगी।

(२) देशी शब्द—बुरी, चादर।

(३) विदेशी शब्द—फारसी-जिकर, दोस (दोस्त)।

उपर्युक्त उद्धरण में २ संस्कृत के तत्सम शब्द, १ अर्ध तत्सम शब्द और २२ तद्भव शब्द, २ देशी एवं २ विदेशी शब्द हैं। इस प्रकार इसमें लगभग ८६ प्रतिशत संस्कृत के शब्द और ७ प्रतिशत विदेशी शब्द हैं।

रूप

§३८ इन पंक्तियों के सभी रूप पश्चिमी हिन्दी के हैं। यथा—

संज्ञा—असाढ़, महिना, जिकर, दोस, बात, सुमवार, नरबदा, नाव, लोग, काञ्ठ, घटा, पापण, दई, ललकार, जम्म, चादर।

विशेषण—एक, बुरी, सातों, भरी।

क्रिया—हुई, डूबी गई, आया, छई, वठिगई, रया, बिछी गई।

अव्यय—दूर-दूर, जद, बीच।

कर्ता—जिकर, बात, नाव, लोग, घटा, पापण, दई, चादर।

कर्म—सुमवार, काष्ठ-क।

सम्बन्ध—असाड़, महना की, काष्ठ, नाव का, जम्म की।

अधिकरण—नरबदा-म।

सम्बोधन—दोस।

सम्वत् २०१० वि०

§३९ यह निमाड़ी का वर्तमान रूप है:—

"आजादी से रयणू को हक सब कऽछे। येकालेण अपणी जान की भी परवा नहीं करता। देवता, दणव, इन्न बी इनी आजादी का लेण काई नई कर्‌यो, अन उनीज जूनी बात न सी आज बी खूब मदद मिलीज। धनी होय की गरीब, भणेल होय की वे पढ्यो, ऊचा होय की नीचा सब इनी आजादी कालेण बड़ा सी बड़ा न को सामनो करणा-मऽजरा बी पछा नई रया। इनी निमाड़ तो जाणज पर लगभग सारो हिन्दुस्तान बी टन्ट्या मामो का नाँव कऽजाणज, जे नऽअपणी बहादुरी-सी अन्याय को सामनो कर्‌यो, गरीब न की मदद करी, परायो भलो कर्‌यो इना कारण यो सबको प्यारो बण्यो।[1]"

विश्लेषण

(१) संस्कृत शब्द

तत्सम—अन्याय, कारण।

तद्भव—धनी, रयणू, सब, छे, येकालेण, अपणी, नहीं, करना, देवता, दणव, इन्न, इनी, काई, कर्‌यो, अन, उनीज, जूनी, बात, आज, मिलीज होय, भणेल, ऊचो, नीचो, सब, बड़ी, सामनो, करणा, पछा, नई, रह्‌या, इनो, निमाड़, जाणज, लगभग, सारो, टंट्या, मामो, नाँव, जेन, अपणी, परायो, भयो, इना, यो, प्यारो, बण्यो।

(२) विदेशी शब्द

फारसी—आजादी, जान, परवा, खूब, हिन्दुस्तान, बहादुरी।

अरबी—हद, मदद, गरीब, जरा।

---

१. पाक्षिक निमाड़, १७ अप्रैल, १९५३

(३) मिश्र शब्द—बेपढ़्यो।

इस उद्धरण में २ संस्कृत के तत्सम शब्द, १० विदेशी शब्द तथा १ मिश्र शब्द है। इस प्रकार इसमें लगभग ८१·५ प्रतिशत संस्कृत शब्द, लगभग १७ प्रतिशत विदेशी और लगभग १·५ प्रतिशत मिश्र शब्द हैं।

रूप

§४० रूप की दृष्टि से इस उद्धरण में 'छे' के अतिरिक्त सभी रूप पश्चिमी हिन्दी के हैं। यथा—

संज्ञा—आजादी, हक, जान, परवा, देवता, दणव, बात, मदद, धनी, गरीब, सामनो, निमाड़, हिन्दुस्तान, टंट्या, मामो, नाँव, बहादुरी, अन्याय, गरीब, कारण, प्यारो, (वि० संज्ञा-रूप में)।

सर्वनाम—सब, अपणी, इन्न, काई, जेन, इना, यो, सबको।

विशेषण—इनी, जूनी, सब, भणेल, बेपढ़्यो, बड़ा, ऊचो, नीचो, इनी, इनो, सारी, अपणी (सार्वनामिक विशेषण) परायो, भलो।

क्रिया—कर्‌यो, मिलीज, होय, ग्या, जाणज, कारी, बण्यो।

क्रियार्थक संज्ञा—रयणू, करणा-म।

अव्यय—येकालेण, नहीं, अन, उनीज, (क्रि० वि० विशेपणवाची), आज, की (किया), जरा, बी, पछा, नई, पर, लगभग।

कर्ता—हक, देवता, दणव, इन्न, धनी, गरीब, भणेल, बेपढ़्यो, सब, निमाड़, हिन्दुस्तान, जेन, यो।

कर्म—सब-क, परवा, काई, मदद, सामनो, नाँव।

करण—आजादी से, बहादुरी सी।

सम्प्रदान—आजादी का लेण।

अपादान—बात न सी।

सम्बन्ध—रयणू को, जानकी, बड़ान को (का), मामो का, अन्याय को (का), गरीबन की, सबको (का)।

अधिकरण— करणा-मऽ।

राजस्थानी और गुजराती रूप—छे।

इस प्रकार इस उद्धरण में लगभग ८५ प्रतिशत पश्चिमी हिन्दी के और लगभग १५ प्रतिशत राजस्थानी और गुजराती के रूप है।

§४१ इसी काल की एक पद्य-रचना इस प्रकार है :—

वा रड़ी पड़ी।

ओको सौदो कर्‌यो बाप-नऽ,

रुप्यान सी घर भर्‌यो बाप-नऽ,
याव कर्‌यो बस बालपणा-मऽ,
ओको धणी मर्‌यो दुइ दिन-मऽ,
माथा को कू कू धोयो—
अरु हात की चूड़ी झड़ी पड़ी,
वा रड़ी पड़ी ॥

विश्लेषण

§४२ यह अंजड़ के श्री गौरीशंकर की रचना है, जो १९५३ के पाक्षिक 'निमाड़' से ली गई है। इसका शब्द-विभाजन इस प्रकार होगा :—

(१) **संस्कृत शब्द**

तद्‌भव—वा, रड़ी पड़ी, वोको, कर्‌यो, रुप्या, घर, भर्‌यो, याव, बस, बालपणा, धनी, मर्‌यो, दुई, दिन, माथा, कू कू, धोयो, अरु, हात, चूड़ी, झड़ी पड़ी।

(२) **देशी शब्द**—बाप (प्रा० बप्प)।

(३) **विदेशी शब्द**—सौदो (फा०)।

इस पद्यांश में २१ संस्कृत के तद्‌भव शब्द, १ देशी और १ विदेशी शब्द हैं। इस प्रकार इसमें लगभग ९२ प्रतिशत शब्द संस्कृत के, लगभग ४ प्रतिशत देशी और लगभग ४ प्रतिशत शब्द विदेशी भाषा के हैं।

रूप

§४३ इस उद्धरण के सभी रूप पश्चिमी हिन्दी के हैं। यथा—

संज्ञा—सौदो, बाप, रुप्या, घर, याव, बालपणा, धणी, दिन, काथा, कू कू, हात, चूड़ी।

सर्वनाम—वा, ओको।

विशेषण—दुई।

क्रिया—रड़ी पड़ी, कर्‌यो, भर्‌यो, मर्‌यो, धोयो, झड़ी पड़ी।

अव्यय—बस, अरु, भी।

कर्ता—वा, बाप-न, धणी, चूड़ी।

कर्म—सौदो, घर, याव, कू कू।

करण—रुप्यान सी।

सम्बन्ध—ओको, माथा को, हात।

अधिकरण—बालपणा-म, दिन-म।

§४४ 'निमाड़ी' के विभिन्नकालीन ऐतिहासिक रूप पर प्रकाश डालते हुए जो संवत् १५५५ वि० से सं० २०१० वि० तक की सामग्री का विश्लेषण किया गया है, उसकी एकत्र स्थिति इस प्रकार है :—

वर्ष		शब्द				रूप			
		संस्कृत	देशी	विदेशी	मिश्र	पश्चिमी हिन्दी	पूर्वी हिन्दी	राजस्थानी	गुजराती
(१) सं० १५५५	वि० गद्य	—	—	—	—	—	—	—	—
—	पद्य	९६ प्र० श०	—	४ प्र० श०	—	९० प्र० श०	१० प्र० श०	—	—
(२) सं० १६००	वि० गद्य	—	—	—	—	—	—	—	—
—	पद्य	९८ प्र० श०	—	२ प्र० श०	—	१०० प्र० श०	—	—	—
(३) सं० १८५५	वि० गद्य	६४ प्र० श०	४ प्र० श० मराठी ४ प्र० श० भीली	२८ प्र०श०	—	१०० प्र० श०	—	—	—
—	पद्य	—	—	—	—	—	—	—	—

वर्ष		शब्द				रूप			
		संस्कृत	देशी	विदेशी	मिश्र	पश्चिमी हिन्दी	पूर्वी हिन्दी	राजस्थानी	गुजराती
(४) सं० १८७५	वि० गद्य	—	—	—	—	—	—	—	—
	पद्य	९० प्र० श०	—	१० प्र० श०	—	८४ प्र० श०	—	१३ प्र० श०	३ प्र० श०
(५) सं० १९०२	वि० गद्य	८४ प्र० श०	१ प्र० श०	८ प्र० श०	४ प्र० श० ३ प्र० श० अन्य	१०० प्र० श०	—	—	—
	पद्य	१०० प्र० श०	—	—		१०० प्र० श०	—	—	—
(६) सं० १९६२	वि० गद्य	८४ प्र० श०	४ प्र० श०	८ प्र० श०	४ प्र० श०	९६ प्र० श०	—	४ प्र० श०	—
	पद्य	८७ प्र० श०	६ प्र० श०	७ प्र० श०	—	९८ प्र० श०	—	२ प्र० श०	—
(७) सं० १९७९	वि० गद्य	७६ प्र० श०	१४ प्र० स०	८ प्र० श०	२ प्र० श०	१०० प्र० श०	—	—	—
	पद्य	८६ प्र० श०	७ प्र० श०	७ प्र० श०	—	१०० प्र० श०	—	—	—
(८) सं० २०१०	वि० गद्य	८१·५ प्र०श०	—	१७ प्र० श०	१.५ प्र० श०	९८.५ प्र०श०	—	१.५ प्र० श०	—
	पद्य	९२ प्र० श०	४ प्र० श०	४ प्र० श०	—	१०० प्र० श०	—	—	—

§४५ उपर्युक्त कोष्टक से यह स्पष्ट है कि सं० १६०० तक, जिसे निमाड़ी-लोक-साहित्य का निर्गुणधारा-काल कहा जा सकता है, निमाड़ी में संस्कृत के तत्सम, अर्ध तत्सम और तद्भव शब्दों का ही बाहुल्य रहा। मुस्लिम शासन-काल के प्रभाव-स्वरूप दो-चार प्रतिशत अरबी-फारसी के सरल शब्दों को ही निमाड़ी में—विशेषकर सन्तों की वाणी में स्थान मिल सका। रूप की दृष्टि से हमें केवल ब्रह्मगिर की रचना में १० प्रतिशत रूप पूर्वी हिन्दी के मिलते हैं, शेष ९० प्रतिशत रूप पश्चिमी हिन्दी के ही है। संवत् १६०० वि० के निमाड़ी के रूप को देखने के लिये संत सिंगा की जो रचना उद्धृत की गई है, उसके सभी रूप पश्चिमी हिन्दी के हैं। इसका यह रूप ब्रज भाषा से ही अधिक प्रभावित है।

§४६ संवत् १८५५ वि० के पूर्व भी निमाडी-भाषी जनता निमाड़ी बोलती रही होगी, पर कोई लिखित प्रामाणिक सामग्री प्राप्त न होने के कारण इस काल तक के निमाड़ी के गद्य के स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। सं० १८५५ वि० में निमाड़ी में लिखा ठाकुर यादोराव का पत्र निमाड़ी गद्य की प्रथम प्रामाणिक सामग्री है। इस पत्र की भाषा को देखकर यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन पत्र-व्यवहार म अरबी-फारसी के शब्दों का पर्याप्त प्रयोग होता था और निमाड़ी में मराठी तथा भीली भाषा के शब्द भी प्रवेश कर चुके थे। इस पत्र में संस्कृत शब्दों का प्रमाण केवल ६४ प्रतिशत ही है, जब कि इसके पूर्व की सन्तों की वाणी में इसका प्रमाण ९८ प्रतिशत था। इस काल का कोई पद्य उपलब्ध न होने से हम इस काल के निमाड़ी गद्य तथा पद्य की भाषा का अन्तर बतलाने में असमर्थ हैं। रूप की दृष्टि से ठाकुर साहब के पूर्ण पत्र का रूप शत प्रतिशत पश्चिमी हिन्दी का है।

§४७ इसके पश्चात् हमने सं० १८७५ वि० के निमाड़ी के स्वरूप पर प्रकाश डालने के लिये निमाड़ी की सगुणधारा के प्रथम कवि-सन्त रंकनाथ का एक पद उद्धृत किया है, जिसमें ९० प्रतिशत संस्कृत-शब्द तथा १० प्रतिशत अरबी-फारसी के शब्द हैं। संस्कृत के तद्भव शब्दों में ४ राजस्थानी के और १ गुजराती केशब्द का स्थान है। निमाड़ी में राजस्थानी और गुजराती के शब्दों का प्रयोग कब आरम्भ हुआ, प्रमाणों के अभाव में निश्चित रूप से कहना कठिन है। दलूदास, धनजीदास आदि सन्त सिंगा और संत रंकदास के बीच के काल के लोककवि हैं। भाषा के स्वरूप की दृष्टि से इनकी रचनाओं और संत सिंगा की रचना में कोई विशेष अन्तर नहीं है। उदाहरणार्थ निम्नांकित पंक्तियाँ देखिये :—

"अठारा भार बनसपती, फूली डालम डाल।
वाही-मऽचन्दन एकलो, जाकी परमल बास[1] ॥

---

१. महन्त मांगीलाल के भजन-संग्रह से।

—दलूदास (सं० १६३० वि० के लगभग)

प्रथम गाऊं गनपती, गौरी का नन्दन मंगल मुरती।
कंठ कोकिला माता सरसती, अखंड जोत नाम की सुरती[1] ।।

—धनजीदास (दलूदास के समकालीन)

§४८ डा० ग्रियर्सन ने निमाड़ी को राजस्थानी की एक बोली कहा है, जब कि हमें आरम्भ से लगभग ३२५ वर्ष तक (सं० १५५५-१८७५ वि०) निमाड़ी में राजस्थानी के रूप तो क्या, पर शब्द भी ढूंढ़े नहीं मिलते। हमें संवत् १८७५ वि० में प्रथम बार रंकनाथ की रचना में राजस्थानी और गुजराती के शब्द मिलते हैं। इससे लगभग इन्हीं के काल से इन भाषाओं के शब्दों का निमाड़ी में प्रवेश होने का अनुमान किया जा सकता है। दूसरे रंकनाथ की राजस्थानी और गुजराती में की गई रचनाएँ भी उपलब्ध हैं[2]। इससे इनका निमाड़ी, राजस्थानी और गुजराती भाषा पर समान अधिकार होना स्पष्ट है। अतः इनके द्वारा लिखे गये निमाड़ी-पद में राजस्थानी और गुजराती शब्दों का आ जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इस काल का कोई प्रामाणिक गद्य उपलब्ध नहीं है। अतः इस काल की निमाड़ी के स्वरूप के सम्बन्ध में अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता।

§४८ रूप की दृष्टि से रंकनाथ के पद में लगभग ८४ प्रतिशत रूप पश्चिमी हिन्दी के, १३ प्रतिशत रूप राजस्थानी के और ३ प्रतिशत रूप गुजराती के हैं।

§४९ सं० १९०२ वि० की निमाड़ी के गद्य तथा पद्य दोनों के नमूने प्राप्त हैं, जो इस काल की निमाड़ी के स्वरूपों को समझने की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं। इस काल के गद्य में ८४ प्रतिशत संस्कृत-शब्द, १ प्रतिशत देशी, ८ प्रतिशत विदेशी, ४ प्रतिशत मिश्र तथा ३ प्रतिशत अन्य शब्द हैं। पद्य में शत-प्रतिशत संस्कृत के ही शब्द हैं। इससे जान पड़ता है कि इस काल के गद्य में विदेशी तथा अन्य प्रकार के शब्दों का भी प्रयोग प्रचलित था, पर पद्य में इन विजातीय शब्दों का प्रयोग नाममात्र को ही होता था। रूप की दृष्टि से इस काल के गद्य और पद्य, दोनों के रूप शत-प्रतिशत पश्चिमी हिन्दी के ही थे।

§५० सं० १९६२ वि० की निमाड़ी के गद्य में ८४ प्रतिशत संस्कृत के, ४ प्रतिशत देशी, ८ प्रतिशत विदेशी और ४ प्रतिशत मिश्र शब्द हैं। पद्य में संस्कृत तथा देशी शब्दों का प्रमाण बढ़ गया और विदेशी शब्दों का प्रमाण न्यून हो गया है। इससे हमें यह मालूम होता है कि इस काल की निमाड़ी के गद्य

---

१. अभिमन्यू को याव, पृ० १।

२. रंकनाथ पदावली।

का रूप सं० १९०२ वि० के प्रायः समान ही है, पर पद्य की भाषा में देशी शब्दों का प्रमाण बढ़ता जा रहा है, जिसका कारण हमें निमाड़ी पर भीली और राजस्थानी का प्रभाव जान पड़ता है। रूप की दृष्टि से भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। गद्य में ९६ प्रतिशत पश्चिमी हिन्दी के रूप और ४ प्रतिशत राजस्थानी के रूप हैं। पद्य में भी ९८ प्रतिशत पश्चिमी हिन्दी के रूप और २ प्रतिशत राजस्थानी के रूप हैं।

§५१ सं० १९७९ वि० के निमाड़ी गद्य में संस्कृत-शब्दों का प्रमाण पुनः कम हो गया और देशी शब्दों का प्रमाण बढ़ गया है। विदेशी शब्दों का प्रमाण पूर्ववत् ही है, किन्तु पद्य में संस्कृत-शब्दों का प्रमाण पूर्ववत् है और देशी तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग भी पूर्ववत् ही है। रूप की दृष्टि से इस काल के गद्य और पद्य, दोनों के शत-प्रतिशत रूप पश्चिमी हिन्दी के ही हैं।

§५२ सं० २०१० वि० का गद्य और पद्य सर्वथा आधुनिक है। गद्य में १७ प्रतिशत विदेशी शब्द हैं जब कि इसके पूर्व विदेशी शब्दों का प्रमाण केवल ८ प्रतिशत ही था। इस उद्धरण में प्रयुक्त आजादी, जान, परवा, बहादुरी आदि आज सामान्य जनता के शब्द बन गये हैं और हिन्दी की अन्य बोलियों में भी प्रयुक्त होते हैं; अतः इन शब्दों के प्रयोग से यह नहीं कहा जा सकता कि निमाड़ी में विदेशी शब्दों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

§५३ इस काल के पद्य में पहिले की तरह संस्कृत-शब्दों का ही बाहुल्य है. केवल एक ही विदेशी शब्द का प्रयोग है। रूप की दृष्टि से गद्य में राजस्थानी और गुजराती में प्रयुक्त 'छे' क्रिया मिलती है, शेष सभी रूप पश्चिमी हिन्दी के ही हैं। पद्य के शत-प्रतिशत रूप पश्चिमी हिन्दी के हैं। निमाड़ी के इन लगभग ४५० वर्ष से विभिन्न ऐतिहासिक रूपों के विश्लेषण से शब्द और रूप, दोनों दृष्टि से यह स्पष्ट है कि निमाड़ी राजस्थानी की नहीं, पर पश्चिमी हिन्दी की एक बोली है और आरम्भ से ही इस बोली का विकास पश्चिमी हिन्दी की अन्य बोलियों की तरह ही होता आया है।

निमाड़ी की शब्द-सम्पत्ति

§५४ किसी भी आधुनिक भारतीय आर्य भाषा अथवा बोली में हमें पाँच प्रकार के शब्द मिलते हैं—(१) तत्सम शब्द, जो संस्कृत से मूल रूप में आये हैं, (२) अर्ध तत्सम शब्द, जो किंचित ध्वनि-परिवर्तन के साथ संस्कृत से आये हैं, (३) तद्भव शब्द, जो संस्कृत से प्राकृतों के द्वारा आये हैं, (४) देशी शब्द, जो अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं से उधार लिये गये हैं और (५) विदेशी शब्द, जो अँग्रेजी, फारसी, अरबी आदि विदेशी भाषाओं से आये हैं। ये पाँचों प्रकार के शब्द निमाड़ी में भी व्यवहृत होते हैं, किन्तु यह एक बोली है,

भाषा नहीं, जिससे इसमें तत्सम शब्दों की संख्या अत्यल्प है। हमें निमाड़ी में जो तत्सम शब्द मिलते हैं, वे प्राय: सन्तों की वाणियों में ही हैं, वे बोलचाल में क्वचित् ही सुनाई देते हैं। इसमें अर्ध तत्सम शब्दों की संख्या तत्सम शब्दों से अधिक है, पर इसका अधिकांश शब्द-कोश तद्भव शब्दों से ही पूर्ण है। इसकी शब्द-सम्पत्ति में तद्भव के पश्चात् देशी शब्दों का क्रम है। कुछ अंग्रेजी, अरबी और फारसी के शब्द भी गृहीत हुए हैं, पर उनमें से कदाचित् ही कोई शब्द मूल रूप में ग्रहण किया गया हो। 'सरलता' लोकभाषा की विशेषता है, उच्चारण की कठिनाई उसके स्वभाव के विरुद्ध है। उसकी इसी विशेषता के कारण उसने विदेशी शब्दों को ग्रहण करने के पूर्व सरल बना लिये हैं। हम इस प्रबन्ध के अन्त में निमाड़ी का संक्षिप्त शब्दकोश दे रहे हैं। अत: यहाँ दिया गया शब्द-समूह इसका उदाहरण-मात्र ही समझा जाना चाहिये।

§५५ तत्सम शब्द

अगम	०गरल	पाप	मिति	शिव
अंग	घट	०पार	मीन	श्री
अपरम्पार	०घन	फल	मुनिजन	संत
आदिदेव	०जल	ब्रह्म	मुक्त	संवत
एकाकार	जीव	बुद्धि	मुक्ति	साधन
ओंकार	ताप	भ्रकुटि	रवि	सोहं
कमल	दुर्जन	मद	राम	हरि
०काम	धिक्कार	मंद	रुचि	त्रिकुटी
काल	नायक	मन	वाट	त्रिया
क्रोध	निंदा	मत्सर	विस्तार	त्रिभुवन
कुपथ	पत्रिका	ममता	वेद	त्रेता
गगन	पंच	माया	शशि	ज्ञान

§५६ अर्ध तत्सम शब्द

अगनी (अग्नि) धरम (धम) बिसवास (विश्वास)
अमरित (अमृत) नवा (नव) बणज(वाणिज्य) समरथ(समर्थ)
अमावस (अमावश्या) निच्चय (निश्चय) बरस (वर्ष) सबद (शब्द)

---

० इनका तद्भव रूप भी यही है।

अम्मर (अमर)
अरघ (अर्घ्य)
आरण (अरण्य)
इद्या (विद्या)
करम (कर्म)
कळस (कलश)
गऊर (गौर)
गरम (गर्म)
गुवाल (ग्वाल)
चरन (चरण)
जागरन (जागरण)
जनम (जन्म)
दरप (दर्प)
दिस्टी (दृष्टि)

निरमल (निर्मल)
निरधार (निर्धार)
निरवान (निर्वाण)
परकास (प्रकाश)
परगट (प्रगट, प्रकट)
परख्यात (प्रख्यात)
परचार (प्रचार)
परजा (प्रजा)
परनय (प्रणय)
परनाम (प्रणाम)
परतिग्या (प्रतिज्ञा)
बचन (वचन)
बन (वन)
बजर (बज्र)

भरम (भ्रम)
मरम (मर्म)
मारग (मार्ग)
मिरग (मृग)
रोपो (रोप)
रोस (रोष)
लगन (लग्न)
बरखा (वर्षा)
वरण (वर्ण)
वरम (वर्म)
वरनन (वर्णन)
वेल (वल्लि)
सकुन (शकुन)
सक्ती (शक्ति)

संक (शंका)
सरावन (श्रावण)
संख (शंख)
सांत (शान्त)
सान्ती (शान्ति)
सास्तर (शास्त्र)
सुक्र (शुक्र)
सुक्ल (शुक्ल)
सिवरातरी (शिवरात्रि)
सुद्र (शूद्र)

५७ तद्भव शब्द

अखाड़ो (अक्षवाट)
अग्घन (अग्रहयन)
अटारी (अट्टालिका)
अनभाव (अनुभाव)
अनहद (अनाहत)
आखर (अक्षर)
अबरक (अभ्रक)
आंगठो (अंगुष्ठो)
अचरज (आश्चर्य)
आचल (अञ्चल)
आज (अद्य)
आदो (आर्द्र)
ईट (इष्ट)
उजरो (उज्ज्वल)
उंभो (उद्भिति)
उंकारी (अहंकारी)
ऊट (ऊष्ट्र)

एक्को (ऐक्य)
कछवा (कच्छप)
कुटनी (कुट्टनिका)
कंकोत्री (कुंकुमपत्री)
कैंची (कर्त्तरी)
काजर (कज्जल)
कोख (कुक्ष)
करण (कर्ण)
कोढ़ (कुष्ट)
काटो (कण्टक)
कोरा (क्रोड़)
काम (कर्म)
कोसा (कोश)
किरसाण (कृषक)
कीड़ो (कीटक)
कुवर (कुमार)
खपरो (खर्पर)

खनूता (खनित्र)
खंब (स्तम्भ)
खिन (क्षीण)
खुर (क्षुर)
खेत (क्षेत्र)
गाठ (ग्रंथि)
दांड (दण्ड)
दाढ़ (दंष्ट्र)
दार (द्वार)
दीठ (दृष्टि)
दूब (दूर्वा)
भूसो (भुषकम)
भौजाई (भ्रातृजाया)
मक्खी (मक्षिका)
मसान (श्मशान)
मंढो (मंडप)

गाभन (गर्भिणी)
गाल (गण्ड)
गाँव (ग्राम)
गोत् (गोत्र)
घड़ी (घटिका)
घान (घ्राण)
घिन (घृणा)
चबरो (चार्वाक)
चलाक (चाणाक्ष)
चबानो (चर्वण)
चमार (चर्म्मकार)
चामड़ा (चर्म)
छुरो (क्षुरिका)
छेद (छिद्र)
जतन (यत्न)
जत्रा (यात्रा)
जीभ (जिह्वा)
जूड़ो (जूटक)
जोत (ज्योति)
जोतसी (ज्योतिषी)
झरनो (निर्झर)
झांझ (झंकार)
ढीट (धृष्ट)
तमेरो (ताम्रकार)
ताक (तक्र)
तामो (ताम्र)
तीखो (तीक्ष्ण)
तीस (तृषा)
तुरत (त्वरित)

धरती (धरित्री)
धान (धान्य)
नाक (नासिका)
नाच (नृत्य)
नास (नष्ट)
नाती (नप्त्रिण)
नींद (निद्रा)
नेम (नियम)
पख (पक्ष)
पखारनो (प्रक्षालन)
पसारी (पण्यशालिक)
पड़वा (प्रतिपदा)
पान (पर्ण)
पाहुणो (प्राहुण)
पीठ (पृष्ठ)
पूछ (पुच्छ)
फरसी (परश्विका)
फासी (पाश)
बखान (व्याख्यान)
बनिज (वाणिज्य)
बहिरो (वधिर)
बाजो (वाद्य)
बात (वार्ता)
बाण्यो (वणिक)
बेत (वेत्र)
भाई (भ्रातृ)
भांड (भण्ड)
भादो (भाद्रपद)
भीख (भिक्षा)

मानक (माणिक्य)
मुट्ठी (मुष्टिका)
मोती (मौक्तिक)
रजपूत (राजपुत्र)
राकस (राक्षस)
रात (रात्रि)
रानी (राज्ञी)
रूखो (रुक्ष)
लाज (लज्जा)
वऊ (वधू)
वाँझ (वन्ध्या)
वीज (विज्जु)
सक्कर (शर्करा)
सब (सर्व)
सात (सप्त)
साथ (सार्थ)
सावलो (श्यामल)
साँज (संध्या)
सिखावन (शिक्षा)
सुन्दर (सौड्ढम्)
सूखो (शुष्क)
सूत (सूत्र)
सूनो (शून्य)
हांडी (हृण्ड)
होट् (ओष्ठ)

§५८ देशी शब्द

अल्यांग (इस ओर)
अवघुत (भयानक, विचित्र)
टोड़ी (कान का एक आभूषण)
ठापुर (घोड़े की टाप)
पैरावणी (पहिनने को भेंट किए वस्त्र)

अहेलड़ी (आनेवाली)
आकरी (तीखी)
आखो (पूरा)
आड़ो (एढ़ी)
आखा (मोट का मुँह)
ऊण्डो (गहरा)
एल्लो (छोटा)
कणगी (बास की कोठी)
कंदोरी (करधनी)
कल्यांग (किस ओर)
काचलई (चोली)
केड़ो (भैंस का बच्चा)
खासड़ा (जूता)
खुसव्ठ (खुश मिजाज)
गंज (पीतल का एक बर्तन)
गवाण (पशुओं को चारा-खिलाने का स्थान)
गोरड़ी (गौरवर्णी)
गोव्ठ्या (मोट के मुँह का बंधन)

डेटलाण (अधिक भोजन से बेचैनी)
ढांडो (मूर्ख)
चिबल्ली (शरारती)
चोखा (चाँवल)
छमटी (पूँछ)
छेड़ो (घूंघट)
जरियाव्ठो (शूर)
जेर (जहर)
राबड़ (नर्तक)
तिवाया (खड़े होकर अनाज उड़ाने की तिपाई)
राँग (नाव के दोनों ओर के पटिए)
तिस्पाती (अनाज बोने की तिपाई)
दोयड़ी (रस्सी)
धपेल (भयभीत, दबा हुआ)
धुतड़ा (दूती)
नूगरो (धीट, शरारती)
न्हार (सिंह)
परवाड़ (चमड़े की मोट)
पल्याँग (आगे की ओर)

माट (मिट्टी का बड़ा बर्तन)
पोट्या (छोटी मटकी)
बिल्लोर (एक प्रकार की चूड़ी)
बेरू (स्त्री)
मगजी (गोठ, किनार)
मंगता (भिखारी)
मांदो (बीमार)
झोपना (खलियान का कांटेदार फाटक)
याब (विवाह)
रोटा (ज्वार की रोटी)
वल्याँग (उस ओर)
वटको (कटोरा)
साँवण (नाव की पाल)
सेरो (पानी का झल्ला)
सेंगली (फली)
हुम्मार (रम्भाना)
हिंदणा (निर्बल)

§५६ मिश्र अथवा संयोगी शब्द

कराईलाईक (करने लायक)
गुलाबचन्द
तानोबा
बाबाराम
बेपढ्यो
मोहकमसिंग

§६० निमाड़ी में प्रयुक्त अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द

मराठी शब्द

आन (शपथ)
उंदरा, उंदर (चूहा)
उभा (खड़ा)
उस्टी (जूठी)
एव्ठी (पागल)
एवढ़ो (इतना)
कवव्ठी (कोमल)
कव्ठस (कलस)
काव्ठजी (चिन्ता)
काव्ठी (काली)
कुव्ठ (वंश)
कोण (कौन)
कोरड़ो-कोरड़ा (सूखा)
कोव्ठसा (कोयला)
खेंव्ठ (खेल)
गाई (गाय)
चेण्डू (गेंद)
छन्द (बुरा शौक)
डाव्ठ (डाली)
डोब्ठा (आँख)
डोंगर (पहाड़)
दगड़ (पत्थर)
दिस (दिखाई देना)
नणद (ननद)
पण (पर)
पाणी (पानी)
पातव्ठ (पतला)
पाव्ठना (भूला)
पिवव्ठो (पीला)
पोपट (तोता)
पोर (लड़का)
फव्ठ (फल)
फराव्ठ (फलाहार)
बयड़ी (पहाड़ी)
बायको (स्त्री)
बाव्ठ (बच्चा)
भाण्डा (बर्तन)
माहिती (जानकारी)
मांजर (बिल्ली)
मोठा (बड़ा)
रड़ (रोना)
लगण (लग्न)
लेकरू (लड़का)
वय (अवस्था)
वाट (रास्ता)
वेचण (चुनने को रखा अनाज)
सकाव्ठ (सबेरे)
सासर (ससुराल)
सेंग (फली)
सोव्ठा (सोलह)
हाक (पुकारा)
हासी (हँसी)
हिरवी (हिरवी)

§६१ राजस्थानी शब्द

इण (इस)
ऊंग्यो (उदय हुआ)

कने (पास)
काँई (क्या)
कुकड़ो (मुर्गा)
कुण (कौन)
कुत्तो (कुत्ता)
खेलण (खेलने)
ठेकाणू (ठिकाना)
छोरो (लड़का)
झुलाड़सा (झुलायेंगे)
तारो (तारा)
थारो (तेरा)
जाणू (जाना)
विलई (बिल्ली)
बेण (बहिन)
म्हारो (मेरा)
मूंड़ो (मुँह)
सगळा (सब, पूरा)

इस शब्द-समूह में यह स्मरणीय है कि इसके कुत्तो, जाणू, बिलई उच्चारण-भेद से हिन्दी में भी बोले जाते हैं। इसी प्रकार बेन, कुकड़ो, तारो और मूडो मालवी में भी बोले जाते हैं। 'सगळा' शब्द मराठी में भी बोलते हैं।

§६२ गुजराती शब्द

आपो (दो)
आपसे (देगा)
आवसे (आयगा)
कीधा (किया)
केम (क्यों)
छे (है)
जथो (जैसा)
जिण (जिन)
जेवी (जिसकी)
तड़ाय (पहिचाना जाय)
तणाय (तानकर)
तणे (पास)
तणो (तना हुआ)
तम (तुम)
तमे (तुम्हारी)
तारा (तेरा)
त्यारे (तेवर)
दीदा (दिया)
दीवी (दी)
नानो (छोरा)
पछी (पीछे)
बे (दो)
बैन (बहिन)
मारा (हमारा)
लीदो (लिया)

विदेशी शब्द

§६३ अरबी भाषा के शब्द

अकल	इज्जत	इलाका	कसाई
अदालत	इतबार	कतल	कसूर
अमीर	इनकार	कब्जा	काबिज
औलाद	इमारत	कबूल	किताब
इजहार	इसतहार	करामात	किला (लो)

कुदरत
खंजर
खारिज
खिलाप
गरज
गुलाम
जमा
जमादार
जमानत
जरीबाना
जरूरत
जारी
जिकर
जीन
जुरम

तकरार
तामिल
तासीर
दलाल
दलील
दौलत
नबाब
नसीब
नजराना (नो)
नाबालिक (ग)
फौज
फौत
बखत (वक्त)
बरकत
ब्यान

बुरको
मजा
मदरसा
मनसबदार
मयफल
मरज
माफ
मालिक
मुकदमा
मुकाबला (लो)
मुनासिब
मुनाफा (फो)
मुल्तबी
मुन्शी
मोहकमा

मोहलत
रइअत
रिसाला (लो)
सरकार
सुबे (सुबह)
सूबा (बो)
हक
हकदार
हकीम
हजूर
हिपाजत
हिम्मत
हिसाब
हिस्सा (सो)

§६४ फारसी के शब्द

अगर
अरदास
अरजी
आबाद
आईना
उजर
कमजोर
कमान
कमीन
कस्बा
कागद
कुस्ती
कूच
गज
गुमास्ता
चाबी

चाबुक
चसमो (चश्मा)
चुगलखोर
जखम
जख्मी
जघा (जगह)
जबर
जबान
जमीन
जरी
जायदाद
तखत
ताज
ताब
ताबीज
तालुक

तीर
दम
दरखास
दरद
दरबार
दरवाजा (जो)
दसखत
दहसत
दुसमन
नगदी
नख, नाखून
नालिस
नौकर
नौबत
पेसगी
पेसा

पेसी
फरजी
फरमाइस
फिकर
फिराद
बहादर
बादसा
मेरबानी
राय
रोजी
सरकार
सरदार
सहर
साबासी

§६५ तुर्की के शब्द

कलगी
काबू
गालीचो (चा)
चकमक
चाकू
तमगो (गा)
तोप
दरोगा
बबर्ची
मुचलको (का)

६६ अंग्रेजी के शब्द

अरदली
अपसर
अपील
अस्पताल
आडर
इंजन
इनसपिट्टर
इसकुल
इस्टाम
इस्टूल
कमिसनर
कमीसन
कम्पनी
कम्पोडर
काग
कांजीहौस
कारट
किलर्क
कुमेटी
कुनेन
कोयला
कोरट
कौंसिल
गारड (गार्ड)
गिलास
चुरट

चेन
जाकट (जाकेट)
जेल
टायर
टिकट
टिक्कस (टेक्स)
टीन
टेबल
टेम (टाइम)
ठेचण (स्टेशन)
डाकतर
डायरी
ड्रायवर
डिगरी (डिक्री)
डिपो
थेटर (थिएटर)
दर्जन
नरस (नर्स)
पलटन
पलस्तर
पसिंजर
पालिस
पारसल
पिकेटिंग
पिन्सन
पिपरमिण्ट

पुलिस
पुल्टिस
फारम
फेर (फायर)
फोनोग्राफ
बालिस्टर
बिगुल
बिल्टी
बिसकुट
बुरुस
बैरंग
बोट
बोरड
बक्स
बनयाइन
बराण्डी
बाइसकोप
बाइसिकल
मन (माण्ड)
मनिआडर
मनेजर
मसीन
माचिस
मास्तर
मिनट
मील

मेम
मोटर
रंगरूट
रजीटर
रपोट
रबड़
रसीद
रासन
रेलवई
लंबर
लाट
लालटेन
लिफटन
लेन
लैसन
लोट (नोट)
लोटिस
वारनिस
वारन्ट
सम्मन
साटीपिकट
सिनेमा
सिलेट
सिंगल (सिगनल)
हाईकोरट
होटल

§६७ पुर्तगाली शब्द

आलमारी	किरस्तान	पादरी	मेज
अलपीन	गुदाम	पिस्तौल	लिल्लाम (निलाम)
कमीज	गोभी	पीपा	संतरा
कप्तान	चाबी	बालटी	
कनिस्तर	तंबाकू	बोतल	

§६८ फ्रांसीसी शब्द

अंगरेज, कारतूस, कूपन, बम, तुरुप (ट्रूप)

§६९ निमाड़ी के कुछ क्रिया-सूचक शब्दों में हमें भाव की दृष्टि से बड़ी सूक्ष्मता दिखाई देती है। इस प्रकार सूक्ष्मता के साथ व्यवहृत शब्द हमें अन्य भाषाओं अथवा बोलियों में बहुत ही कम देखने को मिलते हैं। उदाहरणार्थ हम यहाँ हँसने, चलने और देखने के विभिन्न प्रकार व्यक्त करने वाले शब्द दे रहे हैं।

हँसना

खद्-खद् या खदखद (जोर से लगातार हँसना)
खे-खे (आवाज के साथ, पर धीरे-धीरे हँसना)
बांदरा-सरी (हँसते हुए केवल दाँत दिखाना)
मुसुर-मुसुर (बिना आवाज किये हँसना)

चलना

खस्स-खस्स (पैर अधिक ऊँचे उठाकर चलना)
धम-धम (पैर पटकते हुए चलना)
जुगु-जुगु (सम्हल-सम्हल कर चलना)
डलंग-डलंग (ढीले पैर डालते हुए चलना)
डफांग भरीन (डग डालते हुए चलना)
तुरुक-तुरुक (नजदीक-नजदीक पैर रखते हुए तेजी से चलना)
वाकड़ो-वाकड़ो (टेढ़े-टेढ़े चलना)
बागु-बागु (धीरे-धीरे चलना)
मच्च-मच्च (पैरों पर जोर देते हुए चलना)
लचकईन (लचक के साथ चलना)

देखना

घूरी-घूरी (घूर कर देखना)
टक-टक (टकटकी बांधकर या बिना पात हिलाये देखना)

टकुर-टुकुर (सिर नीचा किये टकटकी लगाकर देखना)
दुगुर-दुगुर (भयभीत दृष्टि से देखना)
मुव्ठुक-मुव्ठुक (आँखें सिकोड़कर देखना)

निमाड़ी की अन्तर्गत बोलियाँ

§७० यहाँ 'अन्तर्गत बोलियों' से हमारा तात्पर्य निमाड़ी की उप बोलियों से है। जैसा कि प्रथम अध्याय में बतलाया गया है, निमाड़ी ९४३५ वर्गमील में बसे २,९२,२६१ स्त्री-पुरुषों की बोली है। कहा जाता है कि प्रत्येक योजन पर बोली बदलती है। अतः यहाँ इस विशाल क्षेत्र की बोली का एक ही निश्चित स्वरूप न होने का प्रश्न स्वाभाविक ही उपस्थित होता है। तदनुसार यह समझा जा सकता है कि इस पूर्ण क्षेत्र में निमाड़ी की कुछ अन्तर्गत बोलियाँ भी होनी चाहिये, किन्तु निमाड़ी की स्थिति ठीक ब्रजभाषा-सी है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार ब्रज लगभग ३८,००० वर्गमील के क्षेत्र की बोली है और लगभग १ करोड़ २३ लाख जनता के द्वारा बोली जाती है, पर रूप की दृष्टि से यह ब्रज भाषा का विशाल क्षेत्र कुछ निश्चित भौगोलिक इकाइयों में विभाजित नहीं किया जा सकता[१]। हमें निमाड़ी के जो उपरूप दिखाई देते हैं, वे सीमावर्ती बोलियों के प्रभाव तथा जातिगत प्रभाव के ही परिणाम हैं। अतः हम निमाड़ी की अन्तर्गत बोलियों के रूप पर दो दृष्टि से विचार करेंगे—(१) स्थानगत रूप और (२) जातिगत रूप।

§७१ **स्थानगत रूप**—स्थानगत रूपों को देखते हुए हम पूर्ण निमाड़ी-भाषी क्षेत्र को उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी और मध्य भाग में विभाजित कर सकते हैं।

§७२ उत्तरी भाग की सीमावर्ती बोली मालवी है, जिससे इस भाग में बोली जाने वाली निमाड़ी मे हमें मालवी-शब्दों का अधिक मिश्रण मिलता है। मण्डलेश्वर-महेश्वर के आसपास के भाग में यह स्थिति अधिक स्पष्ट रूप में दिखाई देती है। इस भाग की निमाड़ी में मालवी में अधिकता से प्रयुक्त आखो (पूरा), कोरा (गोद), खिन (क्षीण), दीठ (दृष्टि), साँज (सन्ध्या), चिड़ी (चिड़िया), सोज (हिस्सेदारी), चामड़ो (चर्म) आदि शब्दों के प्रयोग के साथ ही कुछ कारकों की विभक्तियों में भी परिवर्तन मिलता है। यथा, निमाड़ी के सम्प्रदान कारक की विभक्ति 'कालेण' उत्तरी निमाड़ में मालवी के अनुसार 'का वास्तऽ'

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रज भाषा (१९५४ सं०) पृ० ३४-३५

और करण तथा अपादान कारक की विभक्ति 'स' 'सी' और कभी-कभी 'से' भी उच्चरित होती है।

निमाड़ी क्षेत्र के उत्तर-पूर्वी भाग से बुन्देली का क्षेत्र अत्यन्त समीप होने के कारण इस भाग में निमाड़ी की 'कालेण' तथा मालवी-प्रभावित 'का वास्तऽ' विभक्ति के स्थान में 'का लाने' का प्रयोग भी देखा जाता है। इसी प्रकार भूतकालीन क्रिया 'था' के स्थान पर 'हतो' का प्रयोग होता है।

§७३ निमाड़ी-भाषी क्षेत्र की दक्षिण-सीमा से खानदेशी-भाषी भाग आरम्भ होता है। पूर्वी निमाड़ में जिसे खण्डवा-निमाड़ कहा जा सकता है, बुरहानपुर तहसील है। इसका दक्षिणी भाग खानदेशी-क्षेत्र के ही अन्तर्गत है, अतः इस भाग की लोकभाषा खानदेशी ही है।

§७४ खानदेशी वास्तव में मराठी भाषा की एक बोली है। इसके अधिकांश शब्द मराठी के हैं, जो मूल अथवा विकृत रूप में गृहीत हुए हैं। खानदेशी-भाषी क्षेत्र के दक्षिण में मराठी और पश्चिम में भीली-भाषी क्षेत्र है, जिससे खानदेशी में मराठी और भीली का मिश्रण हो गया है। इस मिश्रण में लगभग दो तृतीयांश शब्द मराठी के मूल अथवा विकृत रूप में और एक तृतीयांश भीली के हैं। एक तो निमाड़ का यह दक्षिणी भाग खानदेशी से सम्बद्ध है, जिससे निमाड़ी में खानदेशी के कुछ शब्द—वास्तव में पर्याय से मराठी के शब्द आ गये हैं। दूसरे निमाड़ी-भाषी क्षेत्र पर बहुत समय तक मराठों का भी अधिकार रहा और आज भी इस क्षेत्र में कुछ मराठी-भाषी जनता रहती है। इनके सम्पर्क से भी दक्षिणी भाग की निमाड़ी में कुछ मराठी शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक मिलता है। आन, उभो, एवढ़ो, काव्ठजी, डोव्ठा, डोंगर, दिस, पण, पातव्ठ, फराव्ठ, माहिती आदि ऐसे ही शब्द हैं, जिनके स्थान में आदर्श निमाड़ी के क्षेत्र में क्रमशः कसम, खड़ा, एतरो, चिन्ता, आँखी (आँख), पहाड़, दिखनो, पर, फराल, मालूम पड़ना शब्दों का प्रयोग होता है।

§७५ निमाड़ी-भाषी क्षेत्र की पूर्वी सीमा से बुन्देलखण्डी भाषा का क्षेत्र आरम्भ होता है। सीमा से लगे होशंगाबाद जिले की हर्दा तहसील की बोली वास्तव में बुन्देली है, पर निमाड़ी के मिश्रण ने इस क्षेत्र की बुन्देली को दो बोलियों का एक अजीब मिश्रण बना दिया है। ज्यों-ज्यों हम पूर्व की ओर बढ़ते जाते हैं, इस मिश्रण में निमाड़ी की न्यूनता होती जाती है और बुन्देली का रूप अधिक स्पष्ट होता जाता है। हर्दा तहसील की बुन्देली में निमाड़ी के मिश्रण होने के दो कारण हैं। एक तो निमाड़ी बुन्देली की पश्चिमी सीमावर्ती बोली है, और दूसरे इस तहसील में अनेक ऐसे परिवार स्थायीरूप से बस गये हैं,

जिनकी मातृभाषा निमाड़ी है। इनमें नार्मदीय ब्राह्मण-परिवारों की संख्या अधिक है। इस तहसील के उत्तरी भाग की बोली में निमाड़ी, बुन्देली और मालवी का एक विचित्र मिश्रण मिलता है, जिसे वहाँ की जनता 'भुवाने (पठार) की बोली' कहती हैं। इस स्थिति के कारण पूर्वी निमाड़ की निमाड़ी बुन्देली से प्रभावित मिलती है। इस भाग की निमाड़ी में जुगत, जोत, सुन्नो, दानो, काज, एको, दादो आदि शब्दों का प्रयोग बुन्देली के प्रभाव का ही परिणाम है। आदर्श निमाड़ी के क्षेत्र में इनके स्थान पर जतन, लौ, सोनो, राकस, काम, एक्को और दाजी शब्दों का प्रयोग होता है। निमाड़ी का प्रथम पुरुष एकवचन शब्द 'हऊँ' तथा द्वितीय पुरुष एकवचन का षष्टी रूप 'थारो' इस भाग में नहीं सुना जाता। इसी प्रकार निमाड़ी की सम्प्रदान-विभक्ति 'कालेण' के स्थान में 'के लाने' का प्रयोग अधिक मिलता है।

§७६ इसके अतिरिक्त काँच, आँच, ऊँट, ईंट, आँचल, ऊँचो आदि शब्द इस भाग में सानुनासिक होते हैं, जब कि निमाड़ी भाषी क्षेत्र के अधिकांश भाग में ये निरनुनासिक काच, आच, ऊट, ईट, आचल और ऊचो या उच्चो, प्रयुक्त होते हैं।

§७७ निमाड़ी-भाषी क्षेत्र की पश्चिमी तथा पश्चिमोत्तर सीमा से भीली-भाषी भाग आरम्भ होता है। अतः इस भाग की निमाड़ी का भीली से प्रभावित होना स्वाभाविक है। इस प्रभाव से निमाड़ी पर दो परिणाम देखे जाते हैं। एक तो इस भाग की निमाड़ी में भीली में विशेष रूप से प्रयुक्त सावळो, मूँढो, डेडर, एंडानो, खुनुस, जराळों, दोयड़ी आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है, जिनके स्थान पर मध्य निमाड़ी क्षेत्र (आदर्श निमाड़ी) में क्रमशः सावलो, मू या मूँ, मेंडकी, चिल्लानो, गुस्सो, जरवाळो, दोरी शब्दों का प्रयोग होता है।

§७८ आदर्श निमाड़ी में क्रिया के भविष्य-कालीन प्रत्यय गा, गो है, पर पश्चिमी निमाड़ी में गुजराती के अनुसार से, सी प्रत्ययों का प्रयोग होता है। तदनुसार सामान्य हिन्दी के जायेंगे, जाऊंगा रूप मध्य निमाडी में जायंगा, जाऊंगो, पर पश्चिमी निमाड़ी में जासे, जासी होते हैं।

§७९ इसी प्रकार निमाड़ी के षष्टी रूप म्हारो, थारो, पश्चिमी निमाड़ी में मारो, तारो हो गये हैं, किन्तु पश्चिमोत्तर निमाड़ी-क्षेत्र में राजस्थानी क्षेत्र की समीपता ने इन्हें मूल रूप में ही सुरक्षित रखा है।

§८० खरगोन से खण्डवा तक का भाग निमाड़ी-भाषी क्षेत्र का मध्य भाग है, जो सीमावर्ती बोलियों के प्रभाव से अछूता है। निमाड़ी का शुद्ध रूप इसी भाग में देखा जा सकता है। इसी भाग की निमाड़ी को हम 'आदर्श निमाड़ी' (Standard Nimadi) मानते हैं, जिसे हम इस भाग के नगरों के निवा-

सियों से नहीं, पर ग्रामों में निवास करने वाले वृद्धों तथा स्त्रियों से सुन सकते हैं। आदर्श निमाड़ी के रूप-दर्शन की दृष्टि से इस क्षेत्र की एक ग्रामीण वृद्ध महिला से सुनी गई निम्नांकित कहानी उपयोगी होगी :—

"एक राजा थो। वो का सात छोरा था। न एक छोरी थी। छोरान कयो की हम बईण की सगाई करन जावाँज। बाप न कयो की अच्छो जाओ। सातई भाई न अपना अपना पसन्द का बर ढूंडीन सगाई करी आया। एतरा मऽब्रह्मा जी न छटी माता सी पूछयो की राजा की छोरी का सात बरन-म-सी कोणता बर का सात लगिण लगसे ? छटी कयो की एक मुलहारासी लगिण लगसी। अन ई सातई वर वापस जासे। ब्रह्माजी न विष्णु भगवान-स कयो की येका वचन न-ख झूटा करनु चायजे।

अल्यांग राजा न याव की तैयारी करी। लगिण का दिन सातइ छोरा बन्नण-खऽआया। सब बस्ती-नऽराजा-खऽकयो की एकई एक छोरी छे, न सात छोरा छै। जाका भाग-मऽहोयगा ज बन्नी न लई जायगा। एतरा-मऽ सब देवता, भगवान न छठी माता बी राजा का याँ गुपुत रूप-सी याव-मऽ आया। लगीण की बखत हुई। वल्यांग सी एक मोळ्ठई वाळ्ठो छोरो आयो न राजा का घर का दरवाजा पर उभो हुईन याव का तमासो देखण बठी गयो। अल्यांग सातई बर तोरण-मऽ आईन उभ्या। एतरा-मऽछोरी लाडू की कोठड़ी-मऽ जाईन सोई गई। अल्यांग भगवान जी-न हनुमान जी-खऽकयो की तुम मोळ्ठई वाळ्ठा-खऽसात समुद्दर पार करी आओ। हनुमान ओ-खऽ उठईन लई जाण लग्या की मोळ्ठीवाळ्ठो छोरो रड़न लग्यो, न कयो की म-खऽभुक्यो मत लई जाओ, एक उस्टी पातळ्ठ खाई लेन देओ। हनुमानजी ओ-खऽ पोयचईन पछा अवति रह्‌या। फिरी महादेवजी कयो की याँ कई अदमी तो जीमसे न व्हाँ ओ गरीब विचारो भूक्यो रयगा। येकालण हनुमान जी-खऽकयो की लाडू की कोठड़ी-म-सी अंवढळ्ठ भरी लाडू वो-ख दई आओ। हनुमानजी नऽखोली-म-सी, अंवढळ्ठ भरी की ओ-मऽछोरी बी अई गई। हनुमानजी अंवढळ्ठ लईन सात समुद्दर पार पोयची गया। व्हां भगवान, देवता लोग न छटी माता बी पोयची गया न दुईन का लगीण लगई दिया।

अल्यांग राजा का मंडप-मऽन गाव-मऽछोरी का ढूँड़ी पड़ी रयाज। येतरा-मऽ भगवान नऽलाड़ी दुल्लव सब राजा का मांडवा-मऽ आई गया। फिरी नारद जी-नऽ राजा-खऽकयो की भगवान की लीला को पार नी हुँई। छठी माता का लिखेल लेख कदी झूठो न हुई सक्तो हुँई। जे का भाग-मऽरयज ओखऽ ऊज सुख-दुख मिळ्ठज। राजा-नऽछोरा-छोरी-खऽदान-दायजो दईन-रवन्ना कर्‌यो,

पण याव तो हुई गयो थो। सातई राजकुमार वापस गया। भगवान बी अपना धाम-खऽजाती रह्‌या।"

§८१ रूप-तत्व की दृष्टि से इस कहानी का विश्लेषण निम्न प्रकार होगा :--

ध्वनि सम्बन्धी विशेषताएँ

(१) इसमें ब्रह्मा, विष्णु, भगवान, देवता, हनुमान, नारद, छटी देवता-वाची शब्द हैं, जिन का प्रयोग बिना उच्चारण-भेद के किया गया है।

(२) राजा और राजकुमार जैसे अधिकारवाची शब्दों के प्रयोग में भी उच्चारण-भेद नहीं है।

(३) एक और सात संख्यावाचक विशेषण शब्दों का उच्चारण भी अविकृत है, पर जब उनकी ओर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया गया, तब उनके आगे 'ई' (ही का रूपान्तर) लग गया है।

(४) कयो, पूछयो, गयो, सामान्य भूतकाल की क्रियाएँ हैं, जिनका उच्चारण खड़ी बोली में आकारान्त होता है। 'कयो' क्रिया से मध्य हकार का लोप हो गया है। हम यह प्रवृत्ति ब्रज और बुन्देली में भी देखते हैं। 'था' पूर्ण भूतकालिक क्रिया का उच्चारण भी ब्रज और बुन्देली की तरह ओकारांत हो गया है।

(५) आसन्न भूतकाल की क्रिया 'है' के स्थान में गुजराती ध्वनि 'छे' का प्रयोग किया गया है।

(६) जावाँज, रयाज, मिव्ठज सामान्य वर्तमानकाल की क्रियाओं के अन्त में 'ज' परसर्ग है, जिसके लिये पश्चिमी हिन्दी की अन्य बोलियों में है या हैं का प्रयोग होता है।

(७) भविष्यत्कालीन क्रियाओं---लगसे, लगसी, जासे, शब्द में हिन्दी के परसर्ग गा, गे, गी, के स्थान में गुजराती की प्रवृत्ति के अनुसार से अथवा सी ध्वनि का प्रयोग है, पर जायगा, होयगा, रयगा क्रियाओं के परसर्ग अपरिवर्तित हैं।

व्याकरण-सम्बन्धी विशेषताएँ

§८२ संज्ञा शब्द

(१) लड़का-लड़की के लिये छोरा-छोरी का प्रयोग किया गया है, जो हमें पश्चिमी हिन्दी की एक बोली बुन्देली में भी मिलता है।

(२) 'बहिन' के स्थान में पश्चिमी हिन्दी के हकार का लोप होने की प्रवृति के अनुसार "बईण" का प्रयोग हुआ है।

(३) पश्चिमी हिन्दी की ब्रज और बुन्देली के संज्ञा, गुणवाचक विशेषण तथा सामान्य क्रिया के रूप ओकारान्त होते हैं। यही प्रवृत्ति हम निमाड़ी में भी देखते हैं। उदाहरणार्थ 'तमासो' और 'वाव्ठो' शब्द देखे जा सकते हैं।

(४) 'छोरो' शब्द स्त्रीलिंग-रूप में आकारान्त से ईकारान्त होकर 'छोरी' हो गया है।

(५) 'बर' के बहुबचन रूप 'बरन' में 'न' प्रत्यय लग गया है, जैसा कि हम ब्रज में भी देखते हैं—सेवक, सेवकन, घोड़ा-घोड़ान आदि।

(६) न, म, का, ख, सी क्रमशः कर्ता, अधिकरण, सम्बन्ध, कर्म और सम्प्रदान कारक की विभक्तियाँ हैं।

§८३ सर्वनाम-शब्द

(१) यो, म, ऊ तथा जे क्रमशः उस, में, वह तथा जिस के निमाड़ी रूप हैं।

(२) 'हम' बहुवचन सर्वनाम शब्द का प्रयोग पश्चिमी हिन्दी की ब्रज, बुन्देली और खडी बोली में भी होता है।

§८४ विशेषण-शब्द

(१) एक, सात और सब संख्यावाची विशेषण शब्द अपरिवर्तित हैं।

(२) अच्छो, भूक्यो, बिचारो, गुणवाची विशेषण शब्द भी ब्रज और बुन्देली की तरह ओकारान्त हैं।

(३) सर्वनामी विशेषण शब्द 'अपना' अपरिवर्तित है।

(४) परिमाणवाचक विशेषण 'इतना' निमाड़ी में 'एतरा' हो गया है।

§८५ क्रिया-सूचक शब्द

क्रिया-सूचक शब्दों के सम्बन्ध में हम निम्नांकित विशेषताएँ देखते हैं :—

(१) निमाड़ी की सामान्य भूतकालिक क्रिया एकवचन में ओकारान्त, पर बहुवचन में आकारान्त होती है। तदनुसार उभ्या, लग्या, दिया तथा रह्या क्रमशः उभो, लग्यो, दियो और रह्यो (रयो) के बहुवचन रूप हैं।

(२) निश्चय बोधक अथवा उपदेश-बोधक क्रिया शब्द 'चायजे' सामान्य हिन्दी के 'चाहिये' शब्द का पर्यावाची है।

(३) आईन, हुईन, उठईन, पोयचईन, दईन, पूर्वकालिक क्रिया के रूप धातु में 'ईन' प्रत्यय लगाकर बनाये गये हैं।

§८६ क्रिया-विशेषण-शब्द

(१) अल्यांग और वल्यांग निमाड़ी के स्थानवाचक क्रिया-विशेषण शब्द हैं। इनके स्थान पर सामान्य हिन्दी में 'इस ओर' और 'उस ओर' शब्दों

का तथा बुन्देली में 'या बाजू' और 'वा वाजू' शब्दों का प्रयोग होता है। कहीं-कहीं या लगे तथा वा लगे शब्दों का भी प्रयोग होता है।

(२) दूसरे स्थानवाचक क्रिया—विशेषण शब्द-याँ, पछा, और व्हाँ हैं। बुन्देली में 'याँ' के स्थान पर 'ह्याँ' का प्रयोग होता है, 'वहाँ' के लिए बुन्देली में भी 'व्हां' ही बोला जाता है।

(३) निषेधात्मक क्रिया विशेषण नहीं का रूप निमाड़ी में 'नी' है। यह भी हकार के लोप की प्रवृत्ति का सूचक ही है।

(४) 'लिखेल' पूर्वकालिक क्रियासूचक शब्द है, जिसका प्रयोग क्रिया-विशेषण-रूप में हुआ है। इस प्रयोग के अनुसार लिखा हुआ लेख, किया हुआ काम, पढ़ी हुई पुस्तक के लिए निमाड़ी में लिखेल लेख, करेल काम, पढ़ेल पुस्तक कहा जायगा।

§८७ अन्य अव्यय शब्द

(१) न तथा अन संयोगात्मक अव्यय हैं, जिनका प्रयोग निमाड़ी में 'और' शब्द के अर्थ में किया जाता है।

टीप—(१) इस कहानी में प्रयुक्त-मुलहारा, लगिणा—अन्नण ख, बन्नीज याव, मोव्ठईवाव्ठो, येकालण, अंवढव्ठ तथा दुल्लव शब्द क्रमशः मोलीवाला, लग्न, वरने, को, बरकर (वरणकर) विवाह, मोलीवाला, इसलिए, अखारी तथा दूलह शब्द के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

(२) उभी (खड़ा), लाडू (लड्डू), रड़न (रोने), उस्टी (जूठी), पातव्ठ (पतरी) तथा खोली (कमरा) शब्द मूलतः मराठी के हैं।

§८७ उपर्युक्त विश्लेषण के अनुसार आदर्श निमाड़ी के लक्षण निम्नांकित हैं।

(१) निमाड़ी में देवतावाची तथा अविकारवाची शब्दों का प्रयोग बिना किसी विकार के होता है। यथा—ब्राह्मण, नारद, हनुमान, राजा, राजकुमार आदि।

(२) संख्या वाचक—विशेषण शब्दों का प्रयोग भी अविकृत रूप में ही होता है। यथा—सात, एक, सब आदि।

(३) निमाड़ी के सामान्य वर्तमानकाल के रूप धातु के आगे 'ज' प्रत्यय लगाने से बनते हैं। यथा—जावाँज, रयाज, मिव्ठज आदि।

(४) भविष्यकालीन क्रियाओं का रूप धातु के आगे 'ग' अथवा 'से' प्रत्यय लगाकर बनाये जाते हैं। 'से' वास्तव में गुजराती का प्रत्यय है, जिसका प्रयोग अब निमाड़ी में भी होने लगा है।

(५) पश्चिमी हिन्दी की प्रमुख बोलियाँ-ब्रज और बुन्देली की तरह निमाड़ी में भी हकार के लोप की प्रवृत्ति वर्तमान है, जैसा कि उपर्युक्त कहानी में प्रयुक्त 'बईण' शब्द में देखा जाता है ।[१]

(६) निमाड़ी के अधिकांश संज्ञा, विशेषण और सामान्य क्रिया के रूप पश्चिमी हिन्दी की ब्रज और बुन्देली की तरह ओकारान्त होते हैं। यथा—तमासो, भूक्यो, अच्छो, मोव्ठीवाको, लिखतो, रयतो आदि ।

(७) ब्रज और बुन्देली की तरह एक वचन शब्दों के आगे 'न' प्रत्यय लगा देने से निमाड़ी के बहुवचन रूप बन जाते हैं । यथा—बर-बरन, घोड़ा-घोड़ान आदि ।

(८) निमाड़ी के सामान्य भूतकाल के एक वचन रूप भी ब्रज और बुन्देली की तरह ओकारान्त ही होते हैं । यथा—उभो, लग्यो, रह्यो आदि ।

(९) सामान्य भूतकाल के बहुवचन रूप ओकारान्त से आकारान्त हो जाते हैं । तद्नुसार उभो, लग्यो, रह्यो एक वचन के बहुवचन रूप उभा, लग्या, रह्या होंगे ।

(१०) क्रिया की धातु में 'ईन' प्रत्यय लगाने से निमाड़ी की पूर्वकालिक क्रिया के रूप बन जाते हैं। यथा—उठईन, आईन, हुईन आदि ।

(११) स्थानवाची क्रिया विशेषण के कुछ रूप निमाड़ी के अपने हैं। यथा—अल्यांग, वल्यांग और कुछ रूप ब्रज और बुन्देली के समान हैं; यथा—ह्याँ, व्हाँ आदि ।

(१२) निमाड़ी में 'नी' का प्रयोग निषेधात्मक क्रिया विशेषण के रूप में भी होता है। यथा—ऊ नी आयो (वह नहीं आया) ।

(२) जातीय प्रभाव-स्वरूप निमाड़ी के रूप

§८८ इस क्षेत्र में बसी जातियों में भील, कोरकू, बंजारे आदि अन्य जातियों से पहिले यहाँ आकर बसे । इन्हें ही वास्तव में इस भू-भाग के मूल निवासी कहना चाहिए । इनके अतिरिक्त अन्य अधिकांश जातियाँ अन्य क्षेत्रों से आकर यहाँ बसी हैं । अधिकार और प्रतिष्ठा की दृष्टि से बाहर से आकर बसने वालों में राजपूतों को विशेष महत्व प्राप्त रहा । इन्होंने सदियों तक जमींदारों, तालुकदारों और मालगुजारों के रूप में इस क्षेत्र की जनता पर शासन किया। इन्हें जन-साधारण द्वारा ही नहीं, पर राजपुरुषों-द्वारा भी सम्मान प्राप्त होता रहा। मूल निवासियों के पश्चात् इस क्षेत्र में बसी जातियों

---

१. इस सम्बन्ध में विशेष विवरण 'ध्वनि' के अध्याय में देखिए ।

में राजपूतों की संख्या सबसे अधिक है। इनमें चौहान और पँवार राजपूतों को सदा से अधिक सम्मान और अधिकार प्राप्त रहे। अन्य राजपूतों में मोरी, तोमर, सोलंकी, राठौर आदि हैं। इनमें से मोरी चित्तौर की ओर से, तोमर दिल्ली की ओर से, चौहान अजमेर और दिल्ली की ओर से तथा अन्य राजपूत राजस्थान के विभिन्न भागों से आकर यहाँ बसे। केप्टिन फोर्सिथ के मतानुसार ये ईसा की ८वीं शती से १३ वीं शती तक इस क्षेत्र में आकर बसे। इनकी मातृभाषा राजस्थानी की विभिन्न बोलियाँ थीं।[1] ये यहाँ आने पर भी अपनी मातृभाषा ही बोलते थें, पर धीरे-धीरे यहाँ के निवासियों के सम्पर्क से इनकी भाषा विकृत हो गई और अब तो वह इतनी बदल गई है कि उसे निमाड़ी का ही एक रूप कहना अनुचित न होगा। ये जो निमाड़ी बोलते हैं, वह निमाड़ी के वास्तविक रूप से बहुत भिन्न और राजस्थान की बोलियों—विशेषकर मारवाड़ी, मेवाड़ी और जयपुरी से बहुत प्रभावित है।

§८९ राजपूतों के पश्चात् उल्लेखनीय जाति ब्राह्मण हैं, जिनमें नार्मदीय, नागर, महाराष्ट्रियन और उत्तरभारतीय ब्राह्मण मुख्य हैं। नार्मदीय ब्राह्मणों का विश्वास है कि वे वास्तव में गौड़ ब्राह्मण हैं और नर्मदा की तराई में आकर बस जाने के कारण नार्मदीय अथवा नारमदेव कहलाये। इनके द्वारा बोली जाने वाली निमाड़ी अधिक शुद्ध स्वरूप में है।

§९० 'नागर' गुजरात से आकर यहाँ बसे। इनकी मातृभाषा गुजराती थी और आज भी इनके अनेक परिवार अपने घर में गुजराती ही बोलते हैं। इनके द्वारा बोली जाने वाली निमाड़ी गुजराती से अधिक प्रभावित है।

§९१ महाराष्ट्र ब्राह्मणों में देशस्थ और कोकणस्थ ही अधिक हैं, जो क्रमशः पूना और कोकण से आकर यहाँ बसे हैं। इनकी पारिवारिक भाषा मराठी है, पर निमाड़ी-भाषियों से ये—विशेषकर पुरुष वर्ग निमाड़ी में ही बातें करते हैं। इनके द्वारा बोली जाने वाली निमाड़ी मराठी से अधिक प्रभावित रहती है।

§९२ उत्तर भारतीय ब्राह्मण कनौजी, अवधी आदि भाषा बोलते हैं, पर बाह्य-व्यवहार में हिन्दी के पश्चात् ये भी निमाड़ी ही बोलते हैं, जिस पर इनकी अपनी भाषा का प्रभाव स्पष्ट देखा जाता है।

§९३ इनके पश्चात् उल्लेखनीय जाति 'बनिया' है, जिनमें परवार, लाड़, जैन, अग्रवाल आदि मुख्य हैं। इनमें से 'लाड़' दक्षिण गुजरात से आकर बसे हैं। इनकी मातृभाषा गुजराती थी; और इसीलिए इनके द्वारा बोली जाने-

1. Forsyth: Asiatic Studies Part I Page 118.

वाली निमाड़ी गुजराती से प्रभावित है। ये अपनी जाति में तो अभी भी गुजराती ही बोलते हैं, पर वे निमाड़ी भाषियों के सम्पर्क में उसकी शुद्धता की रक्षा न कर सके। अग्रवाल अग्रोहा से आकर यहाँ बसे। इनकी मातृभाषा पूर्वी राजस्थानी से प्रभावित हिन्दी है, पर वाह्य व्यवहार में ये हिन्दी के अतिरिक्त निमाड़ी ही बोलते हैं। इनके द्वारा बोली जाने वाली निमाड़ी हिन्दी के अधिक निकट है।

§९४ इनके पश्चात् निमाड़ी-भाषी क्षेत्र में बसी जातियों में 'गूजरों' का स्थान है। श्री रसेल के मतानुसार ये गुजरात के आदिवासी हैं, पर सदियों पहले से ये मध्यभारत और मालवा में आकर बस गए थे और इन्हीं क्षेत्रों से आकर वे निमाड़ी-भाषी क्षेत्र में बसे[१]। अतः उनकी मूल भाषा गुजराती भले ही रही हो, पर निमाड़ी-भाषी क्षेत्र में आकर बसने के समय उनकी मातृभाषा मालवी ही थी। निमाड़ी में मालवी के शब्दों की प्रचुरता होने के कारण उन्होंने बड़ी सरलता से यह भाषा स्वीकार कर ली। अब उनकी मातृभाषा नाममात्र को ही मालवी रह गई, अधिकांश गूजर निमाड़ी को ही अपनी मातृभाषा समझते हैं। इनकी मुख्य चार शाखाएँ—बड़ गूजर, रेवे, यादव और केकरे हैं, पर भाषा की दृष्टि से उनमें कोई भिन्नता नहीं है। हाँ, इनमें से यादव और केकरे शाखा की भाषा पर आज भी मालवी का अधिक प्रभाव अवश्य देखा जाता है। गाडरी और अहीर भी गूजर जाति की शाखा विशेष की जातियाँ हैं, जिनमें से अधिकांश की मातृभाषा मालवी मिश्रित निमाड़ी है।

§९५ इनके पश्चात् 'कुन्बी' इस क्षेत्र की उल्लेखनीय जाति है। इनमें से कुछ दक्षिण भारत से और कुछ गुजरात से आकर यहाँ बसे हैं। दक्षिण से आने वाले कुन्बी विकृत मराठी और गुजरात से आनेवाले कुन्बी विकृत गुजराती बोलते हैं, पर गुजराती कुन्बियों की भाषा अधिकाधिक निमाड़ी होती जा रही है और सदियों से इस क्षेत्र में रहने के कारण अपनी मातृभाषा निमाड़ी ही मानने लगे हैं। इनके द्वारा बोली जाने वाली निमाड़ी गुजराती से प्रभावित है।

§९६ इनके सिवाय निमाड़ी-भाषी क्षेत्र में बसी जातियाँ—बंजारा, भील, भिलाला, कोरकू, तेली, आदि के अतिरिक्त बलाही, चमार, बसोड़, कंजर, मांग आदि हैं। इनमें से बंजारे अपने को गूजरों की एक जाति और भिलाले राजपूतों के वंशज मानते हैं। बंजारे जो भाषा बोलते हैं, वह भीली और निमाड़ी का मिश्रण-सा जान पड़ता है, जिसमें कुरकू बोली के भी कुछ शब्द मिले रहते हैं। भिलालों की बोली को भीली और निमाड़ी के बीच की बोली कहना चाहिए।

---

१. रसेल : निमाड़ गजेटियर पृ० ७४-७५।

भीलों की भाषा भीली है, जो मालवी और निमाड़ी से प्रभावित है। कोरकू जाति दो वर्गों में विभाजित है। राज कोरकू, रसेल के मतानुसार राजपूतों की संतान हैं और पोथारिया कोरकू आदिवासी वर्ग के हैं। इन्हीं का एक वर्ग नहाल है, जो कुरकू और भील जाति की मिश्र सन्तान कही जाती है। राज कोरक भीली प्रभावित निमाड़ी बोलते हैं। पोथारिया कुरकू और नहालों के द्वारा बोली जाने वाली भाषा का बड़ा विचित्र रूप रहता है। उसे न निमाड़ी कहा जा सकता है और न भीली ही कहा जा सकता है।

§९७ इस क्षेत्र में बसे तेलियों के तीन वर्ग हैं। कुछ गुजराती तेली, कुछ महाराष्ट्रियन तेली और कुछ राजस्थानी तेली है। तीनों वर्ग अपनी-अपनी बोली गुजराती, मराठी और राजस्थानी (मारवाड़ी) बोलते हैं, पर वाह्य व्यवहार में वे निमाड़ी का ही व्यवहार करते हैं, जिनमें उनके अपनी भाषा के शब्दों का मिश्रण रहता है। अन्य जातियों में 'बलाही' विशेष उल्लेखनीय हैं, जिनकी संख्या लगभग ८ प्रतिशत है। ये मूलतः दो वर्गों में विभाजित हैं—एक वर्ग निमाड़ी बलाही और दूसरा वर्ग कतिया कहलाता है। दोनों वर्ग के बलाही ऐसी निमाड़ी बोलते हैं, जिस पर भीली, मालवी और खानदेशी का एक साथ ही मिश्र प्रभाव देखा जाता है।

—:o:—

चौथा अध्याय

निमाड़ी और उसकी सीमावर्ती बोलियां

§९८ पहिले कहा जा चुका है कि मालवी, भीली, खानदेशी और बुन्देली निमाड़ी की सीमावर्ती बोलियाँ हैं।

भीली

§९९ इनमें से भीली के सम्बन्ध में डा० मजूमदार ने लिखा है—

"भील" तमिल शब्द भीलावर से बना है, जिसका अर्थ धनुष-वाण धारण करने वाला है। इस दृष्टि से वे सभी लोग "भील" जाति के अन्तर्गत आ जाते हैं, जो धनुष-बाण धारण किए रहते हैं[1]। डा० मजूमदार का मत है कि भील उस मुंडा-परिवार के व्यक्ति नहीं हैं, जिससे अधिकांश आदिवासी जातियाँ सम्बन्धित हैं। इनकी भाषा भी मुंडा परिवार की अनार्य भाषा से भिन्न है। भीलों की मुखाकृति गुजरात की कृषक जातियों से साम्य रखती है और उनकी भाषा भी गुजराती से अत्यधिक प्रभावित है[2]।

§१०० श्री पी० जी० शाह भी भीलों में अहिन्दू-लक्षण नहीं देखते। उनका मत है कि भील मुंडा वर्ग की जातियों से एक भिन्न जाति है। वे त्रावणकोर के आदिवासियों से भी भिन्न हैं। उनमें हिन्दुओं की अनेक रूढ़ियाँ (Orthodox Practices) विद्यमान है[3]।

§१०१ भीली भाषा के सम्बन्ध में डा० शाह कहते हैं कि यह मुंडा—परिवार की भाषा नहीं हो सकती, इसमें उस परिवार की भाषाओं के कोई लक्षण नहीं मिलते। वे इसे गुजराती का एक रूप मानते हैं। इसके कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनके पर्यायवाची शब्द गुजराती से नहीं मिलते। ऐसे शब्दों के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि ये शब्द आदिवासी जातियों के संसर्ग से भीली में आ गए हैं।

---

1. Indian Council of World Affairs (1948) by D. N. Majumdar and Karve.

2. The Raciology of the Bhils Vol. 4 No. 3 P. 226 by Dr. Majumdar.

3. P. G. Shah "None Hindu Elements in the culture of the Bhils "Essay in Anthropology."

§१०२ रेव्ह० सी० थाम्सन कहते हैं कि भील एक ऐसा चाप (Arch) बनाते हैं, जिसका एक स्तम्भ (Pillar) भारत के आदिवासियों का और दूसरा स्तम्भ आर्यों का प्रतिनिधित्व करता है। उनका मत है कि भीली भाषा के ८० प्रतिशत शब्द राजस्थान और महिकंथा के है, जो संस्कृत से इस भाषा में आए हैं और जिनका उपयोग गुजराती भाषा में भी होता है। शेष शब्दों में से १० प्रतिशत शब्द फारसी से आए हैं और १० प्रतिशत शब्द ऐसे हैं, जिनके स्रोत का पता नहीं है[1]।

§१०३ श्री टी० एन० दवे भी भीली को गुजराती की ही एक ऐसी बोली (Dialect) मानते हैं, जिसके रूप में समीपवर्ती राजस्थानी के प्रभाव से कुछ परिवर्तन हो गया है[2]।

§१०४ सन् १९३१ के जन-गणना-विवरण (Census Report) में भीलों के सम्बन्ध में लिखा गया है कि ये उन उपजातियों में से हैं, जो आर्यों और द्रविड़ों के पूर्व भारत में आकर बसीं। बहुत सम्भव है कि ये प्रोटो मेडी-टेरियन जाति के हों। यह भी सम्भव है कि इनका विन्ध्य प्रदेश की केप्सियन संस्कृति से सम्बन्ध हो। भाषा की दृष्टि से ये मुंडा परिवार से सम्बद्ध नहीं किए जा सकते। भीली को गुजराती, खानदेशी और मराठी से राजस्थानी को जोड़ने वाली एक कड़ी ही कहना चाहिए[3]।

§१०५ उपरोक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि भीली भाषा की उत्पति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है, पर इसके मुंडा परिवार की भाषा न होकर भारतीय आर्य-परिवार की ही एक भाषा या बोली होने से सभी सहमत हैं। इसके स्वरूप को देखते हुए यह अवश्य कहा जा सकता है कि इसमें गुजराती के अनेक शब्द मूल अथवा विकृत रूप में आए हैं। कुछ शब्द राजस्थानी के भी हैं, जिसका कारण इसकी सीमावर्ती बोली मारवाड़ी और मेवाड़ी का प्रभाव है। इसी प्रकार इसकी दक्षिणी सीमा से खानदेशी-भाषी भाग आरम्भ होता है, जिससे भीली में—विशेषकर दक्षिणी भाग की भीली में खानदेशी के भी शब्द मिल गए हैं। भीली के बीस, गाई, कुत्रो, कुत्री, आई, उबा (उभा), पन (पण) आदि शब्द खानदेशी के ही हैं। इनमें से कुछ शब्दों का उपयोग निमाड़ी में भी होता है।

---

1. Rev. C. Thomson : Rudiments of Bhil Language 1875 P. V1.

2. T. N. Dave : Journal Guj. Res. Soc. Vol. X April 1948 Page 80, 134.

3. Census Report 1931 p. 51-60.

खानदेशी

§१०६ निमाड़ जिले की बुरहानपुर तहसील से लगा हुआ दक्षिणी भाग खानदेश कहलाता है, जो बम्बई राज्य का एक भाग है। इसकी पूर्वी और दक्षिणी सीमा से मराठी, पश्चिमी तथा उत्तर-पश्चिम सीमा से गुजराती और उत्तरी सीमा से निमाड़ी-भाषी क्षेत्र आरम्भ होता है। इस खानदेश कहे जाने वाले भू-प्रदेश में बोली जानेवाली बोली ही खानदेशी कहलाती है। आज खानदेश का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, पर मुस्लिम-काल में यह भू-भाग एक महत्वपूर्ण सूबा समझा जाता था। अकबर के समय तक इसे सूबा कहलाने का सम्मान प्राप्त था और बुरहानपुर इस सूबे की राजधानी था।

§१०७ डा० जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार खानदेशी गुजराती और मराठी के योग से बनी एक बोली है[1]। आज भी खानदेशी का जो रूप देखा जाता है, उसमें इन्हीं दोनों भाषाओं के शब्दों का अधिक मिश्रण मिलता है। इनके अतिरिक्त इसमें भीली के भी कुछ शब्द मिल गए हैं। यह 'अहिरानी' भी कही जाती है, जिससे इसका मुख्यत: अहीरों की बोली होना स्पष्ट है। निम्न जातियों के द्वारा बोली जानेवाली खानदेशी 'धेड़गूजरी' कहलाती है। डांगी और राँगड़ी खानदेशी की उपबोलियाँ हैं। खानदेश के कुन्बी एक भिन्न बोली बोलते हैं, जो कुनबाऊ कहलाती है, पर स्वरूप की दृष्टि से इसे भी खानदेशी की एक उपबोली ही कहना चाहिए।

§१०८ खानदेशी वास्तव में खानदेश जिले तक ही सीमित नहीं है। यह नाशिक जिले के उत्तरी भाग, निमाड़ की बुरहानपुर तहसील तथा विदर्भ के बुलढाना और अकोला जिले के कुछ सीमावर्ती भाग म भी बोली जाती है। इस बोली के बोलनेवालों की संख्या सन् १९३१ की जन-गणना के अनुसार २३३,-०१० है[2]। सन् १९५१ की जन-गणना में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है, जो उल्लेख है वह विश्वसनीय नहीं जान पड़ता।

§१०९ अब हम निमाड़ी की अन्य सीमावर्ती बोलियों—मालवी और बुन्देली के अतिरिक्त पश्चिमी हिन्दी की प्रमुख बोली ब्रज पर भी संक्षिप्त में तुलनात्मक प्रकाश डालेंगे, ताकि पूर्वाध्याय में हमारा निमाड़ी के सम्बन्ध में निकाला गया निष्कर्ष अधिक स्पष्ट हो सके।

निमाड़ी और मालवी

§११० मालवी उत्तर अक्षांस २३-३० और २४-३० तथा पूर्व देशांस ७४-३० और ७५-१० के मध्य स्थित मालव प्रदेश की लोक भाषा है। इस

1. Linguistic Survey of India Vol. IX Part III P. 205.
2. Census Report 1931 Vol. I Part II p. 496.

प्रदेश का क्षेत्रफल लगभग ७६३० वर्ग मील है। उत्तर पश्चिम में प्रवाहित होने वाली चम्बल, दक्षिण में नर्मदा तथा पूर्व में बेतवा इस भू-भाग की सीमाओं का निर्माण करती हैं। इस क्षेत्र के अतिरिक्त होशंगाबाद, बैतूल और छिंदवाड़ा जिले में भी कुछ मालवी-भाषी निवास करते हैं। दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान में भी कुछ मालवी-भाषी जातियाँ हैं। होशंगाबाद, बैतूल और छिंदवाड़ा जिले में बोली जाने वाली मालवी बुन्देली से तथा राजस्थानी भाग में बोली जाने वाली मालवी वहाँ की स्थानीय राजस्थानी बोलियों से अत्यधिक प्रभावित है। सन् १९५१ ई० की जन-गणना रिपोर्ट के अनुसार इस बोली के बोलने वालों की संख्या ४,६६,८९५ है[1]।

§१११ डा० ग्रियर्सन ने मालवी को राजस्थानी की एक बोली कहा है, पर साथ ही यह भी स्वीकार किया है कि राजस्थानी ने बुन्देली में विलीन होकर मालवी का रूप धारण कर लिया है[2]। इस बोली के सम्बन्ध में डा० चाटुर्ज्या का मत है कि दरसल यह मध्यदेश (अन्तर्वेद) की ही एक शाखा है, पर इस पर पश्चिमी पड़ोसी मारवाड़ी का प्रभाव पड़ने से इसमें कुछ राजस्थानीपन आ गया है[३]। 'मालवी' हमारे अध्ययन का विषय नहीं है, पर हमने 'निमाड़ी' के अध्ययन के सिलसिले में इस लोक-भाषा का जितना अध्ययन किया है, उससे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ध्वनि तथा रूप की दृष्टि से मालवी पश्चिमी हिन्दी के जितने समीप है, उतने समीप राजस्थानी के नहीं है।

तुलना

(क) ध्वनि

§११२ प्रा. भा. आ. भा. से आ. भा. आ. भा. में आए पंडित, हरिण, दिन, मिट्टी आदि शब्दों का मध्यग अथवा आदि 'इ' स्वर मालवी में 'अ' में परिवर्तित हो गया है। यथा – पंडत, हरन, दन, मट्टी। हमें यह परिवर्तन निमाड़ी में नहीं मिलता। निमाड़ी में यह स्वर अपरिवर्तित है।

§११३ मध्यग स्वर 'उ' मालवी और निमाड़ी दोनों के अनेक तद्भव शब्दों में 'अ' में परिवर्तित मिलता है। यथा – मानुस-मानस, बागुड़-बागड़, फागुण-फागण, जामुन-जामन, सगुन-सगन आदि।

§११४ मालवी और निमाड़ी दोनों में प्रा. भा. आ. भा, के आदि संयुक्त स्वर ऐ और औ क्रमश: ए तथा ओ में परिवर्तित मिलते हैं। यथा—

I. Census Report, 1951 Language p. 9.

2. Linguistic Survey of India Vol. IX. Part II. p. 53.

३. राजस्थानी भाषा पृ० ५७।

ऐ—चैत्र-चेत, तैल-तेल तैलिक-तेली, दैवत्य-देवता, नैवेद्य-नेवत् आदि।

औ—गौर-गोर, चौर-चोर, चौक्ष-चोखो, ज्यौतिष-ज्योतिष, जोतिस, तौल्य-तोल, द्रौण-दोना, मौर-मोर आदि।

§११५ महाप्राण के अल्पप्राण में उच्चारण की प्रवृति मालवी और निमाड़ी दोनों में समान रूप से मिलती है। यथा ठंढ़ा-ठंडो, समझदार-समजदार, हाथ-हात, साथ-सात, दूध-दूद, भूख-भूक, भिखारी-भिकारी, साधू-सादू आदि।

§११६ हकार के लोप की प्रवृत्ति भी दोनों लोक भाषाओं में वर्तमान है। यथा—कह्यो-कयो, रह्यो-रयो, सहनो-सयनो, कहनो-कयनो, सह्यो-सयो आदि।

§११७ इन दोनों बोलियों के अधिकांश शब्दों के आद्य और अन्त्य ब का उच्चारण व होता है। यथा—बाट-वाट, बाटा-वाटा, बखारी-वखारी, तालाब-तलाव आदि।

§११८ दोनों बोलियों के अनेक शब्दों में अनुस्वार के लोप की प्रवृत्ति भी समान रूप से मिलती है। यथा—दाँत-दात, दाँव-दाव, काँपना-कपनो, गाँव-गाव, साँप-साप, ठाँव-ठाव, जाँच-जाच, हाँपना-हापनो आदि।

§११९ इसके विपरीत दोनों बोलियों में कुछ निरनुनासिक शब्द सानुनासिक बोले जाते हैं। यथा—जव-जवँ, अब-अवँ, कब-कवँ आदि।

§१२० शब्दों को विकृत करके बोलने की प्रवृत्ति दोनों बोलियों में देखी जाती है। यथा—किसन-किसन्यो, राम-राम्यो, दुपट्टा-दुपट्यो, रुपया-रुपट्टी आदि।

(ख) रूप

§१२१ मालवी के एकवचन संज्ञा शब्द बहुवचन में ओकारान्त से आकारान्त हो जाते हैं या उनमें होर, होरो अथवा होन प्रत्यय लग जाता है। यथा—घोड़ो-घोड़ा अथवा घोड़ाहोर-घोड़ाहोरो-घोड़ाहोन। ये रूप निमाड़ी से सर्वथा पृथक् है। निमाड़ी में एकवचन संज्ञा शब्दों को बहुवचन बनाने के लिए उन्हें ओकारान्त से आकारान्त करके न प्रत्यय लगा देते हैं या 'होण' प्रत्यय लगा दिया जाता है। यथा—घोड़ो-घोड़ान अथवा घोड़ाहोण।

§१२२ मालवी में कर्ता की विभक्ति ने का प्रयोग राजस्थानी की तरह नहीं, पर पश्चिमी हिन्दी की ब्रज, बुन्देली आदि बोलियों की तरह ही होता है। सम्प्रदान कारक की विभक्ति की भी यही स्थिति है। यथा—राम-न मनोहर सी कयो। निमाड़ी में कर्ता की विभक्ति ने के स्थान में न तथा

सम्प्रदान की विभक्ति 'से' के स्थान में सी हो जाती है। यथा—राम न श्याम सी कयो।

मालवी और निमाड़ी के अन्य कारकों के परसर्ग इस प्रकार हैं।

	मालवी	निमाड़ी
कर्म	को-क	क, ख
करण	से	सी
सम्प्रदान	वास्तऽ	कालेण
सम्बन्ध	के, की	का, की
अपादान	से	सी
अधिकरण	में	म

यहाँ हम मालवी और निमाड़ी के परसर्गों में कुछ अन्तर पाते हैं। मालवी के परसर्ग राजस्थानी की अपेक्षा पश्चिमी हिन्दी के अधिक समीप हैं। निमाड़ी के परसर्ग भी राजस्थानी से पृथक् पश्चिमी हिन्दी के परसर्गों का संक्षिप्त रूप जान पड़ते हैं। सम्प्रदान कारक का परसर्ग 'कालेण' एकमात्र निमाड़ी में ही देखा जाता है।

§१२३ प्रथम पुरुष सर्वनाम का रूप मालवी में 'हूँ' अथवा 'म्ह' होता है, पर निमाड़ी में 'हऊँ' अथवा 'म' होता है। बहुवचन रूप 'हम' दोनों बोलियों के समान है।

§१२४ द्वितीय पुरुष एकवचन का रूप दोनों बोलियों में तू होता है, पर अब मालवी में बुन्देली के अनुसार 'तू' को सानुनासिक करके 'तूँ' बोलने की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है।

§१२५ तृतीय पुरुष का रूप मालवी और निमाड़ी दोनों में 'वू' है, जिसका बहुवचन 'वी' भी दोनों बोलियों में प्रचलित है।

§१२६ मालवी का प्रथम पुरुष 'म्ह' राजस्थानी की प्रवृत्ति से युक्त है, इसलिए उसका कर्म कारक का रूप 'म्हक' और सम्बन्ध कारक का रूप 'म्हारा' हो जाता है, किन्तु निमाड़ी में वे क्रमशः 'म-क, या म-ख' और 'मारो' होते हैं।

§१२७ द्वितीय पुरुष का रूप मालवी और निमाड़ी दोनों में सम्बन्ध कारक के साथ 'थारो' होता है। यह राजस्थानी के प्रभाव का परिणाम है।

§१२८ निकटवर्ती सर्वनाम मालवी में 'यो' बोला जाता है, जो बहुवचन में 'ये' हो जाता है। निमाड़ी में एकवचन में 'यू' बोला जाता है, जिसका बहुवचन रूप 'ई' है।

§१२९ दूरवर्ती सर्वनाम के एकवचन और बहुवचन रूप मालवी और निमाड़ी दोनो में 'ऊ' और 'वी' होते हैं।

§१३० सम्बन्धवाचक सर्वनाम भी दोनों बोलियों के एकवचन और बहुवचन में जो और जे बोले जाते हैं।

§१३१ इसी प्रकार प्रश्नवाचक सर्वनाम मालवी और निमाड़ी दोनों में काँई और कुण होते हैं।

§१३२ सार्वनामिक विशेषण का एकवचन और बहुवचन रूप भी मालवी और निमाड़ी दोनों में क्रमशः—कितरो-कितरोक और कितरे-कितरेक होते हैं। जयपुरी में भी इनका यही रूप है।

§१३३ मालवी के कुछ सार्वनामिक विशेषण से बने शब्द सर्वथा स्थानीय हैं। यथा - अथो (यह स्थान), अथासे (यहाँ से), अथे (यहाँ), वथो (वह स्थान), वथासे (वहाँ से), वथे (वहाँ), जथो (कौनसा स्थान), जथासे (कहाँ से)' जथे (कहाँ), कथो (कहाँ, कौनसा स्थान), कथासे (कहाँ से), कथे (कहाँ)।

§१३४ गुणवाची विशेषण शब्दों—कालो, अच्छो, मीठो, ऊचो, नीचो आदि का रूप मालवी और निमाड़ी में प्रायः समान ही है।

§१३५ मालवी और निमाड़ी के क्रिया के रूपों में नाममात्र का ही अन्तर है। उदाहरणार्थ 'लिखना' क्रिया की निम्नांकित काल-रचना देखिए—

भूतकाल

	मालवी		निमाड़ी	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	म—ने (न) लिख्यो	हमने (न) लिख्यो	म—न लिख्यो	हम—न लिख्यो
द्वितीय ,,	तू—न लिख्यो	तुन—न लिख्यो	तू—न लिख्यो	तुम—न लिख्यो
तृतीय ,,	ऊ (ओ)—न लिख्यो	उन—न लिख्यो	ऊ—न लिख्यो	उन—न लिख्यो

वर्तमान काल

प्र० पु०	हूँ (में) लिखूँ हूँ	हम लिखाँ हाँ	हऊँ लिखूँज	हम लिखाँज
द्वि० पु०	तू लिखे है	तुम लिखो हो	तू लिखज	तुम लिखोज
तृ० पु०	ऊ लिखे हे	वी लिखे हे	ऊ लिखज	वी लिखज

भविष्यत् काल

प्र० पु०	हूँ (में) लिखूँगा	हम लिखाँगा	हऊँ लिखूँगा	हम लिखाँगा
द्वि० पु०	तू लिखेगा (लिखगो)	तुम लिखोगा	तू लिखगा	तुम लिखोगा
तृ० पु०	ऊ लिखेगो (गा)	वी लिखेगा	ऊ लिखगा	वी (वो) लिखगा

कुछ स्थानों में मालवी की भविष्यत काल की क्रिया में 'गा' के स्थान पर बुन्देली की तरह 'गो' का भी प्रयोग किया जाता है ।

§१३६ मालवी और निमाड़ी, दोनों बोलियों में यह स्मरणीय है कि हिन्दी की करना, लेना और देना क्रिया के भूतकालिक रूप क्रमशः कर्‌यो, किधो और किदो, लियो, लिधो, और लिदो दियो, दिघो और दिदो होते हैं। इनमें से कर्‌यो, लियो और दियो रूप पश्चिमी हिन्दी की प्रवृति के अनुसार है, जैसा कि इन दोनों बोलियों की अन्य क्रियाओं में भी देखा जाता है, पर किधो-किदो, लिधो-लिदो और दिधो-दिदो-रूप गुजराती के प्रभाव के परिणाम हैं।

§१३७ पश्चिमी हिन्दी की जानो (जाना) क्रिया का भूतकाल बुन्देली और ब्रज की तरह मालवी में भी 'गयो' होता है। यह कहीं-कहीं 'गियो' या गिओ भी बोला जाता है । निमाड़ी में 'गयो' ही बोला जाता है ।

§१३८ मालवी की पूर्वकालिक क्रिया धातु के आगे 'एने' प्रत्यय लगाने से बनती है—यथा – खाएने (खाकर), रैने (रहकर) । निमाड़ी में 'एने' प्रत्यय न लगाकर 'ईन' प्रत्यय लगाया जाता है । यथा—खाईन, रईन आदि ।

§१३९ मालवी और निमाड़ी की कुछ अकारान्त और आकारान्त धातुवाली क्रियाओं के अन्त में 'ड़' प्रत्यय लगाकर प्रेरणार्थक बना ली गई है। यथा – जीमनो-जिमाड़नो, लीपनो-लिपाड़नो, खानो-खवाड़नो, लिखानो लिखाड़नो, रुवानो-रुवाड़नो आदि।

§१४० मालवी के कर्तृरीवाच्य की क्रियाओं की धातु को अकारान्त से आकारान्त कर देनें से वे कर्मणीवाच्य में बदल जाती है। यथा—सुनणो-सुनानो, पढ़नो-पढ़ानो । निमाड़ी के भी ये ही रूप है।

§१४१ क्रिया विशेषण के रूप मालवी और निमाड़ी में प्रायः एक से ही होते हैं । यथा—अवँ, जवँ, आगऽ, पछा, व्हाँ, उप्पर आदि ।

§१४२ उच्चारण और व्याकरण की दृष्टि से ऊपर निमाड़ी की मालवी से जो तुलना की गई है, उससे यह स्पष्ट है कि इन दोनों दृष्टियों से इन लोक-भाषाओं में एक बड़ी सीमा तक साम्य है। निमाड़ी-कारकों के परसर्ग ही ऐसे हैं, जो मालवी के परसर्गों से कुछ भिन्न है। कालों में निमाड़ी के वर्तमान काल के रूप मालवी के इस काल के रूपों से पृथक् हैं । इस प्रथकता का मुख्य कारण निमाड़ी के वर्तमानकाल के अन्त में लगने वाला 'ज' प्रत्यय है। यह प्रत्यय निमाड़ी की अपनी विशेषता है। यह पूर्वी हिन्दी के जाब, खाब, रहब, आदि भूतकालवाची शब्दों के अन्त में लगने वाले 'ब' प्रत्यय के समान है। मालवी और निमाड़ी की इन समानताओं को देखते हुए इन दोनों का एक ही भाषा-परिवार से सम्बन्धित होना निश्चित है।

निमाड़ी और बुन्देली

§१४३ 'बुन्देली' के नाम से ही यह बुन्देलखण्ड की बोली जान पड़ती है, जिसकी सीमा गजेटियर ग्राव इण्डिया (Gazetteer of India) के अनुसार उत्तर में यमुना नदी से, उत्तर-पश्चिम में चम्बल से, दक्षिण में मध्य-प्रदेश के सागर और जबलपुर जिले से तथा दक्षिण-पूर्व में वर्तमान विन्ध्य-भूमि के रीवाँ जिले से आरम्भ होती है, किन्तु वास्तव में बुन्देली का क्षेत्र इससे अधिक व्यापक है। उत्तरप्रदेश के झाँसी, जालोन और हमीरपुर जिले बुन्देली भाषी हैं, जब कि उपर्युक्त क्षेत्र के अन्तर्गत स्थित बांदा जिले की भाषा बघेली है। इसी प्रकार उत्तर-पश्चिम में चम्बल से आगे बढ़कर आगरा के दक्षिण भाग तक बुन्देली बोली जाती है। पश्चिम में ग्वालियर तथा उसके आसपास के भाग में जो भाषा बोली जाती है, उसे ब्रजभाषा का ही एक रूप कहा जायगा। दक्षिण में सागर और जबलपुर से आगे बढ़कर मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर और होशंगाबाद जिले के भी अधिकांश भाग में बुन्देली ही बोली जाती है; यद्यपि होशंगाबाद जिले के पश्चिमी भाग की बुन्देली पर मालवी का भी प्रभाव देखा जाता है। नरसिंहपुर जिले के दक्षिण में छिंदवाड़ा और सिवनी जिले में जो भाषा बोली जाती है, वह भी मालवी-प्रभावित बुन्देली ही है। दक्षिण-पश्चिमी सीमा से निमाड़ी का क्षेत्र आरम्भ होता है।

तुलना

(क) ध्वनि

§१४४ जब बुन्देली के ए और ओ से युक्त आरम्भीय वर्ण वाले शब्द लघुत्व व्यक्त करने के लिए उच्चरित होते हैं, तब ए और ओ क्रमशः इ और उ हो जाते हैं। यथा — बेटी-बिटिया, सेठी-सिठिया, जेठी-जिठिया, छोटा-छुटवा, लोटा-लुटवा, सोटा-सुटवा, टोटी-टुटिया आदि। निमाड़ी में यह प्रवृति नहीं मिलती।

§१४५ अन्य स्वरों के उच्चारण में भी बुन्देली में हमें ह्रस्वीकरण की ही प्रवृति दिखाई देती है। यथा — ब्रज के ऐसो, वैसो, जैसो, कैसो शब्द बुन्देली में ह्रस्वीकरण के साथ एँसो, वेंसो, जेंसो, केंसो, उच्चरित होते हैं और निमाड़ी में और भी ह्रस्व होकर असो, वसो, जसो, कसो ही रह गए हैं। इसी प्रकार दियो, लियो, खायो, गायो आदि क्रियाएँ बुन्देली में ह्रस्वीकरण के साथ दओ, लओ, खओ और गओ उच्चरित होती हैं। निमाड़ी में इनका ह्रस्वीकरण नहीं होता, ये ब्रज भाषा की तरह दियो, लियो, खाओ, गयो ही उच्चरित होती हैं।

ब्रज के ऐहैं, जैहैं, कैहैं आदि शब्द भी बुन्देली में ह्रस्वीकरण के साथ एहें जेहें, केहें उच्चरित होते हैं। निमाड़ी में इन शब्दों का प्रयोग नहीं होता, इनके स्थान पर आवँगा, जावँगा और कऊँगा शब्दों का प्रयोग होता है।

§१४६ बुन्देली में शब्दान्त 'ड़' के स्थान पर प्रायः 'र' उच्चरित होता है। यथा – दौड़-दौर, पड़ो-परो, घोड़ा-घोरा, जोड़ा-जोरा, छोड़-छोर, होड़-होर, पकड़-पकर, जकड़-जकर आदि। निमाड़ी में यह परिवर्तन नहीं मिलता।

मोड़ा-मोड़ी शब्द इसके अपवाद हैं।

§१४७ हकार के लोप की प्रवृति निमाड़ी की तरह बुन्देली में भी विद्यमान है। यथा – कही-कई, रहना-रयनो, पहराना-पयरानो, पहरादो-पेरादो, रहने लगा-रनलग्यो आदि।

§१४८ इसी प्रकार महाप्राण के स्थान पर अल्पप्राण वर्णों के उच्चारण की प्रवृति भी निमाड़ी और बुन्देली में समान रूप से मिलती है। यथा—खम्भा-खम्बा, दूध-दूद, ठट्ठा-ठट्टा, भूख-भूक, हठ-हट, भीख-भीक, साथ-सात आदि। यह विशेषता शब्दान्त वर्णों में ही देखी जाती है।

§१४९ कुछ शब्दों में हम निमाड़ी और बुन्देली दोनों में अल्पप्राण के स्थान पर महाप्राण वर्णों का उच्चारण भी देखते हैं। यथा—पत्थर-फत्तर, बहुत-भउत आदि।

§१५० ब्रज की तरह बुन्देली और निमाड़ी के भी कुछ शब्दों में य के स्थान पर ज और व के स्थान पर ब का उच्चारण किया जाता है। यथा यज्ञ-जग्य या जग्ग, यशोदा-जसोदा, यमुना-जमना, वज्र-बज्र या बज्जर, विचार-बिचार, वन-बन, वार्ता-बार्ता आदि।

यह उच्चारण-भेद शब्दारम्भ में ही मिलता है, मध्य और अन्त में य और ब का उच्चारण अविकृत है। यथा—

मध्य में—मायको, मयना, कायदो, पावती, सावजी, बावली आदि
अन्त में—कयो, रयो, खायो, जीव, भाव, नाव आदि।

(ख) रूप

§१५१ अधिकांश आकारान्त तद्भव संज्ञा शब्द बुन्देली और निमाड़ी दोनों में ओकारान्त उच्चरित होते हैं। यथा—छोरा-छोरो, घोड़ा-घोड़ो-घोरो, सोना-सोनो-सुन्नो आदि।

§१५२ बुन्देली के अधिकांश जातिवाचक स्त्रीलिंग शब्दों के अन्त में 'इन' प्रत्यय होता है। यथा—तम्बोलिन, कुम्हारिन, लोहारिन, बनियाइन आदि। निमाड़ी में 'इन' के स्थान में 'एण' प्रत्यय लगता है। यथा—तमोलेण, कुम्हारेण, लोहारेण आदि।

§१५३ कुछ आकारान्त पुंल्लिग शब्दों का स्त्रीलिंग आकारान्त से ईकारान्त कर देने से बनता है। यथा—छोरा-छोरी, घोरा-घोरी, मोड़ा-मोड़ी

आदि । निमाड़ी में ओकारान्त से ईकारान्त कर देने से स्त्रीलिंग रूप बन जाते हैं। यथा—छोरो-छोरी, घोड़ो-घोड़ी, लड़को-लड़की आदि ।

§१५४ बुन्देली में कुछ शब्दों का लिंग-परिवर्तन 'इया' प्रत्यय लगाकर भी किया जाता है। यथा—बेटा-बिटिया, लोटा-लुटिया, खाट-खटिया, सरोता-सरोतिया आदि । निमाड़ी में 'इया' प्रत्यय से स्त्रीलिंग के रूप नहीं बनाए जाते।

§१५५ लिंग-परिवर्तन के अन्य नियम प्रायः सामान्य हिन्दी (खड़ी बोली) के समान ही हैं।

§१५६ एक वचन से बहुवचन बनाने के लिए बुन्देली में भी अधिकांश शब्दों के अन्त में निमाड़ी और ब्रजभाषा की तरह 'न' प्रत्यय लगाया जाता है। यथा—छोरा-छोरान, मोड़ी-मोड़ीन, लाठी-लाठीन, घर-घरन आदि।

बुन्देली के एकवचन शब्दों में 'हार' प्रत्यय लगाकर भी बहुवचन में बोलने की चाल है। यथा—मोड़ा-मोड़ाहोर, भाई-भाईहोर, लुगाई-लुगाईहोर आदि। निमाड़ी में एकवचन से बहुवचन करने के लिए 'होण' प्रत्यय लगाया जाता है। तदनुसार बहुवचन के रूप छोराहोण, भाईहोण, लुगाईहोण आदि होंगे।

§१५७ बुन्देली में कर्त्ताकारक की विभक्ति (परसर्ग) ने, नें, कर्म की कों खों, सम्प्रदान को लाने, सम्बन्ध की को, के, की (कभी-कभी खों) करण और अपादान की सें, सों और अधिकरण को विभक्ति मे अथवा में होती है। इनमें से बुन्देली की सम्प्रदान कारक की विभक्ति 'लाने' निमाड़ी की 'लेण' के समान है। सम्बन्ध कारक की विभक्ति को, की ही हैं। शेष विभक्तियाँ बुन्देली से भिन्न हैं, जो खड़ी बोली की विभक्तियों का ह्रस्वीकरण-सा जान पड़ता है। यथा—कर्त्ता की विभक्ति न, कर्म की क, करण और अपादान की स अथवा सी और अपादान की म तथा उप्पर है।

§१५८ बुन्देली के पुरुष वाचक सर्वनाम के रूप निम्न प्रकार हैं:—

एकवचन

कारक	प्रथम पुरुष	द्वितीय पुरुष	तृतीय पुरुष
कर्त्ता	में, मैं, मेंने	तू, तें, तेंने	वो, ऊ, वोने, वाने
कर्म	मोखों, मोय, मोए	तोखों, तोए	वोखों, ऊखों
करण	मोसे(से) मोसों	तोसें, तोसों,	वोसे, वासों, ऊंसें
सम्प्रदान	मेंरे लाने	तेरे लाने	वोकेलाने, वाके लाने
अपादान-करण कारक की तरह			
सम्बन्ध	मेरो, मोरो,	तेरो, तोरो	वाको, वाके, वाकी
अधिकरण	मोमें, मो पर	तोमें, तो पर	वामें, वापर

बहुवचन

कर्त्ता	हम, हमने	तुम तुमने	बिन, उन, बिनने
कर्म	हमखों, हमें	तुमखों, तुमए (हे)	बिनखों, उनखों
करण-	हमसें, हमसों	तुमसें, तुमसों,	बिनसें, उनसें, उनसों
सम्प्रदान	हम रेलाने	तुम्हरे लाने	उनके लाने
अपादान-करण कारक की तरह ही			
सम्बन्ध	हमरो, हमरे	तुम्हरो, तुम्हरे	उनके, उनको, उनकी
अधिकरण	हममें, हम पर	तुममें, तुम पर	बिनमें, उनमें, उनपर

कारकों की विभक्तियों की भिन्नता के कारण निमाड़ी के रूप इनसे सर्वथा भिन्न हैं। उदाहरण 'रूप-तत्व' के अध्याय में देखिए।

§१५९ बुन्देली के निकटवर्ती और दूरवर्ती सर्वनाम के रूप क्रमशः जो तथा ऊ होते हैं, जो बहुवचन में क्रमशः जे तथा ओ हो जाते हैं। कहीं-कहीं जो के स्थान में जा और कभी-कभी 'ई' भी बोला जाता है। निमाड़ी में ये रूप क्रमशः यू, ई, ऊ और वी होते हैं।

§१६० प्रश्नवाचक सर्वनाम के बुन्देली रूप को और का हैं। कहीं-कहीं को के स्थान में कौन भी बोला जाता है। निमाड़ी में इनके रूप कोण और का हैं।

§१६१ बुन्देली में सम्मान देने के लिए तू अथवा तुम के स्थान में आप बोलने की भी प्रथा है। तदनुसार उसके विभिन्न रूप, आपने, आपखों, आपसें, आपके लाने, आपको, आपमें, हो जाते हैं। निमाड़ी में 'आप' शब्द का प्रयोग पहिले न था, अब आरम्भ हो रहा है।

§१६२ निजवाचक सर्वनाम 'आप' के विभिन्न रूप अपनने, अपनखों, अपनसें (अपनसों), अपनेलाने, अपनो, अपनमें-पर होते हैं। निमाड़ी के रूप 'अपन-न, अपन-ख, अपन-सी, अपनालेण, अपनो और अपन-म हैं।

§१६३ बुन्देली में कोऊ, कछु और कितेक शब्दों का प्रयोग अनिश्चयवाचक सर्वनाम के रूप में होता है। निमाड़ी में इनके रूप कोई, कई, कितरे हैं।

§१६४ बुन्देली के वर्तमानकाल के रूप हूँ, हे लगाकर, भूतकाल के रूप अकारान्त धातु को ओकारान्त करके और भविष्यत्काल के रूप धातु के आगे हूँ, हे, हें लगाकर बनाते हैं। तदनुसार मारनो क्रिया के विभिन्न कालीन रूप इस प्रकार होंगे :—

वर्तमानकाल के रूप

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	मैं मारत हूँ	हम मारत हैं
द्वितीय पुरुष	तू मारत है	तुम मारत हो
ततीय पुरुष	वो मारत है	वे मारत हैं

§१६५ ये पुल्लिग के रूप हैं। स्त्रीलिंग में प्रथम और द्वितीय पुरुष के रूप उपर्युक्त ही रहेंगे, केवल तृतीय पुरुष के एकवचन में 'वो' के स्थान में 'बा' हो जायगा।

भूतकाल के रूप

प्रथम पुरुष	मैंने मारो	हमने मारो
द्वितीय पुरुष	तूने मारो	तुमने मारो
तृतीय पुरुष	बोने मारो	बिनने मारो

भविष्यत्काल के रूप

प्रथम पुरुष	मैं मारहूँ	हम मारहैं
द्वितीय पुरुष	तू मारहे	तुम मारहो
तृतीय पुरुष	बो मारहे	बे मारहें

§१६६ बुन्देली के ये रूप निमाड़ी से सर्वथा भिन्न हैं। निमाड़ी-रूप "रूप-तत्व" अध्याय में देखिए। (अनु० ५४८-५०) बुन्देली के वर्तमान और भविष्यत्-काल के प्रत्यय भी निमाड़ी से भिन्न हैं, जिससे बुन्देली की क्रिया के ये रूप भी निमाड़ी से भिन्न हैं, पर भूतकाल के रूपों में नाममात्र की ही भिन्नता है। बुन्देली का 'मारो' रूप निमाड़ी में 'मार्‌यो' है।

§१६७ बुन्देली के भविष्यतकालीन रूपों में है, हे के स्थान में गा, गे, गी प्रत्यय भी लगाए जाते हैं—यथा मारूंगो, मारूंगी, मारेंगे।

§१६८ बुन्देली की अपूर्ण भूतकाल की क्रिया हेतुहेतु तद्भूत शब्द की क्रिया के आगे हतो, हते, हती प्रत्यय लगाकर बनाई जाती है। यथा—मारत हतो, मारत हते, मारत हती। निमाड़ी के ये रूप—मारतो थो, मारता था, मारती थी होंगे। अब पूर्वी निमाड़ी में बुन्देली की तरह था, थे, थी के लिए हतो, हते और हती काल-प्रत्ययों का भी प्रयोग होने लगा है। उसमें बुन्देली और निमाड़ी के रूप समान ही हो जाते हैं। इसका कारण बुन्देली का प्रभाव है।

§१६९ निमाड़ी की तरह बुन्देली की भी करनो, देनो, लेनो और जानो क्रिया के भूतकालिक रूप अन्य क्रियाओं से भिन्न करो-कियो, दियो या दओ लियो या लओ और गओ होते हैं।

§१७० क्रिया के ये रूप बहुवचन में एकारान्त और स्त्रीलिंग में ईकारान्त हो जाते हैं। यथा---बहुवचन-किये, दियें, लियें, गये। स्त्रीलिंग-किई दिई, लिई, गई। किया भूतकालिक क्रिया करो भी उच्चरित होती है।

§१७१ निमाड़ी की पूर्वकालिक क्रिया 'इन' प्रत्यय लगाकर बनाई जाती है, पर बुन्देली की पूर्वकालिक क्रिया 'के' प्रत्यय लगाने से बनती है। यथा---मारके (मारकर), पढ़के (पढ़कर), खाके (खाकर) आदि। इनके निमाड़ी रूप मारिन, पढ़िन और खाइन होंगे।

§१७२ क्रिया विशेषण के रूपों में कोई विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं है।[१]

§१७३ उपर्युक्त विवेचन में हम देखते हैं कि उच्चारण की दृष्टि से ह्रस्व और दीर्घ स्वरों का एक-दूसरे में परिवर्तन, अल्पप्राण वर्णों का महाप्राण और महाप्राण वर्णों का अल्पप्राण में उच्चारण, हकार के लोप की प्रवृति, य के स्थान में ज और व के स्थान में ब का प्रयोग आदि बातों में दोनों बोलियों में समानता है। व्याकरण की दृष्टि से भी अनेक बातों में समानता है। जिन बातों में समानता नहीं है, वे दोनों बोलियों की अपनी-अपनी विशेषताएं हैं, जिन्होंने उन्हें दो पृथक् रूप दे रखे हैं। यह देखते हुए इन दोनों लोक-भाषाओं का एक ही भाषा-परिवार से सम्बद्ध होना स्पष्ट है।

ब्रजभाषा और निमाड़ी

§१७४ 'ब्रज' अपने नाम के अनुसार ब्रज भूमि की बोली जान पड़ती है, जिसमें आज का मथुरा जिला है, किन्तु यह वास्तव में इतने छोटे-से क्षेत्र की बोली नहीं है। यह उत्तरप्रदेश के मथुरा, अलीगढ़, आगरा, एटा, बुलन्दशहर, मैनपुरी, बदायूँ तथा बरेली जिले, राजस्थान के भरतपुर, धौलपुर, करौली और जयपुर के पूर्वी भाग, पंजाब के गुड़गाँव जिले के पूर्वी भाग तथा मध्यभारत के ग्वालियर जिले के पश्चिमी भाग में भी बोली जाती है। इस तरह यह आज लगभग ३८ हजार वर्ग मील में बसे लगभग सवा करोड़ स्त्री-पुरुषों की बोली है[२]। ध्वनि और रूप की दृष्टि से निमाड़ी का इस लोक-भाषा से भी बहुत साम्य है।

तुलना

(क) ध्वनि

§१७५ मालवी, बुन्देली और निमाड़ी की तरह प्रायः सभी आकारान्त तद्भव संज्ञा शब्द ब्रज में भी ओकारान्त उच्चरित होते हैं। यथा---छोरो, लोटो, खोटो, बड़ो, छोटो, नकटो, खटको, आदि।

---

१. विशेष विवरण आगे 'रूप-तत्व' के अध्याय में दिया जा रहा है।

२. डा० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रजभाषा (१९५३) पृ० ३३।

§१७६ बुन्देली की तरह ब्रज में भी अनुस्वार के प्रयोग की अधिकता है। यथा—भूको-भूँको, हाथ-हाँत आदि। इसके विपरीत निमाड़ी में सानुनासिक स्वर भी अनुस्वार-विहीन उच्चरित होते हैं। यथा—दाँत-दात, गाँव-गाव आदि।

§१७७ शाहजहाँपुर तथा उसके निकटस्थ क्षेत्र में ऐ तथा औ संयोगी स्वर पृथक् करके क्रमशः 'अइ' तथा 'अउ' उच्चरित होते हैं। यथा—ऐसी-अइसी, जैसी-जइसी, और-अउर, गौनो-गउनो आदि। निमाड़ी के कुछ शब्दों के उच्चारण में भी हमें यही प्रवृत्ति मिलती है। यथा—चैत-चइत, बैल-बइल, और-अउर, मौर-मउर, गौर-गउर आदि।

§१७८ तीन स्वरों के संयोग के उदाहरण ब्रज और निमाड़ी दोनों में मिलते हैं। यथा—सिआई, उड़ाई, खटाई आदि।

§१७९ स्पर्श व्यंजन ड्, ढ् का प्रयोग आधुनिक ब्रज में प्रायः शब्दों के आदि में ही मिलता है, पर निमाड़ी में आदि, मध्य तथा अन्त में भी मिलता है। यथा—ब्रज में डार, ढाल आदि। निमाड़ी में डाल, ढोकला, ठंडक, ढंढार, ढांडा आदि।

§१८० ड़ के स्थान में र का उच्चारण ब्रज और बुन्देली की विशेषता है। निमाड़ी में यह व्यंजन ज्यों का त्यों ही उच्चरित होता है। यथा—निमाड़ी का पड़ो या पड़्यो ब्रज में परो वा पर्‌यो उच्चरित होता है।

§१८१ ब्रज, बुन्देली और निमाड़ी तीनों बोलियों में मध्य अथवा अन्त्य ध्वनियों का द्वित्वीकरण समान रूप से मिलता है। यथा—उप्पर (ऊपर) दरवज्जो (दरवाजा), टप्पर (टपरा), अग्ग (अगला) आदि।

§१८२ ङ्, ण, ञ्, न् और म् अनुनासिक व्यंजनों का कार्य पश्चिमी हिन्दी की प्रायः सभी बोलियों में अनुस्वार से ले लिया जाता है। यथा—अंक' झाँज, संत, खंबा आदि।

§१८३ बुलंदशहर जिले में 'ण्' का अत्यधिक प्रयोग होता है। यहाँ तक कि बोलने में न् भी ण् बना लिया जाता है। यथा—बहण (बहन), मकाण या मकौण (मकान) आदि। निमाड़ी में भी यह प्रवृति अधिक देखी जाती है। यथा बहेण, दिखणो, ताण आदि।

§१८४ हकार के लोप की प्रवृति बुन्देली और निमाड़ी की तरह ब्रज में भी मिलती है। इसके उदाहरण पहिले दिए जा चुके हैं। (अनु० १४७)

§१८५ इसी प्रकार कुछ अल्पप्राण ध्वनियों का महाप्राण में उच्चारण तथा य के स्थान पर ज और व के स्थान पर ब के उच्चारण की प्रवृति भी निमाड़ी और बुन्देली की तरह ब्रज में भी वर्तमान है। (अनु० १४९-१५०)

§१८६ ब्रज के तद्भव आकारान्त संज्ञापद औकारान्त होते हैं, पर पूर्वी ब्रज में ये ओकारान्त भी बोले जाते हैं। निमाड़ी के तद्भव संज्ञापद भी ओकारान्त होते हैं। यथा—घोड़ो अथवा घोड़ौ (ब्र०), घोड़ो (नि०)।

§१८७ ब्रज के एकवचन संज्ञापद बहुवचन में आकारान्त हो जाते हैं या उनमें 'न' प्रत्यय लग जाता है, निमाड़ी में भी यही होता है यथा—घोड़ो (एकवचन), घोड़ा या घोड़ान (बहुवचन)।

§१८८ यही स्थिति गुणवाचक विशेषण शब्दों की भी है। ये ब्रज में औकारान्त अथवा ओकारान्त बोले जाते हैं और निमाड़ी में भी ओकारान्त बोले जाते हैं। यथा—(ब्रज में) भलो, अच्छो, कालो (निमाड़ी में) भलो, अच्छो, कालो।

§१८९ 'हौं' ब्रज के एकवचन प्रथम पुरुष का रूप है, जो बहुवचन में 'हम' हो जाता है। निमाड़ी में भी हौं अथवा हऊँ प्रथम पुरुप एकवचन का रूप है और बहुवचन में ब्रज की तरह ही 'हम' हो जाता है।

§१९० इसी प्रकार ब्रज में द्वितीय पुरुष का रूप तू, तै या तैं है, जिसका बहुवचन रूप 'तुम' होता है। निमाड़ी में इसका रूप 'तू' है, जिसका बहुवचन रूप ब्रज की तरह ही 'तुम' होता है। पश्चिमी भाग की निमाड़ी में 'तम' उच्चरित होता है।

§१९१ ब्रज में तृतीय पुरुष एकवचन का रूप 'वह' अथवा 'वूह' है। निमाड़ी में हकारान्त के लोप के साथ 'वू' होता है। बहुवचन में वू का वी हो जाता है, पर रूप-रचना में सामान्य हिन्दी अथवा ब्रज की तरह 'उन्' ही होता है।

§१९२ निकटवर्ती सर्वनाम ब्रज और निमाड़ी दोनों में 'यू' होता है, पर दूरवर्ती सर्वनाम ब्रज में 'वो' और निमाड़ी में 'वू' (ऊ) होता है।

§१९३ सम्बन्धवाचक सर्वनाम 'जो' का रूप ब्रज और निमाड़ी में समान ही रहता है। इसका बहुवचन रूप 'जे' भी दोनों वोलियों में समान है।

§१९४ नित्य सम्बन्धी एकवचन सर्वनाम 'सो' और उसका बहुवचन-रूप 'सो' अथवा 'ते' भी दोनो बोलियों में समान है।

§१९५ ब्रज का प्रश्नवाचक सर्वनाम 'को' अथवा 'कौन' पूर्वी निमाड़ी में भी 'कोन' ही बोला जाता है, पर यह पश्चिमी निमाड़ी में राजस्थानी के प्रभाव से 'कुण' अथवा 'कोण' हो गया है।

§१९६ ब्रज के को, में, से परसर्गों के स्थान में निमाड़ी में क अथवा ख, म तथा सी का प्रयोग होता है।

§१९७ क्रिया के रूप की दृष्टि से ब्रज और निमाड़ी के मूल रूप में कोई अन्तर नहीं है। उनके तीनों कालों के रूप में अवश्य ही कुछ भिन्नता है। उदाहरणार्थ दोनों बोलियों में 'पढ़ना' क्रिया के रूप देखिए—

काल	ब्रज		निमाड़ी	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
वर्तमानकाल	पढ़ों	पढ़ें	पढ़ज	पढ़ाँज
भूतकाल	पढ़्यो	पढ़्यो	पढ़्यो	पढ़्यो
भविष्यतकाल	पढ़ौगो	पढ़ैंगे	पढ़ुंगो	पढ़गा

§१९८ उच्चारण-भेद से ब्रज और निमाड़ी के क्रिया-विशेषण के रूपों में हमें किंचित अंतर दिखाई देता है, उदाहरणार्थ निम्नांकित रूप देखिए :—

	ब्रज	निमाड़ी
कालवाचक	आज, अब, आगै, फिर, कब, पाछे	आज, अब, आगऽ, फिर, कब, पाछऽ
स्थानवाचक	आगे, पास, बाहिर, भीतर, उव्हाँ, ऊपर	आगऽ, पास, बहिर, भीत्तर, व्हाँ, उप्पर
रीतिवाचक	ऐसे, वैसे, कैसे, धीरे	असो, वसो, कसो, धीरऽ
निषेधवाचक	ना, न, नई, नि, मत	नि, नीं, मत
कारणवाचक	काहे	काहे, क्यूं
परिणामवाचक	केतो, कम, जादा, सबरो	कित्रा, कम-थोड़ो, जादा, सब-आखो

§१९९ वाक्य-रचना में शब्दों का क्रम ब्रज और निमाड़ी में समान ही है। दोनों में कर्त्ता, कर्म और क्रिया एक-दूसरे के पश्चात् आते हैं। विशेषण शब्दों का स्थान सामान्यतः संज्ञा या सर्वनाम के पूर्व तथा क्रिया विशेषण शब्दों का स्थान क्रिया के पूर्व होता है।

§२०० हमने देखा कि ब्रज और निमाड़ी के उच्चारण तथा व्याकरण में भी लगभग वही साम्य है, जो बुन्देली और निमाड़ी के साथ है। आकारान्त तद्भव संज्ञापदों का ओकारान्त में प्रयोग, संयोगी स्वरों का पृथक् उच्चारण, तीन स्वरों का एक साथ प्रयोग, मध्य एवं अन्त्य ध्वनियों का द्वित्वीकरण, अनुनासिक पंचम वर्णों के स्थान में अनुस्वार का उपयोग, अनेक स्थानों में न के स्थान में ण का व्यवहार तथा हकार के लोप की प्रवृति ब्रज और निमाड़ी दोनों की उच्चारण सम्बन्धी समान विशेषताएँ हैं।

एकवचन संज्ञा-शब्दों को 'न' प्रत्यय लगाकर बहुवचन बनाना, संज्ञा की तरह गुणवाचक विशेषणों का भी ओकारान्त में प्रयोग, प्रथम पुरुष एकवचन के लिए हौं या हऊँ का प्रयोग, द्वितीय पुरुष के एकवचन और बहुवचन रूप की समानता, निकटवर्ती सर्वनाम 'यह' का 'यू' हो जाना, सम्बन्ध सूचक सर्वनाम 'जो' का समान प्रयोग, नित्य सम्बन्धी सर्वनाम 'सो' की दोनों वचनों में समानता, क्रिया के मूल रूपों का एक-सा प्रयोग तथा क्रिया-विशेषण शब्दों का समान रूप ब्रज और निमाड़ी की व्याकरण सम्बन्धी समानताएँ हैं। ध्वनि और रूप सम्बन्धी समान विशेषताएँ इन दोनों लोक-भाषाओं का किसी एक ही आर्य भाषा-परिवार से सम्बन्धित होना प्रमाणित करती है।

सामूहिक तुलना

§२०१ निमाड़ी की ध्वनि और रूप सम्बन्धी विशेषताओं की मालवी, बुन्देली और ब्रज की इन्हीं विशेषताओं के साथ पृथक्-पृथक् की गई तुलना से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये चारों लोकभाषाएँ एक ही आर्य भाषा-परिवार की सदस्याएँ हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वह मध्यदेशीय अथवा पश्चिमी हिन्दी भाषा-परिवार है। इसी निष्कर्ष को अधिक स्पष्ट करने के लिए अब हम इन चारों लोकभाषाओं के रूपों की एक साथ तुलना करेंगे। इस सामूहिक तुलना में हम इन चारों लोकभाषाओं के साथ 'मारवाड़ी' को भी स्थान दे रहे हैं, ताकि डा० ग्रियर्सन के निमाड़ी के राजस्थानी की बोली होने के मत का भी परीक्षण हो जाय। 'मारवाड़ी' को आदर्श राजस्थानी माना गया है, इसीलिए हम तुलना के लिए इसी लोकभाषा को ले रहे हैं।

संज्ञा

§२०२ सबल पुल्लिंग (Strong Masculine) तद्भव संज्ञा शब्द

एकवचन

कारक	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
कर्त्ताकारक	घोड़ो	घोड़ो	घोरो-ध्वारो	घोरा	घोड़ो
अन्यकारक	घोड़ा	घोड़ा	घोरा	घोड़ा-घोरा	घोड़ा

बहुवचन

कारक	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
कर्त्ताकारक	घोड़ान	घोड़ा	घोरे घोरन	घोरे घोरन	घोड़ा
अन्यकारक	घोड़ान	घोड़ा	घोरान (ध्वारन)	घोरो घोरान	घोड़ा

सबल पुल्लिग तद्भव संज्ञा शब्द के विभिन्न कारकों में प्रयुक्त होने वाले एकवचन और बहुवचन रूपों में हम देखते हैं कि कर्त्ताकारक म प्रयुक्त एकवचन उपर्युक्त पाँचों बोलियों में समान हैं, केवल बुन्देली और ब्रज में उनकी प्रवृति के अनुसार ड़ के स्थान में र हो गया है। अन्य कारकों के रूप भी समान है, किन्तु बहुवचन रूपों में मालवी और मारवाड़ी में ओकारान्त का आकारान्त हो गया है, जब कि निमाड़ी, बुन्देली और ब्रज के रूपों में 'न' प्रत्यय की समानता है।

§२०३ सबल स्त्रीलिंग तद्भव संज्ञा शब्द

एकवचन

कारक	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
कर्त्ताकारक	घोड़ी	घोड़ी	घोरी घ्वारी	घोरी	घोड़ी
अन्यकारक	घोड़ी	घोड़ी	घोरी घ्वारी	घोरी	घोड़ी

बहुवचन

कारक	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
कर्त्ताकारक	घोड़ीन	घोड़्याँ	घोरियाँ घ्वारियाँ घोरिन	घोरियाँ घोरिन	घोड़्याँ
अन्यकारक	घोड़ीन	घोड़्याँ	घोरिन	घोरियाँ घोरिन	घोड़्याँ

सबल स्त्रीलिंग तद्भव संज्ञा शब्द के एकवचन-रूप पाँचों बोलियों में समान हैं, किन्तु जब वे बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं, तब हम मालवी और मारवाड़ी के रूपों में समानता पाते हैं, जो निमाड़ी, बुन्देली और ब्रज के रूपों से भिन्न हैं। निमाड़ी, बुन्देली और ब्रज के रूपों में साम्य है।

§२०४ निर्बल पुल्लिंग (Week Masculine) तद्भव संज्ञा शब्द

एकवचन

कारक	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
कर्त्ताकारक	घर	घर	घर	घर	घर
अन्यकारक	घर	घर	घर	घर	घर

बहुवचन

कारक	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
कर्त्ताकारक	घर	घर	घर	घर	घर
अन्यकारक	घरन	घराँ	घरन	घराँ घरन	घराँ

प्रथम कोष्टक में घर के एकवचन-रूप सभी बोलियों के सभी कारकों में अपरिवर्तित हैं और द्वितीय कोष्टक में भी कर्त्ताकारक में प्रयुक्त होने वाले रूपों में कोई परिवर्तन नहीं है, पर जब अन्यकारकों में बहुवचन-रूप में प्रयोग किया जाता है, तब हम एक ओर निमाड़ी, बुन्देली और ब्रज के रूपों में 'न' प्रत्यय के कारण समानता पाते हैं और दूसरी ओर मालवी और मारवाड़ी के रूपों में समानता देखते हैं। इस तरह हम निमाड़ी के संज्ञा के रूपों में ब्रज-बुन्देली में जो निकटता देखते हैं, वह मालवी और मारवाड़ी में नहीं देखते—विशेषकर बहुवचन के रूपों में।

§२०५ **कारकों के परसर्ग**

कारक	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
कर्त्ताकारक	न	ने	ने	नें	नें
कर्मकारक	क, ख	क, को	खों, खों	को, कौ	को
सम्प्रदान कारक	कालेण	वास्तव	लाने	लए, लएँ	
सम्बन्ध कारक	को, का, की	को, का की	को, के, की	कौ, के, की	रो, रा, री
अपादान कारक	स, सी	से, सूं	सों, से,	सों, तें	सूँ
अधिकरण कारक	म, पर, उप्पर	में, पपर उप्पर	में, पर	में, पे	मूँ

§२०६ कर्त्ताकारक का परसर्ग 'ने' निमाड़ी में 'न' और ब्रज में 'नें' है, शेष बोलियों में समान रूप से अपरिवर्तित हैं। यही स्थिति कर्मकारक की भी है, केवल निमाड़ी ही ऐसी बोली है, जिसमें यह परसर्ग ओकारान्त से अकारान्त हो जाता है। सम्प्रदान के परसर्ग सभी बोलियों से भिन्न हैं। सम्प्रदान-परसर्ग मारवाड़ी के सर्वथा पृथक है, शेष बोलियों के परसर्ग प्रायः समान है। अपादान के परसर्ग मालवी और मारवाड़ी के समान हैं, पर मालवी में खड़ी बोली की तरह 'से' परसर्ग का भी प्रयोग होता है, जो मारवाड़ी से भिन्न है। निमाड़ी, बुन्देली और ब्रज के परसर्ग उनके उच्चारण-भेद के अनुसार एक-दूसरे से कुछ

पृथक् हैं। अधिकरण कारक के परसर्ग मारवाड़ी के अतिरिक्त शेष बोलियों के प्राय: समान हैं, ब्रज का परसर्ग में अवश्य ही एकारान्त से ऐकारान्त हो गया है और 'पर' 'पै' में परिवर्तित हो गया है। परसर्गों में बोलीगत कुछ पृथक्ता होने पर भी हम देखते हैं कि निमाड़ी के परसर्ग मारवाड़ी से अधिक दूर तथा मालवी, बुन्देली और ब्रज के परसर्गों के अधिक निकट है।

सर्वनाम

§२०७ पुरुषवाचक सर्वनाम प्रथम पुरुष (एकवचन)

कारक	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
कर्त्ताकारक	हऊँ, म	मूँ, हूँ	में	हौं, में	हूँ, म्हुँ
संबंधकारक	म्हारो, मारो	म्हारो, मारो	मेरो	मेरा	म्हारो
अन्यकारक	म	म्ह, म	मो, मोय	मो, मोही	म्ह, में

बहुवचन

कारक	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
कर्त्ताकारक	हम	म्हे	हम	हम	म्हे, में
संबंधकारक	हमारो, म्हारो	म्हानो	हम, हरो, हमाओ	हमारो	म्हारो
अन्यकारक	हम	म्हाँ	हम	हमौं, हम	म्हाँ

§२०८ एकवचन कर्त्ताकारक के रूपों में निमाड़ी, बुन्देली और ब्रज में साम्य है, दूसरी ओर मालवी और मारवाड़ी में साम्य है। सम्बन्धकारक एकवचन के रूपों में निमाड़ी, मालवी और मारवाड़ी में साम्य है, दूसरी ओर ब्रज और बुन्देली में साम्य है। अन्य कारकों के रूपों में निमाड़ी सबसे पृथक् है, पर मालवी और मारवाड़ी तथा बुन्देली और ब्रज में समानता है।

§२०९ बहुवचन के रूपों में निमाड़ी, बुन्देली और ब्रज में समानता है, दूसरी ओर मालवी और मारवाड़ी में समानता है। इस प्रकार हम निमाड़ी को राजस्थानी की अपेक्षा पश्चिमी हिन्दी की बोलियों के ही अधिक निकट पाते हैं।

§२१० पुरुषवाचक द्वितीय पुरुष (एकवचन)

कारक	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
कर्त्ताकारक	तू	तू	तूं, तें	तू, तें	तूँ, थूँ
संबंधकारक	थारो, तारो	थारो	तेरो, तोनो	तेरो	थारो
अन्यकारक	तू	था, ता	तो, तोप	तो, तोही	था, ताँ

बहुवचन

कारक	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
कर्त्ताकारक	तुम	थे, तुम	तुम	तुम	थे, तमे
संबंधकारक	तुम्हारो	तानो	तुमारो	तुम्हारो	थारो, तमारो
अन्यकारक	तुम, तम	था, तुम	तुम	तुम, तुम्हों	थाँ, तमाँ

§२११ द्वितीय पुरुष एकवचन कर्त्ताकारक के रूप सभी बोलियों में प्रायः समान हैं। सम्बन्ध कारक में निमाड़ी, मालवी और मारवाड़ी के रूपों में साम्य है, दूसरी ओर बुन्देली और ब्रज में प्रायः समानता है। अन्यकारकों के रूपों में निमाड़ी सबसे पृथक् सामान्य हिन्दी के समान ही है। अन्य बोलियों में मालवी और मारवाड़ी में तथा बुन्देली और ब्रज में समानता है।

§२१२ बहुवचन कर्त्ता के रूप मारवाड़ी के सर्वथा पृथक् हैं, शेष चारों बोलियों के रूप समान हैं। सम्बन्धकारक के रूपों में निमाड़ी के रूप ब्रज और बुन्देली की तरह ही हैं। मालवी और मारवाड़ी के रूप भी एक दूसरे से भिन्न हैं। इस प्रकार हम द्वितीय पुरुष सर्वनाम के रूपों में भी निमाड़ी का मारवाड़ी की अपेक्षा बुन्देली और ब्रज से ही अधिक साम्य देखते हैं।

§२१३ पुरुषवाचक तृतीय पुरुष 'वह' का रूप निमाड़ी, मालवी, मारवाड़ी और कहीं-कहीं बुन्देली में भी 'ऊ' होता है, जो सभी कारकों में अपरिवर्तित रहता है। कुछ बुन्देली-भाषी क्षेत्र में ऊ के स्थान में वो का प्रयोग होता है, जो ब्रज में बो अथवा बू हो गया है। इसका बहुवचन रूप निमाड़ी और मालवी में 'वी' तथा बुन्देली और ब्रज में 'वे' होता है। मारवाड़ी का एकवचन-रूप 'बो' तथा बहुवचन रूप 'वे' होता है।

§२१४ निकटवर्ती सर्वनाम 'यह' एकवचन

कारक	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
कर्त्ताकारक	यू, यह	यो	जो	यू, यह	यो
अन्यकारक	इनी	इनी	जा	या, याही	इनी

बहुवचन

कारक	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
कर्त्ताकारक	ये, इन	ये	जे	यी	ई
अन्यकारक	इन	इना	इन	इनी, इनों	इना, या

§२१५ खड़ी बोली के निकटवर्ती सर्वनाम 'यह' का रूप एकवचन कर्ता-कारक में निमाड़ी और ब्रज में तथा मालवी और मारवाड़ी में समान है; बुन्देली का रूप भिन्न है। अन्यकारकों के एकवचन-रूप निमाड़ी, मालवी और मारवाड़ी में समान हैं। बुन्देली और ब्रज के रूप परस्पर भिन्न होने के साथ ही अन्य बोलियों से भी भिन्न हैं।

§२१६ बहुवचन कर्त्ताकारक के रूप निमाड़ी और मालवी के समान हैं, शेष बोलियों के परस्पर भिन्न हैं। अन्यकारकों के बहुवचन रूप निमाड़ी और बुन्देली के समान हैं, मालवी और मारवाड़ी के समान हैं, पर ब्रज के सबसे पृथक हैं। इस तुलना में भी हम निमाड़ी को कभी बुन्देली के निकट और कभी ब्रज के निकट देखते हैं। यहाँ मालवी का अधिक झुकाव मारवाड़ी की ओर दिखाई देता है।

§२१७ दूरवर्ती सर्वनाम 'वह' एकवचन

कारक	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
कर्त्ताकारक	ऊ, वा	ओ, वा	ऊ, वो, वो	वो, वह	बा
अन्यकारक	ऊ, वो	उनी, वनी	ऊ, वा	वाही, वा	उन, वनी

बहुवचन

कारक	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
कर्त्ताकारक	वी	वी	दे	वे	वे
अन्यकारक	उन	वनां	उन	उन्हों	उनाँ, वाँ

§२१८ दूरवर्ती सर्वनाम 'वह' के एकवचन-रूप कर्त्ताकारक के साथ निमाड़ी, बुन्देली और मारवाड़ी के समान हैं, मालवी का रूप ब्रज से समानता रखता है। अन्य कारकों के साथ निमाड़ी का रूप बुन्देली के समान हैं, मालवी का मारवाड़ी के समान है और बुन्देली का वा ब्रज में बा उच्चरित हुआ है। इस तुलना में भी हम निमाड़ी को पश्चिमी हिन्दी की बोली बुन्देली के अधिक निकट पाते हैं।

§२१९ अन्य सर्वनामों के रूप

	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
संबध सूचक कर्त्ता	जो, जे	जो, जे	जो	जो, जौन	जो, जिको
अन्यकारक	जिन	जिन	जा	जा	जिन, जन
संबंधित-कर्ता	सो	सो	सो	सो	सो

	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
अन्यकारक	तिन	तिन	ता	ता, ताही	तिन, तिनी
प्रश्नवाचक-कर्त्ता	कुण, कुन	कुण, कुन	को	को, काउ	कुन, कन
अन्यकारक	कुण, कुन	कुण, कुन	का	का, काही,	कुन, कन
अनिश्चयवाचक कर्त्ता	कोई	कोई	कोऊ	कोऊ, कोई	कोई
अन्यकारक	काई	काई	कछु	कुछ	काई

§२२० उपर्युक्त रूपों में हम निमाड़ी के जो और सो सर्वनाम कर्त्ता के साथ बुन्देली के समान ही पाते हैं, पर अन्य कारकों में वे मालवी और मारवाड़ी के समान हैं। प्रश्नवाचक सर्वनाम के रूप मालवी के समान हैं। अनिश्चयवाचक 'कोई' का रूप निमाड़ी, मालवी, ब्रज और मारवाड़ी में समान है, पर बुन्देली में वह 'कोऊ' हो गया है, जो कुछ ब्रज-भाषी क्षेत्र में भी उच्चरित होता है। 'कुछ' का रूप मालवी और मारवाड़ी से साम्य रखता है। इस प्रकार इन सर्वनामों के रूपों में हम निमाड़ी को कभी ब्रज अथवा बुन्देली के साथ और कभी मारवाड़ी के साथ देखते हैं। राजस्थानी से प्रभावित होने के कारण उसकी यह स्थिति स्वाभाविक है।

क्रिया के रूप

§२२१ क्रिया के रूपों की दृष्टि से राजस्थानी में हम दो ऐसी विशेषताएँ पाते हैं, जो पश्चिमी हिन्दी में नहीं है। इन विशेषताओं के आधार पर भी हम राजस्थानी और पश्चिमी हिन्दी-परिवारों की बोलियों का अन्तर समझ सकते हैं। पहली विशेषता यह है कि राजस्थानी के कर्मवाच्य की क्रिया 'इज' प्रत्यय लगाकर बनाई जाती है। यथा—मारनो-मारिजनो, लिखना-लिखिजनो आदि। इस 'इज' प्रत्यय का प्रयोग पश्चिमी हिन्दी की किसी भी बोली में नहीं होता। डा० ग्रियर्सन ने निमाड़ी और मालवी को राजस्थानी की बोलियाँ कहा है, पर इन दोनों बोलियों में से किसी की भी कर्मवाच्य क्रिया के रूप में यह प्रत्यय नहीं लगाया जाता। इससे इन दोनों बोलियों का राजस्थानी से पृथक होना प्रमाणित होता है।

§२२२ राजस्थानी की दूसरी विशेषता यह है कि इसके प्रथम पुरुष बहुवचन का अन्त 'एँ' के साथ होता है और तृतीय पुरुष बहुवचन का अन्तिम वर्ण सानुनासिक नहीं होता। राजस्थानी की यह विशेषता भी हमें निमाड़ी में नहीं मिलती। उसके वर्तमानकाल प्रथम पुरुष बहुवचन के अन्त में भी एकवचन के समान 'ज' प्रत्यय का प्रयोग होता है और तृतीय पुरुष बहुवचन में भी यही

प्रत्यय प्रयुक्त होता है। यह निमाड़ी की अपनी विशेषता है, जो राजस्थानी अथवा पश्चिमी हिन्दी की भी किसी बोली में नही मिलती। कुछ मालवी-भाषी क्षेत्र में निमाड़ी के प्रभाव से 'ज' के स्थान में 'च' प्रत्यय का प्रयोग मिलता है। भीली में इस प्रत्यय के स्थान पर गुजराती की तरह 'स' का प्रयोग होता है। अब हम क्रिया के विभिन्न कालीन रूपों की तुलना करेंगे।

§२२३ वर्तमान काल (एकवचन)

पुरुष	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
प्रथम	ज (लिखूंज)	हूँ	हों	हौं	हूँ
द्वितीय	ज	हे	हे	है	हे
तृतीय	ज	हे	हे	हैं	हे

बहुवचन

पुरुष	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
प्रथम	ज	हाँ	हे	हैं	हाँ
द्वितीय	ज	हो	हो	हौ	हो
तृतीय	ज	हे	हैं	हैं	हे

§२२४ निमाड़ी में वर्तमानकाल के एकवचन और बहुवचन प्रत्यय, जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है 'ज' है, जब कि अन्य बोलियों में ये पृथक् हैं और उनमें विशेष अन्तर भी नहीं है।

§२२५ भूतकाल

वचन	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
एकवचन	थो	थो	होतो, तो	हो, हुतो	हो
बहुवचन	था	था	हते, ते	हे, हुते	हा

§२२६ भूतकाल के रूपों में निमाड़ी और मालवी में समानता है, पर वे बुन्देली और ब्रज से भी नहीं मिलते। मारवाड़ी के रूप सर्वथा पृथक हैं।

§२२७ भविष्यतकाल (एकवचन) 'पढ़ना' क्रिया

पुरुष	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
प्रथम	पढ़ूंगा-गो	पढ़ूंगा	पढ़िहौं-पढ़ूंगा	पढ़ौ-पढ़ौगो	पढ़हूं-पढ़ूंला
द्वितीय	पढ़गा-गो	पढ़ेगो-गा	पढ़िहे-पढ़ेगे	पढ़िहे-पढ़ेगे	पढ़ही-पढ़ोला
तृतीय	पढ़गा-गो	पढ़ेगो-थो	पढ़िहे-पढ़ेगो	पढ़िहें-पढ़ैगे	पढ़ही-पढ़ोला

§२२८ बहुवचन

पुरुष	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
प्रथम	पढ़ांगा	पढ़ागा	पढ़िहैं	पढ़िहैं	पढ़हां-पढ़ांला
द्वितीय	पढ़ोगा	पढ़ागा	पढ़िहो	पढ़िहो	पढ़हो-पढ़ला
तृतीय	पढ़गा	पढ़गा	पढ़िहैं	पढ़िहैं	पढ़ही-पढ़ला

§२२९. भविष्यत्काल एकवचन का प्रत्यय 'ग' निमाड़ी में अपरिवर्तित है, पर कहीं-कहीं 'गा' के स्थान पर 'गो' प्रत्यय का भी प्रयोग होता है, जैसा कि हम मालवी में भी देखते हैं। बुन्देली और ब्रज में यह प्रत्यय साधारणतः नहीं होता, पर अब कहीं-कहीं होने लगा है, जो हमें खड़ी बोली का प्रभाव जान पड़ता है। यह प्रभाव बुन्देली में अधिक देखा जाता है। इस प्रभाव के कारण निमाड़ी, मालवी, ब्रज और बुन्देली के भविष्यत्कालीन रूप प्रायः समान हो गए हैं। मारवाड़ी में हूँ, ही या ला प्रत्यय का प्रयोग होता है। 'ला' के प्रयोग से मारवाड़ी का रूप अन्य बोलियों से भिन्न हो गया है। जैपुरी में गा या ला के स्थान में लो प्रत्यय लगाया जाता है।

§२३०. बहुवचन के रूपों की भी यही स्थिति है। यहाँ यह स्मरणीय है कि निमाड़ी का भविष्यत्काल तक 'गा' प्रत्यय तीनों पुरुषों और दोनों बचनों में अपरिवर्तित ही बना रहता है, उसके रूप गा, गे, गी नहीं होते।

§२३१. सम्भाव्य वर्तमानकाल (एकवचन) 'लिखना' क्रिया

पुरुष	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
प्रथम	लिखूँ	लिखूँ	लिखूँ	लिखों	लिखूँ
द्वितीय	लिखज	लिखे	लिखें	लिखे	लिखे
तृतीय	लिखज	लिखे	लिखें	लिखे	लिखे

§२३२. बहुवचन

पुरुष	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
प्रथम	लिखाँज	लिखाँ	लिखें	लिखें	
द्वितीय	लिखोज	लिखो	लिखो	लिखौ	
तृतीय	लिखज	लिखे	लिखें	लिखें	

§२३३. निश्चयार्थ वर्तमानकाल (Finite) के मालवी, बुन्देली और मारवाड़ी के एकवचन रूपों में कोई अन्तर नहीं है। ब्रज का रूप भी उच्चारण-भेद से किंचित पृथक् जान पड़ता है, पर निमाड़ी का रूप 'ज' प्रत्यय के कारण सबसे भिन्न हो गया है। यही स्थिति बहुवचन रूपों की भी है।

§२३४. आज्ञार्थक क्रिया

वचन	निमाड़ी	मालवी	बुन्देली	ब्रज	मारवाड़ी
एकवचन	लिख	लिख	लिख	लिख	लिख
बहुवचन	लिखो	लिखो	लिखो	लिखौ	लिखो

§२३५. आज्ञार्थक क्रिया के दोनों वचनों के उपर्युक्त पाँचों बोलियों के रूपों में कोई अन्तर नहीं है।

§२३६. क्रिया के अन्य रूप (प्रथम पुरुष)

बोली	सामान्य वर्तमान	अपूर्ण भूत	आसन्न भूत
निमाड़ी	लिखूँ हूँ	लिखतो थो	लिख्यो
मालवी	लिखूँ हूँ	लिखतो थो	लिख्यो
बुन्देली	लिखत हौं	लिखत हो	लिखो
ब्रज	लिखत हौ	लिखत हो (थो)	लिख्यो
मारवाड़ी	लिखूँ हूँ	लिखतो हो	लिख्यो

§२३७. उपर्युक्त कोष्टक में निमाड़ी के सामान्य वर्तमानकाल के रूप मालवी और मारवाड़ी के समान हैं, बुन्देली और ब्रज में कुछ भिन्न हो जाते हैं। अपूर्णभूतकाल के रूप मारवाड़ी के अतिरिक्त अन्य बोलियों के प्रायः समान हैं। आसन्न भूतकाल के रूप सभी बोलियों के प्रायः समान ही हैं, केवल ब्रज का रूप ही ओकारान्त से औकारान्त हो गया है।

वाक्य-रचना

§२३८. राजस्थानी की वाक्य-रचना पश्चिमी हिन्दी से कुछ भिन्न है। पश्चिमी हिन्दी में जब सकर्मक क्रिया भूतकाल में होती है, तब वह सदैव पुल्लिग होती है; फिर कर्म चाहे किसी भी लिंग में हो, पर इस स्थिति में राजस्थानी क्रिया का लिंग कर्म के अनुसार ही होता है। यथा—

राजस्थानी—तेंने सीता—ने मारी।

पश्चिमी हिन्दी खड़ी बोली—उसने सीता को मारा।

§२३९. उपर्युक्त वाक्य में 'तेने' (उसने) कर्त्ता पुल्लिग है, पर क्रिया 'मारी' का लिंग कर्म सीता के लिंग के अनुसार स्त्रीलिंग है। दूसरे वाक्य में 'मारा' क्रिया पुल्लिग है। निमाड़ी में यह वाक्य इस प्रकार होगा—वोने सीता–ख मारयो।' यहाँ भी 'मार्यो' क्रिया पुल्लिग है। वह कर्म के लिंग के अनुसार राजस्थानी की तरह स्त्रीलिंग में नहीं लिखी या बोली जा सकती।

§२४०. राजस्थानी की एक विशेषता और है। इसकी वाक्य-रचना में कुछ अनावश्यक वर्णों (Pleonastics) का प्रयोग करने की चाल हो गई है, ऐसा पश्चिमी हिन्दी की किसी भी बोली में नहीं होता। यथा—खाँ (कहाँ) गयो—स ? (कहाँ गया ?) कितरे–क आदमी (कितने आदमी) आदि।

§२४१. पश्चिमी हिन्दी की दृष्टि से प्रथम वाक्य में 'स' और दूसरे वाक्यांश में 'क' का प्रयोग अनावश्यक है। यह प्रवृत्ति निमाड़ी की वाक्य-रचना में नहीं देखी जाती। राजस्थानी में यह प्रवृत्ति सम्भवतः गुजराती से आई है।

§२४२. राजस्थानी की इन दोनों उपर्युक्त विशेषताओं को देखते हुए निमाड़ी का राजस्थानी की नहीं, पर पश्चिमी हिन्दी की ही बोली होना प्रमाणित होता है। निमाड़ी की वाक्य-रचना में शब्दों का वह क्रम है, जो पश्चिमी हिन्दी की ब्रज, बुन्देली और खड़ी बोली का है। अपने रूप-तत्व के अध्याय में हम निमाड़ी की वाक्य-रचना पर अधिक विस्तार से विचार करेंगे।

निष्कर्ष

§२४३. निमाड़ी का मालवी, बुन्देली, ब्रज और मारवाड़ी (Standard Rajasthani) के साथ उनके उच्चारण तथा व्यापकता की दृष्टि से संक्षेप में जो तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, उससे हमें निम्नांकित बातें ज्ञात होती है :—

(१) निमाड़ी की उच्चारण सम्बन्धी विशेषताओं का मालवी से अत्यधिक साम्य है।

(२) निमाड़ी और मालवी की ये विशेषताएँ बुन्देली और ब्रज की विशेषताओं के जितनी समीप है, उतनी मारवाड़ी की उच्चारण सम्बन्धी विशेषताओं के समीप नहीं है। बुन्देली और ब्रज की उच्चारण सम्बन्धी विशेषताओं में निमाड़ी से जो पृथक्ता है, वे उनके स्थानीय स्वरूप से सम्बन्धित उनकी अपनी विशेषताएँ है, जिन्होंनें उन्हें पृथक् स्वरूप प्रदान किया है।

(३) ऐ और औ के स्थान में ए और ओ का उच्चारण, दीर्घ स्वरों के ह्रस्वीकरण तथा ह्रस्व स्वरों का दीर्घीकरण, हकार के लोप की प्रवृत्ति,

अल्पप्राण व्यंजनों के स्थान में महाप्राण व्यंजन और कुछ महाप्राण व्यंजनों के स्थान में अल्पप्राण व्यंजनों का प्रयोग एवं 'य' के स्थान में 'ज' और व के स्थान में ब का प्रयोग निमाड़ी, बुन्देली और ब्रज की उच्चारण विषयक समान विशेषताएँ है। ये विशेषताएँ मारवाड़ी के उच्चारण में नहीं है।

(४) आकारान्त तद्भव संज्ञा-शब्दों का ओकारान्त में प्रयोग और एक वचन संज्ञा शब्दों का बहुवचन बनाने के लिए 'न' प्रत्यय का योग, निमाड़ी बुन्देली और ब्रज की समान विशेषता है।

(५) निमाड़ी और बुन्देली में एकवचन संज्ञा शब्दों को 'होर' या 'होन' प्रत्यय लगाकर बहुवचन में बोलने की भी चाल है।

(६) प्रथम पुरुष एकवचन सर्वनाम 'मैं' के लिए निमाड़ी और ब्रज दोनों में हौं या हउँ का प्रयोग किया जाता है, जिसका प्रयोग राजस्थानी की किसी भी बोली में नहीं होता।

(७) द्वितीय पुरुष 'तू' तथा उसका बहुवचन 'तुम' निमाड़ी, ब्रज और बुन्देली में समान रूप से प्रयुक्त होता है, जब कि मारवाड़ी में इनके लिए क्रमशः तूँ-तमे अथवा थूँ-थे का प्रयोग होता है।

(८) निकटवर्ती सर्वनाम 'यह' निमाड़ी और ब्रज में यू और यह होता है; किन्तु मारवाड़ी में 'यो' होता है।

(९) दूरवर्ती सर्वनाम 'वह' निमाड़ी और बुन्देली दोनों में 'ऊ' होता है जब कि मारवाड़ी में 'वा' का प्रयोग होता है।

(१०) गुणबोधक विशेषण के रूप उनके विशेष्य तद्भव संज्ञा शब्दों की तरह ही निमाड़ी, मालवी, ब्रज और बुन्देली में ओकारान्त होते हैं।

(११) राजस्थानी की प्रायः सभी बोलियों में कर्मवाच्य की क्रिया 'इज' प्रत्यय लगा कर बनाई जाती है पर पश्चिमी हिन्दी की किसी भी बोली में इस प्रत्यय का कोई स्थान नहीं है।

(१२) प्रथम पुरुष के बहुवचन का अन्त 'एँ' के साथ होना राजस्थानी बोलियों की एक विशेषता है, जो पश्चिमी हिन्दी की बोलियों से सर्वथा पृथक् है। निमाड़ी में भी ऐसा नहीं होता।

(१३) राजस्थानी की तृतीय पुरुष बहुवचन क्रिया-रूप का अन्तिम वर्ण सदैव पश्चिमी हिन्दी की बोलियों के विपरीत अनुस्वारहीन होता है। निमाड़ी की क्रिया पश्चिमी हिन्दी की बोलियों की तरह ही सानुनासिक होती है।

(१४) निमाड़ी का वाक्य-विन्यास पश्चिमी हिन्दी की बोलियों की तरह ही है, जो राजस्थानी बोलियों से पृथक् है। यथा पश्चिमी हिन्दी की बोलियों

की तरह निमाड़ी में भी भूतकालीन सकर्मक क्रिया दोनों लिंगों में पुल्लिंग ही होती है, पर राजस्थानी में उसका लिंग कर्म के लिंग के अनुसार होता है। दूसरे राजस्थानी की वाक्य-रचना में यत्र-तत्र कुछ अनावश्यक वर्णों (Pleonastic words) का प्रयोग करने की चाल पड़ गई है, पर पश्चिमी हिन्दी की बोलियों में—निमाड़ी में भी ऐसा नहीं किया जाता। वाक्य-रचना सम्बन्धी इन दोनों पृथकताओं के उदाहरण पहिले दिए जा चुके हैं।

§२४४. इन ध्वनि सम्बन्धी तथा रूप सम्बन्धी विशेषताओं को देखते हुए निमाड़ी को राजस्थानी की एक बोली मानने का कोई कारण नहीं हो सकता। यह निश्चित रूप से पश्चिमी हिन्दी की ही एक बोली है। आगे निमाड़ी की उच्चारण विषयक विशेषताओं तथा व्याकरण-रूप पर विस्तृत प्रकाश डाला जा रहा है, जो हमारे इसी निष्कर्ष की पुष्टि करता है।

—:०:—

पाँचवाँ अध्याय

ध्वनि-तत्त्व

§२४५. हिन्दी और उसकी समस्त बोलियों की ध्वनियाँ देवनागरी लिपि-द्वारा व्यक्त हो जाती हैं, किन्तु बोलियों की अपनी कुछ उच्चारण सम्बन्धी विशेषताओं के कारण इनकी ध्वनियों के व्यक्तीकरण में देवनागरी लिपि के साथ कुछ चिह्नों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। तदनुसार निमाड़ी की ध्वनियाँ निम्न प्रकार हैं :--

स्वर ध्वनियाँ

§२४६. ह्रस्व--अ, अॅ, इ, उ, एँ, ओॅ।

दीर्घ--आ, ई, ऊ, ए, ओ।

संयुक्त--अइ, अउ, अऱ, अओ, इअ, इउ आदि।

देवनागरी की ऋ, ॠ, लृ, ॡ ध्वनियों का निमाड़ी में प्रयोग नहीं होता। इनमें से ऋ के स्थान में रि अथवा रु उच्चरित होता है।

व्यञ्जन ध्वनियाँ

§२४७. स्पर्श--क्, ख्, ग्, घ्

" ट्, ठ्, ड्, ढ्

" त्, थ्, द्, ध्

" प्, फ्, ब् भ्

स्पर्श संघर्षी--च्, छ्, ज्, झ्

अनुनासिक--ण्, न न्ह, म् म्ह्

अन्तस्थ--इॅ, (य्), ऱ्, ऱ्ह, ल्ह्, ऴ, ऴ्ह, उॅ (व्)

ऊष्म--स्, ह्, ह्य

§२४८. निमाड़ी में ङ तथा ञ अनुनासिक व्यञ्जन ध्वनियों का प्रयोग नहीं होता।

§२४९. ऊष्म वर्ण श् और ष् के स्थान में स् का ही प्रयोग होता है। यथा--देश-देस, शत्रु-सत्रु, भेष-भेस आदि।

§२५०. क्ष, त्र, ज्ञ हिन्दी के संयुक्त व्यञ्जन हैं। निमाड़ी में इनमें से केवल त्र का प्रयोग होता है। क्ष के स्थान पर छ और ज्ञ के स्थान पर ग्य उच्चरित होता है। यथा--क्षत्रिय-छत्री, आज्ञा-आग्या आदि।

§२५१. 'क' निमाड़ी की विशेष ध्वनि है। यह ध्वनि हिन्दी में नहीं है। इस ध्वनि का प्रयोग गुजराती, मराठी, पंजावी और जयपुरी में अधिक मिलता है।

§२५२ स्थान और प्रयत्न के अनुसार निमाड़ी की व्यञ्जन-ध्वनियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से होगा :—

	द्व्योष्ठ्य	दन्त्य	वत्स्यं	मूर्द्धन्य	तालव्य	कण्ठ्य	स्वर यंत्र मुखी
स्पर्श अल्पप्राण स्पर्श महाप्राण	म् ब् फ्, भ्	त्, द् थ्, ध्		ट्, ड् ठ्, ढ्,		क्, ग् ख्, घ्	
घृष्ट्य अल्प्राण घृष्ट्य महाप्राण					, ज् छ्, झ्		
अनुनासिक अल्पप्राण अनुनासिक महाप्राण	म् म्ह		न् न्ह	ण्			
पार्श्विक अल्पप्राण पार्श्विक महाप्राण			ल् ल्ह	ळ् ळ्ह			
लुंठित अल्पप्राण लुंठित महाप्राण			र् र्ह				
उत्क्षिप्त या ताड़नजात अल्पप्राण उक्षिप्त या ताड़नजात महाप्राण				ड़ ढ़			
संघर्षी अल्पप्राण संघर्षी महाप्राण			स्				ह्
अर्ध स्वर	उँ (व्)				इँ (य्)		

निमाड़ी के स्वरों की उच्चारण-स्थिति

§२५३ प्रोफेसर डेनियल जोन्स ने अनेक प्रयोगों के पश्चात् आठ प्रधान स्वरों (Cardinal Vowels) का स्थान निश्चित किया है, जिन्हें माप-दण्ड मानकर किसी भी भाषा अथवा उसकी बोली के स्वरों के उच्चारण-स्थान निश्चित किए जा सकते हैं।

§२५४. अऽ, आ, ई, ए, एँ, ऊ, ओ तथा ओँ आठ मूल स्वर हैं। इन सभी स्वरों के उच्चारण में मख-द्वार समान रूप में नहीं खुलता। अतः मुख-द्वार के न्यूनाधिक खुलने की दृष्टि से ये प्रधान स्वर चार प्रकारों में विभक्त किए गए हैं—विवृत, अर्ध विवृत, संवृत और अर्ध संवृत।

§२५५. निमाड़ी के स्वरों का उच्चारण-स्थान मूल स्वरों से कुछ भिन्न है। निमाड़ी के स्वरों की स्थिति इस प्रकार है :—

मूल स्वर—·

निमाड़ी स्वर—
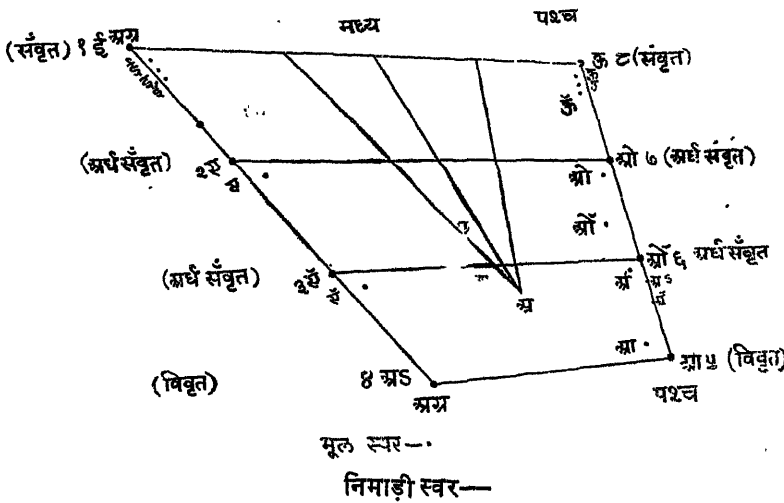
निमाड़ी की ध्वनियों का विशेष विवरण

स्वर-ध्वनियाँ

§२५६. संस्कृत में अ और आ, इन दोनों ध्वनियों का उच्चारण होता है, किन्तु निमाड़ी में इनके पाँच उच्चारण देखे जाते हैं। इन्हें हम स्पष्टीकरण की दृष्टि से सामान्य (अ), ह्रस्व (अँ) विलम्बित (अऽ), ह्रस्व (आँ) और दीर्घ (आ) कह सकते हैं।

अ, अँ, अऽ, आ, आँ

§२५७. निमाड़ी का सामान्य (अ) एक अर्ध विवृत् मध्य स्वर है। इसके उच्चारण में जिव्हा का मध्य भाग किंचित ऊपर उठ जाता है और ओंठ भी कुछ खुल जाते हैं। इसके उच्चारण में ओंठ अंग्रेजी के a के उच्चारण से कम विवृत होते हैं। इसका प्रयोग निमाड़ी के अनेक शब्दों में मिलता है। यथा—अचल, सरल, बन आदि। फ़ारसी और अंग्रेजी से गृहीत शब्दों में अ का उच्चारण किंचित अधिक विवृत होता है। यथा—अकल, अफसर आदि।

§२५८. ह्रस्व (अँ) और विलम्बित (अऽ) के उच्चारण में केवल यही अन्तर है कि ह्रस्व (अँ) के उच्चारण में जीभ का मध्य भाग सामान्य (अ) के उच्चारण की अपेक्षा किंचित अधिक ऊपर उठ जाता है, पर विलम्बित (अऽ) के उच्चारण में जीभ का मध्य भाग ऊपर न उठकर पश्च भाग किंचित ऊपर उठता है। ह्रस्व (अँ) का उच्चारण प्रायः स्वर भक्ति के रूप में ही होता है।' यथा—रतँन, जतँन आदि।

§२५९. विलम्बित (अऽ) का उच्चारण निमाड़ी की अधिकांश आकारान्त विभक्तियों में मिलता है। यथा—नऽ (ने), कऽ अथवा खऽ (को), सऽ (से) मऽ (में) आदि।

§२६०. एकाक्षर में भी दीर्घ विलम्बित अऽ का उच्चारण सुनाई पड़ता है। यथा—कऽ, खऽ, गऽ आदि। कुछ अकारान्त शब्दों के बोलते समय भी हमें अन्तिम वर्ण के साथ कभी-कभी दीर्घ विलम्बित (अऽ) का उच्चारण-सा सुनाई पड़ता है, पर वास्तव में यहाँ ब्रज की तरह ह्रस्व विलम्बित (अँ) का ही उच्चारण होता है। यथा—घरँ, दसँ, वसँ, करमँ आदि।

§२६१. 'आ' निमाड़ी का विवृत दीर्घ पश्च स्वर है। इसका उच्चारण प्रधान स्वर 'आ' के बहुत निकट है। इसके उच्चारण में जीभ का पश्च भाग अंदर की ओर किंचित ऊपर उठ जाता है और ओंठ 'अ' के उच्चारण की अपेक्षा अधिक खल जाते हैं। ब्रज में भी इस ध्वनि का उच्चारण-स्थान यही है। निमाड़ी में इसका उच्चारण आदि, मध्य और अन्त में भी मिलता है। यथा—

आदि में—आज, आम, आखड़।
मध्य में—अकाल, सुनार, मचान।
अन्त में—मठा, किरपा, छापा।

§२६२. ब्रज भाषा में भी 'आ' का उच्चारण आदि, मध्य और अन्त में होता है। ब्रजभाषा के उदाहरण भी उपर्युक्त ही होंगे।

§२६३. ह्रस्व (आँ) का उच्चारण अ और आ के बीच होता है। ब्रज में भी इस ध्वनि का उच्चारण-स्थान यही है। इसके उच्चारण में जीभ के

मध्य और पश्च भाग के बीच का भाग ऊपर उठता है। यथा—गाँड़गा, भाँड़ला, काँमरी आदि।

§२६४. यहाँ स्मरणीय है कि हिन्दी में अंग्रेजी के कुछ तत्सम् शब्दों के लिखने मे जिस 'ऑ' का प्रयोग होता है, वह इस ह्रस्व (ऑ) से भिन्न है। अंग्रेजी के (ऑ) का स्थान (आ) से ऊँचा है, पर इस निमाड़ी के (ऑ) का उच्चारण स्थान (ओँ) से नीचा है।

इ, इँ, ई

§२६५. निमाड़ी का (इ) हिन्दी की तरह ही संवृत ह्रस्व अग्र स्वर है। इसका स्थान (ई) से किंचित नीचे और अंदर की ओर है। इस स्वर का प्रयोग शब्दों के आदि और मध्य में होता है। यथा—

आदि में—इलाज, इद्या (विद्या), इज्जत, इतवार, इसार आदि।
मध्य में—हरिन, सुमिरन, बयरी (बैरी) अगिन (अग्नि) आदि।

§२६६. इँ : उच्चारण की दृष्टि से इँ का स्थान इ से किंचित नीचे है। इस ध्वनि का प्रयोग शब्दान्त में ही देखा जाता है। यथा—खइँ (खाई) रइँ (रही), भइँ (हुई), पइँ (पाई) आदि।

§२६७. ई : संवृत दीर्घ अग्र स्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का अग्र-भाग ऊपर उठकर तालु के बहुत समीप पहुँच जाता है। निमाड़ी के इस स्वर का स्थान मूल स्वर ई से किंचित नीचे है। इस स्वर का प्रयोग निमाड़ी में शब्दों के आदि, मध्य, और अन्त में भी होता है। यथा—

आदि में—ईसर (ईश्वर), ईट (ईंट)
मध्य में—कबीट (कैथा), पईट (रात्रि का तृतीय पहर)।
अन्त में—घणी (बहुत), झूटी (झूठी), उपाणी (बिदा हुई), मयंदी (मेहंदी)।

§२६८. 'उ' संवृत ह्रस्व पश्च स्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का पश्च भाग ऊपर उठ जाता है, किन्तु 'ऊ' के स्थान से कुछ नीचे और मध्य की ओर झुका रहता है। ओंठ कुछ वर्तुल हो जाते हैं। निमाड़ी में इस स्वर का प्रयोग शब्दों के आदि तथा मध्य में होता है। यथा—

आदि में—उड़द, उजली (श्वेत), उसीर (विलम्ब), उधार।
मध्य में—मुगुट (मुकुट), ठापुर (घोड़े की टाप), बहुबर (वधू)।

§२६९. 'उँ' का उच्चारण स्थान 'उ' से कुछ नीचे है। इसके उच्चारण में ओठों की गुलाई 'उ' के उच्चारण की अपेक्षा कम हो जाती है। इस स्वर

का उपयोग केवल शब्दान्त में होता है। यथा—आमिसुँ (हमसे) वउँ (बधू) गउँ (गाय) आदि।

§२७०. ब्रज में भी इस (उँ) का प्रयोग निमाड़ी की तरह ही शब्दान्त में होता है। यथा—जातउँ, आवतउँ आदि।

§२७१ 'ऊ' संवृत दीर्घ पश्च स्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का पश्च भाग 'उ' के उच्चारण की अपेक्षा अधिक ऊपर उठकर कोमल तालु के निकट पहुँच जाता है। निमाड़ी के ऊ का उच्चारण-स्थान प्रधान स्वर 'ऊ' से किंचित नीचे भीतर की ओर है। इसके उच्चारण में 'ओंठ' 'उ' के उच्चारण की अपेक्षा अधिक वर्तुल होते हैं। निमाड़ी में इसका प्रयोग आदि, मध्य और अन्त में भी मिलता है। यथा—

आदि में—ऊंडो (गहरा), ऊपर, ऊसर।
मध्य में—मालूम, मंजूर, आऊँगा।
अन्त में—चाटू (चटवा), दारू (शराब), मेहलू (मेह)।
उच्चारण की दृष्टि से उ, उँ और ऊ ओष्ठ्य स्वर हैं।

ए, ऍ।

§२७२ 'ए' अर्ध संवृत दीर्घ अग्रस्वर है। इसका उच्चारण-स्थान प्रधान स्वर 'ए' से कुछ नीचे है। इसके उच्चारण में ओंठ 'ई' के उच्चारण की अपेक्षा कुछ अधिक खुलते हैं। जीभ का उठा हुआ भाग प्रधान स्वर 'ए' की अपेक्षा थोड़ा पीछे रहता है। निमाड़ी में इसका प्रयोग शब्दों के आरम्भ और मध्य में ही मिलता है। यथा—

आरम्भ में—केवड़ो (केवड़ा), केड़ो, (भैंस का बच्चा), डेडर (मेण्ढक)
मध्य में—देखेल (देखा हुआ) पढेल (पढ़ा हुआ), सयेल (सरल), रखेल (रखी हुई)

कुछ क्रियापदों में ए का प्रयोग शब्दान्त में भी मिलता है। यथा—जीमसे (खाएगा), आसे (आएगा), चायजे (चाहिए) आदि।

निमाड़ी के ये क्रियापद गजराती की प्रवृति से प्रभावित हैं।

§२७३ ऍ अर्ध विवृत ह्रस्व अग्रस्वर है। इसका उच्चारण-स्थान मूल स्वर ए और ऍ के लगभग मध्य में है। निमाड़ी में इसका प्रयोग शब्दों के मध्य में ही होता है। यथा—अहेलड़ी (आनेवाली), धणियेर (पति, स्वामी), गाड़ल (किसी लड़की के लिए कहा जाने वाला तिरस्करणीय शब्द) आदि।

§२७४ 'ऍ' का प्रयोग ब्रजभाषा-काव्य में भी मिलता है। यथा—सुत गोद कें भूपति ले निकसे। ब्रज भाषा में ऍ का उच्चारण आद्य स्वर में नहीं

मिलता, पर निमाड़ी में कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनके आदि में भी यह ध्वनि मिल जाती है। यथा—एँतरो (इतना), केँतरो (कितना) आदि।

ओ, ओ॑।

§२७५ इन दोनों स्वरों को दीर्घ (ओ) और ह्रस्व (ओ॑) कहेंगे। इनमें से दीर्घ (ओ) का उच्चारण-स्थाल मूल स्वर (ओ) से कुछ नीचे है और ह्रस्व (ओ॑) का उच्चारण-स्थान इससे भी नीचे मध्य की ओर झुकता हुआ है। दोनों के उच्चारण म ओंठ वर्तुलाकार हो जाते हैं, पर ह्रस्व (ओ॑) के उच्चारण में दीर्घ (ओ) के उच्चारण की अपेक्षा ओंठों की गलाई कुछ कम रहती है।

§२७६ (ओ) का उपयोग शब्दों के प्रायः आदि, मध्य और अन्त में होता है। यथा—

आदि में—ओखऽ (उसे), ओदो (गीला), ओनऽ (उसने), ओमऽ (उसमें) आदि।

मध्य में—पड़ोसी, बेहोश, इलोक, बरोबर आदि।

अन्त में—गाणौ (गाना), घट्टो (चक्की), चीतलो (चीता) आदि।

§२७७ ह्रस्व (ओ॑) का उपयोग प्रायः शब्दारम्भ में ही होता है। यथा—ओ॑लख (पहिचान), ओ॑ता (उतना), ओ॑च्च (वही), ओ॑खली (ऊखल) आदि।

§२७८ ब्रज के शब्दारम्भ में ओ॑ अथवा ओ का उच्चारण बहुत ही कम है, जब कि निमाड़ी में इन दोनों का स्पष्ट उच्चारण मिल जाता है।

अनुनासिक-स्वर

§२७९ निमाड़ी में प्रायः सभी अनुनासिक स्वरों का प्रयोग होता है। अनुनासिक स्वरों का उच्चारण-स्थान तो वही रहता है, पर इनके उच्चारण में कोमल ताल कुछ नीचे झुक जाता है और इनके उच्चारण के साथ बाहर निकलने वाली वायु का कुछ अंश मुख के साथ ही नासिका से भी बाहर निकलता है, जिससे स्वरों में अनुनासिकता आ जाती है।

§२८० अं, आं

अं : अंजीर, अंधार, अंटो, अंड, अंवामाय आदि।

आं : आंवां (आम), आंगली (अंगुली), आंगठी (अंगूठी), आंग (शरीर) आदि।

§२८१ इं, ईं

इं : इंधन, इंगुर, इंगला, इंतजाम आदि।

ईं : झींगुर, सींदड़ा, (छींद), डींगरो (बेकार घूमने वाला) आदि।

§२८२ उं, ऊं

उं : उंगली (अंगुली), कुंधा (कुंदा), ख ंदी (कुचलना), झंड, चुंदी (चोटी), धुंदी (नशा), हुंडो (हुण्डा) आदि।

ऊं : ऊंढ़ो (औंधा), ऊंघनो (ऊंघना), ढूंडी (खोज), फूंदनो (फुंदा), सूंड आदि।

§२८३ एं, ऐं

एं : एंचनो (खींचना), एंड़ो (टेढ़ा), ढेंडा (ज्वार का सूखा पौधा) ठेंगू (ठिंगना आदमी), तेंदू (एक जंगली फल), थेंब (बूंद), पेंड (मिट्टी का गोला) आदि।

ऐं : ऐंचाखैंची (खींचतान), कैंची, गैंची, भैंसी (भैंस) आदि।

§२८४ ओं, औं

ओं : ओंड़ो (उथला), कोंड (किनार), गोंड, धोंड (हानि), भोंड (फफूंदन), सोंड (सूंड), भोंड़ो (कुरूप) आदि।

औं : औंधो (उलटा), डौंड (मनादी), रौंदनो (पैरों से खूंदना), लौंद (स्त्री), सौंदड़ (सौत) आदि।

संयुक्त स्वर

§२८५ ऐ और औ वास्तव में क्रमशः अए तथा अओ के संयुक्त रूप हैं; अतः ये संयक्त स्वर कहे जाते हैं, किन्तु संयक्त स्वरों के उच्चारण में मख-अवयव एक स्वर के उच्चारण-स्थान से दूसरे स्वर के उच्चारण-स्थान की ओर इस तीव्रता से परिवर्तित हो जाते हैं कि एक ही स्वास में पूर्ण ध्वनि का उच्चारण हो जाता है। इस स्थिति के कारण संयुक्त स्वर एक ही अक्षर हो जाता है, जब कि निकट आने वाले दो स्वर वास्तव में दो अक्षर होते हैं। यह देखते हुए ऐ और औ संयक्त स्वर हैं, पर अए तथा अओ स्वर-संयोग हैं।

सिद्धान्ततः संयक्त स्वर तथा स्वर-संयोग के रूप भिन्न हैं, किन्तु उच्चारण करते समय रूप की भिन्नता के अनसार इनमें अन्तर नहीं होता। इसलिए निम्नांकित उदाहरणों में हमने संयक्त स्वर एवं स्वर-संयोग में कोई अन्तर नहीं किया है।

§२८६ दो स्वरों का संयोग (Dipthong)

अइ : मइल (मैल), बइल (बैल), सइर (सैर), छइल (छैल)।

अई : कईक (कई), कलई (कली), गालई (गाली)।

अऊ : गऊर (गौर), अऊर (और)।

अए : अएंड़ान (जोर से चिल्लाना), खएची (खींचकर), कए गण (किस कारण)।

अओ : अओलाद, अओकात, सओकण, धओलो (भूरा)।

आइ : जाइन (जाकर), आइन (आकर), गाइन (गाकर), काइल (कायल्)।

आई : तकाई (तलाई), फाड़ाड़ी (फुड़वाई), तोड़ाई (तुड़वाई)।

आउ : चाउर (चाँवल), माउली (माता), कउर (कौर-ग्रास)।

आए : खाहे (खायेगा), बठाए (बिठाये)।

इअ : जिअल (जीना), पिअल (पीना), दिअल (देना)।

इआ : मिलिया (मिल गये), पहिया, घइया।

ईआ : दीआ (दीपक)।

इए : किए (करने से), पिए, दिए, सिए।

इओ : सिओ, दिओ (दिया हुआ), लिओ।

उआ : रुआसो (रोने पर उतारु), कुआसो (विवाह में काम करने वाला दामाद या बहिनोई), महुआ।

उइ : दुइन (दोनों), दुइरा (दुहरा), फुइ (बूआ)।

उई : सुई, भुई (भूमि), धुई (धोई हुई)।

एअ : एक, एखंड (बच), एतक (इतना)।

एआ : देखान (दिखने से), लेखाण (लेख), सेकान (सिकाई)।

एई : लेवादेई (लेनदेन), लेई (चिकी)।

ओअ : धोअन, रोअन (रोना), सोअन (सोना)।

ओआ : धोआड़ी (धोई), सोआड़ी (सुलाई)।

ओइ : पोइची (पहुँची), सोइन (सोकर)।

ओई : भोई (एक जाति), लोई (गुँधे हुए आटे का छोटा गोला)।

तीन स्वरों का संयोग

§२८७ निमाड़ी के कुछ शब्दों में तीन स्वरों का भी संयोग मिलता है। यथा—

अ इ आ—तइआरी (तैयारी)।

अ उ अ—मउत (मौत), भउत (बहुत)।

अ उ आ—कउआ (कौआ), मउसा (मौसिया)।

इ आ ई—सिआई (सिलाई)।

उ आ ई—धुआई (धुलाई)।

व्यञ्जन

§२८८ क्, ख्, ग्, घ्, कण्ठ्य स्पर्श वर्ण हैं। इन वर्णों का उच्चारण जिह्वा के पश्च भाग को कोमल तालु से स्पर्श कर किया जाता है। इनमें से

क् अघोष अल्पप्राण स्पर्श और ग् सघोष अल्पप्राण स्पर्श तथा ख् अघोष महाप्राण और घ् सघोष महाप्राण व्यंजन है। निमाड़ी में इनमें से क, ख, ग का प्रयोग शब्दों के आदि, मध्य और अन्त में तथा घ का प्रयोग आदि और मध्य में होता है। यथा--

आदि में--करम, कसूमल, कलस, कंसार, खसल, खाटो, गला, गवलेण घुड़ला, घाण आदि।

मध्य में--कूकड़ो, तखत, अगल, गधंबर आदि।

अन्त में--धमक, आखी, जगमग।

इन क वर्ग के वर्णों के उच्चारण में एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है। निमाड़ी के कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनमें इस वर्ग के महाप्राण वर्णों के स्थान में अल्पप्राण वर्णों का उच्चारण किया जाता है। यथा--भूख-भूक, भिखारी-भिकारी, सुख-सुक आदि।

§२८९ च्, छ्, ज्, झ् तालव्य स्पर्श घृष्ट्म ध्वनियाँ हैं। इनके उच्चारण में जिह्वा का अग्रभाग मसूड़ों के निकट कठोर तालु से कुछ घर्षणा के साथ स्पर्श करता है। इनमें च्, छ् अघोष, और ज्, झ् घोष ध्वनियाँ है। च्, ज् अल्पप्राण और छ्, झ् महाप्राण हैं। निमाड़ी में इन सभी ध्वनियों का उपयोग आदि, मध्य और अन्त में होता है--

आदि--चवरी, छोरी, जणेई, झकोला।

मध्य--काचली, पुछन्दर, मजला, मझबीच।

अन्त--छमच, अंगोछा, पखावज, ओझा।

निमाड़ी के कुछ शब्दों में च वर्ग के चतुर्थ वर्ण के स्थान पर तृतीय वर्ण का उच्चारण होता है। यथा--

समझ-समज, झंझट-झंजट, समझौता-समजोता आदि।

§२९० ट्, ठ्, ड्, ढ्, ळ स्पर्श ध्वनियाँ हैं। इनके उच्चारण में जिह्वा का अग्र भाग किंचित मुड़ कर तालु के कठोर भाग को स्पर्श करता है। इनमें से ट्, ठ् अघोष और ड्, ढ्, ळ घोष एवं ट्, ड् अल्पप्राण और ठ्, ढ महाप्राण ध्वनियाँ हैं। निमाड़ी में इन ध्वनियों में से ट्, ठ् का उपयोग शब्दों के आदि, मध्य और अन्त में होता है। ड् का उपयोग आदि में तो होता है, पर मध्य और अन्त में प्राय: साननासिक वर्णों के पश्चात् ही होता है। ढ का उपयोग अन्त में प्राय: नहीं होता यथा--

आदि--टापुर, ठुमक्या, डाल, ढोकला।

मध्य--खट्यिा, ठठेरी, ठंडक, ढंढ़ार।

अन्त--कपट, कामठी, ढांडा।

क का प्रयोग शब्दों के अन्त में ही होता है। यथा—काक (काल), पिक्को (पीला), नीको (नीला) आदि।

§२९१ त्, थ्, द्, ध् दन्त्य स्पर्श-व्यंजन हैं। इनके उच्चारण में जिह्वा का अग्र भाग ऊपर से मसूढ़ों को अत्यल्प काल के लिये स्पर्श करता है। इनमें से त्, थ् अघोष और द्, ध् घोष एवं त्, द् अल्पप्राण और थ् ध् महाप्राण ध्वनियाँ हैं। निमाड़ी में इन सभी ध्वनियों का उपयोग शब्दों के आदि, मध्य और अन्त में होता है:—

आदि—तमोल, थाल, दाल, धोल्यो।

मध्य—पतेलो, काथड़ी, अदमी, अंधेर।

अन्त—जापत, कंथ, घंदी, औंधो।

त वर्ग की ध्वनियों के उच्चारण के सम्बन्ध में दो बातें दर्शनीय हैं। एक तो निमाड़ी में द और ध शब्दान्त में प्राय: सानुनासिक वर्णों के पश्चात् ही आते हैं, जैसा कि हम फंदी, धंदो आदि शब्दों में देखते हैं।

दूसरे निमाड़ी-भाषी अनेक शब्दों में त वर्ग की महाप्राण ध्वनियों के स्थान में अल्पप्राण ध्वनियों का उपयोग करते देखे जाते हैं। यथा—हाथ-हात, साथ-सात, हाथी-हत्ती, आधसेर-आदसेर, साधू-साद्दू, साधा-सादा (सादो) आदि।

§२९२ प्, फ्, ब्, भ् ओष्ठ्य स्पर्श ध्वनियाँ हैं। इन वर्णों का उच्चारण दोनों ओंठों को परस्पर छुआ कर किया जाता है। निमाड़ी में इन ध्वनियों का उच्चारण करते समय ओठों का संगम सामान्य हिन्दी की अपेक्षा अल्पकाल के लिये होता है। इन वर्णों का उपयोग आदि, मध्य और अन्त में समान रूप में ही होता है—

आदि—पाग, फाटा, बधाओ, भयसी।

मध्य—गपत, गफलत, अबरक, गाभन।

अन्त—गप्पा, गोफ, गरब, गाभा।

§२९३ यहाँ यह स्मरणीय है कि ब्रजभाषा में ड् और ढ् के अतिरिक्त सभी स्पर्श व्यंजनों का प्रयोग शब्दों के आदि और मध्य में मिलता है[१]। अन्त्य स्वर के लोप हो जाने के कारण आधुनिक ब्रज में कुछ शब्दों के अन्त में भी स्पर्श व्यंजन मिल जाते हैं, जब कि निमाड़ी में ल के अतिरिक्त सभी स्पर्श व्यंजनों का प्रयोग शब्दों के आदि, मध्य और अन्त में मिलता है।

'व्' ध्वनि का प्रयोग ब्रज में विपुलता से होता है। यहाँ तक कि 'व्' भी अनेक शब्दों में 'ब' उच्चरित होता है, पर निमाड़ी में इसके विपरीत कुछ

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा: ब्रजभाषा पृ० ४२।

कालवाचक शब्दों में 'ब' का रूपान्तर 'व' में मिलता है यथा—कब-कवँ, अब-अवँ, जब-जवँ, तब-तवँ आदि।

अनुनासिक व्यञ्जन

§२९४ ङ्, ञ, ण्, न्, म् क्रमशः क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग और प वर्ग के पंचम वर्ण हैं। उनका उपयोग प्रा० भा० आ० भा० की तरह आधुनिक हिन्दी में भी उसी वर्ग के किसी अन्य वर्ण को संयक्त रूप में लिखने में होता है। यथा—कङ्गन, मञ्जन, कण्ठ, दन्त, अम्बर आदि, किन्तु निमाड़ी में इन वर्णों का उपयोग इस रूप में कभी नहीं किया जाता। जहाँ इस प्रकार के संयुक्त शब्द लिखने की आवश्यकता होती है, वहाँ संयक्त वर्ण के पूर्व का वर्ण अनुनासिक कर दिया जाता है। यथा—निमाड़ी में उपर्यक्त शब्द कंगन, मंजन, कंठ, और अंबर लिखे जायेंगे।

इनमें से ङ् और ञ का उपयोग निमाड़ी में बिलकुल नहीं होता, शेष वर्णों में से ण् का उपयोग शब्दों के मध्य तथा अन्त में ही होता है। यथा—मध्य-नणद (ननद), भणनो (कहना), कणक (आटा), भुणसार (भुनसारा)।

अन्त में—कयणों, खाणो, गाणो, बहेण, धणी।

'न्' वत्सर्य अनुनासिक ध्वनि है। इसके उच्चारण में जिव्हा का अग्र भाग (नोक) दन्तपंक्ति से आगे बढ़कर ऊपर के मसूढ़ों को छूता है। निमाड़ी में इस ध्वनि का उपयोग शब्दों के आदि, मध्य और अन्त में भी होता है। यथा—

आदि—नणद, नाक, नाप, नाथ, नमक, नोक।
मध्य—सनद, घनगर, पनहारेण, कनपटी, कनाड़ो।
अन्त में—सोकन, धरन, बन, धनवान, फागुन, अड़चन।

जब न् किसी अन्य व्यंजन से मिलकर आता है, तब इसका उच्चारण-स्थान मिलेनवाले वर्ण के उच्चारण-स्थान में परिवर्तित हो जाता है।

'न्ह' वत्स्यं महाप्राण, घोष, अनुनासिक ध्वनि है। उच्चारण की दृष्टि से इसकी स्थिति 'न्' की तरह ही है। हिन्दी में इस ध्वनि का प्रयोग प्रायः शब्दारम्भ में नहीं होता, पर निमाड़ी में आदि, मध्य और अन्त में भी होता है। यथा—

आदि में—न्हाको (डाल देना या फेंक देना), न्हार (सिंह)।
मध्य में—कन्हैया, चिन्हार, पिन्हाल (पहिनावा), उन्हाक (ग्रीष्म)।
अन्त में—कान्हू, कान्हो, चीन्हो (पहिचाना)।

'म्': घोष्ठ्य, घोष, अनुनासिक, अल्पप्राण ध्वनि है। इसके उच्चारण में दोनों ओंठ परस्पर मिल जाते और हवा नासिका-छिद्रों में होती हुई नासिका-

विवर में गूंज उत्पन्न करती है। निमाड़ी में इस ध्वनि का प्रयोग शब्दों के आदि, मध्य और अन्त में भी होता है। यथा—

आदि में—माल (माला), माड़ी (माता), मूसल, मुगुट (मुकुट) आदि।

मध्य में—कम्मर (कमर), कमठी (किमची), जमना (यमुना), चामड़ा (चमड़ा) आदि।

अन्त में—काम, कमी, लगाम, घाम (धूप) आदि।

म्ह : यह द्वयोष्ठ्य, महाप्राण, घोष, अनुनासिक ध्वनि है। निमाड़ी में इस ध्वनि का प्रयोग आदि और मध्य में होता है। यथा—आदि में—म्हारो (हमारा)।

मध्य में—बाम्हन, कुम्हार, तुम्हारो।

पार्श्विक व्यंजन—ल्, ल्ह

§२९५ ल् और ल्ह के उच्चारण में जिव्हा का शीर्ष ऊपर के मसूड़ों को पूर्ण रूपेण स्पर्श करता है। इन ध्वनियों का उच्चारण-स्थान न् के उच्चारण-स्थान से कुछ पीछे और च् के उच्चारण-स्थान से किंचित् आगे है। मोटे रूप में इन ध्वनियों का उच्चारण-स्थान न् और च् के लगभग मध्य में है। इनके उच्चारण के समय जिव्हा के दोनों ओर स्थान रह जाता है, जिससे वायु पार्श्व से वहिर्गत होती है। इनमें से ल् पार्श्विक अल्पप्राण सघोष, वर्त्स्य ध्वनि तथा ल्ह महाप्राण ध्वनि है।

निमाड़ी में ल् का प्रयोग शब्दों के आदि, मध्य और अन्त में भी होता है। यथा—

आदि में—लार (साथ), लट्या (बालों की लटें), लुगड़ा (सोलह हाथ की साड़ी) लीम (नीम), लोटो (लोटा)।

मध्य में—बालुड़ो (बच्चा), बयलड़ी (सुन्दर स्त्री), दुल्लव (दूल्हा)।

अन्त में—लिखेल (लिखा हुआ), पयलो, (पहिला), पयल (पहिले), तपेला (पानी गर्म करने का बर्तन)।

आधुनिक ब्रज में भी ल का प्रयोग शब्दों के आदि, मध्य और अन्त में मिलता है। यथा—लौंडा, कलप, कल।

§२९६ निमाड़ी की ल् की उच्चारण सम्बन्धी एक विशेषता उल्लेखनीय है। जब निमाड़ी के अकारान्त शब्दों के अन्त में ल् आता है, तब ल् के स्थान में प्रायः मूर्द्धन्य ध्वनि (ळ्) का प्रयोग होता है। यथा—काल-काळ, जवाल-जवाळ (ज्वाला), बाल-बाळ, माल-माळ, राल-राळ आदि।

निमाड़ी के कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनके मध्य में ल् का प्रयोग होने पर भी उसके स्थान में (ळ्) का उच्चारण किया जाता है। यथा—निमोलई-निमोळई (नीम के फल), निरमलई-निमळई (निर्मल), तुलई-तुळई, (तुली हुई), पिलई-पिळई (पीली), तलाब-तव्ठाव (तालाब) आदि।

ल्ह का प्रयोग निमाड़ी में बहुत कम मिलता है। किसी-किसी शब्द के मध्य अथवा अन्त में इस ध्वनि का प्रयोग होता है। यथा—

मध्य में—कोल्हवा (सियार) कुल्हाड़ (कुल्हाड़ी)

अन्त में—कोल्हू, चूल्हो।

'ल्ह' का प्रयोग ब्रज में शब्दों के आदि में भी मिल जाता है। यथा—ल्हेड़ो (भीड़), ल्हैदो (प्रसन्न हुआ) आदि।

लुण्ठित व्यंजन—र्, र्ह

§२९७ इन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा का अग्र छोर ऊपर के मसूड़ों को अनेक बार शीघ्रता से स्पर्श करता है। इनमें से र् लुण्ठित, वर्त्स्य घोष, अल्पप्राण तथा र्ह महाप्राण ध्वनि है। निमाड़ी में र् ध्वनि का प्रयोग शब्दों के आदि, मध्य और अन्त में मिलता है। यथा—

आदि में—रस्ता (रास्ता), रांध्यो (पकाया), रिसि (ऋषि), राकस (राक्षस)।

मध्य में—दरियाव (समुद्र), चिरपरो (तीखा), करम (भाग्य)।

अन्त में—घेर, गोरो, जीमणार (भोजन करने वालों की पंक्ति), तारो (तारा)।

ब्रज में भी र का प्रयोग आदि, मध्य और अन्त में होता है यथा—रिस, करम, पुर।

'र्ह' का प्रयोग ब्रज में शब्दों के आदि तथा मध्य में मिलता है। यथा—र्हैनो (रहना), कर्हानो (कराहना)। पश्चिमी निमाड़ी में इस ध्वनि का प्रयोग केवल शब्द-मध्य में मिलता है। यथा—कर्हाड़ (किनारा), गर्हाड़ (ढेर)।

पूर्वी निमाड़ी में र्ह के स्थान पर र् का प्रयोग किया जाता है। पश्चिमी निमाड़ी के उपर्युक्त शब्द पूर्वी निमाड़ी में क्रमशः कराड़ और गराड़ उच्चरित होंगे।

संघर्षी व्यंजन श्, ष्, स्

§२९८ इनमें श् तालव्य; ष् मूर्द्धन्य तथा स दन्त्य वर्ण हैं। निमाड़ी में श्

और ष् का अभाव है। आधुनिक ब्रज में भी इसका प्रयोग नहीं मिलता। इन दोनों वर्णों के स्थान में निमाड़ी तथा ब्रज, दोनों में 'स्' का ही प्रयोग मिलता है। प्राचीन ब्रज में जहाँ कहीं 'ष्' का प्रयोग हुआ है, वहाँ इसका उच्चारण 'ख्' होता है। निमाड़ी के प्राचीन अथवा आधुनिक किसी भी रूप में इस ध्वनि का प्रयोग किसी भी रूप में नहीं मिलता; अतएव हम केवल स् वर्ण पर ही उच्चारण की दृष्टि से विचार करेंगे। इस ध्वनि के उच्चारण में जिह्वा के अग्र भाग के पार्श्व द्वय ऊपर के दाँतों का स्पर्श करते हैं। यह वर्त्स्य अघोष, उष्म संघर्षी ध्वनि है। निमाड़ी में इस ध्वनि का उपयोग शब्दों के आदि, अन्त और मध्य में होता है। यथा—

आदि में—साल (चाँवल), सेरी (गली), सुण्यो (सुना), सेयर (सखियाँ), सोयड़ी (सुवरनी) आदि।

मध्य में—सुसरो (श्वसुर), कसपत (किस प्रकार), घिसाड़ी (घसीटी), कंसार (घड़ा), कसूमल (रेशमी), खासड़ा (जूता) आदि।

अन्त में—जसो (जैसा), जोसी (ज्योतिषी), जीमसे (भोजन करेगा), कोलसा (कोयला), बारस (द्वादशी) आदि।

कण्ठ संघर्षी-ह्

§२९९ यह स्वर यंत्रमुखी अघोष संघर्षी ध्वनि है। इस ध्वनि का उच्चारण निर्गत वायु को भीतर से बाहर फेंक कर मुख-द्वार के खुले रहते हुए स्वरयंत्र के मुख पर संघर्ष उत्पन्न कर किया जाता है। निमाड़ी के उच्चारण की दृष्टि से यह ध्वनि विशेषरूप से विचारणीय है। जब यह ध्वनि शब्दारम्भ में आती है, तब इसमें कोई विकार नहीं होता, किन्तु मध्य और अन्त में आने पर अधिकांश शब्दों में इसका रूप ही बदल जाता है। इस रूप-परिवर्तन को देखते हुए ऐसा जान पड़ता है कि यह ध्वनि निमाड़ी से सर्वथा वहिष्कृत तो न हो सकी, पर इसे इस लोक-भाषा में कम से कम स्थान देने का प्रयत्न किया गया है। हमारे इस कथन का समर्थन निम्नांकित बातों से होता है—

(अ) निमाड़ी में हकारान्त संख्यावाचक शब्द मालवी, बुन्देली और भीली की तरह आकारान्त उच्चारित होते हैं। यथा—

ग्यारह-ग्यारा, बारह-बारा, तेरह-तेरा।

चौदह-चौदा, सोलह-सोला, सत्रह-सत्रा।

(आ) अधिकांश स्थान-वाचक क्रिया विशेषण शब्दों के अन्त में प्रयुक्त ह का लोप हो गया है और उसके बदले अनुनासिक (अं) पूर्व स्वर में मिल गया है। यथा—

वहाँ-वाँ, यहाँ-याँ, कहाँ-काँ आदि।

मारवाड़ी-प्रभावित निमाड़ी क्षेत्र में 'वहाँ' शब्द से ह् का लोप तो नहीं होता, पर उसका पूर्व वर्ण व हलन्त हो जाता है। यथा—वहाँ-व्हाँ। 'यहाँ' शब्द के स्थान में 'ह्याँ' उच्चरित होता है। इसमें ह हलन्त होकर अपने पूर्व वर्ण के पहिले आ गया है। इसी प्रकार 'जहाँ' शब्द में भी बड़ा विचित्र परिवर्तन हो गया है। इसमें 'ह्' ज से मिलकर उसे झ हो गया है—जहाँ-झाँ।

(इ) गुजराती-प्रभावित क्षेत्र में उत्तम पुरुष बहुवचन सर्वनाम शब्द से ह पूर्ण रूपेण बहिष्कृत हो गया है। यथा—हमारा 7 हमारो 7 म्हारो 7 मारो।

(ई) इसी प्रकार मध्यमपुरुष बहुवचन सर्वनाम शब्दों से भी ह का लोप हो गया है। यथा—तुम्हारा 7 तुम्हारो 7 तमारो।

(उ) निमाड़ी की कुछ क्रियाओं में ह के स्थान में य उच्चरित होता है। यथा—कहा 7 कह्यो 7 कयो, रहा 7 रह्यो 7 रयो, सहा 7 सह्यो 7 सयो आदि।

निमाड़ी में 'ह्' का प्रयोग शब्दारम्भ तथा शब्द-मध्य में होता है। यथा—

आदि में—हलदी (हल्दी), हलकारो, हवालदार।

मध्य में—कह्यनो, रह्यनो, गहनो (गहना, जेवर)।

पश्चिमी निमाड़ी में मध्य 'ह' का लोप हो गया या उसका 'य' में परिवर्तन हो गया है। तदनुसार पूर्वी निमाड़ में प्रचलित-कह्यनो, रह्यनो और गहनो शब्द क्रमशः कयमो, रयनो और गयनो उच्चरित होते हैं। आधुनिक ब्रजभाषा में इस संघर्षी ध्वनि का प्रयोग शब्दों के आदि, मध्य और अन्त में भी मिलता है। यथा—हरदी, सहन, साह।

निमाड़ी में शब्दान्त ह् 'व' में परिवर्तित मिलता है। यथा—साह-साव, ब्याह-याव आदि।

ब्रज की तरह निमाड़ी में भी ह् के लोप की प्रवृत्ति बहुत मिलती है। यह प्रवृत्ति दोनों बोलियों में शब्द-मध्य और शब्दान्त में विशेष रूप से देखी जाती है। यथा टहल-टयल (ब्रज में टैल)।

निमाड़ी और ब्रज दोनों में कुछ उदाहरण ऐसे मिलते हैं, जिनमें ह् स्थानान्तरित हो गया है। यथा—बहुत-भौत, अगहन-अग्घन (ब्रज में अघैन), इकट्ठो-इखट्टो आदि।

अर्ध स्वर-य्, व्

§३०० 'य्' का उच्चारण जिव्हा के अग्रभाग को कठोर तालू की ओर ले जाने से होता है, किन्तु जिव्हा त वर्गीय वर्णों के उच्चारण के समान तालु को

पूरी तरह न स्पर्श ही करती हैं और न 'इ' आदि तालव्य स्वरों के उच्चारण के समान तालु से दूर ही रहती है। अतः इसे स्वर और व्यञ्जन के बीच की ध्वनि कहा जाता है। य् का उच्चारण-स्थान 'इ' के उच्चारण-स्थान के समीप है। निमाड़ी में इस ध्वनि का प्रयोग शब्दों के आदि, मध्य और अन्त में भी होता है। यथा—

आदि में—यू (यह), यी (ये), याणी (सबेरा), याव (विवाह)

मध्य में—मयको (मायका), मयना (महिना), कायदो (दा), फायदो (दा)।

अन्त में—कयो (कहा), गयो (गया), रह्‌यो (रहा)।

ब्रज म य् का प्रयोग आदि तथा अन्त में होता है। यथा—याद, फरिया।

§३०१ 'व्' का उच्चारण करने में दोनों ओंठ परस्पर दोनों सिरों पर स्पर्श करते हैं और दोनों स्पर्श-स्थानों के मध्य के खुले भाग से वायु के साथ यह वर्ण बाहर निकलता है। इस वर्ण का उच्चारण की दृष्टि से उ से अधिक साम्य है, किन्तु इसके उच्चारण में जिव्हा का पश्च भाग उ के उच्चारण की अपेक्षा कोमल तालु की ओर अधिक ऊपर उठता है। यह वर्ण निमाड़ी में आदि मध्य और अन्त में भी प्रयुक्त होता है। यथा—

आदि में—वण (टेढ़ा), वासेण (बास करने वाली), वूज (वही), वाण्यो (बनिया), वाव (बीज) आदि।

मध्य में—बावड़ी (पागल), पवासिया (पूर्णिमा), पावती (रसीद), दीवलो (दीपक), दवड़ी (दौड़कर), जुवाब (जवाब) आदि।

अन्त में—पोवा (तीर्थयात्री), दुल्लव (दूल्हा), दीवी (दी), जिव (जीव), आदि।

ब्रज में व् का प्रयोग केवल शब्द-मध्य में ही देखा जाता है। यथा—ज्वान, गवाही।

ब्रज में जब व का प्रयोग शब्द के आरम्भ में होता है, तब वह 'ब्' उच्चरित होता है। यथा—वन-बन, वकील-बकील, वारिस-बारिस आदि।

यह स्थिति निमाड़ी के शब्दारम्भ—व की नहीं है, जैसा कि पहिले दिए गए उदाहरणों में देखा जा सकता है।

उत्क्षिप्त ध्वनियाँ—ड़, ढ़

§३०२ जब जिव्हा का अग्रभाग उलटकर निम्न भाग से कठोर तालु को झटके के साथ कुछ दूर तक छूता है, तब इन ध्वनियों का उच्चारण होता है। इनमें से ड़् घोष, मूर्द्धन्य, उत्क्षिप्त, अल्पप्राण ध्वनि और ढ़्, महाप्राण ध्वनि है। ये दोनों ध्वनियाँ ब्रज की तरह निमाड़ी, में भी शब्दों के मध्य तथा अंत में ही आती हैं। यथा—

मध्य में—कड़क, सड़क, बेड़ला, पड़मो, लुड़को आदि।

अन्त में—घोड़ी, बवड़ी, मंूदड़ो, दाढ़ी, मड़मड़ आदि।

निमाड़ी के कुछ शब्दों में 'ढ़' के स्थान में 'ड़' का उच्चारण होता है। यथा—दाढ़-दाड़, डेढ़-देड़, मेढ़-मेड़ आदि।

संयुक्त व्यञ्जन

§३०३ संयुक्त व्यंजनों के सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि निमाड़ी की सामान्य क्रियाएँ ओकारान्त हैं, जिनमें अन्य व्यंजन य के साथ मिलाकर उच्चरित होते हैं। यथा—रह्यो, लिख्यो, सक्यो, उघड्यो, मिल्यो, मिट्यो आदि, किन्तु इन संयुक्त व्यंजनों (र्‍य, ख्य, क्य, ड्य, त्य, ट्य) का उपयोग शब्दों के आदि और मध्य में क्वचित ही होता है।

कुछ संयुक्त व्यंजन अकेले अथवा अन्य व्यंजनों के संयोग में भी आते हैं। निमाड़ी में यह संयोग क, च, ट, त और प में ही अधिक मिलता है। यथा—

क—चक्कू, पक्को।

च—उच्चो, निच्चऽ।

ट—टट्टो, खट्टो।

त—उत्तर, अत्तर, मित्तर, पत्तर।

प—उप्पर, खप्पर, छप्पर, गप्पी।

कभी-कभी ट और ठ एक साथ मिलकर भी उच्चरित होते हैं। यथा—उट्ठो, बट्ठो, लट्ठो, मट्ठो आदि।

क्ष, त्र और ज्ञ भी संयुक्त व्यंजन हैं, पर जैसा कि पहिले कहा जा चुका है (अनु० २२५) इनमें से क्ष और ज्ञ का उपयोग निमाड़ी में नहीं होता। निमाड़ी में क्ष के स्थान पर छ (छत्री, लछमन, लछमी) और ज्ञ के स्थान में ग्य (ग्यान) का उपयोग होता है। त्र का उपयोग अवश्य ही निमाड़ी में मिलता है, पर इस संयुक्त व्यंजन का उपयोग प्रायः शब्दान्त में ही किया जाता है। यथा—कुत्रा, कुत्री, छत्री, पत्री आदि।

उच्चारण के अनुसार अर्थ-परिवर्तन

§३०४ निमाड़ी तथा अन्य भारतीय बोलियों में भी व्यंजनों का दीर्घोच्चारण देखा जाता है, जिसे द्वित्व उच्चारण कहा जाता है, पर वास्तव में एक ध्वनि का दो बार उच्चारण नहीं किया जाता। यथा—'पत्ता' के 'त्त' का उच्चारण करने के लिए 'त' का उच्चारण दो बार करने की आवश्यकता नहीं होती। जिव्हा की नोक का 'त' के उच्चारण की अपेक्षा अधिक समय तक दाँतों से

स्पर्श होने पर 'त्त' का उच्चारण हो जाता है। इस विधि के उच्चारण को व्यञ्जनों का दीर्घीकरण कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। इस दीर्घीकरण से उनके अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। यथा—

खीली (छोटा खीला)—खिल्ली (मजाक)
गला (कण्ठ)—गल्ला (अनाज का ढेर)
ढरा (ढुला)—ढर्रा (चाल)
गदा (एक शस्त्र)—गद्दा (बिछाने की एक वस्तु)
पीला (एक रंग)—पिल्ला (कुत्ते का बच्चा)

§३०५ कभी-कभी ह्रस्व स्वरों के दीर्घीकरण से भी अर्थ में परिवर्तन देखा जाता है। यथा—

तक (पर्यन्त)—(दीर्घीकरण) ताक (आला)
सक (सन्देह)—(दीर्घीकरण) साक (सब्जी)
दिन (दिवस)—(दीर्घीकरण) दीन (गरीब)
तिन (उन)—(दीर्घीकरण) तीन (संख्या विशेष)

§३०६ स्वरों के विलम्बित उच्चारण से भी अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। यथा—

आग (अग्नि)—आगऽ (आगे)
स (व्यंजन विशेष)—सऽ (से)
ऊख (गन्ना)—ऊखऽ (उसे)
पहर (प्रहर)—पहरऽ (पहिनता है)
मार (चोट)—मारऽ (मारता है)
निमाड़ी में विलम्बित उच्चारण शब्दान्त में ही होता है।

अक्षर (Syllable)

§३०७ निमाड़ी के अक्षरों की निम्नांकित विशेषताएँ हैं—

(१) एक स्वर भी एक अक्षर का द्योतक होता है। ई-ये, ऊ-वह, ओ-वह आ (आओ) आदि।

(२) दो स्वरों के संयोग से एक अक्षर—अओ (एक स्त्रीवाचक सम्बोधन)

(३) एक स्वर और एक व्यंजन का संयोग—इन-ये, उन-वे, ईखऽ-इसे, ऊखऽ-उसे।

(४) एक व्यंजन और एक स्वर का संयोग—कए (कहा), कई, भई (हुई)।

(५) एक स्वर और एक दीर्घ व्यंजन (Double consonant) का संयोग-एत्तो (इतना), ओत्तो (उतना), अत्तो (इतना), अल्लो (बहुत छोटा), उत्तो (उतना)

(६) एक स्वर और सम्बन्धित व्यंजन (Conjunct consonant) का संयोग-अलसी (एक तिलहन), एकली (अकेली), उखली (ऊखल)।

(७) दो स्वर और एक व्यंजन का संयोग—अइसो (ऐसा), अउर (और)।

(८) दो मात्रिक व्यंजनों का संयोग—राजा, बाजा, हिसाब:

(९) एक व्यंजन, एक स्वर तथा एक व्यंजन का संयोग—कईक (कई), सईस, रईस।

(१०) दो व्यंजन और एक स्वर का संयोग—कखई (कंघी), कमउ (कमाने वाला), सगई (सगाई)।

(११) एक व्यंजन और दो स्वरों का संयोग—कउआ (कौआ), हउआ (हौवा)।

(१२) एक स्वर, एक व्यंजन और एक स्वर का संयोग—उघई (दीमक), अधई (आधा)।

(१३) दो व्यंजनों का संयोग—हल, बस (अधिकार, देने या करने को मना करना), कस (बल), धस (घिसो), गम (धीरज), हम।

(१४) एक मात्रिक और अमात्रिक व्यंजन का संयोग—राम, काम, कान, धान।

(१५) तीन व्यंजनों का संयोग—नमक, कमल, गरज (आवश्यकता), सरज (एक कपड़ा), धमक (बल), झनक (झनकार)।

(१६) एक मात्रिक व्यंजन—जा (जाओ), गा (गाओ), खा (खाओ), धो (धोओ)।

ये सब आज्ञार्थक क्रियाएँ हैं।

§३०८ निमाड़ी के अक्षरों के अध्ययन की दृष्टि से एक कहानी का निम्नांकित अंश उपयुक्त होगा—

एक राजा थो। ओका सात ेरा था। न एक छोरी थी। छोरान-न कयो कि हम बईण की सगई करन जावाँज। बाप न कयो की अच्छो जाओ। सातई छोरा गया। सातई-न अपना-अपना पसन्द का बर ढूँढ़ी-न सगई करी आया। एतरा-म ब्रह्माजी-न छटी-सी पूछ्यो की राजा की छोरी का सात बरन-म-सी कौणता बर का सात लगिण लगसे, छठी कयो की एक मुलहारा का सात लगिण लगसी।[1]

१. परिशिष्ट 'ब' कथा सं० ५

उपर्युक्त अंश में की, थी, न जैसे शब्दों को छोड़कर ५० अक्षर (Syllable) हैं। रूप की दृष्टि से इनमें एक स्वर और एक व्यंजन वाले संयोग वाले अक्षर ४ हैं। दो व्यंजनों के संयोग वाले २५, तीन व्यंजन के संयोग वाले अक्षर २० और चार व्यंजनों के संयोग वाला एक अक्षर है।

§३०९ इस परीक्षण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निमाड़ी में दो व्यंजनों के संयोग वाले अक्षर अधिक हैं। इसके पश्चात् तीन व्यंजनों के संयोग से बने अक्षरों का क्रम है। शेष प्रकार के अक्षरों की संख्या बहुत कम है। इनके सिवाय थी, दी आदि क्रियाओं, 'की' सम्बन्ध-सूचक अव्यय तथा 'न' समुच्चय बोधक भी एक-एक अक्षर के रूप में आये हैं। इन एकवर्गीय और केवल एक स्वर अथवा एक व्यंजन से बने अक्षरों की संख्या इस लोक भाषा में बहुत कम है।

निमाड़ी में हमें चार स्वर-व्यंजनों अथवा केवल चार व्यंजनों से बने अक्षर भी मिलते हैं। यथा—अबरक, मखमल, जमघट, छमछम आदि।

शब्द (Word)

§३१० निमाड़ी के सभी शब्द एक स्वर अथवा एक व्यंजन से आरम्भ होते हैं। किसी भी स्वर से निमाड़ी का शब्द आरम्भ हो जाता है। यथा—

अ से—अधवई (आधा), अबरक, अवसान (अहसान)।

आ से—आज, आदमी, आमटो (खट्टा), आखो (पूरा)।

इ से—इजा (बुरी तरह मारना-पीटना), इमरत (अमृत) इतवार (रविवार)।

ई से—ईंट (ईंट), ईंस (खटिया की आड़ी-खड़ी लकड़ियाँ)।

उ से—उधार, उपकार, उंदर (चूहा), उखली (ऊखल), उगरन (उद्धार)।

ऊ से—ऊगनो (उदय होना), ऊद (दीमक), ऊन।

ए से—एतरो (इतना), एकट्ठो, एकजाई (सब मिलाकर), एड़ी (पागल स्त्री)।

ओ से—ओतरो (उतना), ओझो (एक जाति), ओळख (पहिचान)।

§३११ निमाड़ी शब्दों की मुख्य विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

(१) शब्दारम्भ में दो स्वरों से अधिक एक साथ नहीं आते। यथा—अइसो, (ऐसा), अउलाद (औलाद)।

(२) शब्दारम्भ में एक या एक से अधिक व्यंजन भी एक साथ आते हैं। यथा—कमरो (कम्बल), गमछो (छा), बरछी।

(३) शब्द के मध्य में दो या दो से अधिक स्वर एक साथ कभी नहीं आते यथा—पइसा, चउत आदि।

(४) शब्द के अंत में दो स्वर एक साथ आ सकते हैं। यथा—कउआ (कौआ)।

(५) शब्दारम्भ में संयुक्त व्यंजन कभी नहीं आता। न्हार (शेर) इसका अपवाद है।

(६) शब्द के मध्य में भी संयुक्त व्यंजन कदाचित् ही आते हैं। सामान्य हिन्दी के शब्दों में जहाँ मध्य में संयुक्त व्यंजन आते हैं, वहाँ निमाड़ी में वे पूर्ण वर्ण हो जाते हैं। यथा—साम्हने-सामने, तुम्हारी-तमारी, ईश्वर-ईसवर।

(७) आनुनासिक मध्य वर्ण अपरिवर्तित रहते हैं। यथा—बंदर, मांजरी, भगंदर, सुंदर आदि।

(८) किसी-किसी शब्द में हमें मध्य वर्ण का दीर्घीकरण भी मिलता है। यथा—ऊपर-उप्पर, उज्ज्वल-उजरो-उज्जर।

(९) यह दीर्घीकरण शब्दान्त में भी मिलता है। यथा—कुत्तो (कुत्ता), एत्तो (इतना), पल्लो (कपड़े का टुकड़ा)।

(१०) तत्सम शब्दों का रकारवाची शब्दान्त वर्ण अर्ध तत्सम बना लिया जाता है। यथा धर्म-धरम, कर्म-करम आदि।

(११) निमाड़ी के एक शब्द में एक अथवा एक से अधिक अक्षर भी होते हैं। यथा—एकाक्षरी शब्द—राम, राजा, रानी, बाजा, बाज, कान आदि।

द्वैक्षरी शब्द—अजगर, कामकाज, वसदेवा, कनखूजरा, घरघुसेल आदि।

त्रैक्षरी शब्द—अटलकबाजी, गांव-पंचायत, घर-दारवाको आदि।

(१२) निमाड़ी के कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनके अंतिम वर्ण विलम्बित स्वर में बोले जाते हैं। यथा—तुमको-तुमख-तुमखऽ, उनमें-उनम-उनमऽ आदि।

(१३) कुछ शब्द उच्चारण करते समय छोटे बना लिए जाते हैं। यथा—दिनडूबे-डिडूबे, होनें दो-होणदऽ, हण्दऽ आदि।

शब्द-स्वराघात

§३१२ निमाड़ी के उच्चारण में स्वराघात अथवा बलाघात का विशेष महत्व है, किन्तु हमें निमाड़ी-उच्चारण में 'अ' पर ही बल देने की विशेष प्रवृत्ति मिलती है। यथा—कर-करऽ, बठ-बठऽ, उनस-उनसऽ आदि।

इस प्रकार के उच्चारण में अन्तिम वर्ण के मात्रिक होने पर भी वे द्विमात्रिक हो जाते हैं। गीत में तो एक मात्रिक अन्तिम वर्ण का द्विमात्रिक और त्रैमात्रिक तक हो जाना सुर के कारण साधारण बात है, पर निमाड़ी भाषियों के बोलने का ढंग ऐसा है कि कभी-कभी बोलचाल में भी उनके उच्चारित शब्दों

के अन्तिम वर्ण त्रैमात्रिक तक हो जाते हैं, किन्तु ऐसा किंचित क्रोध, आश्चर्य अथवा घृणा का भाव व्यक्त करने की स्थिति में ही देखा जाता है। यथा—जानदऽ (जाने दो), असोऽ (ऐसा), ऊँऽ, हुण्दऽऽ (होने दो) आदि।

§३१३ आकारान्त, ईकारान्त, ऊकारान्त और ओकारान्त शब्दों के उच्चारण में भी विशेषावस्था में स्वराघात देखा जाता है, यथा—आऽ, जाऽ, गईऽ, जाऊँऽ, जाओऽ आदि। इस प्रकार का उच्चारण प्रायः क्रोध या ऊबकर बोलने की स्थिति में ही होता है।

निमाड़ी के द्वयाक्षरी शब्दों में प्रायः प्रथमाक्षर पर ही स्वराघात देखा जाता है। यथा—सन्दूक, कुत्तो, पैसा, बिंडा, औंधो आदि।

§३१४ त्र्याक्षरी शब्दों में प्रायः मध्याक्षर पर ही स्वराघात मिलता है। यथा—कढ़वो, कबूली आदि।

यह स्मरणीय है कि दो या दो से अधिक अक्षर वाले शब्दों में किसी एक पर अधिक बल देकर बोला जाता है, पर अन्य अक्षरों पर भी समान बल नहीं पड़ता। यथा—अदरक शब्द में द और क पर बल पड़ता है। द की अपेक्षा क पर कम बल पड़ता है। शेष अक्षरों अ और र में से भी जितना बल अ पर पड़ता है, उतना र पर नहीं पड़ता।

वाक्य-स्वराघात

§३१५ निमाड़ी में शब्दों की तरह वाक्यों में भी स्वराघात देखा जाता है। स्वराघात के कारण एक वाक्य कुछ खण्डों में विभाजित हो उच्चारित होता है। यह स्वराघात प्रत्येक वाक्य-खण्ड के प्रथम शब्द के प्रथमाक्षर पर देखा जाता है। परिणाम-स्वरूप उस वाक्य-खण्ड के अन्य शब्दों पर होनेवाला स्वराघात लुप्त हो जाता है और एक वाक्य-खण्ड एक ही साँस में उच्चारित हो जाता है। उदाहरणार्थ एक निमाड़ी कहानी का निम्नांकित अंश देखिए।[1]

एक डोकरी थी। वा; बरत नेम धरम करती थी। वा, नेम धरम करत-करत मरी गई। भगवान घर गई। व्हाँ धरमराज-न ओखऽ पूछ्यो, कि तू-न, बरत कर्‌या, पण धरमराज को बरत तो कर्‌यो नी। येकासी, तू पछी जाइन, म्हारो बरत कर। डोकरी वापस आई। ओंकार महराज की पुन्नो-सी बरत लई लियो। दरोज बार्ता कया कर। वारा मयना पूरा हुया। एक दिन भगवान

---

१. कहानी के प्रत्येक वाक्य-खंड के पश्चात् अल्प विराम (,) और वाक्यान्त में पूर्ण विराम लगाया गया है। स्वराघात वाले वर्णों के नीचे आड़ी रेखा (—) लगाई गई है।

बाम्हन को भेस, लइन, गोह्या पर उभ्या था। एतरा म, डोकरी पोहची। भगवान न पूछ्यो, माय तू काँ जाई रईज। कयो, बेटा हउँ धरमराज का जोड़ा ख, न्यूतो देण जाई रईज। भगवान न कयो, हम ख न्यूतो दे दऽ। हम बिंदरावन सी आई जाऊंगा। डोकरी, हव कईन, वापस आई गई।

§३१६ वाक्य-स्वराघात में जब वाक्य के किसी एक शब्द पर बल दिया जाता है, तब उसके पश्चात् के शब्द पर का बल स्वाभाविक ही कम हो जाता है, पर जब एक वाक्य में बलाघात वाले एक से अधिक शब्द हों, तो विशेष महत्वपूर्ण शब्द अन्य बलाघात वाले शब्द की अपेक्षा अधिक बल देकर बोला जाता है। यथा—यू काम ऊच नी करऽ तो कोन करेगो? (यह काम वही नहीं करता, तब कौन करेगा?) इस वाक्य में यू और ऊच बलाघात वाले शब्द हैं, पर 'ऊच' अधिक महत्व-पूर्ण है। अतः बोलते समय 'यू' की अपेक्षा 'ऊच' में भी 'च' की अपेक्षा 'ऊ' पर अधिक बल पड़ेगा।

स्वराघात से अर्थ-परिवर्तन

§३१७ अन्य भारतीय भाषाओं और बोलियों की तरह निमाड़ी में भी स्वराघात के कारण अर्थ में परिवर्तन होता है। यथा—

हउँ यू काम कर लूंगा—मैं यह काम कर लूंगा।

हउँ यू काम कर लूंगा—क्या मैं यह काम कर लूंगा?

आज राम नऽ चार घंटा पढ़्यो—आज राम ने चार घंटे पढ़ा।

राम नऽ आज चार घंटा पढ़्यो—राम ने आज चार घंटे पढ़ा।

आज राम नऽ चार घंटा पढ्यो?—क्या आज राम ने चार घंटे पढ़ा?

राम नऽ आज चार घंटा पढ्यो?—क्या राम ने आज चार घंटे पढ़ा?

§३१८ स्वर को ऊँचा, नीचा अथवा विलम्बित करके बोलने से भी अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। यथा—

ऊँचा—हअँ (ऐसा?)

नीचा—हँअ (हाँ, ऐसा ही)

सम—हँअ (हाँ,)

विलम्बित—हँ-अँऽ (सम्भव है हो सके)

प्रतिध्वनित शब्द

§३१९ अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं की तरह निमाड़ी में भी प्रति-ध्वनित (Echo words) अथवा अनुकरण मूलक शब्दों के उच्चारण सुने जाते हैं। ऐसा करने में मुख्य शब्द के एक अंश की ही पुनरावृत्ति होती है। इस

अंश का कोई स्वतन्त्र अर्थ नहीं होता। ये प्रायः निरथक शब्द ही होते हैं, किन्तु बोलचाल में उन्हें मुख्य (सार्थक) शब्द के आगे जोड़ दिया जाता है। हिन्दी की कुछ भाषाओं में प्रतिध्वनित शब्द—निर्माण में 'ओ' का उपयोग होता है, पर निमाड़ी में 'गी' शब्द का उपयोग देखा जाता है। यथा—पानी-गीनी, रोटी-गीटी, कपड़ा-गिपड़ा, किताब-गिताब, भोजन-गीजन, खटिया-गिटिया आदि।

अनूदित सामासिक शब्द

§३२० अनूदित सामासिक शब्द (Translation compound words) भी अन्य भारतीय बोलियों की तरह निमाड़ी में भी देखे जाते हैं। इनमें एक शब्द अपनी भाषा का, और उसके साथ जोड़कर बोला जानेवाला दूसरा शब्द दूसरी भाषा का रहता है। कागज-पत्तर, हाट-बाजार, कुटुम्ब-कबीला आदि ऐसे ही शब्द हैं। इनमें कागज बाजार और कबीला फारसी के शब्द हैं और पत्तर (पत्र) तथा हाट (हट्ठ) प्रा० और कुटुम्ब सं० शब्दों से उद्भूत हैं।

§३२१ अनूदित सामासिक शब्दों के अतिरिक्त निमाड़ी तथा हिन्दी की अन्य बोलियों में भीकुछ ऐसे शब्दों का भी प्रयोग मिलता है जिनके दोनों संयोजित शब्द एक ही भाषा के होते हैं। घर-दार(दरवाजा), लुगाई-लड़का, हाट-बाट, उलटो-सीधो, आदि इसी प्रकार के शब्द हैं।

संयोजित सामासिक शब्द

§३२२ निमाड़ी में हमें कुछ ऐसे शब्द भी मिलते हैं, जिनमें दो शब्दों के संयोग से प्रथम शब्द के अन्तिम अच् का लोप हो गया है और दोनों शब्दों से एक शब्द बन गया है। यथा—दिन डूबे – डिडूबे, मार डालो – माड्डालो आदि।

शब्दाधिकरण (Assimilation)

§३२३ जब हम कोई एक वाक्य पढ़ते या बोलते हैं, तब हम देखते हैं कि उस वाक्य के एक शब्द का झुकाव (Enclitic) उसके आगे वाले शब्द की ओर होता है। इस झुकाव के कारण उसकी शक्ति आगे वाले शब्द से कम हो जाती है। इतना ही नहीं, पर कभी-कभी हम बोलते समय पहिले शब्द की अन्तिम ध्वनि उसके आगे वाले शब्द की प्रथम ध्वनि में मिलती-सी पाते हैं। यथा—'दिन डूबे' (दिन के डूबते समय) शब्द में हम 'दिन' के 'न' का डूबे के 'डू' की ओर इतना अधिक झुकाव देखते हैं कि बोलते समय 'न' हलन्त होकर 'डू' 'में मिल-सा जाता है। यही स्थिति हम भुनसारे' के न, 'उठ-बैठो' के ठ तथा 'जान-दो' के न की भी देखते हैं। द्रुत गति से बोलने में यह स्थिति विशेष रूप से देखी जाती है।

§३२४ पश्चिमी हिन्दी की बोलियों में सम्भवत: निमाड़ी ही सबसे अधिक गति में बोली जाती है। यही कारण है कि यह उच्चारण सम्बन्धी विशेषता इस लोक-भाषा में अधिक स्पष्ट रूप में देखी जाती है। कभी-कभी बोलने वाला एक शब्द के अन्तिम वर्ण का उच्चारण किए बिना ही आगे का शब्द बोल जाता है। इससे उसके प्रथम शब्द की अन्तिम ध्वनि और दूसरे की प्रथम ध्वनि एक ही हो जाती है। तालव्य और दन्त्य ध्वनियों के उच्चारण में निमाड़ी की उच्चारण सम्बन्धी यह विशेषता सरलता से देखी जा सकती है। यही कारण है कि एक निमाड़ी भाषी को क वर्ग ट वर्ग और प वर्ग के वर्णों के उच्चारग में जितना समय लगता, उससे लगभग तीन-चौथाई समय में वे च वर्ग और त वर्ग के वर्णों का उच्चारण कर लेते हैं।

नागरिकों की अपेक्षा ग्रामीणों की और पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की बोलने की गति तीव्र होती है। यही कारण है कि हमें नागरिकों की अपेक्षा ग्रामीणों की बोली में और पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की बोली में शब्दाधिकरण अधिक मिलता है।

§३२५ निमाड़ी में निम्न स्थितियों मे शब्दाधिकरण देखा जाता है—

(१) जब दो व्यंजनों के बीच एक घोष स्वर होता है, तब बोलते समय अधिकरण की प्रवृत्ति के कारण उस स्वर का लोप हो जाता है। यथा—बाप-भाई, बाब्भाई, भागी-गयो, भाग्गयो, काहेके-लाने, काहेक्लाने, चली-दियो, चल्दियो, अलग-कर दS, अलक्कद्दS आदि। इस अन्तिम उदाहरण में ग का अ स्वर लुप्त होने के साथ ही ग् का क हो गया और कर दS शब्द का र भी द् में परिणत हो गया है।

(२) यदि सानुनासिक व्यंजन महाप्राण हो, तो वह अधिकरण के प्रभाव से अल्पप्राण में परिवर्तित हो जाता है। यथा—बांध-देओ-बांदेओ।

(३) प्रथम शब्द का अन्तिम ब, प में परिणत हो जाता है। यथा—सब-को > सप्को, जब-सी > जप्सी (जब से), कब-को > कप्को आदि।

(४) कुछ शब्दों के शब्दान्त त या थ का ज और स से समाधिकरण देखा जाता है। ऐसी स्थिति में महाप्राण थ अल्पप्राण हो जाता है। यथा—खात-जात-हती > खाज्जात फी, बहुत-साती > बहुस्साप।

(५) कुछ शब्दों में अन्तिम स का ज में समाधिकरण देखा जाता है। यथा—दस-जने > दज्जने, दस-जतन > दज्जतन।

(६) कुछ शब्दों में प्रथम शब्द के अन्तिम र का ड में समाधिकरण मिलता है। यथा—मार-डालो > माड्डालो।

(७) इसी प्रकार र का समाधिकरण प में भी मिलता है। यथा—गिर-पड़ो 7 गिप्पड़ो।

(८) निमाड़ी की कुछ व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ अन्त में य लगाकर उच्चरित होती हैं। यथा—रामा-राम्या, श्यामा-श्याम्या, अड़कू-अड़क्या, गबरू-गबर्‌या, बाला-बाल्या आदि।

वाक्य-विन्यास

§३२६ निमाड़ी के वाक्यों में हमें निम्नांकित विशेषताएँ मिलती हैं—

(१) निमाड़ी के वाक्य बहुत छोटे होते हैं। इसमें मिश्र अथवा संयुक्त वाक्यों का प्रायः अभाव है। छोटे वाक्य के होने के कारण ही वे द्रुत गति से बोले भी जा सकते हैं। एक वाक्य में चार-पाँच शब्दों से अधिक नहीं होते। यथा—

एक डोकरी थी। ओकी एक बऊ थी। कातिक को महिनो आयो। ओज बारस को दिन थो। सासू-नऽ बऊ-खऽ कयो। हउँ खेत-मऽ जाउँज। तू गहूँ मूँग को खिचड़ो रांधीन लावजे। बऊ का सुणणा-म फरक पड़ी गयो। वा गंगल्या-मंगल्या रांधीन लई गई।[१]

इनमें कोई भी वाक्य ऐसा नहीं है, जिसमें पाँच से अधिक शब्द हों।

(२) कुछ वाक्य ऐसे भी होते हैं, जो न अथवा अउर संयोजक अव्ययों से जुड़े अथवा पण या पर विभाजक अव्ययों से विभाजित होते हैं। ऐसे वाक्यों में पाँच से अधिक शब्द होते हैं, पर बोलते समय एक-एक वाक्य-खण्ड स्वतन्त्र वाक्यों (Simple sentences) की तरह ही बोले जाते हैं। उदाहरणार्थ दो वाक्य देखियें—

(१) भोजई-खऽ गरभ रह्‌यो न नणद का हात-मऽ फपोलो हुओ।[२]

(२) तू-नऽ सब बरत कर्‌या, पण धरमराज को बरत नी कर्‌यो।[३]

(३) कुछ वाक्य ऐसे होते हैं, जिनमें बिना संयोजक अथवा विभाजक का प्रयोग किए दो उपवाक्य मिले होते हैं। ये दोनों उयवाक्य भी दो स्वतन्त्र वाक्यों की तरह ही बोले जाते हैं। यथा—

भगवान न पूछ्‌यो, माय तू कां जाई रईज ?

(४) लम्बे वाक्य वहीं तोड़ दिए जाते हैं, जहाँ साँस समाप्त होती है, पर यह तोड़ शब्दान्त में ही होती है, जैसा कि उपर्युक्त वाक्यों में देखा जाता है।

---

१. परिशिष्ट 'व' कथा संख्या ४

२. परिशिष्ट 'ब' कथा संख्या २

३. परिशिष्ट 'ब' कथा संख्या १

(५) विशेषण और क्रिया विशेषण सदैव सम्बन्धित संज्ञा और क्रिया के साथ ही बोले जाते हैं। यथा—**काली** गाय **अभी** आई।

(६) यदि वाक्य में समुच्चय बोधक अव्यय हो, तो बोलते समय उसके पूर्व अवश्य ठहरा जाता है। यथा—**ऊ गयो, न मी आयो।**

(७) यदि कर्त्ता और क्रिया एक दूसरे के पश्चात् आए हों, तो वे बिना बीच में रुके एक ही साँस में बोले जाते हैं। यथा—राम-न मार्‌यो।

(८) इसी प्रकार दो शब्दों के जोड़नेवाले समुच्चय बोधक अव्यय भी उन दोनों शब्दों के साथ ही बोले जाते हैं। यथा—राम अरु सीता आवऽ छ।

(९) वक्ता वाक्य के जिस शब्द की ओर विशेष रूप से श्रोता का ध्यान आकर्षित करना चाहता है, उस पर बोलते समय अधिक बलाघात होता है। यथा—अ, तुम-ख जानोच पड़े (तुम्हें जाना ही पड़ेगा)

ब, तुम-ख जानो पड़े। (तुम्हें जाना पड़ेगा)

स, तुम-ख जानो पड़े ? (क्या तुम्हें जाना पड़ेगा ?)

सुर अथवा गीतात्मक स्वराघात (Intonation)

§३२७ पहिले कहा जा चुका है कि बोलते समय एक वाक्य के सभी शब्दों पर समान बल नहीं पड़ता। (अनु० ३१४) इस असमान बलाघात के कारण बोलते समय पूरे वाक्य में विविध ध्वनियों की एक तरंग-सी जान पड़ती है। इसे ही अंग्रेजी में 'इंटोनेशन' (Intonation) कहा जाता है। जिस प्रकार एक गीत गाते समय उसमें स्वरों का अवरोह-आरोह दिखाई देता है, उसी प्रकार बोलने में भी सम तथा अवरोह-आरोह होता है, पर यह संगीत की तरह बहुत स्पष्ट नहीं होता। प्राचीन भा० आ० भा० में इस गीतात्मक स्वराघात को विशेष स्थान प्राप्त था। हम आज भी प्राचीन ग्रंथों में शब्दों के ऊपर-नीचे जो भिन्न-भिन्न चिन्ह देखते हैं, वे इसी गीतात्मक स्वराघात के द्योतक हैं। आ० भा० आ० भाषाओं में से हम बङ्गला और गुजराती में जितना गीतात्मक स्वराघात बुन्देली में सुनते हैं, उतना हिन्दी में नहीं है। पश्चिमी हिन्दी की बोलियों में से हमें सबसे अधिक गीतात्मक स्वराघात बुन्देली में सुनाई देता है। उसके पश्चात् ब्रज और निमाड़ी का क्रम है। यह बोलने के ढंग (Tone) से सम्बन्धित है। एक ही बात जितने ढंग से कही जायगी, उतने ही उससे अर्थ निकलेंगे। उदाहरणार्थ निम्नांकित वाक्य देखिए—

(१) सामान्य—हम[१] आई[१] जावाँ[१]। (हम आ जाते हैं।)

(२) प्रश्नवाचक—हम[१] आई[२] जावाँ[३] ? (हम आ जावें ?)

३ २ १
(३) स्पष्टीकरण—हम ग्राई जावाँ ? (क्या हम ग्रा जावें ?)

२ ३ २
(४) ग्राश्चर्य के स्वर में—हम ग्राई जावाँ ! (हम ग्रा जावें !)

२ १ १
(५) विवशता के स्वर में—हम ग्राई जावाँ (हम ग्रा जाते हैं)

प्रथम वाक्य के सभी शब्द सम स्वर बोले गये हैं। द्वितीय वाक्य में 'हम' सम स्वर में, 'ग्राई' मध्यम स्वर में ग्रौर जावाँ उच्च स्वर में बोला जायगा। तृतीय वाक्य में 'हम' उच्च स्वर में, 'ग्राई' मध्यम स्वर में तथा 'जावाँ' सम स्वर में बोला जायगा। चतुर्थ वाक्य में 'हम' मध्यम स्वर में, 'ग्राई' उच्च स्वर में, तथा 'जावाँ' मध्यम स्वर में बोला जायगा। पंचम वाक्य में 'हम' मध्यम स्वर में तथा 'ग्राई' ग्रौर 'जावाँ' सम स्वर में बोला जायगा।

§३२८ वाक्य से पृथथ् स्वतन्त्र शब्दों में भी ग्रवरोह-ग्रारोह होता है, किन्तु यह केवल उन्हीं शब्दों में होता है, जो किसी को दूर से पुकारने, डाँटने स्वीकृति देने ग्रथवा मना करने के लिए काम में लाए जाते हैं। यथा—

२ ३ २ २ १ २
माई, हौ (हाँ), चुप नी (नहीं)।

प्रथम शब्द में 'मा' मध्यम स्वर में तथा 'ई' उच्च स्वर में बोला जायगा। द्वितीय शब्द 'हौ' मध्यम स्वर में बोला जायगा। यदि 'हौ' के स्थान पर 'हाँ' कहा गया, तो बोलने का स्वर मध्यम ही होगा, पर इसका 'ग्राँ' ग्रपेक्षाकृत ग्रधिक उच्च स्वर में तथा किंचित विलम्बित होगा। 'चुप' शब्द में 'चु' का उच्चारण 'प' की ग्रपेक्षा कुछ उच्च स्वर में होगा। 'नी' पूर्ण वर्ण ग्रपेक्षाकृत उच्च स्वर में होगा, पर इस मनाई में यदि विवशता है, तो इसका उच्चारण ग्रपेक्षाकृत निम्न स्वर में होगा। 'नी' के उच्चारण की दो स्थितियों से यह स्पष्ट है कि शब्द की स्वर-लहरी के ग्रवरोह-ग्रारोह पर मनस्थिति का भी प्रभाव पड़ता है।

ध्वनि बाहुल्य (Frequency of sounds)

§३२९ सभी भाषाग्रों ग्रौर बोलियों में स्वरों ग्रौर व्यंजनों का प्रयोग होता है, किन्तु सभी भाषाग्रों में सभी स्वरों ग्रौर व्यंजनों का प्रयोग समान मात्रा में नहीं होता। इन स्वर-व्यंजनों के प्रयोग की मात्रा के ग्रनुसार भी विविध भाषाग्रों में परस्पर भिन्नता होती है। इस प्रयोग की दृष्टि से हमने निमाड़ी की कुछ लोक कथाग्रों का परीक्षण किया है। उस परीक्षण का निष्कर्ष स्पष्ट करने के लिए हम यहाँ तीन विभिन्न कथाग्रों के कुछ ग्रंश उद्धृत करना ग्राव-श्यक समझते हैं।

(१) एक राजा का सात लड़का हुता। ओका राज-सी लगेल दूसरो राज हुतो। व्हाँ का राजा की सात छोरीना हुती। उना राजा-क राज-कुमारीना का लेण अच्छा वर चायजे था। दुईनाक एक दूसरा क कुटुम को मालूम नी हुतो।

एक दिन साती राजकुमारना-न आपणलेण योग्य घरवालीना ढूंडण जाणू नक्खी कर्‌यो। पर राजा-न कयो कि म-ख राज का काम-म मदद देणकालेण तुमारा म-सी एक को यहाँ रहणू जरूरी छे। वो-न सबसो छोटा राजकुमार-क आपण पास राखी लियो।

(२) एक गाँव-म एक रजपूत रमती थो। ओको एक छोरो थो। एक दिन जंगल-म उना रजपूत-क न्हार भारी नाख्यो। यह देखीन ओका छोरा-का खूब गुस्सो आयो, न आपण तीर कामठी लईन उना न्हार-क मारन चल्‌यो। रस्ता-म व-क एक बड़ो भारी तलाव देखायो। ऊ वकी धड़-म जईन बठी गयो। व-न बठीन कामठी पर एक खूब तीखी धारवालो तीर लईन चढ़ायो अरु न्हार आवण को रस्तो देखतो रयो।

(३) एक सौदागर का चार बेटा हुता। जब वो खई-पीन बड़ा याव करन सरीखा हुई गया, तब सौदागर उनका याव करनकालेण वऊ-न ढूंडण-क निकल्यो। वो चल्तो-चल्तो एक सयर-म आयो। वाँ एक तलाब का धड़-म झाड़ना-का गयरा छाव-म बठी गयो। जराक बार जात उना सयर की मुकतीज छोरीना तलाब पर पाणी भरन अई। उनका-म एक छोरी जो सयर-म सबसी जादा धनवान हुतो ओकी हुती। सब छोरी-ना का माथा पर अच्छा-अच्छा घड़ा हुता। ऊ धनवान की छोरी का माथा पर फुटेल घड़ो हुतो।

§३३० इनमें से प्रथम वाक्य समूह में १६८ स्वर तथा १६२ व्यंजन, द्वितीय वाक्य समूह में १४८ स्वर तथा ११८ व्यंजन और तृतीय वाक्य-समूह में १०१ स्वर तथा १६७ व्यंजन निम्न प्रकार हैं—

वर्ण	(१)	(२)	(३)
अ	६३	७४	९३
आ	५१	२३	४३
इ	२	१	२
ई	१३	१५	१६
उ	११	४	१०
ऊ	६	५	२
ए	१०	४	७
ऐ	—	—	—

ओ	१२	२२	१६
औ	—	—	—
क	२७	१२	२१
ख	३	६	२
ग	२	४	४
घ	१	—	—
च	२	२	३
छ	४	२	६
ज	११	४	४
झ	—	—	१
ट	१	—	२
ठ	—	४	१
ड	२	१	४
ढ	१	१	१
ण	६	२	३
त	८	९	१०
थ	१	२	२
द	७	३	३
ध	—	२	३
न	१२	१४	१६
प	४	१	४
फ	—	—	१
ब	२	५	९
भ	—	१	१
म	११	६	७
य	६	६	१०
र	२०	१६	१९
ल	८	४	७
व	२	४	१०
स	१०	४	९
ह	६	३	४

§३३१ इस तालिका से हमें निमाड़ी में स्वर तथा व्यंजनों का प्रयोग निम्नांकित क्रम से जान पड़ता है :—

स्वर—अ, आ, ई, ओ, उ, ऊ, ए, इ, औ, ऐ।

व्यंजन—क, र, न, म, ज, त, य, स, ल, व, ण, छ, ख, ब, ग, द, च, ह, थ, प, ठ, ड।

इनके अतिरिक्त घ, भ, ट, ढ़, ध, फ और म व्यंजनों का प्रयोग अत्यल्प प्रमाण में प्रायः समान मात्रा में ही होता है।

—:०:—

छठा अध्याय

प्रा० और म० भा० आ० भा० के स्वर-व्यञ्जनों का निमाड़ी में विकास

स्वरों का विकास

(क) विवृत अक्षर में

§३३२ (अ) प्रा० भा० आ० भा० का अ निमाड़ी के अनेक शब्दों में सुरक्षित है। यथा—कर्पूर > कपूर, कच्छप > कछुवा, कर्कटिका > ककड़ी, खर्पर > खपरा, गभीर > गहरो या गयरो, गर्दभ > गधो, चणक > चना आदि।

निमाड़ी के कुछ शब्दों में प्रा० भा० आ० भा० के अ का इ में विकास मिलता है। यथा—अमृत > इमरत, हरिण > हिरन, क्षण > छिन आदि।

(आ) प्रा० भा० आ० भा० का आ निमाड़ी के अनेक शब्दों में अक्षुण्ण है। यथा—ग्राम > गाँव > गाव, व्याख्यान > बखान, भ्रातृ > भाई, नारी > नार श्मशान > मसान, सौभाग्य > सुहाग आदि।

§३३३ (इ) प्रा० भा० आ० भा० का इ निमाड़ी के कुछ शब्दों में सुरक्षित है। यथा—तिल > तिल्ली, अस्थिर > थिर, गर्भिणी > गाभिन आदि।

§३३४ (ई) प्रा० भा० आ० भा० का ई स्वर भी निमाड़ी के अनेक शब्दों में सुरक्षित है। यथा—आभीर > अहीर, जीव > जी, जीरक > जीरा(रो), क्षीर > खीर, हीन > हीनो आदि।

§३३५ (उ) प्रा० भा० आ० भा० का उ निमाड़ी के अनेक शब्दों में अक्षुण्ण है। यथा—अंकुश > अंकुस, क्षुर > खुर, चतुष्क > चउक, फाल्गुण > फागुन आदि।

§३३६ (ऊ) प्रा० भा० आ० भा० का ऊ भी निमाड़ी के निम्न शब्दों में सुरक्षित मिलता है – धूलि > धूल या धूर, कर्पूर > कपूर, सूत्र > सूत, मूत्र > मूत आदि।

§३३७ (ए) प्रा० भा० आ० भा० का ए निमाड़ी के अनेक शब्दों में अविकृत रूप से सुरक्षित है। यथा—मेघ > मेह, स्नेह > नेह, देश > देस, क्षेत्र > खेत आदि।

§३३८ (ऐ) प्रा० भा० आ० भा० का ऐ निमाड़ी में ए में विकसित मिलता है यथा—गैरिक > गेरु- तैल > तेल आदि।

§३३९ (ओ) प्रा० भा० आ० भा० का ओ निमाड़ी के निम्नांकित शब्दों में सुरक्षित मिलता है—रोदनम् > रोना, घोटक > घोड़ो, स्तोक > थोड़ो, कोश > कोसा आदि ।

§३४० (औ) प्रा० भा० आ० भा० का 'औ' निमाड़ी में ओ में विकसित मिलता है। यथा—गौर > गोर, चौर > चोर, मौक्तिक > मोती, यौवन > जोबन आदि ।

(ख) संवृत अक्षर

§३४१ (अ) प्रा० भा० आ० भा० का संवृत अक्षर में आने वाला अ म० भा० आ० भा० में अपने मूल रूप में ही बना रहा, पर आ० भा० आ० भा० की अनेक बोलियों में वह आ में विकसित हो गया है। निमाड़ी में भी इस स्वर की यही स्थिति है। यथा—कर्म > कम्म > काम, अद्य > अज्ज > आज, कर्ण > कण्ण > कान, आम्र > अम्ब > आम, हस्त > हाथ, चक्र > चक्क > चाक आदि ।

§३४२ (आ) प्रा० भा० आ० भा० का संयुक्त व्यंजन के पूर्व आने वाला आ म० भा० आ० भा० में अ हो गया था, किन्तु निमाड़ी में यह अपने मूल रूप में ही विद्यमान है। यथा—आत्मा > अप्पा > आप, कार्य > कज्ज > काज, राज्ञी > राणी > रानी, मार्गण > मंगण > मांगनो, वार्त्ता > वत्ता > बात, सार्थ > सत्थ > साथ आदि ।

§३४३ (इ) प्रा० भा० आ० भा० के संवृत अक्षर का इ म० भा० आ० भा० में अपने मूल रूप में ही सुरक्षित रहा, पर निमाड़ी में इस स्वर का विकास ई में मिलता है। यथा—निद्रा > निद्द > नींद, पृष्ठ > पिट्ठ > पीठ, त्रिंशत > तिस्स > तीस आदि ।

§३४४ (ई) प्रा० भा० आ० भा० का ई म० भा० आ० भा० में इ में परिवर्तित हो गया था, किन्तु वह आ० भा० आ० भा० में पुनः ई हो गया। निमाड़ी में यह अपने इसी रूप में सुरक्षित है। यथा—तीक्ष्ण > तिक्ख > तीखो, शीर्ष > सिस्स > सीस आदि ।

§३४५ (उ) प्रा० भा० आ० भा० का संवृताक्षरी उ म० भा० आ० भा० में अपने मूल रूप में सुरक्षित रहा, पर निमाड़ी में इस स्वर का विकास ऊ में मिलता है। यथा—दुग्ध > दुद्ध, > दूद, पुत्र > पूत, शुष्क > सुक्क > सूखो आदि ।

§३४६ (ऊ) प्रा० भा० आ० भा० का ऊ म० भा० आ० भा० में उ हो गया था, किन्तु निमाड़ी में यह अपने मूल रूप में ही सुरक्षित मिलता है। यथा—ऊणा > उण्ण > ऊनो, चूर्ण > चुण्ण > चूनो, शून्य > सुन्न > सूनो आदि ।

§३४७ (ए)प्रा० भा० आ० भा० का ए म० भा० आ० भा० में भी ए ही रहा। यह निमाड़ी में भी अपने मूल रूप में ही सुरक्षित मिलता है। यथा—क्षेत्र 7 खेत 7 खेत, वेत्र 7 वेत 7 बेंत आदि।

§३४८(ऐ) प्रा० भा० आ० भा० के ऐ का विकास हमें म० भा० आ० भा० में ए अथवा इ स्वर में मिलता है। निमाड़ी में यह संयुक्त स्वर ए अथवा ई में विकसित मिलता है। यथा—ऐक्य 7 एक्क 7 एको या एक्को, शैक्ष्य 7 सेक्ख 7 सीख, धैर्य 7 धेहय 7 धीरे या धीरऽ आदि।

§३४९ (ओ) प्रा० भा० आ० भा० का संयुक्त संवृताक्षरी स्वर ओ म० भा० आ० भा० में भी सुरक्षित मिलता है, निमाड़ी में भी यह अपने मूल रूप में ही वर्तमान है। यथा—ओष्ठ 7 ओट्स 7 होट, गोत्र 7 गोत्त 7 गोत, कोष्ठिका 7 कोट्ठिअ 7 कोठी आदि।

§३५० (औ) प्रा० भा० आ० भा० के औ का विकास म० भा० आ० भा० की तरह निमाड़ी में भी ओ में ही मिलता है। यथा—मौक्तिक 7 मोत्तिअ 7 मोती।

(ग) आदि स्वरों का विकास

§३५१ (अ) प्रा० भा० आ० भा० का आदि व्यंजन युक्त अ निमाड़ी में सुरक्षित है। यथा—कलश 7 कलस, कटुक 7 कटुक, घट 7 घड़ो, चर्म 7 चमड़ो, छत्र 7 छत्तो आदि।

प्रा० भा० आ० भा० के संयुक्त व्यंजन का पूर्ववर्ती आदि स्वर अ का विकास निमाड़ी के आ में हुआ है। यथा—भक्त 7 भत्त 7 भात, कर्म 7 कम्म 7 काम, पर्ण 7 पण्ण 7 पान आदि।

§३५२ (आ) प्रा० भा० आ० भा० का आ यदि उसके पश्चात् एक व्यंजन हो और पुनः आ स्वर न हो, तो निमाड़ी में अपने मूल रूप में ही वर्तमान है। यथा—आलुकः 7 आलू, आशा 7 आसा वा आस, घात 7 घात, आलस्य 7 आलस, श्रावण 7 सावन, श्यामल 7 सावलो आदि।

निमाड़ी के कुछ शब्दों में स्वराघात के अभाव से प्रा० भा० आ० भा० का आ निर्बल होकर अ में विकसित मिलता है। यथा—आषाढ़ 7 असाढ़, आखेट 7 अहेर, आश्चर्य 7 अचरज, राजपुत्र 7 रजपूत आदि।

प्रा० भा० आ० भा० का संयुक्त व्यंजनों का पूर्ववर्ती आ म० भा० आ० भा० में अ में विकसित मिलता है, पर निमाड़ी में संयुक्त व्यंजन के सरलीकरण से पुनः आ हो गया है। यथा—आम्र 7 अम्ब 7 आम, व्याघ्र 7 बग्घ 7 बाघ, ताम्र 7 तम्ब 7 तांबा या तांबो आदि।

§३५३ (इ) प्रा० भा० आ० भा० का आदि स्वर इ निमाड़ी में अपने मूल रूप में ही मिलता है। यथा—शृगाल 7 सिआर, विभान 7 बिहान।

प्रा० भा० आ० भा० का आदि स्वर इ संयुक्त अक्षर के पूर्व आने पर हमें निमाड़ी में ई में विकसित मिलता है। यथा—जिह्वा 7 जीभ या जीब, भिक्षा 7 भीख या भीक, इष्ट 7 ईट, निच्य 7 नीच आदि।

§३५४ (ई) प्रा० भा० आ० भा० का आदि स्वर ई भी निमाड़ी के कुछ शब्दों में हमें अक्षुण्ण मिलता है। यथा—कीटक 7 कीड़ो, क्षीर 7 खीर, जीरक 7 जीरो, निष्ठुर 7 निठोर आदि।

§३५५ (उ) प्रा० भा० आ० भा० का असंयुक्त व्यंजन का पूर्ववर्ती आदि स्वर उ निमाड़ी में सुरक्षित है। यथा—कुमारकः 7 कुवारो, पुराण 7 पुरानो, क्षुरिका 7 छुरी आदि।

प्रा० भा० आ० भा० का संयुक्त व्यंजन के पूर्व आने वाला आदि स्वर उ भी निमाड़ी में सुरक्षित है। यथा—उज्ज्वल 7 उजरो, दुर्बल, 7 दुबलो, उत्साह 7 उछाव, उद्‌घाटन 7 उघाड़ आदि।

निमाड़ी के कुछ शब्दों में प्रा० भा० आ० भा० का उ समीकरण के कारण ऊ में विकसित हो गया है। यथा—उष्ट 7 ऊँट या ऊट, पुच्छ 7 पूछ, जुज्झ 7 जूझ आदि।

§३५६ (ऊ) प्रा० भा० आ० भा० का संयुक्त अथवा असंयुक्त वर्ण के पूर्व आया आदि स्वर ऊ निमाड़ी के अनेक शब्दों में अविकृत है। यथा—दूर्वा 7 दूब, सूत्र 7 सूत, शून्य 7 सूनो आदि।

§३५७ (ए) प्रा० भा० आ० भा० का असंयुक्त और संयुक्त व्यंजन के पूर्व अथवा आदि व्यंजन में स्थित ए निमाड़ी में सुरक्षित है। यथा—केतकः 7 केवड़ो, चेलकः 7 चेलो, श्रेष्ठिन 7 सेठ, ज्येष्ठ 7 जेठ आदि।

§३५८ (ऐ) प्रा० भा० आ० भा० का आदि स्वर ऐ निमाड़ी में ए में विकसित मिलता है। यथा—कैवर्त 7 केवट, ऐक्य 7 एक्को आदि।

§३५९ (ओ) प्रा० भा० आ० भा० का ओ भी निमाड़ी में अपने मूल रूप में सुरक्षित है। यथा—घोटक 7 घोड़ो, कोण 7 कोनो, कोष्ट 7 कोठो आदि।

म० भा० आ० भा० का ओ भी निमाड़ी में अक्षुण्ण है। यथा बोल्ल 7 बोल, घोल्ल 7 घोल, डोम्ब 7 डोम आदि।

§३६० (औ) प्रा० भा० आ० भा० का आदि अक्षर में स्थित 'औ' का विकास निमाड़ी में ओ में हो गया है। यथा—गौर 7 गोरो, चौरिका 7 चोरी।

§३६१ म० भा० आ० भा० में प्रा० भा० आ० भा० के आदि स्वर इ, ए, तथा उ, ओ का परस्पर स्थान-परिवर्तन होता रहा है। इनमें से इ के स्थान

पर ए और उ के स्थान पर ओ का प्रयोग ही अधिक मिलता है। म० भा० आ० भा० की यह प्रवृत्ति निमाड़ी में भी वर्तमान है। यथा—छिद्र > छिद्रक > छेद्द > छेद, पुष्कर > पोक्खर > पोखर, पुस्तिका > पोत्थिव > पोथी आदि।

(घ) मध्य स्वरों का विकास

असम्पर्कित स्वर

§३६२ (अ) प्रा० भा० आ० भा० के असम्पर्कित मध्य स्वरों का लोप म० भा० आ० भाषा काल में ही आरम्भ हो गया था। निमाड़ी में ऐसे अनेक शब्द मिलते हैं, जिनमें हमें मध्य स्वर अ का लोप मिलता है। यथा—दुहिता > (पा०) धीता > (प्रा० धीआ > (नि०) धीअ, उद्खल, > उद्खल > उक्खल > ओक्खल > ओखली।

§३६३ प्रा० भा० आ० भा० के चार अथवा इससे अधिक वर्ण वाले शब्दों में स्वराघात-रहित आभ्यन्तर स्वर, यदि दीर्घ न हुए तो निमाड़ी में लुप्त हो गए हैं। यथा—टंकशाला > टंकसाल, पण्यसालिक > पण्णसालिया > पन्सारी, पंचदश > पण्णरह > पन्द्रह > पंघरा आदि।

§३६४ (आ) प्रा० भा० आ० भा० का आभ्यन्तर असम्पर्कित 'आ' निमाड़ी में अक्षुण्ण है। यथा—अक्षवाट > अक्खवाड़ > अक्खाड़ > अखाड़ा या अखाड़ो, अज्ञान > अयाण > अजान, चर्म्मकार > चम्मार > चमार आदि।

कहीं-कहीं स्वराघात के अभाव में प्रा० भा० आ० भा० का आभ्यन्तर 'आ' निमाड़ी में 'अ' हो गया है। यथा—कुमार > कुँवार > कुँवर > कुवर, अग्रहायन > अग्घन > अगहण > अघन आदि।

§३६५ (इ, ई) प्रा० भा० आ० भा० के आभ्यन्तर स्वर इ, ई निमाड़ी के कुछ शब्दों में सुरक्षित हैं। यथा—अभिलाष > अभिलास, माणिक्य > मानिक।

इसके विपरीत सं० प्रतिपदा हिन्दी में पड़िवा होने पर भी इसका मध्य स्वर इ सुरक्षित है, पर निमाड़ी में वह 'पड़वा' होने से 'इ' का परिवर्तन 'अ' में हो गया है। इन शब्दों में भी हम यही देखते हैं—हरिण-हिरन या हरन, सरिसव > सरसो, खनित्र > खनता या खनतो, गभीर > गहरो।

§३६६ (उ, ऊ) निमाड़ी के अधिकांश शब्दों में प्रा० भा० आ० भा० के आभ्यन्तर स्वर उ, ऊ पूर्ववत् सुरक्षित हैं। यथा—प्राहुण > पाहुना या पाहुणो, फाल्गुण > फागुन, कर्पूर > कपूर आदि।

इसके विपरीत निमाड़ी के कुछ शब्दों में हमें इन स्वरों का लोप भी मिलता है। यथा—कुटुम्ब > कुटम्, निष्ठुर > निठर आदि।

§३६७ (ए, ओ) प्रा० भा० आ० भा० के आभ्यन्तर स्वर ए, ओ निमाड़ी में भी सुरक्षित हैं। यथा—उपदेश 7 उपदेस, प्रेत 7 परेत्, विक्षोभ 7 बिछोह, या वियोग, आरोग्य 7 आरोग आदि।

सम्पर्कित स्वर (Vowels in contact)

§३६८ हम प्रा० भा० आ० भा० में सम्पर्क स्वरों का प्रायः अभाव ही देखते हैं। इसका कारण यह है कि उसमें (वैदिक संस्कृत में) जहाँ भी दो स्वर एक साथ आते हैं, वहाँ उनका संयोग हो गया है, किन्तु प्रा० भा० आ० भा० के अनेक शब्दों के म० भा० आ० भा० में आने पर उनके आभ्यन्तर स्पर्श व्यंजनों का लोप हो गया। परिणाम-स्वरूप म० भा० आ० भा० में सम्पर्क स्वर आ गए, जो प्राकृत से अपभ्रंश के द्वारा आ० भा० आ० भा० में आए। यही कारण है कि हम निमाड़ी तथा अन्य भारतीय आर्य भाषाओं एवं उनकी बोलियों में भी इनका अभाव नहीं पाते।

§३६९ डा० उदयनारायण तिवारी ने अन्तिम प्राकृत (अपभ्रंश) तथा आ० भा० आ० भाषाओं के आरंभिक युग में प्रा० भा० आ० भा० के स्वरों की निम्नांकित तीन प्रक्रियाएँ बतलाई हैं—

(१) ये सन्ध्यक्षर बन गए।

(२) दो स्वर एक स्वर में परिणत हो गए।

(३) य तथा व श्रुतियों के प्रयोग से इन स्वरों का पृथक् अस्तित्व बना रहा।

§३७० हमें निमाड़ी में इन तीनों में से प्रथम प्रक्रिया के उदाहरण प्रायः नहीं मिलते। हम देखते हैं कि भाषा-साहित्य में जहाँ दो स्वरों की संधि हो गई है, वहाँ निमाड़ी में दोनों स्वरों का उच्चारण अक्षुण्ण है। यथा—

अ ई—कव्ठई, गालई।

अ ए—अएड़ान, खएच।

आ उ—माउली, बाहुली आदि।

§३७१ दो स्वरों के एक स्वर होने के कुछ उदाहरण निमाड़ी में उपलब्ध हैं। यथा—

अ इ (ऐ)—चइत-चैत, कइत-कैत (अकाल)।

अ उ (औ)—चउत-चौत, भउत-भौत (बहुत)।

§३७२ जब पृथक अ पर स्वराघात नहीं होता और उद्वृत्त स्वर इ, उ द्वितीय अच् में आते हैं, तब मध्यभारतीय निमाड़ी में इनका परिवर्तन क्रमशः अय् और अव् में हो जाता है। यथा—बइल-बयल, मइल-मयल, चउ-चव, मउर-मवर आदि।

§३७३ निमाड़ी में य तथा व श्रुति के अन्य उदाहरण निम्नांकित हैं—

(य) नारिकेल > नरियल, शृगाल > सियार, दीप > दिया, हृदय > हियड़ो आदि।

(व) सूकर > सूवर, कूप > कुवा, द्यूत > जुवा, लोमक – रुवा आदि।

सम्पर्क स्वर-संयोग और रूपान्तर

§३७४ निमाड़ी में सम्पर्क स्वरों के संयोग के अनेक उदाहरण मिलते हैं। यथा—(क) आरम्भिक अच् के अ–अ तथा अ–व का ओ में रूपान्तर—भाद्रपद > भादव, भादो, दाणव > दानव > दानो आदि।

(ख) अ आ, आ अ तथा आ आ का आ में रूपान्तर—भण्डागार > भंडार, स्वर्णकार > सुनार, उपवास > उपास, अन्धकार > अंधार आदि।

(ग) प्राकृत अ–इ का ए में रूपान्तर—पढ़ई > पढ़े, लिखई > लिखे, वाचइ > बाचे आदि।

(घ) अपभ्रंश का ए निमाड़ी में अक्षुण्ण है। यथा एतिअ > एतरो, केतिअ > केतरो।

(ट) उ–उ, उ–ऊ तथा ऊ–ऊ का निमाड़ी में ऊ में रूपान्तर—दुउण > दूनो, भुऊख > भूख > भूक।

(ठ) प्रा० इ–अ का ई में रूपान्तर—छेणिज > छेनी।

§३७५ प्रा० भा० आ० भा० के ऋ की गणना स्वरों के अन्तर्गत ही होती है। प्राकृत में इस स्वर का अभाव है। निमाड़ी में यह वर्ण नहीं है, पर भाषा-साहित्य में जहाँ इसका प्रयोग होता है, वहाँ निमाड़ी में इसका उच्चारण 'रु' या 'रि' होता है। यथा—ऋषि > रुसी या रिसी, ऋतु > रुतु या रितु आदि।

प्राकृत में हमें ऋ अ में रूपान्तरित मिलता है, पर निमाड़ी के कुछ शब्दों में हम इसे 'आ' में परिवर्तित देखते हैं। यथा नृत्य > नाच, कृत्य > काम मृत्तिका > माटी आदि।

निमाड़ी के कुछ शब्दों में हमें ऋ का रूपान्तर इ अथवा ई में भी मिलता है। यथा—घृत > घिव, घृणा > घिन, शृंग > सींग, गृद्ध > गीध।

अन्त्य स्वर

§३७६ स्वराघात के अभाव में प्रा० भा० आ० भा० के पदान्त स्वर निर्बल होकर म० भा० आ० भा० काल में ही दीर्घ से ह्रस्व होने लगे थे। इसी प्रवृत्ति के कारण अपभ्रंश काल में प्रा० भा० आ० भा० के आ, ई, ऊ क्रमशः अ, इ, उ, होकर मूल स्वरों के साथ मिल गए। धीरे-धीरे इन ह्रस्व स्वरों का उच्चारण भी निर्बल होता गया और परिणाम-स्वरूप आ० भा० आ० भा०

में इन स्वरों का प्रायः लोप ही हो गया। यही कारण है कि निमाड़ी तथा पश्चिमी हिन्दी की ब्रज, बुन्देली-जैसी बोलियों में आज हम प्रा० भा० आ० भा० के कुछ शब्दों के अन्त्य स्वर अत्यन्त निर्बल स्थिति में पाते हैं। यथा—सं० 'पुत्र' शब्द प्राकृत में पुत्तो, अपभ्रंश में पुत्तु, प्राचीन हिन्दी में पूतु तथा वर्तमान हिन्दी और निमाड़ी में भी पूत् हो गया।

§३७७ इसके विपरीत आधुनिक हिन्दी के कुछ शब्दों म किसी प्रत्यय के संयोग तथा उसके अवशिष्ट स्वर-वर्ण से अन्त्य स्वर सबल हो गए। यथा—वधू – बहू। किन्तु हिन्दी के ऐसे शब्दों के अन्त्य स्वर भी निमाड़ी में ह्रस्वोच्चरित ही मिलते हैं। यथा—संस्कृत का वधू अथवा हिन्दी का बहू निमाड़ी में 'बउ' हो गया है।

§३७८ प्रा० भा० आ० भा० के अनेक तत्सम शब्दों के अन्त्य स्वर निमाड़ी में निर्बल उच्चरित होते हैं। यथा—रत्न > रतन्, यत्न > यतन्, कमल > कमल् आदि।

§३७९ पदान्त स्वर से पूर्व संयुक्त व्यंजन वाले तत्सम शब्दों के अन्त्य स्वर भी निमाड़ी में अत्यन्त निर्बल हो गए या लुप्त ही हो गए हैं। यथा—ग्रन्थि > गण्ठि, गाँठ > गाठ्, मुष्टि > मुट्ठि, मुठी, राशि > रासि, रास, हिंग > हिंगु > हींग आदि।

§३८० हमें निमाड़ी के कुछ शब्दों में प्रा० भा० आ० भा० के अन्त्य स्वर आ, ई, ऊ का पूर्ण लोप मिलता है, यद्यपि म० भा० आ० भा० में इनका लघु उच्चारण वर्तमान था। यथा—

आ का लोप—बुभुक्षा > बहुक्खाँ > भुक्खँ > भूख् > भूक्, निद्रा > निद्दा > निद्द > नींद, घृणा > घिणा > घिण > घिन्, परीक्षा > परिक्खा > परिक्ख > परख, लज्जा > लज्ज > लाज आदि।

ई का लोप—गर्भिणी > गब्भिणी > गब्भिणि > गाभिन् > गाभन्; भगिनी > भइणी > बहिणी > बहिणि > बहिन् > बहन्, रात्री > रत्ती > रत्ति > रात्, सपत्नी > सवत्ती > सवति > सौत् आदि।

ऊ का लोप—श्वश्रू > सस्सू > सस्सु > सास।

§३८१ प्रा० भा० आ० भा० के अन्त्य स्वर ए, ओ म० भा० आ० भा० में इ, उ में परिणत हो गए थे, किन्तु आधुनिक हिन्दी की तरह निमाड़ी में भी इन स्वरों का लोप हो जाता है। यथा—पुत्र > पुति > पूत, गृहे > घरि > घर।

प्रा० भा० तथा म० भा० आ० भा० के अनुनासिकों का निमाड़ी में विकास

§३८२ पश्चिमी हिन्दी की अन्य बोलियों की तुलना से निमाड़ी में अनुनासिक वर्णों का प्रयोग बहुत कम होता है। अनेक शब्द ऐसे हैं, जो निमाड़ी में

अनुस्वार-विहीन उच्चरित होते हैं। तथा——दन्त > दाँत > दात, पंक्ति > पाँत > पात, मातृ > माँ > मा अथवा माय, ग्रन्थि > गाँठ > गाठ आदि।

§३८३ निमाड़ी में तालव्य तथा मूर्धन्य वर्णों के अतिरिक्त वर्गीय अनुस्वारों का अन्य घोष तथा महाप्राण वर्णों से समीकरण हो गया है। यथा——अंगण > आंगन, अंधा > आंध, स्कन्ध > कंधा, > खांदा (खांदो), चञ्चु > चोच, पिंजर > पिंजरो, अंचल > आंचल, अंगुलि > उंगली, गुंज > गूंज आदि।

§३८४ ओष्ठ स्पर्श ध्वनियों का महाप्राण वर्णों के साथ समीकरण हो गया है। यथा——कम्बल > कमरो, ब्राह्मण > बाम्हन, ताम्र > तामा, लम्ब > लाम आदि।

§३८५ कुछ तालव्य घोष तथा मूर्धन्य स्पर्श वर्णों का महाप्राण वर्णों के साथ भी समीकरण मिलता है। यथा——अंजली > आंजरी, पिञ्जर > पिंजरा, संध्या > संझा > सांझ, वंझा प्रा० > बांझ, सण्ड > सांड आदि।

§३८६ जब प्राकृत वर्ण एक अनुस्वार तथा अ अनुगामी होते हैं, तब निमाड़ी में अ् का आ हो जाता है। यथा——(कर्ण) > कण्ण > कान्, (चर्म) > चम्म > चाम आदि।

§३८७ पूर्व अनुनासिक ऊष्म वर्ण निमाड़ी में अपने मूल रूप में ही बना रहता है और उसके पूर्व का अनुनासिक वर्ण निरनुनासिक हो जाता है। यथा—काँस्य > काँसा > कासा, मांस > मास, डंश > डाँस > डास आदि।

§३८८ हिन्दी की अन्य बोलियों की तरह निमाड़ी में भी जब प्रा० भा० आ० भा० के अनुस्वार के पश्चात् 'इ' आता है, तब अनुस्वार लुप्त हो जाता है। यथा——त्रिंशत > तीस, पंच विंशति > पचीस, द्वात्रिंशत > बत्तीस आदि।

§३८९ आ० भा० आ० भा० में अनेक ऐसे शब्द हैं, जिनके प्रा० भा० आ० भा० के रूप में अनुनासिकता नहीं है। यथा——सर्प > साँप, उष्ट्र > ऊँट, > ओंठओष्ठ आदि।

आ० भा० आ० भा० के ये शब्द निमाड़ी में निरनुनासिक होते हैं। यथा—साप, ऊट, ओठ।

§३९० निमाड़ी के निम्नांकित शब्दों में भी पश्चिमी हिन्दी की अन्य बोलियों के विपरीत अनुनासिकता का अभाव है——

पाद > पाँव > पाव, पाश > फांस > फास, बाहु > बाँह > बाह, श्वास > साँस > सास।

§३९१ निमाड़ी के कुछ ऐसे दो अनुगामी व्यंजनों वाले शब्दों में भी हमें अनुनासिकता का अभाव मिलता है, जो संस्कृत से प्राकृत के द्वारा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में सानुनासिक विकसित हुए हैं। यथा—

सं०		प्रा०		हिन्दी		निमाड़ी
अक्षि	>	अक्खि	>	आँख	>	आख या आखी
अर्चिष्	>	अच्चि	>	आँच	>	आच
इष्ट	>	इट्ट	>	ईंट	>	ईट
उच्च	>	उंच	>	ऊँचा	>	ऊचो
कक्ष	>	कक्ख	>	कांख	>	काख
पक्ष	>	पक्ख	>	पंख	>	पख
वेत्र	>	वेत्त	>	वेंत	>	बेत

स्वरागम

§३९२ जब किसी शब्द अथवा शब्द-समूह के उच्चारण में कठिनाई होती है, तब लोक-भाषा उच्चारण-सौकर्य के लिए उसे अपनी प्रवृत्ति के अनुसार सरलतम बना लेती है। भाषा शास्त्रियों ने इस परिवर्तन को स्वरागम, स्वरभक्ति अथवा विप्रकर्ष कहा है। निमाड़ी में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं।

यथा— अ—धरम<धर्म, करम<कर्म, जनम<जन्म, भरम<भ्रम, सराध्<श्राद्ध, सपन या सपनो<स्वप्न, रतन<रत्न, वरत<व्रत, मंतर<मंत्र, जन्तर<जन्त्र<यन्त्र, जतन<जत्न, बरस<वर्ष।

इ—सिरीमान<श्रीमान, किरिया<क्रिया, तिरिया<त्रिया आदि।

उ—मुकती<मुक्ति, गुपत<गुप्त<गुह्य, सुमरन<स्मरण, दुवार<द्वार आदि।

§३९३ निमाड़ी में जो विदेशी शब्द गृहीत हुए हैं, उनमें भी हमें स्वरभक्ति या स्वरागम मिलता है। यथा—

इकरार<इक्रार, गरम<गर्म, करजा<कर्ज, फरज<फर्ज़, नगद<नक़्द, तखत<तख़्त, तकरार<तक्रार, जपत<ज़ब्त, फिकर<फ़िक्र, अकल<अक़्ल, बकस<बक्स, सरकस<सर्किस, सरकल<सर्किल आदि।

§३९४ निमाड़ी में आदि स्वरागम के भी कुछ उदाहरण उपलब्ध हैं। उदाहरणार्थ निम्नांकित शब्द देखिए—

इसतरी<स्त्री, अस्तुति<स्तुति, अस्थान<स्थान, असनान<स्नान, इश्लोक<श्लोक आदि।

§३९५ आदि स्वरागम के उदाहरण निमाड़ी में गृहीत विदेशी भाषा के शब्दों में भी मिलते हैं। यथा—

इस्टेसन<स्टेशन, इस्कूल<स्कूल, इस्टाम्प<स्टाम्प, इस्टूल<स्टूल आदि।

व्यंजनों का विकास

§३९६ (क) प्रा. भा. आ. भा. का क् निमाड़ी के अधिकांश शब्दों के आरम्भ में वर्तमान है। यथा—कर्पूर – कपूर, कार्पास – कपास, कर्पदिका – कौड़ी आदि।

कुछ शब्दों का अन्त्य क निमाड़ी में ग में परिवर्तित हो गया है। यथा—काक – काग, बक – बगलो (बगुला), शोक – सोग आदि।

कुछ शब्दों का अन्त्य क निमाड़ी में स में परिवर्तित भी मिलता है। यथा—दिक् – दिसा।

§३९७ (ख) प्रा. भा. आ. भा. का ख् शब्दारम्भ में निमाड़ी में भी मूल रूप में ही मिलता है। यथा—खर्पर – खपरा, खर्जूर – खजूर, खर्ब – खरब आदि।

निमाड़ी के कतिपय शब्दों में प्रा. भा. आ. भा. का अन्त्य ख हमें ह् में विकसित हुआ मिलता है। यथा—मुख – मुँह, सखि – सहि (सह) आदि।

§३९८ (ग) प्रा. भा. आ. भा. का ग् निमाड़ी में आने पर भी शब्दारम्भ में अपरिवर्तित ही है। यथा—गुर्जर – गूजर, गवाक्ष – गुठान, ग्रन्थि – गाठ आदि।

शब्द-मध्य ग भी निमाड़ी में अपने मूल रूप में ही वर्तमान है। यथा—उद्गम – उगम, मद्गरिका—मोगरी, लग्न – लगण आदि।

अन्त्य ग् में भी हमें निमाड़ी में कोई परिवर्तन नहीं मिलता। यथा—मार्ग – मारग, अंग – आंग, फल्गु – फाग आदि।

कुछ शब्दों में ग् का विकास घ् में मिलता है। यथा—गर्गरी – घगरी।

§३९९ (घ) प्रा. भा. आ. भा. का शब्दारम्भ घ निमाड़ी में भी अपरिवर्तित है। यथा—घ्राण – घान, घृणा – घिन, घंटिका – घंटी, घटिका – घड़ी आदि।

निमाड़ी के कुछ शब्दों में अन्त्य घ का विकास ह में मिलता है। यथा—मेघ – मेह।

निमाड़ी के कुछ शब्दों में हमें प्रा. भा. आ. भा. के घ का विकास ग में भी मिलता है। यथा—व्याघ्र – बाग, महार्घ – मंहगो (मंहगा) घर्घरक – घागरो।

कहीं-कहीं हमें प्रा. भा. आ. भा. के घ के स्थान में क का भी प्रयोग मिलता है। यथा—अर्घ्य – अरक्।

§४०० (च) प्रा. भा. आ. भा. का शब्दारम्भ च निमाड़ी में भी मूल रूप में विद्यमान है। यथा—चौर – चोर, चार्वाक – चबरो (रा), चाणाक्ष – चालाक, चर्वण – चबानो (ना) आदि।

शब्दमध्य तथा अन्त्य च में भी हमें निमाड़ी में कोई परिवर्तन नहीं मिलता। यथा—अचल, चंचल, कूर्चक 7 कूची, वाच 7 वाचा आदि।

इसके विपरीत प्रा. भा. आ. भा. के सूची शब्द में प्रयुक्त च का रूपान्तर निमाड़ी के 'सुई (यी) शब्द में य में मिलता है।

§४०१ (छ्) प्रा. भा. आ. भा. का छ् निमाड़ी में भी अपने मूल रूप में ही वर्तमान है। यथा—छिद्र – छेद, छाया – छाव, छत्र – छत्तो, कच्छप – कछवो आदि।

§४०२ (ज्) प्रा. भा. आ. भा. का ज् व्यंजन सभी शब्दों में मूल रूप में ही वर्तमान हैं। यथा—जन्म – जलम, जिव्हा – जीव (भ), कज्जल – काजल, उज्ज्वल – उजरो, सज्ज – साज, लज्जा – लाज आदि।

§४०३ (झ्) प्रा. भा. आ. भा. का झ् निमाड़ी के अधिकांश शब्दों में मूल रूप में आया है। यथा—झटति 7 झट, झल्लरी 7 झालर, निर्झर 7 झरनो (ना), झंकार 7 झांझ, झर 7 झर (सोता) आदि।

निमाड़ी के कुछ शब्दों में हमें झ का विकास ज में मिलता है। यथा—झांझ 7 झांज।

§४०४ (ट्) अधिकांश निमाड़ी शब्दों में प्रा. भा. आ. भा. का ट् व्यंजन ज्यों का त्यों प्रयुक्त मिलता है। यथा—टंकार 7 टकार, टंक 7 टाका, टंकशाला 7 टकसाल, कटक 7 कंटक, खट्वा 7 खाट, मट 7 माट, कुट्टनिका 7 कुटनी, कण्टक 7 काटो (कांटा)।

निमाड़ी के कुछ शब्दों में ट् का विकास ड में मिलता है। यथा—पुटक 7 पुड़ा (ड़ा), घोटक 7 घोड़ा, घटिका 7 घड़ी, कूट 7 कूड़, कटु 7 कड़ू, कटि 7 कड़, कीट 7 कीड़ो, (ड़), कुक्कुट 7 कुकड़ो, पर्पट 7 पापड़।

कुछ शब्दों में ट का परिवर्तन ठ में मिलता है। यथा—अष्ट 7 आठ, अष्टादश 7 अठारा, मिष्ट 7 मीठो, पिष्ट 7 पीठ (आटा) धृष्ट 7 धीठ, दृष्टि 7 दीठ।

ट् का ढ् में विकास—दंष्ट्रिका 7 दाढ़ी, दंष्ट्रा 7 दाढ़।

§४०५(ठ्) निमाड़ी में प्रयुक्त अधिकांश शब्दों में प्रा. भा. आ. भा. का ठ अपने मूल रूप में ही वर्तमान है यथा – कण्ठिका 7 कण्ठी, पृष्ठकम 7 पीठ, शुण्ठि 7 सोठ, कठिनम् 7 कठण, काष्ठ 7 कोठो (ठा) अंगुष्ठ 7 अंगूठो।

निमाड़ी के कुछ शब्दों में हमें प्रा. भा. आ. भा. का ठ् ढ् में विकसित मिलता है। यथा—मठ 7 मढ़, कुष्ठ 7 कोढ़, पठति 7 पढ़।

§४०६(ड्) प्रा. भा. आ. भा. का ड् निमाड़ी के अनेक शब्दों में अपने मूल रूप में ही व्यवहृत हुआ है। यथा 7 डण्ड 7 डंडो (ड), हण्ड 7 हांडो, मण्ड 7

मांड, डोलिका 7 डोली, शुण्ड—सोंड, अण्ड 7 अंडो (ड), कुण्ड 7 कुंड, रण्डा 7 रांड, मण्डूक 7 मेंडकी ।

निमाड़ी में कहीं-कहीं इस ड् का विकास ढ् में मिलता है। यथा मण्डप 7 मांढ़वो।

§४०७ (ढ्) निमाड़ी में यह वर्ण प्राकृत से आया हुआ जान पड़ता है। इस वर्ण का निमाड़ी के अधिकांश शब्दों में मूल रूप में ही प्रयोग हुआ है। यथा—ढक्कणी 7 ढकनी, ढिल्ल 7 ढील, कढ 7 काढ़ा ।

हमें निमाड़ी में कहीं-कहीं इस व्यंजन का विकास ड् में मिलता है, पर यह प्रा. भा. आ. भा. से आए शब्दों में ही दृष्टिगोचर होता है। यथा—षण्ढ 7 सांड ।

इसी प्रकार प्रा. भा. आ. भा. के कुछ शब्दों में प्रयुक्त ढ् का परिवर्त्तन निमाड़ी में हिन्दी की तरह द् में हो गया है। यथा—सोड्ढम् 7 सुन्दर ।

§४०८ (त्) प्रा. भा. आ. भा. का त् निमाड़ी के भी अधिकांश शब्दों में इसी रूप में व्यवहृत हुआ है। यथा—तन्तु 7 तात (ताँत), ताम्र 7 तामा, तक्र 7 ताक (छाछ)।

प्रा. भा. आ. भा. के त् का निमाड़ी के कुछ शब्दों में थ् में विकास हुआ है। यथा—पोस्तिका 7 पोथी, हस्त 7 हाथ ।

निमाड़ी के कुछ शब्दों में हमें इस ध्वनि का विकास छ् में भी मिलता है। यथा—उत्सव 7 उच्छव ।

निमाड़ी के कुछ शब्दों में हमें त् का विकास ई में भी मिलता है। यथा—भ्रातृ 7 भाई, जामातृ 7 जमाई या जवाई ।

त् का परिवर्तन य में भी मिलता है। यथा—मातृ 7 माय ।

त् का ड़ में विकास-प्रतिपदा 7 पड़वो ।

त् का च् में विकास-सत्य 7 सच, नृत्य 7 नाच ।

§४०९ (थ्) प्रा. भा. आ. भा. का थ् निमाड़ी के अनेक शब्दों में मूल रूप में ही व्यवहृत हुआ है। यथा—स्थिर 7 थिर, स्थाली 7 थाली, मन्थन 7 मथनो, मन्थनी 7 मथानी ।

निमाड़ी के कुछ शब्दों में हमें इस वर्ण का विकास ठ् में मिलता है। यथा—ग्रन्थि 7 गाठ (गाँठ)।

कुछ शब्दों में थ् का विकास ह् में भी मिलता है। यथा—प्रथम् 7 पहलो।

§४१० (द्) प्रा. भा. आ. भा. का द् निमाड़ी के भी अधिकांश शब्दों में अपने मूल रूप में ही आया है। यथा—दधि 7 दही, दुग्ध 7 दूध, भाद्र 7 भादो, द्वि 7 दो, द्वितिया 7 दूज, दृष्टि 7 दीठ, दीप 7 दिवो, दन्त 7 दात, द्वार 7 दार।

कहीं-कहीं द् का विकास घ् में भी मिलता है। यथा—उद्घट्यति 7 उघाड़नो (ना), उद्घट 7 उघाड़।

द् का ज में विकास—खाद्य 7 खाजा, आद्य – आज, वाद्य – बाजा।

§४११ (ध्) प्रा. भा. आ. भा. का ध् निमाड़ी के कई शब्दों में इसी रूप में व्यवहृत हुआ है। यथा—धृष्ट 7 धीट, धातृ 7 धाय, धरित्री 7 धरती, धान्य 7 धान, धूलि 7 धूल, गृध्र 7 गीध, धनिक 7 धनी, धणी, योद्धा 7 जोधा।

निमाड़ी के कुछ शब्दों में हमें प्रा. भा. आ. भा. के ध् का विकास झ् में मिलता है। यथा—सांध्य 7 साँझ, वन्ध्या 7 बाँझ।

कुछ शब्दों में हमें इस वर्ण का विकास ह् में भी मिलता है। यथा—वधू 7 बहू, बधिर 7 बहिर, बहिरो, गोधा 7 गोहा।

ध् का भ् में विकास—ऊर्द्धित 7 ऊभो।

§४१२ (प्) निमाड़ी के अधिकांश शब्दों में हमें प्रा. भा. आ. भा. का प् इसी रूप में मिलता है। यथा—पर्ण 7 पान, पर्पट 7 पापड़, पोष 7 पूस, पुत्र 7 पूत, पृष्टि 7 पीठ, परीक्षा 7 परख, पिञ्जर 7 पिंजरा, प्रातिवेशिक 7 पड़ोसी, पक्ष 7 पख, कर्पूर 7 कपूर, प्रक्षरः 7 पाखरु, प्रक्षालन 7 पखारनो, पीत 7 पिवळो।

निमाड़ी के कुछ शब्दों में प् का विकास फ् में मिलता है। यथा – पनसय् 7 फणस, परश्विका 7 फरसी, पाश 7 फास।

प् का व् में विकास – मण्डप 7 मंडवो।

§४१३ (फ्) प्रा. भा. आ. भा. का फ व्यंजन निमाड़ी के सभी शब्दों में इसी रूप में आया है। यथा – फल्गु 7 फाग, फाल्गुण 7 फागुन, फुल्ल 7 फूल, स्फूर्ति 7 फुर्ती, स्फटिकारी 7 फिटकरी, स्फुट 7 फुटकर, फल 7 फल, फेनम् 7 फेन।

§४१४ (ब्) प्रा. भा. आ. भा. का ब् निमाड़ी के अनेक शब्दों में भी मूल रूप में ही व्यवहृत हुआ है। यथा – बिन्दु 7 बूंद, बर्गद 7 बड़, बक 7 बगला, दुर्बल 7 दुबलो, बाहु 7 बाह।

ब् का व् में विकास 7 शेवाल 7 सेवार।

ब् का विकास भ् में—बुषकम् 7 भूसा, बुभूक्षा 7 भूखा आदि।

§४१५ (भ्) प्रा. भा. आ. भा. का भ् व्यंजन निमाड़ी के अधिकांश शब्दों में भी इसी रूप में आया है। यथा – भातृ 7 भाई, भक्त 7 भगत, भाद्र 7 भादो, भ्रमर 7 भौरा, भिक्षा 7 भीक(ख) गर्भिणी 7 गाभन, भाजन 7 भांडो।

भ् का ह् में विकास 7 गभीर 7 गहिरो, शोभते 7 सोहे।

भ् का ब् में विकास 7 अभ्रक 7 अबरक।

§४१६ (य्) प्रा. भा. ग्रा. भा. के य् का निमाड़ी के कुछ श दों में इसी रूप में उपयोग हुग्रा है। यथा – योग > योग, यक्ष > यच्छ, योजन, योनी।

निमाड़ी के ग्रनेक शब्द ऐसे हैं, जिनमें हमें प्रा. भा. ग्रा, भा. के इस वर्ण का विकास ज् में मिलता है। यथा – यत्न > जतन, यश > जस, योद्धा > जोद्धा, यशोदा > जसोदा, यमुना > जमना, यव > जव, यज्ञ > जग्ग या जग, योगी > जोगी।

य् का विकास ज् में – शय्या > सेज, कार्य > काज।

§४१७ (र्) निमाड़ी के कदाचित् ही ऐसे कोई शब्द हों, जिनमें प्रा. भा. ग्रा. भा. के इस र् व्यंजन का विकास किसी ग्रन्य वर्ण में हुग्रा हो। प्रायः सभी शब्दों में यह ग्रपरिवर्तित है। यथा – रात्रि > रात, राज्ञी > रानी, राजपुत्र > रजपूत, राज्य > राज, एरण्ड > ग्ररंडा, गेरिक > गेरू, गौर > गोरो, कर्पूर > कपूर, धर्म > धरम, चरण > चरन, गर्गरी > घगरी।

§४१८ (ल्) प्रा. भा. ग्रा. भा. का ल् निमाड़ी के ग्रधिकांश शब्दों में ग्रपरिवर्तित है। यथा – लज्जा > लाज, लक्ष > लाख, लौह > लोह, तैल्य > तेल, काल > काल, झल्लरी > झालर, लवङ्गम् > लवंग, नकुल > नेवलो (ला), कज्जल > काजल, मूल्य > मोल, लग्न > लगन।

ल् का न् में विकास–लवण > नोन।

ल् का ळ में विकास निमाड़ी की ग्रपनी विशेषता है। उदाहरणार्थ ये शब्द देखिए – काल > काळ, जल > जळ, कण्टाल > कण्टाळो, ग़ाल > गाळ (कीचड़), टाली > टाळी, वेल > वेळ, बाल > बाळ।

निमाड़ी में कुछ ऐसे शब्द भी हैं, जिनमें न ग्रौर ल का परस्पर स्थान-परिवर्तन मिलता है। यथा – लिम्ब > नीम, लीम, लवण > लोन, नोन।

यह स्थान–परिवर्तन फारसी से गृहीत कुछ शब्दों में भी मिलता है। यथा—नीलाम > लिल्लाम, निकाल > लिकाल।

§४१९ (व्) निमाड़ी के कुछ शब्दों मे प्रा. भा. ग्रा. भा. का व् ग्रपरिवर्तित है। यथा – वर्तिका > वाती, उत्सव > उच्छव, वय > वयस, वाद्य > वाजा, वायु > वारा, वस्तु > वस्त, वाय > वात, वारा, वास ग्रादि।

निमाड़ी के ग्रधिकांश शब्दों में हमें व् का विकास ब् के रूप में मिलता है। यथा—वन > बन, वाट > बाट, वंशी > बंसी, वणिक > बनिया, वाण > बाण, वल्कल > बक्कल, वैरी > बैरी, वर्ण > बरन, वंश > बंस, जिव्हा > जीब, वन्ध्या > बाँझ, वधू > बहू, व्याघ्र > बाघ, बाग, वापी > बावली।

§४२० (स्) प्रा. भा. ग्रा. भा. का स् निमाड़ी के ग्रधिकांश शब्दों में भी इसी रूप में वर्तमान है। यथा – सप्त > सात, सत्य > सच, सर्व > सब,

सूत्र 7 सूत, सौख्य 7 सुख, उपवास 7 उपास, संशय 7 सासो (साँसा), सौभाग्य 7 सुहाग, संध्या 7 साँज (झ), कार्पास 7 कपास, स्वर्ण 7 सोनो, सुन्नो ।

निमाड़ी में प्रा. भा. आ. भा. के श, ष वर्ण का प्रयोग नहीं मिलता। निमाड़ी में इन दोनों वर्णों का विकास स् में हो गया है । यथा——

श से स – आशा 7 आसा, शनिवार 7 सनीवार, शारदा 7 सारदा, कुशल 7 कुसल, वंश 7 बंस, शृंग 7 सींग, शुष्क 7 सूखो, शीत 7 सीत, श्वास 7 सास (साँस), श्वसुर 7 ससुर, श्यालक 7 साला, साव्ठो ।

ष् से स् – आषाढ़ 7 असाड़, पौष 7 पूस, अभिलाषा 7 अभिलासा, मानुष 7 मानुस, विषम 7 बिसम, कृष्ण 7 किसन, षटकोण 7 सटकोण ।

§४२१ (ह्) प्रा॰ आ. भा. का ह् व्यंजन निमाड़ी के अधिकांश शब्दों में मूल रूप में ही आया है । यथा – हरिण 7 हिरन, हस्त 7 हात (था), हीरक 7 हीरो, (रा), हरिद्रा 7 हलदी, हीनकम् 7 हीण (न), मोह 7 मोह, हर्ष 7 हरख, वाहन 7 बाहन ।

प्रा॰ भा॰ आ॰ भा॰ के पञ्चम वर्ण

§४२२ प्रा. भा. आ. भा. के पंचम वर्ण ङ्, ञ, ण, न और म में से निमाड़ी में ङ तथा ञ का उपयोग नहीं होता । शेष वर्णों का विकास हमें निम्न प्रकार मिलता है ।

§४२३ प्रा. भा. आ. भा. का ण् हमें निमाड़ी के कुछ शब्दों में अपरिवर्तित मिलता है । यथा – मत्कुण 7 माकण, गणिका 7 गणका ।

(ण्) अधिकांश शब्दों में ण् का विकास निमाड़ी के न् में हो गया है । यथा – कर्ण 7 कान, जीर्ण 7 जीरन, कण 7 कन, कारण 7 कारन, गुण 7 गुन, वाणिज्य 7 बनिज, पर्ण 7 पान, चूर्ण 7 चूरन, गर्भिणी 7 गाभन, क्षण 7 छन, ग्रहण 7 गिर्हन घृणा 7 घिन, घ्राण 7 घान ।

§४२४ (न्) प्रा. भा. आ. भा. का न् निमाड़ी के अधिकांश शब्दों में अपने मूल रूप में ही विद्यमान है । यथा – नश्य 7 नाश, नकुल 7 नेवलो, नक्र 7 नाक, लग्न 7 लगन, फेन 7 फेन, अग्नि 7 अगिन, धेनु 7 धेनु, वचन 7 बचन, व्याख्यान 7 बखान, नियम 7 नेम, धान्य 7 धान, शून्य 7 सुन्न ।

निमाड़ी के कुछ शब्दों में हमें न् का विकास ण् में मिलता है । यथा कुट्टनिका 7 कुटणी, लशुनम् 7 लसण ।

§४२५ (म्) प्रा. भा. आ. भा. का म् निमाड़ी के अधिकांश शब्दों में अपरिवर्तित है । यथा – मृत्तिका 7 माटी, मृत 7 मरो, मेष 7 मेंख, मत्स्य 7 माछरी, आम्र 7 आम, मृक्षण 7 मक्कण, मित्र 7 मीत, मुख 7 मू (मुँह), कर्म 7 काम, धर्म 7 धरम, चर्म 7 चमड़ो, घर्म 7 घाम, मार्ग 7 मारग, मिष्ट 7 मीठो,

मुष्टिका 7 मूठी, मौक्तिक 7 मोती, मज्जरी 7 मांजर(बिल्ली), मर्घ 7 महंगाई। म् का भ् में विकास – महिषी 7 भइस (भैंस)।

निमाड़ी के स्वर-व्यंजनों की उत्पत्ति

स्वरों की उत्पत्ति

§४२६ (अ) निमाड़ी के 'अ' स्वर की उत्पत्ति संस्कृत के निम्न स्वरों से हुई है। यह स्वर म. भा. आ. भा. से होता हुआ आ. भा. आ. भा. तथा उसकी बोलियों में आया है–

	संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश	निमाड़ी
(१) अ	कर्पूरम्	कप्पूरं	कप्पूरु	कपूर
	चर्मकारः	चम्मआरो	चम्मआरु	चमार
	व्याख्यानम्	वक्खाणं	वक्खाणु	बखान
	प्रक्षालयति	पक्खालेइ	पक्खालइ	पखारनो
	प्रस्तर	पत्थरो	पत्थरु	फत्तर
	यज्ञोपवीतम्	जन्नोअईअं	जन्नोअईउ	जनोई
	परीक्षा	परिक्खा	परिक्ख	परख
(२) आ	वाणिज्यम्	वाणिज्जं	वणिज्य	बनज
	पातिवेशिकः	पाढ़िउसिओ	पड़िउसिउ	पड़ोसी
	जिव्हा	जिब्भा	जिब्भ	जीभ-(जीब)
	रण्डा	रंडा	रंड	रांड
	भिक्षा	भिक्खा	भिक्ख	भीख (भीक)
(३) इ	वैरिणी	वेरिणी	वेरिणी	बैरन
	तित्तिरः	तित्तिरो	तित्तिरु	तीतर
	गर्भिणी	गब्भिणी	गब्भिणि	गाभन
	कुट्टिनिका	कुट्टिणिआ	कुट्टिणिअ	कुटनी
	हरिणः	हरणो	हरिणु	हरन
(४) उ	गुग्गुलः	गुग्गुलो	गुग्गुलु	गूगल
	अंगुलिका	अंगुलिआ	अंगुलिअ	आंगली
	उन्दुरुः	उंदुरो	उंदरु	उंदरो
	कुक्कुट	कुक्कुड़	कुक्कुड़	कुकड़ो
	मानुषः	मानुसो	माणुसु	मानस
(५) ऊ	मृत्तिका	[मट्टिआ	मट्टिअ	मट्टी
	मृतक	मुअओ	मुअउ	मरो
	अमृत]	अमी	अमि	अमरत

(६) ए नारिकेल 7 नरियल ।

(७) स्वर भक्ति–यत्न 7 जतन, मन्त्र 7 मंतर, रत्न 7 रतन ।

§४२७ (आं) आ की उत्पत्ति संस्कृत के निम्नांकित स्वरों से हुई है –

	संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश	निमाड़ी
(१) अ	अद्य	अज्ज	अज्जु	आज
	कर्म	कम्म	कम्मु	काम
	चक्रम्	चक्क	चक्कु	चाक
	कर्ण	कन्नो	कन्नु	कान
	हस्त	हत्थो	हत्थु	हाथ (हात)
	कज्जलम्	कज्जलम	कज्जलु	काजल (काजर)
	मज्जरी	मंजरी	मंजरी	मांजर
(६) आ	आत्मा	अप्पा	अप्प	आत्मा
	राज्ञिका	रण्णिआ	रण्णिअ	रानी
	मार्ग	मग्ग	मग्ग	मारग
(३) ऋ	पृष्ठकम्	पट्ठअं	पट्ठउ	पाठ

§४२८ (इ) निमाड़ी के इ स्वर की उत्पति निम्न स्वरों से हुई है—

(१) अ	अम्लिका	अम्बिलिया	–	इमली
	गण	गण्	–	गिन
	पंजर	पंजर	–	पिंजरा
(२) इ	गर्भिणी	गब्भिणी	गब्भिणि	गर्भिनि
	माणिक्य	माणिक्क	–	मानिक
(३) ई	दीप	दीव	दीव	दिया
(४) ऋ	शृगाल	सिआलो	सिआलु	सियार
	हृदय	–	–	हिया (हियड़ा)
	कृपा	–	–	किरपा
	पृथ्वी	–	–	पिरथी
	ऋषि	–	–	रिसी

§४२९ (ई) ई की उत्पत्ति संस्कृत के इन स्वरों से हुई है—

(१) इ	शिक्षा	सिक्खा	सिक्ख	सीख
	विद्युत	विज्ज्	विज्जु	बीज
	पिष्ट	पिट्ठ	पिट्ठ	पीठ
	मिष्ट	मिट्ठ	मिट्ठ	मीठो
	चित्रक	चित्तअ	चित्तउ	चीता

(२) ई	शीर्ष	सिस्स	सिस्सु	सीस
	तीक्ष्ण	तिक्ख	तिक्ख	तीखो
	जीर्ण	जिण्ण	जिण्ण	जीरन
(३) ऋ	गृध्र	गिद्धो	गिद्ध	गीध
	दृष्टि	दिट्ठ	दिट्ठ	दीठ
	धृष्ठ	धिट्ठो	धिट्ठु	धीठ (ट)
	पृष्ठि	पिट्ठी	पिट्ठी	पीठ
	मृष्ठ	मिट्ठ	मिट्ठ	मीठी
	शृंग	सिंग	सिंगु	सींग

§४३० (उ) की उत्पत्ति संस्कृत के निम्नांकित स्वरों से हुई है--

	संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश	निमाड़ी
(१) उ	क्षुरिका	—	—	छुरी
	क्षुर	—	—	खुर
	फाल्गुण	फग्गुणो	फग्गुणु	फागुन
	मुष्टिका	मुट्ठिअ	मुट्ठिअ	मुट्ठी
(२) ऊ	ऊर्ध्वकम्	उब्भअ	उब्भउ	उभो (खड़ा)
	घृतोद्गार	जुउग्गारो	जुउग्गारु	जुगार
	सूत्रकार	सुत्तआरो	सुत्तआरु	सुतार

§४३१ (ऊ) निमाड़ी के ऊ स्वर की उत्पत्ति निम्नांकित स्वरों से हुई है-

(१) उ	दुग्धम्	दुद्ध	दुद्ध	दूध
	पुत्र	पुत्तो	पुत्तु	पूत
	फुल्लम्	फुल्ल	फुल्लु	फूल
	लशुनम्	लासुण	लसुणु	लसून
	शुष्क	सुक्क	सुक्क	सूको (सूखा)
(२) ऊ	ऊर्णम्	उन्न	उन्नु	ऊन
	चूर्ण	चुण्ण	चुण्ण	चून
	कर्पूर	कप्पूर	कप्पूरु	कपूर
	कर्चकः	कुच्चओ	कुच्चउ	कूची
(३) ऋ	पृच्छति	पुच्छइ	पुच्छइ	पूछे
(४) औ	पौष	—	—	पूस

§४३२ (ए) निमाड़ी के ए स्वर की उत्पत्ति निम्नांकित स्वरों से हुई है—

(१) अ	शय्या	सेज्जा	सेज्ज	सेज
	वल्ली	वल्ली	वल्लि	वेल

(२) इ	बिल्व	बिल्ल	बिल्लु	बेल
	छिद्र	छिद्द	छिद्दु	छेद
	नियम	—	—	नेम
(३) ए	क्षेत्र	खेत	—	खेत
	ज्येष्ठ	—	—	जेठ
	वेत्र	वेत्त	वेत्त	बेत
(४) ऐ	तैल्यम	तेल्ल	तेल्लु	तेल
	शैवाल	सेवालो	सेवालु	सेवाल
	गैरिक	गेरिश्रो	गेरिउ	गेऊश्रा

§४३३ (श्रो) श्रो की उत्पत्ति निम्नांकित स्वरों से हुई है—

	संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश	निमाड़ी
(१) श्र	चञ्चु	चोञ्च	चोञ्चु	चोच
(२) उ	कुष्ठ	कोट्ठ	कोढ़ु	कोढ़
	कुक्षि	कुक्खि	कुक्खु	कोख
(२) ऊ	मूल्य	—	—	मोल
	पुस्तक	—	—	पोथा
(४) श्रौ	श्रोष्ठ	श्रोट्ठ	श्रोट्ठु	श्रोठ
	घोटक	घोट्ट	घोट्टु	घोड़ा
	कोकिल	—	—	कोयल
(५) श्रौ	मौक्तिकम्	मोत्तिश्र	मौत्तिउ	मोती
	पौस्तिका	पौत्थिश्रा	पौत्थिश्र	पोथी
	गौर	गोर	गोर	गोर

निमाड़ी के व्यंजनों की उत्पत्ति

§४३४ जिस प्रकार हमें निमाड़ी के सभी स्वरों की उत्पत्ति संस्कृत के स्वरों से मिलती है, उसी प्रकार निमाड़ी के व्यंजनों की उत्पत्ति भी संस्कृत के विभिन्न व्यंजनों से ही मिलती है। व्यंजनों में निमाड़ी के क् की उत्पत्ति संस्कृत के निम्नांकित वर्णों से हुई है ;—

(१) क से—कर्म 7 काम, काक 7 कौश्रा, कार्तिक 7 कातिक, कैवर्त 7 केवट श्रादि।

(२) क्र से—क्रोश 7 कोस, क्रोड़ 7 कोरा (गोद)।

(३) कृ से—कृत्य 7 काम, कृष्ण 7 किसन ।

(४) क्व से—क्वाथ 7 काढ़ा, क्वचित 7 कदाचित।

(५) स्क से—स्कन्ध > कंधा।

(६) प्रा० क्क से—एक्क > एक, चिक्कण > चिकनो, चुक्क > चूक।

(७) र्क से – मर्कटक > मकड़ी।

(८) ष्क से – चतुष्क > चउक।

§४३५ (ख्) ख् की उत्पत्ति संस्कृत के निम्न वर्णों से हुई है—

(१) ख् से – खर्जूर > खजूर, खाद्य > खात, खर्पर > खप्पर, खनित्र > खन्ता।

(२) क्ष से – क्षेत्र > खेत, क्षीर > खीर, क्षार > खार, पक्ष > पख, मक्षिका > माखी।

(३) क – कीलक > खीला, कृषरिका > खिचड़ी।

(४) स्क – स्कम्भ > खंभ (खम्भा)।

(५) ष – वर्षा > बरखा।

(६) ष्क – पुष्कर > पोखर, शुष्क > सूखो।

§४३६ (ग्) निमाड़ी के ग् की उत्पत्ति संस्कृत के इन वर्णों से हुई है—

(१) ग – गल > गलो (गला), गर्दभ > गधा, गुण > गुन।

(२) ग्र – ग्राम > गाब (गाँव), ग्रन्थि > गाठ (गाँठ), ग्रहण > गिरहान, ग्रह > गिर्हा, अग्र > आगऽ।

(३) ग्न – अग्नि > आगी, नग्न > नागो (नंगा), लग्न > लगन।

(४) ग्य – भाग्य > भाग, योग्य > जोग।

(५) र्ग – गर्गर > घागर (गागर)।

(६) ल्ग – फाल्गुण > फागुन।

(७) क – शकुन > सगुन, लोक > लोग।

§४३७ (घ्) घ् की उत्पत्ति निम्नांकित वर्णों से हुई है—

(१) घ – घर्म > घाम, घोटक > घोड़ा, घृत > घीव।

(२) घ्र से – व्याघ्र > बाघ।

§४३८ (च्) च् की उत्पति निम्नांकित वर्णों से जान पड़नी है—

(१) च् – चन्द्र > चन्दा, चक्र > चाक, चौर > चोर, चञ्चु > चोंच।

(२) च्य – च्यंव > चूना।

(३) च्च – उच्च > ऊच (ऊँचा)।

(४) ञ्च – अञ्चल > आचल (आचर), पञ्च > पाच (पाँच)।

(५) त्य – सत्य > सच, नृत्य > नाच।

(६) स – लालसा > लालच।

§४३९ (छ) निमाड़ी के छ वर्ण की उत्पत्ति संस्कृत के निम्नांकित वर्णों से हुई है—

(१) छ – छत्र > छाता, छाया > छाव, छेदनिका > छेनी।

(२) ष – षट > छे (छः)

(३) क्ष – क्षत्रिय > छत्री, क्षुरिका > छुरी, क्षण > छन।

(४) च्छ – कच्छप > कछूवा।

(५) च – पश्चिम > पच्छिम, वृश्चिक > बिच्छू।

(६) श्र – श्मश्रु > मुच्छी (मूँछ, मूछ)

§४४० (ज) ज् की उत्पत्ति निम्न वर्णों से हुई है—

(१) ज् – जन्म > जलम्, जाल > जाल, जिव्हा > जीब (भ)।

(२) ज्य – ज्येष्ठ > जेठ।

(३) ज्व – ज्वर > जर, ज्वाल > जवाल।

(४) द्य – द्यूत > जुआ, आद्य > आज, वाद्य > बाजा।

(५) य – यन्त्र > जन्तर, यत्न > जतन, यम > जम।

(६) ज्ज – कज्जल > काजल, लज्जा > लाज, सज्ज > साज।

(७) ज्ज्व – उज्ज्वल > उजरो।

(८) ज्य – राज्य > राज, वाणिज्य > बनज।

(९) ञ्ज – गञ्ज > गंज, पञ्जर > पिंजरा।

(१०) य्य – शय्या > सेज।

(११) र्ज – खर्जूर > खजूर।

(१२) र्य – कार्य > काज, आर्य > आजा।

§४४१ (झ) झ की उत्पत्ति निम्नांकित वर्णों से हुई है—

(१) झ – झटिति > झट (शीघ्र)।

(२) ध्य – सन्ध्या > साँझ, बन्ध्या > बाँझ, मध्य > माँझ।

निमाड़ी में आदि 'झ' वाले शब्दों की अधिकता है, मध्य झ तथा अन्त्य झ वाले शब्द इसमें बहुत कम हैं। निमाड़ी के आदि झ वाले कुछ शब्द ये हैं—

झकझक, झमझम, झटको, झगड़ो, झड़ी, झटपट, झप (नींद) झमाझम, झरोको, झलमलो, झाँझ, झालर, झीरो (झरना), झूलो, झंडो, झुनझुनो, झमेलो, झासो (झांसा), झिंगुर, झुमका, झूट (ठ), झोको (झोका) आदि।

§४४२ (ट) निमाड़ी के ट् वर्ण की उत्पत्ति संस्कृत के निम्नांकित वर्णों से हुई है—

(१) ट – टङ्क > टाका, टङ्कशाला > टकसाल।

(२) त – तिर्यक > टेढ़ो (टेढ़ा)।

(३) त्र – त्रुट > टूटो।
(४) ट्ट – अट्टारिका > अटारी, कुट्टिणी > कुटनी।
(५) प्रा. ट्ट से – अट्ट > आटो (आटा), घट्ट > घाट, हट्ट > हाट।
(६) ट्व – खट्वा > खटिया।
(७) र्त – कैवर्त > केवट, कर्तरिका > कटारी।
(८) ऋ – मृत्तिका > मट्टी।
(९) र्त्म – वर्त्म > वाट (रास्ता)।
(१०) ष्ट – इष्ट > ईट।
(११) ण्ट – कण्टक > काटा, कण्टकारी > कटेरी (औषधोपयोगी एक जंगली पौधा)
(१२) ष्ट्र – उष्ट्र > ऊट।

§४४३ (ठ) निमाड़ी के ठ की उत्पत्ति निम्न वर्णों से हुई है—

(१) संस्कृत का स्थ से – स्थात्र > ठाट, स्थग > ठग।
(२) प्रा० का ठ > ठक्कुर > ठाकुर।
(३) ण्ठ – कण्ठिका > कंठी, शुण्ठि > सोंठ (सोठ)।
(४) न्थ – ग्रन्थि > गाँठ, मन्थर > मट्ठो (धीमे काम करने वाला)।
(५) ष्ठ – अंगुष्ठ > अंगूठो (ठा), ज्येष्ठ > जेठ, मिष्ठ > मीठो (ठा), धृष्ठ > धीठ, पृष्ठ > पीठ, श्रेष्ठ > सेठ।

§४४४ (ड) निमाड़ी के ड् व्यंजन की उत्पत्ति संस्कृत के इन वर्णों से हुई है—

(१) ड – डर > डर, डण्ड > डण्डो (डंडा), डौलिका > डोली, हण्ड > हाण्डी, मण्ड > माण्ड।
(२) द – दंश > डास, दण्ड > दांड।

निमाड़ी के ड से आरम्भ होने वाले अनेक शब्द ऐसे हैं, जिनमें प्रयुक्त ड की उत्पत्ति का पता लगाना कठिन है। ऐसे शब्दों को देशी शब्द कहना ही उचित होगा। डब्बा, डबरा, डाकन, डुग्गी, डमरु, आदि ऐसे ही शब्द हैं।

§४४५ (ड़) निमाड़ी में ड़ का भी प्रयोग होता है। इसकी उत्पत्ति संस्कृत के निम्नांकित वर्णों से है—

(१) ट् – घोटक > घोड़ा, अक्षवाट > अखाड़ा, पुटिका > पुड़ी (पुड़िया), शाटिका > साड़ी।
(२) ड्य – जाड्य > जाड़ो (जाड़ा)।
(३) प्रा० ड्ड > हड्ड > हाड़।
(४) ड – बड > बड़ा।

§४४६ (ढ) निमाड़ी के ढ व्यंजन की उत्पत्ति निम्नांकित वर्णों से हुई है—

(१) प्रा० का ढ – ढक्कणी 7 ढकनी, ढिल्ल 7 ढील।

(२) सं. का धृ – धृष्ठ 7 ढीट।

निमाड़ी में ढ का प्रयोग बहुत कम हुआ है। ढाचा, ढोंग, ढिबरी, ढब, ढरका, ढोलक आदि कतिपय शब्दों में ही हम इस व्यंजन का प्रयोग पाते हैं।

§४४७ (ढ़) निमाड़ी के कुछ शब्दों में ढ़ का भी प्रयोग मिलता है। इसकी उत्पत्ति निम्नांकित वर्णों से हुई है—

(१) प्रा० ढ – कढ़ 7 काढ़ा (औषध), गढ़ 7 गढ़।

निमाड़ी में प्राप्त सभी शब्दों में प्रयुक्त ढ़ की उत्पत्ति बतलाना सम्भव नहीं है। ड्योढ़ी, बढ़िया, कुढ़नो (कुढ़ना) आदि ऐसे ही शब्द हैं। इस लोक-भाषा में इस वर्ण का उपयोग भी बहुत कम हुआ है।

§४४८ निमाड़ी में 'ळ' वर्ण का भी प्रयोग मिलता है, जिसे इस लोक-भाषा की एक विशेष ध्वनि ही कहना चाहिए। इस ध्वनि का प्रयोग हिन्दी की राजस्थानी शाखा के अतिरिक्त अन्य किसी भी शाखा में नहीं होता। अन्य भारतीय भाषाओं में से मराठी, गुजराती, लहंदी, सिंधी और पंजाबी में इस वर्ण का उपयोग होता है। इनमें से पंजाबी में यह ध्वनि केवल बोलने में सुनाई देती है, लिखी नहीं जाती; शेष भाषाओं में लिखी भी जाती है। भारत की प्राचीन भाषाओं में से संस्कृत, पाली, प्राकृत और द्रविड़ भाषाओं में इसका प्रयोग मिलता है।

§४४९ श्री रामकृष्ण का मत है कि ट्, ठ्, ड्, ढ्, ळ् और ण् वर्ण वैदिक संस्कृत में रूढ़ थे। ये व्यंजन आर्यों के भारत आने के पश्चात् ही द्रविड़ों के सम्पर्क से उनकी भाषा से इनकी भाषा में आये होंगे। ये उच्चारण की दृष्टि से मूर्द्धन्य वर्ण हैं, जिनका उद्गम द्रविड़ भाषा से हुआ।[१]

§४५० इस वर्ण के सम्बन्ध में श्री ग. व. ग्रामोपाध्ये ने लिखा है कि 'ळ' वैदिक संस्कृत में है, पाणिनि संस्कृत में नहीं है। वैदिक संस्कृत के पश्चात् यह वर्ण पाली, प्राकृत में आता है। मराठी में इस वर्ण का प्रयोग बहमनी-काल में आरम्भ हुआ। यह वर्ण ज्ञानेश्वरी में नहीं है। इससे कुछ विद्वानों का मत है कि यह तेलगू, कानड़ी आदि दक्षिण भारतीय भाषाओं के संसर्ग से मराठी में आया होगा, किन्तु वास्तविकता यह है कि यह वर्ण द्राविड़ी से प्राचीन आर्य भाषा म आया और आर्य भाषा से पाली द्वारा मराठी में आया।[२]

1. Ramkrishniah : Studies in Dravidian Philology P. 49.
२. पेशवे दप्तरांतील मराठी भाषे चें स्वरूप, पृ० ५३।

§४५१ (त्) निमाड़ी के त् व्यंजन की उत्पत्ति संस्कृत के निम्नांकित वर्णों से हुई—

(१) संस्कृत का त—तन्तु > तात (ताँत) ताम्र > तामा (ताम्बा), ताम्बूल > तमोल, ताम्बूलिक > तमोली, तुम्ब > तूमा, तिल > तिल, सं. तैल > प्रा. तेल्ल-तेल, प्रोत > पुता ।

(२) त्र—त्रीणि > तीन, त्रयोदश > तेरा (तेरह), त्रुट > तोड़, क्षेत्र > खेत, पत्र > पत्ता, छत्र > छत्ता, राजपुत्र > रजपूत ।

(३) त्व—त्वरित > तुरत (तुरन्त) त्वम् > तू ।

(४) र्त—वर्तिका > बाती, वार्ता > बात, कार्तिक > कातिक ।

(५) क्त—पंक्ति > पात. (पाँत), मौक्तिक > मोती, भक्त > भगत ।

(६) त्त से—विपत्ति > बिपत, भित्ति > भीत, पित्तल > पीतल ।

(७) न्त से—दन्त > दात (दाँत), जन्त > जत ।

(८) न्त्र—अन्त्र > आत (आँत), निमन्त्रण > निवता (न्योता), तन्त्र > तन्त ।

(९) त्—यत्न > यतन, जतन, रत्न > रतन ।

(१०) प्त—सप्त > सात, तप्त > तातो ।

(११) र्थ—चतुर्थी > चउत, सार्थ > सात (साथ)।

§४५२ (थ) निमाड़ी के थ की उत्पत्ति संस्कृत के निम्न वर्णों से हुई है—

(१) स्त—स्तन > थन, स्तोक > थोड़ा, स्तर > थर, नस्तनिका > नथनी, पुस्तिका > पोथी, हस्त > हाथ ।

(२) स्थ—स्थाली > थाली, स्था > थाह, स्थिर > थिर ।

(३) न्थ > मन्थन > मथनो (ना), मन्थनी > मथनी, मथानी ।

(४) थ्व—पृथ्वी > पिरथी ।

निमाड़ी के थप्पड़, थूनी, थूक, थुतना आदि शब्दों में प्रयुक्त थ की उत्पत्ति का स्रोत नहीं मिलता ।

§४५३ (द) निमाड़ी के द की उत्पत्ति इन वर्णों से हुई है—

(१) द—दधि > दही, दुग्ध > दूध, दक्षिण > दक्खन ।

(२) द्र—द्रव्य > दरव, द्रोण > दोना, भाद्र > भादो, हरिद्रा > हलदी ।

(३) द्रु—दद्रु > दाद ।

(४) द्व—दो, द्विगुण > दुगनो, दूनो, द्विसर > दोसर, द्वितिया > दूज, द्विविधा > दुबधा ।

(५) ध – धातृ 7 दाई (धाय)

(६) र्द – चतुर्दश 7 चौदा (चौदह), चतुर्दशी 7 चौदश ।

§४५४ (ध) ध की उत्पत्ति संस्कृत के निम्नांकित वर्णों से जान पड़ती है–

(१) ध – धरित्री 7 धरती, धनुष 7 धनुस, धान्य 7 धान, धूम 7 धुवा (धुँवा), धूलि 7 धूल, धेनु 7 धेनु, धर्म 7 धरम ।

(२) ध्व – ध्वनि 7 धुन, ध्वंस 7 धूस (नाश) ।

(३) धृ – धृष्ठ 7 धीठ ।

(४) ग्ध – दुग्ध 7 दूध ।

(५) द्ध – बुद्ध 7 बुध ।

(६) र्द – गर्दभ 7 गधा ।

(७) र्ध – अर्ध 7 आध, आधो ।

(८) ध्र – गृध्र 7 गीध ।

§४५५ (प) निमाड़ी के प की उत्पत्ति निम्न वर्णों से हुई है––

(१) प से – पठन 7 पढ़नो (ना), पर्ण 7 पान, पक्ष 7 पख (पंख), पञ्च 7 पाच (पाँच) पाद 7 पाव (पाँव), पानीय 7 पानी, पुत्र 7 पूत, पुस्तिका 7 7 पोथी, पौष 7 पूस ।

(२) प्र – प्रग्रह 7 पघा (पगहा), प्रहर 7 पहर, प्रसर 7 पसरनो, प्रस्तर 7 पत्थर, प्रविष्ट 7 पैठ, प्राहुण 7 पाहुना ।

(३) प्प – पिप्पल 7 पीपल ।

(४) म्प – कम्प 7 कपनो (काँपना) ।

(५) त्म – आत्म 7 अपनो ।

(६) प्य – रौप्य 7 रूपो ।

(७) र्प – सर्प 7 साप (साँप), खर्पर 7 खपरा, कर्पास 7 कपास, कर्पूर कपूर, पर्पट 7 पापड़ ।

§४५६ (फ) फ की उत्पति संस्कृत के निम्नांकित वर्णों से मिलती है––

(१) फ–फल 7 फल, फाल्गुण 7 फागुन, फुल्ल 7 फूल, फेन 7 फेन ।

(२) प से – पाश 7 फास, फासा, परशु 7 फरसा ।

(३) स्फ से – स्फूर्ति 7 फुर्ती, स्फटिकरी 7 फिटकरी, स्फुट 7 फूट, स्फोट 7 फोड़नो (ना) स्फुरण 7 फुरन ।

§४५७ (ब) ब की उत्पत्ति संस्कृत के निम्नांकित वर्णों से हुई––

(१) ब – बधिर 7 बहिरो (रा), बिन्दु 7 बूंद, बाण 7 बान, बक 7 बगला, बद्ध 7 बंधो (धा), बर्गद 7 बड़, बोध 7 बोध ।

(२) ब्र – ब्राह्मण > बाम्हन ।

(३) व से – वधू > बहू, विंश > बीस, व्रत > बरत, वर्ज्य > बरज, विधि > बिधि, विधान > बिधान, विधाता > बिधाता, विपत्ति > बिपत ।

(४) व्य – व्याघ्र > बाघ, व्याख्यान > बखान, व्यवहार > ब्यौहार, व्यथा > बिथा, व्यजन > बिजना (पंखा) ।

(५) ड्व – षड्विंशति > छब्बीस ।

(६) भ से – भगिनी > बहेण (बहिन) ।

(७) म्ब – निम्बुक > नीबू ।

(८) र्ब से – दुर्बल > दुबलो ।

(९) र्व – दूर्वा > दूब, सर्व > सब ।

§४५८ (भ) निमाड़ी भ की उत्पत्ति संस्कृत के निम्न वर्णों से हुई है—

(१) भ – भक्त > भगत, भट्ट > भाट, भाद्र > भादो, भण्ड > भाण्ड, भिक्षा > भीख (क) भिण्ड > भेण्डी, भोग > भोग, शुभ > सुभ, भाग्य > भाग ।

(२) म – मांग > भांग, महिष > भइस, मेष > भेड़ ।

(३) भ्र – भ्रातृ > भाई, भ्रातृ जाया > भौजाई, भ्रमर > भौरा, भ्र > भौ ।

(४) भ्य – अभ्यन्त > भीतर, अभ्य > भीगनो ।

(५) र्भ – गर्भिणी > गाभन ।

(६) व्ह – जिव्हा > जीभ ।

(७) म्भ – स्कम्भ > खंभ ।

पंचम वर्ण

§४५९ पंचम वर्ण ङ, ञ, ण, न तथा म के निमाड़ी-प्रयोग के सम्बन्ध में पूर्वाध्याय में लिखा जा चुका है। इनमें से ङ तथा ञ का उपयोग निमाड़ी में नहीं होता। शेष अनुनासिक वर्णों ण, न तथा म का उपयोग होता है। इनमें से ण का उपयोग शब्दारम्भ में नहीं होता। इन वर्णो की उत्पत्ति भी अन्य व्यंजनों की तरह संस्कृत वर्णों से ही हुई है, जो निम्न प्रकार है—

§४६० निमाड़ी के ण की उत्पत्ति निम्नांकित संस्कृत वर्णों से हुई है—

(१) ण – ण-प्रयुक्त संस्कृत के निमाड़ी-गृहीत अधिकांश शब्दों में 'ण' के स्थान पर 'न' हो गया हैं। यथा—धरण > धरन, चरण > चरन, गणपति > गनपती, गणन > गन आदि ।

(२) इसके विपरीत निम्नांकित शब्दों में 'न' के स्थान पर 'ण' उच्चरित होता है—धनी > धणी, पनहारिन > पनहारेण आदि ।

§४६१ (न) न प्रयुक्त शब्दों में भी न के स्थान पर ण उच्चरित होता है। यथा – मन > मण (एक माप), जिन > जिण, जीमना > जीमणो, ज्योनार > जेवणार, कठिन > कठण, ननद > नणद, विन्ती > विणती आदि।

§४६२ निमाड़ी के न की उत्पत्ति संस्कृत के इन वर्णों से हुई है—

(१) न से – नियम > नेम, निर्धार > निरधार, निर्वाण > निवारन, नव > नवा, नप्तृ > नाती आदि।

(२) नृ से – नृ > नर, नृत्य > नाच।

(३) स्न से – स्नेह > नेह।

(४) ण से – अन्तःकरण > अन्ताकरन, कारण > कारन, प्रण > परन, बाण > बान, विष्णु > विस्नू, ब्राह्मण > बाम्हन, क्षण > छन, प्रांगण > आंगन।

(५) ण्य से – पुण्य > पुन्न, अरण्य > अरन, गण्य > गन।

(६) न्न से – अन्नाद्य > अनाज, भिन्न > भिन, खिन्न > खिन।

(७) न्य – धान्य > धान।

(८) र्ण से – कर्ण > कान, पर्ण > पान, चूर्ण > चून।

§४६३ (म) म की उत्पत्ति संस्कृत के निम्न वर्णों से हुई है—

(१) म – मुख > मूँ (मुँह), मुग्द > मूंग, मित्र > मीत, मूर्ख > मूरख, मेष > मेख, मत्स्य > माछरी।

(२) म्र – आम्र > आम, नम्र > नम, म्रक्षण > मक्खन, ताम्र > तामा।

(३) मृ – मृत्तिका > मट्टी, मृत्यु > मरन, मृग > मिरग, मृत > मरो (रा)।

(४) श्म – श्मशान > मसान, श्मश्रु > मूछ (मँूछ) > मूछी।

(५) म्ब – निम्ब > नीम, कम्बल > कमरो (रा), जम्ब > जामुन।

(६) म्भ – कुसुम्भी > कुसम्मी, खम्भ > खम, खाम।

(७) र्म – कर्म > काम, धर्म > धाम।

अन्तस्थ वर्ण

§४६४ य, र, ल, व अन्तस्थ वर्ण हैं। इनमें से य और व अर्घ स्वर माने जाते हैं। ये दोनों वर्ण प्राचीन तथा वर्तमान निमाड़ी में भी प्राप्त हैं और इनका वास्तविक उच्चारण भी किया जाता है। यमुना, यशोदा, यात्रा, यजमान, यव, योग आदि कुछ संस्कृत शब्द ही ऐसे हैं, जिनमें य के स्थान पर ज उच्चरित होता हैं। अन्य य प्रयुक्त शब्दों में यह वर्ण पूर्ण सुरक्षित है। यथा – यू (यह), यी (ये), याव (विवाह) याणी (सबेरा) आदि।

निमाड़ी में गृहीत विदेशी शब्दों में भी य पूर्ण सुरक्षित है। यथा – यकीन, याद, यतीम, यार आदि।

§४६५ (य) निमाड़ी के य की उत्पत्ति संस्कृत के निम्न वर्णों से हुई है—

(१) य – यक्ष > यच्छ, यत्न > यतन, यम > यम, यश > यस, याचना > याचना, योग्य > योग, योजन > योजन, योनि > योनी।

(२) थ – कथन > कयन (कहा), कथनी > कयनी।

(३) देशी ह – कहा > कयो, रहा > रयो, कह > कय।

§४६६ (र) निमाड़ी के र वर्ण की उत्पत्ति निम्नांकित वर्णों से हुई है—

(१) र – रात्रि > रात, रण्डा > रांड, राज्ञी > रानी, रौप्य > रूपा, अरण्ड > अरंडी, राज्य > राज, राजपुत्र > रजपूत आदि।

(३) ऋ – ऋषि > रिसी, ऋतु > रित, ऋद्धि > रिद्धि।

(४) द – द्वादश > बारा (बारह), सप्तदश > सतरा (सतरह, सत्रह)।

(५) त – सप्तति > सत्तर।

§४६७ (ल) निमाड़ी के ल की उत्पत्ति संस्कृत के इन वर्णों से हुई है—

(१) ल – लज्जा > लाज, लक्ष > लाख, लौह > लोहा।

(२) ड – षोडश > सोला (सोलह)।

(३) द्र – भद्र > भला, मद्र > माल, अद्र > आल।

(४) र – चत्वारिंशत > चालीस।

(५) र्द – छर्दि > छाल।

(६) र्ण – घूर्ण > घोल।

(७) ल्य – तैल्य > तेल, माल्य > माला, मूल्य > मोल।

(८) र्य – पर्यंक > पलंग।

(९) ल्ल – भल्लुक > भालू, भल्ल > भाल।

§४६८ (व) निमाड़ी के व की उत्पत्ति संस्कृत के व से ही हुई है, पर अधिकांश शब्दों में व का उच्चारण ब किया जाता है यथा – वन > बन, वट > बट, वन्दना > बन्दना, बन्ध्या > बांझ, वंश > बास, वंशी > बंसी, वचन > बचन, वज्र > बज्र, वज्जर > बजर, वणिक > बनिया, वत्स > बच्चो, बच्चा वदन > बदन, वराह > बराह, बऱ्हा, वल्कल > बक्कल, वाण > बाण, विघ्न > बिघन आदि।

ऊष्म वर्ण

§४६९ ऊष्म वर्ण श, ष, स तथा ह में से निमाड़ी में केवल स, ह वर्णों का ही प्रयोग होता है। इन दोनों वर्णों की उत्पत्ति भी संस्कृत वर्णों से ही निम्न प्रकार हुई है।

§४७० (स) स की उत्पत्ति निम्नांकित वर्णों से हुई है—

(१) श – कुशल > कुसल, आशा > आसा, शर्करा > सक्कर, श्राप > सराप, श्राद्ध > सराद (घ)। शुक्रवार > सुक्करवार, शनिवार > सनीचर, क्रोश > कोस, राशि > रासी आदि।

(२) ष – आषाढ़ > असाड़, पौष > पूस, अभिलाषा > अभिलासा आदि।

(३) स – सप्त > सात, सर्व > सब, सुमति > सुमती, सुप्त > सोयो (या), सुगन्धि > सुगंध, सूत्र > सूत, सौख्य > सुख आदि।

(४) र्श्व > पार्श्व > पास।

(५) र्ष > घर्ष > घास, घृष > घिसनो (ना)।

(६) श्य – श्यामल > सावलो, वैश्य > बैस।

(७) श्र – श्रावण > सावन, श्रेष्ठ > सेठ, श्वश्रु > सासू (सास)।

(८) श्व – श्वसुर > ससुर, सूसर, श्वास > सास (सांस)।

(९) ष्य – मनुष्य > मनुस, भविष्य > भविस।

(१०) स्म – विस्मरण > विसरनो (ना), स्मरण > सुमरन।

(११) स्य – आलस्य > आलस, कांस्य > कासा (काँसा)।

(१२) स्र – स्रोत > सोतो (ता)।

(१३) स्व – स्वर > सुर।

§४७१ (ह) ह की उत्पत्ति निम्न वर्णों से हुई है—

(१) ह – हरिण > हिरन, हस्त > हाथ, हल > हल, हीरक > हीरो (रा), हरिद्रा > हलदी, लोह > लोहा, बाहु > बाह (बाँह)।

(२) ध – बधिर > बहिरो (रा), वधू > बहू।

(३) भ – सौभाग्य > सोहाग, गभीर > गहरो (रा)।

हकार का आगम

§४७२ बतलाया जा चुका है कि निमाड़ी के व्यंजनों की उत्पत्ति संस्कृत के विभिन्न वर्णों से हुई है, किन्तु इस सम्बन्ध में यह कह देना आवश्यक है कि ये व्यंजन संस्कृत से सीधे निमाड़ी में नहीं आए, वे अन्य आ. भा. आ. भा. की बोलियों की तरह निमाड़ी में भी प्राकृत और अपभ्रंश से होते हुए आए हैं, जिससे म. भा. आ. भा. की प्रकृति का भी उन पर प्रभाव पड़ा है। संस्कृत की कुछ अल्पप्राण ध्वनियों का महाप्राण में परिवर्तन इसी प्रभाव का कारण है। आदि के अघोष स्पर्श व्यंजन का महाप्राण में परिवर्तन प्राकृत की एक विशेषता है, जैसा कि हम खर्पर > खप्पर, पनस > फनस, कसित > खसिय, किंकिणि > खिंखिणि आदि शब्दों में देखते हैं। प्राकृत की यह प्रवृत्ति हमें निमाड़ी में भी दिखाई देती है। यथा—कील > खील, पाश > फास, परखि > परखी, वाष्प > बाफ > भाप, कुठार > कुल्हाड़ > खुराड़ (कुल्हाड़ी) आदि।

§४७३ इन अल्पप्राण वर्णों के महाप्राण में परिवर्तन होने के कारणों पर भाषा शास्त्री एक मत नहीं हैं। डा० भण्डारकर इस परिवर्तन का कारण एक व्यंजन के समीप एक महाप्राण ध्वनि का होना बतलाते हैं। (विल्सन फिलालाजिकल लेक्चर्स पृ० १८९) डा० ब्लाश इस महाप्राणत्व का कारण स् तथा र् का संयोग मानते हैं और डा० चाटुर्ज्या इसका कारण अन्य बोलियों के शब्द-रूपों का मिश्रण तथा अनुकरण-मूलक ध्वनियों की मस्तिष्क में संदिग्ध उपस्थिति कहते हैं। (बें० लें० २३६)। जो हो, पर हम न केवल निमाड़ी में वरन प्रायः सभी आ. भा. आ. भाषाओं तथा उनकी बोलियों के अनेक शब्दों में भी कुछ अल्पप्राण ध्वनियों को महाप्राण में परिवर्तित होते देखते हैं।

हकार का लोप

§४७४ हकार का लोप निमाड़ी की विशेष उल्लेखनीय प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति पश्चिमी हिन्दी की अन्य बोलियों में भी दिखाई देती है, पर उनमें निमाड़ी जैसा बाहुल्य नहीं है। इस सम्बन्ध में पूर्वाध्याय में लिखा जा चुका है।

घोष और अघोष वर्ण

§४७५ हमें निमाड़ी में कुछ ऐसे शब्द भी मिलते हैं, जिनमें हम घोष वर्णों को अघोष में तथा अघोष वर्णों को घोष वर्णों में परिवर्तित देखते हैं। यथा—

घोष से अघोष – भगिनी 7 बहिण, दण्ड 7 डंड 7 डांड आदि।

अघोष से घोष – प्रकट 7 परगट, शकुन 7 सगुन, शाक 7 साग आदि।

वर्ण-विपर्यय

§४७६ अन्य भारतीय बोलियों की तरह हमें निमाड़ी में भी वर्ण-विपर्यय के उदाहरण मिलते हैं। यथा—अलग-अगल, दिनडूबे-डिडूबे, गरुड़-गड़ुड़, अलगाव-अगलाव आदि।

प्रा. भा. आ. भा. की ध्वनियों का निमाड़ी में लोप

§४७७ निमाड़ी में ध्वनि-लोप के उदाहरण अनेक हैं यथा—

क् का लोप – चर्मकार 7 चमार, कुम्भकार 7 कुम्हार, स्वर्णकार 7 सुनार, चित्रकार 7 चितार, नकुल 7 नेवलो।

ग् का लोप – कोष्ठागार 7 कोठार, समगन्धक 7 सेंधो (सेंधव), शृगाल 7 सियार।

च् का लोप – सूचिका 7 सुई, बचन 7 बैन।

ज् का लोप – राजिका 7 राई, भाजन 7 भांडो, भोजिक 7 भोई।

त् का लोप – पीत > पीलो, पिवळो, मात > मा, माय, मृतक > मरो (रा) घृत > घिव, घी ।

द् का लोप – रुदन > रोनो, पद > पाव (पाँव), खदिर > खैर ।

य् का लोप – व्याख्यान > बखान, ज्येष्ठ > जेठ, व्याघ्र > बाघ, श्यामल > सावलो, ज्योति > जोत ।

र् का लोप – ग्राम > गाव (गाँव), ग्रन्थि > गाट (गाँठ), प्रस्तर > पत्थर, भ्रातृ > भाई ।

व् का लोप – ज्वलति > ज़लनो (ना), ज्वलन > जलन, श्वास > साँस, द्वार > दार, द्वि > दो आदि ।

स् का लोप – स्कम्भ > खंब, स्तम्भ > थमनो (ना), स्कन्द > कंधो (धा), स्नेह > नेह, स्नान > नहान ।

—:o:—

सातवाँ अध्याय

रूप-तत्व (विकारी शब्द)

(१) संज्ञा

शब्दारम्भ

§५७८ निमाड़ी के संज्ञा–शब्दों का आरम्भ स्वरों और व्यंजनों दोनों से होता है। यथा–

अ से – अग्गल (कड़ी), अतर, अमरित, अरघ (अर्घ्य), अहीवन (अभिमन्य), अंगठी (अंगूठी), अंधार (अंधेरा)।

आ – आगी (अग्नि), आखी (आँख), आदो (अदरक), आम्बा (आम)।

इ – इद्या (विद्या), इंधारो (अंधेरा), इलायची, इसवर (ईश्वर)।

ई – ईंगुर, ईंधन, ईसर (ईश्वर)।

उ – उन्द्रा (चूहा), उन्हाला (ग्रीष्म), उपरनो (गमछा), उमराव।

ऊ – ऊखल (ऊखल), ऊन।

ए – एखंड (बच)।

ओ – ओठला (बाहरी बैठक)।

क – कटको (टुकड़ा), कड़ (करवट), कमाण (धनुष), करम (भाग्य)।

ख – खटलो (स्त्री), खाटला (खटिया), खोबरा (नारियल की गरी।

ग – गऊर (गौर), गद्धा (गधा), गलो (गला), गवलेण (ग्वालिन)।

घ – घट्टी (चक्की), घऊँ (गेहूं), घाटो (पेज), घाम (धूप)।

च – दा (चन्द्र), चाटू (चटवा), चामड़ा (चमड़ा), चूड़ो (चूड़ा)।

छ – छानी (छप्पर), छाव (छाया), छेड़ा (घूँघट), छोरा (लड़का)।

ज – जलम (जन्म), जनेई (यज्ञोपवीत), जवाल (ज्वाला), जीव (प्राण)।

झ – झप (नींद), झाली (झारी), झूलो (झूला), झर (जल-स्रोत)।

ट – टाको (टांका), टाट (जूट का कपड़ा, टाळव (तालू), टोंगड्या (घुटना)।

ठ – ठापुर (घोड़े की टाप), ठाय (स्थान), ठेकाण (ठिकाना)।

ड – डंगरा (खरबूजा), डांडला (डंठल), डाबो (डब्बा), डेडर (मेंडक)

ढ – ढांडो (ज्वार का सूखा वृक्ष), ढाकनो (ढक्कन), ढोट्ट (चोट)।

त – तबलो (पानी तपाने का बर्त्तन), तम्बूरो (तम्बूरा), तामा (ताम्बा)।

थ – थर (ऊपरी तह), थाव्ठ (थाली), थानो (पोलिस-स्टेशन) ।

द – दग्गड़ (पत्थर), दमामो (नगारा), दवणी (दोहनी), दुल्लव (दूल्हा) ।

ध – धड़ (किनार), धणी (स्वामी), धिंगाण (ऊधम), धुंदी (नशा) ।

न – नणद (ननद), नथ (नथनी), नद्दी (नदी), न्हार (शेर), निसाण (निशान)।

प – पख (पंख), पटिल (पटेल), परात (बड़ी थाली), पाग (पगड़ी) ।

फ – फव्ठ (फल), फल, फोतरा (छिलका) ।

ब – बईण (बहिन), बजारी (व्यापारी) बंदड़ा (दूल्हा), बयड़ी (पहाड़ी)।

भ – भगत (भक्त), भरम (भ्रम), भरस (भरोसा), भोर (सबेरा) ।

म – मंडल (मण्डल), मच्छी (मछली), मयल (महल), मसलो (सलाह)।

य – याणी (सबेरा) याव (विवाह) ।

र – रजपूत (राजपूत), रयटो (चर्खा), राकस (राक्षस), रुंगनो (हल या बखर की ऊपर की खड़ी लकड़ी) ।

ल – लगीण (लग्न), लटको (नखरा), लाकड़ी (लकड़ी), लुगड़ो (सोलह हाथ की साड़ी) ।

व – वऊ (बधू), वीज (बिजली), वय (उम्र), वाटकी (कटोरी) ।

स – सई (सखि), संजा (सांझ), सरग (स्वर्ग), सावन (श्रावण), सास (साँस) ।

ह – हूर (हल), हाड़ (हड्डी) हर्‍ (बकरी), हुजर्‍या (नौकर), होलई (होली) ।

§४७९ निमाड़ी के संज्ञा–शब्दों का अन्त भी स्वरों और व्यंजनों दोनों में होता है । यथा—

आ – दिआ (दीपक), कउआ (कौआ), सुआ (तोता) ।

इ – मकइ (मक्का—एक अनाज), कखइ (कंघी), समइ (एक प्रकार का दीप-स्तम्भ) ।

ई – सई (सखि), गधई (गधी), कव्ठई (कली), बढ़ई, जनेई ।

उ – गउ (गाय), वउ (बधु)।

ऊ – भाऊ (भाई), कऊ (कहू—एक जंगली वृक्ष) ।

क – धाक (डर), धमक (बल), नाक, नोक, भूक (भख) ।

ख – आखी (आंख), राखड़ (राख) काख (बगल) ।

ग – साग, मूंग, मुरगो (मुर्गा), सींग, भाग (भाग्य) ।

घ – जाँघ, बाघ ।

च—काच (काँच), आच (आँच), माच (मचिया)।
छ—गमछो (गमछा), माछ (मछली)।
ज—राज, बाजो (बाजा), राजा, दरवाजो (दर्वाजा)।
ट—टाट, वाट (रास्ता), खाट, भाट।
ड—किवाड़ (कपाट), डांडो (डण्डा), भाडो (बर्तन)।
त—बरात, परात (बड़ी थाली), भात (पका चांवल), दवात (दावात)।
थ—माथो (सिर), माथ (मथानी)।
द—नद्दी (नदी), नांद (पानी धरने का मिट्टी का एक बर्तन), खांद (कंधा)।
ध—बांध (बंधान), सांध (मोरी)।
न—मसान (श्मशान), धनवान, कान, धान, पान, सुन्नो (सोना)।
प—नाप, साप (सांप), भाप (भाफ)।
फ—गोफ।
ब—राब (पतला गुड़), साहेब (साहब), जीब (जीभ)।
भ—गरभ (गर्भ)।
म—धरम, काम, मामो (मामा)।
र—कुम्हार, मार, धार, हार।
ल—छाल, मोल (मूल्य), पखाल, सालो (स्त्री का भाई)।
व—तलाव (तालाब), नाव, घिव (घी), पाव।
स—बास (गंध), सासू (सास), नस, जस (यश)।

निमाड़ी में अन्त्य झ के स्थान में ज और अन्त्य ढ के स्थान में ड उच्चरित होता है। यथा—सांझ—सांज, दाढ़—दाड़। इसीलिए उपर्युक्त सूची में इन व्यंजनों के अन्त्य शब्द नहीं दिये गये हैं।

निमाड़ी में और ह अन्त वाले संज्ञा-शब्द नहीं हैं। जिन संज्ञा शब्दों के अन्त में हिन्दी में ह होता है, वहां निमाड़ी में व उच्चरित होता है। यथा—विवाह—याव, छाह—छाव आदि।

संज्ञा के रूप

§४८० पश्चिमी हिन्दी की बुन्देली बोली में संज्ञा के दो रूप होते हैं—लघु और गुरु। यथा—चमार—चमरा, घोरा—घुरवा आदि, पर निमाड़ी में खड़ी बोली की तरह केवल एक ही रूप होता है। यथा—चमार, घोड़ो आदि।

संज्ञा के प्रकार

§४८१ हिन्दी की अन्य बोलियों की तरह निमाड़ी के भी संज्ञा-शब्द

पाँच प्रकारों में विभाजित किए जा सकते हैं—व्यक्तिवाचक, जातिवाचक, समूहवाचक, द्रव्यवाचक और भाववाचक। यथा—

(१) व्यक्तिवाचक—राम, गंगा, नरबदा, हिमालय आदि।

(२) जातिवाचक—घोड़ो, बइल, गाय, कुत्तो, नदी या नद्दी, धोबी, गांव, सहर (शहर) आदि।

(३) समूह वाचक—बजार (बाजार), सभा, मेलो (मेला) आदि।

(४) द्रव्य वाचक—सोनो या सुन्नो (सोना), लोहो (लोहा), चांदी, गहूँ या घऊँ (गेहूँ), घी या घिउँ, सक्कर (शक्कर) आदि।

(५) भाव वाचक—उजाळो (उजाला), अंधेरों या अंधार (अंधेरा) मूरखता या मुरखताई (मूर्खता), चतराइ (चतुराई) आदि।

संज्ञा-शब्दों की विशेषताएँ

§४८२ निमाड़ी के संज्ञा-शब्दों में निम्नांकित विशेषताएँ मिलती हैं:-

(१) व्यक्ति वाचक संज्ञा शब्दों के रूप में कोई अन्तर नहीं होता, वे हिन्दी के व्यक्ति वाचक संज्ञा शब्दों की तरह ही रहते हैं। यथा—राम, श्याम, सीता, गोमती, गंगा, इंदौर, सतपुड़ा आदि।

(२) हिन्दी के अधिकांश आकारान्त जाति वाचक संज्ञा शब्दों का एक वचन रूप ब्रज, बुन्देली की तरह निमाड़ी में भी ओकारान्त होता है। यथा—

घोड़ो, गधो, कुत्तो, बकरो, माथो, छोरो, दादो, बच्चो, मूंढो आदि।

(३) अकारान्त, इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त, ऊकारान्त आदि संज्ञा शब्द हिन्दी के समान ही निमाड़ी में भी व्यवहृत होते हैं। यथा—कमळ, खटइ, मावली, बउ, महू आदि।

(४) समूह वाचक, द्रव्यवाचक और भाववाचक शब्द भी जब एक वचन के रूप में आते हैं, तब वे निमाड़ी में ओकारान्त ही बोले जाते हैं। यथा—मेलो, (समूहवाचक), लोहो, तांबो (द्रव्यवाचक) और अंधेरो, उजेळो (भाववाचक)।

लिंग

§४८३ पश्चिमी हिन्दी की अन्य बोलियों की तरह निमाड़ी के संज्ञा-शब्द भी या तो पुल्लिग होते हैं या स्त्रीलिंग। प्राणवान और प्राणहीन सभी प्रकार के संज्ञा-शब्द इन्हीं दो में से किसी एक लिंग में होते हैं। यथा—

आदमी, गधो, कुत्तो, पलंग, लोटो (लोटा) आदि पुल्लिग और छोरी, घोड़ी, कुत्ती, खाट, थाली आदि स्त्रीलिंग शब्द हैं।

पुल्लिंग संज्ञा-शब्द (प्राणिवाचक)

§४८४ निम्नांकित प्राणिवाचक शब्द पुल्लिग होते हैं :–

(१) पुरुषों के नाम—गोपाल, दामोदर, बालाराम. रामराव आदि।

(२) कुछ मनुष्येतर प्राणी पुल्लिग ही होते हैं। यथा–कौआ, नीलकण्ठ, तीतर, उल्लू, चीता, खटमल, कछुआ आदि।

(३) प्राणियों के समूहवाची संज्ञा-शब्द-कुटम (कुटुम्ब), वंश, परवार (परिवार), समाज, झुण्ड आदि।

इसके विपरीत–पंचायत, टोली, सभा, भीड़ स्त्रीलिंग शब्द हैं।

(अप्राणिवाचक)

§४८५ निम्नांकित अप्राणिवाचक संज्ञा शब्द पुल्लिग होते हैं।

(१) अप्राणिवाचक ओकारान्त शब्द—घड़ो, लोटो, कुरतो, पहियो आदि।

(२) सब ग्रहों और ताराओं के नाम—सूरज, मंगल, राहू, बुध, सनि आदि।

(३) सब धातुओं के नाम—सुन्नो, लोहो, तामो, पारो, पीतल, कासो आदि। इसके विपरीत चांदी स्त्रीलिंग है।

(४) सब पहाड़ों के नाम—विंध्याचल, सतपुड़ा, हिमालय आदि।

(५) सब वृक्षों के नाम–आम, जाम, सगोन, पलसा, गुलाब, बेल, कबीट आदि। इसके विपरीत इमली, जामुन, नीम और चमेली स्त्रीलिंग शब्द है।

(६) अधिकाँश पतले पदार्थों के नाम पुल्लिंग होते हैं–पानी, घिव, दही, मही, सिरको, सरबत आदि। इसके विपरीत स्याही स्त्रीलिंग है।

(७) रत्नों के नाम–हीरो, पन्नो, मोती, पुखराज आदि।

(८) सब मासों और दिनों के नाम–फागुन, चैत, वैसाख, बुधवार, बस्तरवार, सुक्करवार आदि।

(९) सब देशों और प्रदेशों के नाम–अमेरिका, जपान, रूस, भारत, पंजाब, बंगाल, मध्यप्रदेश आदि।

(१०) सब समुद्रों के नाम–अरब सागर, लाल सागर, हिंद महासागर आदि।

(११) अधिकांश अनाजों के नाम–बाजरा, घऊँ (गेहूँ), चना, उड़द, मका आदि। इसके विपरीत मसूर, तुवर, जवारी (ज्वार), मूंग स्त्रीलिंग हैं।

(१२) वे शब्द जिनके अन्त में आन, आर, आय आस तथा आव हो–खाणपान, लगाण, मिलान, मकान, इनकार, दरबार, उपाय, हुलास, पयराव (पहिराव) बनाव आदि। इसके विपरीत–सरकार, मिठास, खटास और बुरास स्त्रीलिंग हैं।

स्त्रीलिंग संज्ञा (प्राणिवाचक)

§४८६ निमाडी के निम्नांकित प्राणिवाचक संज्ञा शब्द स्त्रीलिंग होते हैं–

(१) स्त्रियों के नाम–गौरी, गोमती, सुहागा, लक्ष्मी, सीता आदि।

(२) कुछ मनुष्येतर प्राणी स्त्रीलिंग ही होते हैं। यथा—माखी (मक्खी), चीटी, कोयल, चील, मछली, मैना, रीछ आदि।

अप्राणिवाचक

§४८७ निम्नांकित अप्राणिवाचक संज्ञा शब्द स्त्रीलिंग होते हैं :–

(१) कुछ ईकारान्त संज्ञा शब्द–घड़ी, छड़ी, नदी, बोली, चिट्ठी, हसी (हँसी), लकड़ी, ककड़ी, गठड़ी, छुरी आदि।

जी (प्राण), पानी, घी, मोती, दही, मही, इसके अपवाद है।

(२) वे भाव वाचक संज्ञा-शब्द जिनके अन्त में आई, ता, वट और हट हो–सिलाई, बुनाई, धनकाई, चिकनाई, दुस्टता, दयालुता, लिखावट, दिखावट, घबराहट, चिल्लाहट। इसके विपरीत पता और लता पुल्लिंग शब्द हैं।

(३) वे अप्राणिवाचक शब्द, जिनके अन्त में त हो–रात, बात, जात, लात, छत, भीत, पत (इज्जत) आदि।

भात, खात, दात, खेत, सूत इसके अपवाद हैं।

(४) निमाड़ी में प्रयुक्त निम्नांकित तत्सम और अर्धतत्सम शब्द स्त्रीलिंग हैं–दया, माया, किरपा (कृपा), छमा (क्षमा), वेदना आदि।

(५) सकारान्त संज्ञा शब्द–प्यास, मिठास, रास, बास आदि।

निकास और कास (कांस) अपवाद हैं।

(६) क्रिया से बने नकारान्त संज्ञा-शब्द–रहन, सूजन, जलन, पयचान (पहिचान) आदि।

(७) कृदन्त की कुछ अकारान्त संज्ञाएं–लूट, दौड़, रगड़, चमक, छाप आदि।

खेल, नाच, मेल, बिगाड़, बोल इसके अपवाद हैं।

(८) कुछ खकारान्त संज्ञाएँ–भूख, राख, चीख, लाख आदि।

(९) सब नदियों के नाम–गंगा, नरबदा (नर्मदा), तप्ती (ताप्ती), गोदावरी, कावेरी आदि।

(१०) सब तिथियों के नाम—दूज, तीज, चउत, ग्यारस, बारस, अमावस (अमावश्या), पुन्नो (पूर्णिमा) आदि।

(११) कुछ फारसी से गृहीत तकारान्त शब्द—दौलत, कसरत, अदालत, दहसत (दहशत), हजामत आदि। इसके विपरीत तखत, बखत, दस्खत, बन्दोबस्त शब्द पुल्लिग हैं।

(१२) फारसी से गृहीत कुछ ईकारान्त शब्द—गरीबी, बीमारी, चालाकी, सरदी, गरमी, ईमानदारी आदि।

(१३) फारसी से गृहीत कुछ आकारान्त शब्द—हवा, जमा, दवा, सजा, दुनिया आदि। इसके विपरीत दगा पुल्लिग है।

लिंग सम्बन्धी अन्य विशेषताएं

§४८८ निमाड़ी की लिंग सम्बन्धी अन्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं :—

(१) प्राणिवाचक युग्म संज्ञा-शब्दों में प्रथम शब्द पुल्लिग और द्वितीय शब्द स्त्रीलिंग होता है। यथा—छोरो-छोरी, भाई-बहेण, घोड़ो-घोड़ी, कुत्तो-कुत्ती आदि।

इसके विपरीत निम्नांकित शब्दों में प्रथम शब्द स्त्रीलिंग और द्वितीय पुल्लिग है :—

माता-पिता, स्त्री-पुरुस, सीता-राम, राधा-किसन आदि।

(२) निमाड़ी के यौगिक शब्दों के लिंग उनके अन्तिम शब्द के लिंग अथवा प्रत्यय से जाने जाते हैं। यथा—मारनवालो, मारनवाळी। प्रथम शब्द का अन्तिम शब्द पुल्लिग और द्वितीय का अन्तिम शब्द स्त्रीलिंग है। अतः प्रथम पूर्ण शब्द पुल्लिग और द्वितीय पूर्ण शब्द स्त्रीलिंग है।

पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने के नियम—

§४८९ निमाड़ी के पुल्लिग शब्द निम्न प्रकार स्त्रीलिंग बनाए जाते हैं :—

(१) निमाड़ी के कुछ शब्द ईकारान्त कर देने से स्त्रीलिंग बन जाते हैं। यथा—

हिरन-हिरनी	सूंगर-सुंगरी
देव-देवी	बादल-बदली
दास-दासी	कामर-कामरी
पापड़-पापड़ी	कुदाळ-कुदाळी

इसके विपरीत कुछ अकारान्त शब्दों में 'नी' लगाने से वे स्त्रीलिंग बनते हैं। यथा—शेर-शेरनी, ऊट-ऊटनी, मोर-मोरनी, गरीब-गरीबनी आदि।

(२) कुछ ओकारान्त शब्द भी ईकारान्त कर देने से स्त्रीलिंग बन जाते हैं। यथा—

कुत्रो-कुत्री	काको-काकी
गधो-गधी	मौसो-मौसी
बकरो-बकरी	भतीजा-भतीजी
छोरो-छोरी	चेलो-चेली

इसके विपरीत भांजा का स्त्रीलिंग भानिज होता है।

(३) व्यवसायवाची अकारान्त पुल्लिग शब्द के अन्त में 'एण' लगा देते हैं। यथा—

सुनार-सुनारेण	चमार-चमारेण
लुहार-लुहारेण	कुम्हार-कुम्हारेण
सुतार-सुतारेण	जमादार-जमादारेण
ग्वाल-ग्वालेण	अहिर-अहिरेण

इसके विपरीत कुछ अकारान्त शब्द 'इन' लगाने से स्त्रीलिंग बनते हैं। यथा—मालिक-मालकिन, सेवक-सेवकिन आदि।

(४) कुछ व्यवसायवाची ईकारान्त शब्दों को इकारान्त कर उसके आगे 'न' प्रत्यय लगा देने से वे स्त्रीलिंग बन जाते हैं। यथा—

धोबी-धोबिन	पुजारी-पुजारिन
तेली-तेलिन	नाई-नाइन
तमोली-तमोलिन	भंगी-भंगिन

(५) कुछ प्राणिवाचक पुल्लिग शब्दों के आगे 'आणी' प्रत्यय लगाने से वे स्त्रीलिंग बन जाते हैं। यथा—

सेठ-सेठाणी	देवर-देवराणी
जेठ-जेठाणी	मेहतर-मेहतराणी

(६) कुछ ऐसे पुल्लिग शब्द भी हैं, जिनका स्त्रीलिंग सर्वथा पृथक् है। यथा—राजा-रानी, भाई-भौजाई आदि।

स्त्रीलिंग से पुल्लिंग बनाने के नियम—

§४९० निमाड़ी के कुछ स्त्रीलिंग शब्द इस प्रकार पुल्लिग बनते हैं :—

(१) कुछ प्राणिवाचक स्त्रीलिंग शब्दों में 'ओई' लगाने से वे पुल्लिग हो जाते हैं। यथा—नणद-नणदोई, बहेण-बहणोई।

(२) कुछ स्त्रीलिंग शब्दों के पुल्लिग शब्द सर्वथा पृथक् होते हैं। यथा-
ाप, रांड-रंडवा, गाय-बल आदि।

निमाड़ी के लिंगों का विकास

४९१ प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में तीन लिंग थे—पुल्लिग, स्त्रीलिंग
पुंसक लिंग, जो मध्य भारतीय आर्य भाषा में दो ही रह गए। प्राकृत
करणकारों ने नपुंसक लिंग स्वीकार न किया। उन्होंने सभी शब्दों को
पुरुषवाची शब्दों और स्त्रीवाची शब्दों में भी विभक्त माना। आधुनिक
य आर्यभाषाओं में से गुजराती और मराठी के अतिरिक्त अन्य सभी
ों में भी प्राकृत की तरह दो ही लिंग स्वीकार किए गए हैं। मध्य भारतीय
ाषा में नपुंसक लिंग के लोप होने के कारण पर प्रकाश डालते हुए
ाबूराम सक्सेना ने लिखा है कि "प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में
ार्जीव पदार्थों में भी सजीव पदार्थों की तरह पुल्लिग और स्त्रीलिंग थे।
ाकार कुछ सजीव पदार्थ भी ऐसे थे जिन्हें निर्जीव पदार्थों की तरह
पर उनमें नपुंसक लिंग माना जाता था। यथा—'कलत्रम्' (स्त्री जाति)।
ार्जीव पदार्थों को सजीव की तरह मानने की प्रवृत्ति ही नपुंसक लिंग
ा के मूल में जान पड़ती है। तीन भावना (Substratum) का
भी नपुंसक लिंग के लोप का एक कारण हो सकता है।[1]"

ाहे जो कारण हो, पर हम प्राकृत-युग से ही नपुंसक लिंग का लोप कर
ा और स्त्रीलिंग ही मानने की प्रवृत्ति देख रहे हैं, जो आज भी वर्तमान है।

ु४९२ आ. भा. आ. भाषा ने संस्कृत के नपुंसक लिंग की उपस्थिति
ार नहीं की, पर हम देखते हैं कि संस्कृत में जिन निर्जीव पदार्थवाची
को जिस लिंग में स्वीकार किया है, उन्हें आ. भा. आ. भाषा ने भी
लिंग में स्वीकार किया है। यथा—संस्कृत के वार्ता और मृत्तिका शब्द
ा. आ. भा. की एक बोली निमाड़ी में बात और माटी या मिट्टी हो गए,
शब्द निमाड़ी में भी संस्कृत के मूल शब्दों के लिंग के अनुसार स्त्रीलिंग
संस्कृत के हस्त और दन्त निमाड़ी में हात और दात होने पर भी पुल्लिग
ाने जाते हैं।

यहाँ यह स्मरणीय है कि हिन्दी की अन्य बोलियों की तरह निमाड़ी के
ाधिकांश निर्जीववाची ईकारान्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं। इसकी इस

---

1. Dr. B. R. Saxena—Evolution of Awadhi (Indian Press,
llabab) 1937. P. 117.

विशेषता के कारण संस्कृत के कुछ पुल्लिग शब्द निमाड़ी में ईकारान्त हो जाने पर स्त्रीलिंग हो गए हैं। यथा—'अग्निः' संस्कृत में पुल्लिग है, पर इसका निमाड़ी रूप 'आगी' ईकारान्त होने से स्त्रीलिंग माना जाता है।

अपवाद—(क) पानीय > पानी, मुक्ता > मोती ईकारान्त होने पर भी पुल्लिग हैं। (ख) नाव, बास, हार, मार, जय अकारान्त होने पर भी स्त्रीलिंग हैं।

§४९३ संस्कृत के प्रायः सभी नपुंसक लिंग शब्द हिन्दी की अन्य बोलियों की तरह निमाड़ी में भी पुल्लिग माने जाते हैं। यथा—फलम् > फल, दधि > दही, घृत > घिव आदि।

§४९४ निमाड़ी में जो शब्द विदेशी भाषाओं से गृहीत हुए हैं, वे पुल्लिग और स्त्रीलिंग दोनों हैं। ऐसे शब्दों का लिंग-निर्धारण उन शब्दों के पर्याय-वाची अथवा समीपवर्ती सम्बन्धित शब्दों के लिंगों के आधार पर हुआ है। यथा—अँग्रेजी का 'रेल' (Railway) 'गाड़ी' की तरह एक वाहन है। निमाड़ी में गाड़ी स्त्रीलिंग है; इसलिए रेल शब्द का प्रयोग भी स्त्रीलिंग में ही किया जाता है। इसी प्रकार अरबी का 'किताब' शब्द निमाड़ी के 'पोथी' शब्द का समीपवर्ती है। निमाड़ी में पोथी स्त्रीलिंग है, इसलिए निमाड़ी में स्वीकृत अरबी का किताब शब्द भी स्त्रीलिंग है।

अपवाद—अंग्रेजी के कोट और कार्ड के अर्धतत्सम रूप कोरट और कारड या कारट निमाड़ी में प्रचलित हैं। इनके समीपवर्ती सम्बन्धित शब्द क्रमशः कचेरी या पंचायत और चिट्ठी है जो स्त्रीलिंग हैं, पर कोरट और कारड पुल्लिंग ही माने जाते हैं।

§४९५ विदेशी भाषाओं से गृहीत जिन शब्दों के कोई समीपवर्ती सम्बन्धित शब्द निमाड़ी में नहीं है, उन शब्दों के लिंग उनके रूप के अनुसार होते हैं। यथा—अंग्रेजी के बोर्ड (Board), कमीटी (Committee), सोसाइटी (Society) के लिए निमाड़ी में बोरड, कुमेटी और सुसायटी प्रचलित हैं, किन्तु निमाड़ी में इनके समीपवर्ती सम्बन्धित शब्द नहीं हैं; अतः बोरड अकारान्त होने से पुल्लिंग और कुमेटी तथा सुसायटी ईकारान्त होने से निमाड़ी की लिंग सम्बन्धी विशेषता के अनुसार स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं।

इसके विपरीत फारसी के मौत, नीलाम (निमाड़ी—लिल्लाम), इकरार आदि शब्द निमाड़ी में भी उनके फारसी लिंग में ही माने जाते हैं।

§४९६ संस्कृत में कुछ ऐसे पुल्लिंग शब्द हैं, जिनका स्त्रीलिंग अकारान्त को ईकारान्त कर देने से हो जाता है। देव-देवी, दास-दासी, हरिण-हरिणी

ऐसे ही शब्द हैं। संस्कृत की इसी प्रवृति के अनुसार निमाड़ी के अकारान्त शब्द भी ईकारान्त करके स्त्रीलिंग बनाए गए हैं। उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त पूर्व उदाहरणों का पापड़-पापड़ी शब्द भी संस्कृत के पर्पट-पर्पटी के ही निमाड़ी रूप हैं।

निमाड़ी के लिंग-प्रत्ययों की व्युत्पत्ति—

§४९७ जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है (अनु० ४८८) हमें निमाड़ी में पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने में ई, वी, एण, इन और आणी प्रत्ययों का प्रयोग मिलता है। इनमें से निमाड़ी के 'ई' प्रत्यय की व्युत्पत्ति प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के 'इका' प्रत्यय से–इका 'इ' ई; नी प्रत्यय की व्यत्पत्ति से 'इन' से इन; एण और आणी प्रत्यय की व्युत्पत्ति प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के 'आनी' से हुई है।

वचन

§४९८ पश्चिमी हिन्दी की अन्य बोलियों के समान निमाड़ी बोली में भी दो वचन होते हैं—एकवचन और बहुवचन। किन्तु एक वचन से बहुवचन बनाने के नियम आधुनिक हिन्दी से बिलकुल भिन्न हैं और उनका हिन्दी की तरह विस्तार भी नहीं है।

§४९९ एकवचन से बहुवचन बनाने के मुख्य नियम निम्नांकित हैं—

(१) ओकारान्त संज्ञा शब्दों को आकारान्त करके ब्रज और बुन्देली की तरह उसके आगे "न्" प्रत्यय लगा कर उनके बहुवचन रूप बनाए जाते हैं। यथा—घोड़ान्, छोरान्, गधान्, बकरान् आदि।

यहाँ यह स्मरणीय है कि खड़ी बोली के सभी आकारान्त संज्ञा शब्द निमाड़ी में ओकारान्त होते हैं।

(२) एकवचन अकारान्त संज्ञा शब्द बहुवचन में भी या तो अकारान्त ही रहते हैं या उनके आगे 'न्' प्रत्यय लग जाता है। यथा—

एकवचन	बहुवचन
एक मनुस (मनुष्य)	चार मनुस या मनुसन्
एक हव्ठ (हल)	चार हव्ठ या हव्ठन
एक दवात	चार दवात या दवातन्
कागद (कागज)	कागदन्
चोर	चोरन्
चाकर	चाकरन्

(३) आकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त और ऊकारान्त एकवचन शब्द भी बहुवचन में ज्यों के त्यों रहते हैं या उनके आगे 'न्' प्रत्यय लग जाता है। यथा—

आकारान्त—कन्या-कन्यान्, माता-मातान्, माळ्‌ठा-माळ्‌ठा या माळ्‌ठान्।

ईकारान्त—गाड़ी-गाड़ी या गाड़ीन्, घोड़ी-घोड़ी या घोड़ीन्, मांळ्‌ठी-माळ्‌ठी या मान्लीन्, हत्ती-हत्तीन्, तेली-तेली या तेलीन् आदि।

उकारान्त—बउ-बउन्।

ऊकारान्त—बाबू-बाबू या बाबून्।

(४) कभी-कभी एकवचन संज्ञा शब्द को बहुवचन में बोलने के लिए एकवचन के आगे 'होण' शब्द भी लगाया जाता है। यथा—बहेण-बहेणहोण, माता-माताहोण आदि।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि निमाड़ी में एकवचन से बहुवचन रूप मुख्यतः 'न' प्रत्यय लगाकर ही बनाया जाता है।

रूप-रचना

§५०० हिन्दी की अन्य बोलियों की तरह निमाड़ी की संज्ञाओं के भी दो रूप होते हैं—मूलरूप और विकृतरूप।

(क) मूल रूप एकवचन—

§५०१ निमाड़ी की मूल रूप एकवचन संज्ञाएँ स्वरान्त अथवा व्यंजनान्त होती हैं। यथा—छोरा स्वरान्त और साप व्यंजनान्त है। शब्दान्त में कोई भी प्रयुक्त हो सकने वाले स्वर और व्यंजन आ सकते हैं। निमाड़ी के सभी व्यंजनान्त एकवचन मूल संज्ञाशब्दों का विकास प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की अकारान्त संज्ञाओं से हुआ जान पड़ता है। यथा—कर्म 7 काम, शृंग 7 सींग, तैल्य 7 तेल, मौक्तिक 7 मोती, कर्पूर 7 कपूर, हरिण 7 हिरण या हरण आदि।

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है खड़ी बोली के प्रायः सभी आकारान्त संज्ञा-शब्द निमाड़ी में ओकारान्त उच्चरित होते हैं। (अनु० ४६०) ब्रज, बुन्देली तथा राजस्थानी की बोलियों में भी यह प्रवृत्ति विद्यमान है। तदनुसार प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के संज्ञा शब्दों से विकसित निमाड़ी की अनेक मूल एकवचन संज्ञाएँ भी ओकारान्त ही होती हैं। यथा—घोटक 7 घोड़ो, स्वर्ण 7 सोनो या सुन्नो, चर्म 7 चमड़ो, पाश 7 फासो आदि।

(ख) मूल रूप बहुवचन—

§५०२ मूल रूप एकवचन ओकारान्त संज्ञा शब्दों के बहुवचन रूप में अन्त्य 'ओ' 'आ' में परिवर्तित हो जाता है। यथा—घोड़ो-घोड़ा।

खड़ी बोली में 'घोड़ा' शब्द एकवचन है, पर निमाड़ी में वह एकवचन 'घोड़ो' का बहुवचन रूप है।

(ग) विकृत बहुवचन—

§५०३ ब्रज और बुन्देली में विकृत रूप बहुवचन संज्ञाओं के अन्त्य अ और इ स्वर कभी-कभी अनुनासिक हो जाते हैं, किन्तु निमाड़ी में इनमें कोई परिवर्तन न कर आ के आगे 'न' प्रत्यय लगा दिया जाता है। यथा—

ब्रज-बुन्देली—बिछिया-बिछियाँ, रोटी-रोटीं।

निमाड़ी—बिछिया-बिछियान, रोटी-रोटीन।

ब्रज और बुन्देली में कभी-कभी ऊकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों के बहुवचन रूप में 'ऊ' को ह्रस्व कर उसके आगे 'एँ' लगा देते हैं, पर निमाड़ी में ऐसे शब्दों में भी केवल 'न' ही जोड़ दिया जाता है। यथा—ब्रज-बुन्देली-बहू-बहुएँ। निमाड़ी-वऊ-वऊन।

व्यंजनान्त विकृतरूप बहुवचन संज्ञाएँ एकवचन-रूप में 'अन्' प्रत्यय लगाने से बन जाती हैं। यथा—जाम-जामन्, ईट-ईटन्।

निमाड़ी के वचनों का विकास

§५०४ संस्कृत में एकवचन, द्विवचन और बहुवचन तीन वचन हैं, किन्तु आ. भा. आ. भा. की सभी बोलियों में केवल दो वचन—एकवचन और बहुवचन ही हैं। यह परिवर्तन आधुनिक नहीं है। प्राकृत-काल में ही द्विवचन का लोप हो गया था। प्राकृत के ढंग पर ही उसके पश्चात् के विभिन्न अपभ्रंशों तथा उनसे उद्भूत भाषाओं और बोलियों में भी दो रूप माने गए हैं। वचन के ये ही दो रूप हमें निमाड़ी में भी मिलते हैं।

§५०५ प्राचीन भारतीय आर्यभाषा-काल से आ. भा. आ. भाषा-काल तक जो ध्वनि-विकास होता रहा, उसके फल-स्वरूप प्रा. भा. आ. भा. के बहुवचन प्रत्यय सुरक्षित न रह सके। आ. भा. आ. भाषा में प्रा. भा. आ. भा. के पुल्लिग प्रथमा बहुवचन के प्रत्यय का लोप इसी ध्वनि-विकास का परिणाम है। यथा एकवचन पुल्लिग पुत्र आ. भा. आ. भा. में पूत हो जाने पर उसका बहुवचन रूप पुत्राः प्रा. भा. आ. भा. में पूताः न होकर पश्चिमी हिन्दी ब्रज और बुन्देली की तरह निमाड़ी में भी पूतन हो गया। इसी प्रकार स्त्रीलिंग मालाः का भी इन बोलियों में बहुवचन रूप मालान हो गया है। यहाँ भी आः प्रत्यय का लोप है।

कर्ता और कर्म के अतिरिक्त कारकों में भी हमें आधुनिक भारतीय आर्य भाषा में प्रा. भा. आ. भा. के बहुवचन प्रत्यय का लोप मिलता है। निमाड़ी के निम्नांकित उदाहरणों में भी हम यही देखते हैं :—

कारक	संस्कृत	निमाड़ी
करण-अपादान	घोटेभिः	घोड़ान-सी
सम्बन्ध कारक	घोटकानाम्	घोड़ान को, का, की

निमाड़ी में एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए मुख्यतः 'न' प्रत्यय का ही प्रयोग होता है। निमाड़ी के इस बहुवचन-प्रत्यय की व्युत्पत्ति प्रा. भा. आ. भाषा के सम्बन्ध-कारक प्रत्यय अनाम् से ही जान पड़ती है। ध्वनि विकास के साथ इस 'अनाम्' प्रत्यय का व्रंज, बुन्देली और निमाड़ी में 'न' अथवा 'अन्' में रूपान्तर हो गया है।

§५०६ इसी प्रकार संस्कृत (प्रा. भा. आ. भा.) में कर्ता एकवचन का प्रत्यय 'स्' (:) है, जो शौरसेनी प्राकृत में 'ओ' तथा अपभ्रंश में 'उ' में परिवर्तित हुआ, किन्तु पदान्त स्वर-लोप-प्रवृत्ति के कारण हिन्दी और उसकी बोलियों में इस प्रत्यय का लोप हो गया और शब्द का प्रतिपादित रूप ही व्यवहृत होने लगा। निमाड़ी में कर्ता के अतिरिक्त अन्य कारकों के एकवचन में भी प्रतिपादित शब्दों का ही व्यवहार होता है। यथा—छोरा (सी, कालेण, को, म), माय (सी, कालेण, को, म) आदि।

§५०७ मध्यभारतीय आर्य भाषा-काल में प्रा. भा. आ. भाषा के सम्बन्ध कारक प्रत्यय 'स्य' के स्थान में ह तथा अधिकरण कारक प्रत्यय 'स्मिन्' के स्थान पर 'हिं' का प्रयोग होने लगा था। अ को, अओ अन्त वाले शब्दों में हि, हिं के जुड़ने के पश्चात् 'ह' के लोप से अइ शेष रह गया, जो पश्चिमी हिन्दी में 'ए' में विकसित हुआ। यथा—लड़के को, से के लिए, का आदि। पर निमाड़ी के सभी कारकों में शब्दों का प्रतिपादित रूप ही व्यवहृत होता है : यथा—छोरा, बाप, घर आदि। इन एकवचन शब्दों के रूप में किसी भी कारक के साथ कोई विकार नहीं होता।

निमाड़ी का बहुवचन 'होण' प्रत्यय संस्कृत के 'गण' शब्द का पर्यायवाची है। बुन्देली में भी 'होर' प्रत्यय का निमाड़ी के 'होण' प्रत्यय की तरह प्रयोग होता है। दोनों बोलियों के प्रत्ययों में बहुत कुछ समानता है, पर ये प्रत्यय कहाँ से आए कहना कठिन है।

कारक

§५०८ हिन्दी की तरह निमाड़ी में भी सभी कारकों का उपयोग होता है, किन्तु उनकी विभक्तियाँ हिन्दी से भिन्न निम्न प्रकार होती हैं जो इस प्रकार हैं:—

कारक	विभक्तियाँ	उदाहरण
कर्ता	न	राम-न
कर्म	ख	राम-ख
करण	सी	राम-सी
सम्प्रदान	ख, कालेण	राम-ख, राम-कालेण
अपादान	सी	राम-सी
सम्बन्ध	का, को, की	राम-का, राम-को, राम-की
अधिकरण	म, पर, उप्पर	घर-म, घर-पर, घर-उप्पर
सम्बोधन	अरे, ओ	अरे पोर्‌या, ओ दाजी

सूचना—कर्म कारक की विभक्ति 'ख' है, पर बोलचाल में (विशेष) कर मध्यभारतीय निमाड़-भाषी क्षेत्र में 'ख' के स्थान पर 'क' भी कहा जाता है। यथा राम-ख' के स्थान में 'राम-क'।

§५०९ यदि हम इन विभक्तियों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करें, तो हम देखते हैं कि ये सब हिन्दी, गुजराती, पंजाबी और सिंधी आदि आर्य-परिवार की भाषाओं के विभक्ति-प्रत्ययों से बहुत कुछ साम्य रखती हैं। उदाहरणार्थ निमाड़ी के कर्ता की विभक्ति 'न' है, वह हिन्दी की 'ने', गुजराती की 'ए', मराठी की 'ने' और पंजाबी की 'ने' विभक्ति के सदृश ही है।

निमाड़ी में कर्म की एक वचन की विभक्ति 'ख' है, जो हिन्दी के 'को' सिंधी के 'खे' और बंगला के 'के' विभक्ति-प्रत्यय के समान हैं।

निमाड़ी की करण कारक एक वचन की विभक्ति 'सी', हिंदी के 'से', गुजराती के 'सूँ' और मराठी के 'शी' विभक्ति-प्रत्यय के समान है।

सम्प्रदान एक वचन विभक्ति 'कालेण', हिन्दी की 'के लिये' मराठी की 'करिताँ', और पंजाबी की 'लई' विभक्ति के समान हैं।

अपादान एक वचन विभक्ति 'सी' करण कारक की विभक्ति के समान ही है।

हिन्दी की सम्बन्ध कारक की विभक्तियों का, के, की के स्थान पर निमाड़ी में का, को, की का प्रयोग होता है।

अधिकरण कारक की निमाड़ी विभक्ति 'म' हिन्दी की इसी कारक की विभक्ति 'में', गुजराती 'मां' के समान है।

इस प्रकार हम निमाड़ी के कारकों में स्पष्ट रूप से अन्य आर्य-भाषाओं के लक्षण देखते हैं।

§५१० निमाड़ी में एक वचन से बहुवचन बनाने के लिये एक वचन संज्ञा शब्द के आगे 'न' लगा देते हैं, तदनुसार बहुवचन-रूप-सहित कारकों की विभक्तियाँ निम्न प्रकार हो जाती हैं :—

कारक	बहुवचन	उदाहरण
कर्ता	नन	छोरान-न
कर्म	नख या नाख	छोरान-ख, या छोराना-ख
करण	नासी	छोरा-नासी
सम्प्रदान	नाख या कालेण	छोरानाख, छोंरान-ना, छोरा-कालेण
अपादान	नासी	छोरा-नासी
सम्बन्ध	नाका, नाको, नाकी	छोरा-नाका, छोरा-नाको, छोरा-नाकी
अधिकरण	नम, नापर, ना उप्पर	छोरान-म, छोरान-पर, छोरान उप्पर।

संज्ञा शब्दों की कारक-रचना

§५११ निमाड़ी में हिन्दी की तरह ही कारक-रचना होती हैं, उसके बहुवचन रूप और विभक्तियों की भिन्नता के कारण ही तदनुसार परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ दो पुल्लिग 'छोरा' तथा 'मनुस' और दो स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द 'छोरी' तथा लुगई 'शब्दों की कारक-रचना यहाँ दी जा रही है।

	कारक	एक वचन	बहुवचन
छोरी—	कारक	एक वचन	बहुवचन
	कर्ता	छोरा, छोरा-न	छोरा, छोराना-न
	कर्म	छोरा-ख	छोराना-ख
	करण	छोरा-सी	छोराना-सी
	सम्प्रदान	छोरा-ख, छोरा कालेण	छोरान-ख, छोराना-कालेण
	अपादान	छोरा-सी	छोराना-सी
	सम्बन्ध	छोरा-का, को, की	छोराना-का, को, की
	अधिकरण	छोरा-म, पर, उप्पर	छोराना-म, पर, उप्पर
	सम्बोधन	अरे छोरा	ओ छोराहोण
मनुस—	कर्ता	मनुस-न	मनुसन-न
	कर्म	मनुस-ख	मनुसन-ख
	करण	मनुस-सी	मनुसन-सी
	सम्प्रदान	मनुस-कालेण	मनुसन-कालेण
(मनुस)	अपादान	मनुस-सी	मनुसन-सी
	सम्बन्ध	मनुस-का, के, की	मनुसन-का, को, की
	अधिकरण	मनुस-म, पर, उप्पर	मनुसन-म, पर, उप्पर
	सम्बोधन	अरे मनुस	ओ मनुस होण

छोरी--कर्ता	छोरी-न	छोरीन-न
कर्म	छोरी-ख	छोरीन-ख
करण	छोरी-सी	छोरीन-सी
सम्प्रदान	छोरी-कालेण	छोरीन-कालेण
अपादान	छोरी-सी	छोरीन-सी
सम्बन्ध	छोरी-का, को, की	छोरीन-का, को, की
अधिकरण	छोरी-म, पर, उप्पर	छोरीन-म, पर, उप्पर
सम्बोधन	ओ छोरी	ओ छोरी-हुण (होण)
लुगई--कर्ता	लुगई-न	लुगईन-न
कर्म	लुगई-ख	लुगईन-ख
करण	लुगई-सी	लुगईन-सी
सम्प्रदान	लुगई-कालेण	लुगईन-कालेण
अपादान	लुगई-सी	लुगईन-सी
सम्बन्ध	लुगई-का, को, की	लुगईन-का, को, की
अधिकरण	लुगई-म, पर, उप्पर	लुगईन-म, पर, उप्पर
सम्बोधन	ओ लुगई	ओ लुगईन, लुगई होण।

निमाड़ी काकर का प्रयोग

(अ) कर्ताकारक

§५१२ आ. भा. आर्य भाषा तथा उनकी बोलियों की तरह निमाड़ी में भी कर्ता के दो रूप होते हैं--

मूल (विभक्ति-हीन) और विकृत (विभक्ति-युक्त)--

मूल-कर्ता-कारक

(१) किसी वस्तु के उल्लेख मात्र में--पाप, पुन्न, छोरो, लुगई।

(२) उद्देश्य के अर्थ में--पानी गिर्‌यो, बाबू काम करेगो।

(३) उद्देश्य-पूर्ति में--बड़ो बाबू साहेब बन गयो, पटील को छोरो चोर निकल्यो।

(४) स्वतन्त्र कर्ता के अर्थ में--घर जलीन खाक हुई गयो, रात भई न पावणा (मेहमान) आई गया।

(५) स्वतन्त्र उद्देश्य-पूर्ति के रूप में--ओको पंच बणनो कोई खनी भायो, मरदख लुगई को गुलाम नी बणनो चहिजे।

(६) नहाणो, छीकनो, खासनो आदि कुछ शरीर-व्यापार सूचक क्रियाओं के भूतकालिक कृदन्त से बने कालों के अतिरिक्त शेष अकर्मक क्रियाओं

एवं बकनो, भूलनो आदि कुछ सकर्मक क्रियाओं के सब कालों में प्रधान कर्ता ही प्रयुक्त होता है। यथा—हाउँ जाऊँज, छोरी खात हती, ऊ कई नी बोल्यो।

(२) विकृत कर्ता कारक

(१) विशेषत: उद्देश्य के अर्थ में ही विकृत कर्ता कारक का प्रयोग होता है। यथा—नौकर-न गाय लाई, म-नऽघहूँ बोयो छे, रामू-नऽअमी चूल्हो जलायो।

(२) बोलनो, भूलनो, लानो, समझनो आदि सकर्मक क्रियाओं के अतिरिक्त शेष सकर्मक क्रियाओं के एवं नहानो, छीकनो, खासनो आदि अकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक कृदन्त से बने सब कालों के साथ विकृत कर्ता कारक का प्रयोग होता है। यथा—दमड़ू-न बाम्हन-ख बुलायो, म-नऽऊ (ओ)-खऽनी देख्यो।

(३) निमाड़ी में विकृत कर्ता कारक का प्रयोग निम्नांकित संयुक्त सकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक कृदन्त से बने कालों के साथ भी होता है :—

(अ) अनुमति-सूचक-ओ-नऽम-खऽबोलन नी दियो।

(आ) इच्छा-द्योतक-माली-नऽबगीचो लेनो चायो।

(इ) अवधारण बोधक—जब उसका उत्तरार्द्ध सकर्मक हो—दगड़ु-नऽ पाठ पढ़ी लियो, चोर-नऽसिपाई-खऽमार डाल्यो, छोरी-न तेल गिरा दियो।

(ब) कर्म कारक

§५१३ कर्म भी दो रूपों में प्रयुक्त होता है—मूल कर्म और विकृत कर्म।

(१) मूल कर्म कारक

(१) मुख्य कर्म के रूप में—सीता—नऽकायनी (कहानी) कही, तुम-नऽ गाय धुई (दुही)।

(२) कर्म की पूर्ति के रूप में—राजा-नऽफकीर—खऽराज दे दियो, हूऊँ तारा (तेरा) बाप-ख मारो (म्हारो-मेरा) बाप समझू हूँ।

(३) अकर्मक क्रियाओं के साथ सजातीय कर्म के रूप में—तूच असो नाच नच, गोपाल—नऽओ—खऽ खूब मार मारी।

(४) अपरिचित अथवा अनिश्चित कर्म के रूप में—म—नऽशेर देख्यो, दाजी एक छोरी ढूंडी (ढी) रया छे।

(२) विकृत कर्मकारक

(१) निश्चित कर्म के रूप में—मास्तर—नऽ छोरान—खऽ मार्यो, मिजमान-ख बठाड़ो।

(२) व्यक्तिवाचक कर्म के रूप में—हऊं मोहन—खऽ जाणूज।

(३) अधिकारवाचक कर्म के रूप में—सिपाई साधू—खऽ ढूंडी (ढी) रयाज।

(४) सम्बन्धवाचक कर्म के रूप में—बाप—नऽ बेटा—खऽ बुलायो।

(५) मनुष्यवाची सार्वनामिक कर्म के रूप में—डाकू तुम—खऽ पकड़ी लई जायगा, वी तुम—खऽढूंडी (ढी) रयाज ?

(६) कर्मवाच्य के भावे प्रयोग के उद्देश्य के रूप में—फिर ओ—खऽ जइलखाना—मऽकोंड दियो, कबी-कबी (भी) हम—ख बी बुला लेत जाओ।

(७) संज्ञा के समान प्रयुक्त किये जाने वाले विशेषण शब्दों में—धनवाला—खऽ कोन नी बुलावऽ, गरीब—खऽ कोन पूछऽ।

(८) बुलानो, सुलानो, जगानो आदि कुछ रूढ़ और यौगिक क्रियाओं के साथ भी गौण कर्म आता है—ऊ घोड़ा—खऽ सजावऽ छे, माय बालक—खऽ सुवाड़ऽ छे, ओ—खऽ मत जगाओं।

(स) करण कारक

§५१४ निमाड़ी में करण कारक का प्रयोग निम्न रूपों में होता है :—

(१) साधन के रूप में—बन्दूक—सी शेर मार्‌यो, पैसा—सी सब कई मिळ सकऽ।

(२) कारण-दर्शन के लिए—इद्या (विद्या)—सी मान बढ़ऽ, मेहनत—सी पैसा जुड़ऽ।

(३) रीति—प्रदर्शन के रूप में—मारी (म्हारी—हमारी) बात ध्यान—सी सुणो, धीरज—सी काम लेओ।

(४) परिवर्तन—सूचना में—ऊ का—सी का हो गयो, बालू चोर—सी सबकार (साहुकार) बन गयो।

(५) दशा—दर्शन में—साहेब हिरदा—सी बड़ी दयालु छे, ऊ सुभाव (स्वभाव)—सी खरो छे।

(६) कर्मवाच्य, भाववाच्य और प्रेरणार्थक क्रियाओं के कर्ता रूप में—रामू—सी उठो नी जाय, यू काम म—सी नी होई सकेगा, चोर—सी घर की रखाई, नौकर—सी खेती कराई।

(७) कहनो, पूछनो, बोलनो आदि क्रियाओं के साथ गौण कर्म के रूप में गबरु—नऽमारा—सी असो नी कह्‌यो, भीम भाई—नऽ नौकर—सी सब बार्ता (वार्ता) पूछी, तुम म—सी या बात मत बोलो।

(द) सम्प्रदान कारक

§५१५. निमाड़ी में सम्प्रदान कारक का प्रयोग निम्नांकित रूपों मे होता है—

(१) द्विकर्मक क्रिया के गौण कर्म के रूप में–सेठ–नऽबाम्हण–खऽ दान दियो, ग्वाला–नऽगाय–खऽचारा डाल्यो ।

(२) अपूर्ण सकर्मक क्रिया के मुख्य कर्म के रूप में–राम गोपाल–ख अपनो भाई बतावज, ऊ–बाप–खऽगँवार समझऽ।

(३) उद्देश्य प्रदर्शन में—भगवान–नऽदेखतन–खऽडोव्ठा (आँख) दियें छे, शोभा कालेण बगीचा लगावणो पड़ऽ, म–खऽरहन कालेण घर होणो ।

(४) अवधारण के अर्थ में मुख्य क्रिया की क्रियार्थक संज्ञा के साथ सम्प्रदान कारक का प्रयोग होता है--हऊं चिट्ठी लिखन कालेण बठोज, लड़का खेलन कालेण गया छे।

(५) निम्नांकित संयुक्त क्रियाओं के साथ उद्देश्य प्रायः सम्प्रदान कारक में आते हैं :--

(क) आवश्यकता बोधक क्रिया के साथ--तुम–खऽयू (यह) काम करनो पड़ेगा।

(ख) पड़नो और आणो (आनो) क्रियाओं के योग से बनी अवधारण बोधक क्रियाओं के साथ–ओकी दसा देखीन मखऽरोनो आई–पड्यो।

(ग) देणो या पड़नो क्रियाओं से बनी संयुक्त क्रियाओं के साथ--म–ख बाजो सुणाई पड्यो, ओ–खऽगरीब-अमीर एकसा दिखाई पड़ज।

(इ) अपादान कारक

§५१६. निमाड़ी में अपादान कारक का प्रयोग इन रूपों में होता है--

(१) काल अथवा स्थान बतलाने के लिए--हुऊँ खरगोन–सी आयो, ऊ काल-सी घर नी छे।

(२) भिन्नता बतलाने के लिए—झाड़–सी फव्ठ पड़्यो, गाव–सी बरात चली गई।

(३) तुलना के लिए—यू घर–सी ऊच घर अच्छो छे, तू–ओ–सी बढ़ीन नी हुई सकज ।

(४) निर्धारण के लिए—इना कपड़ा–म–सी तु (तो)–ख कोणसो पसंत छे ? म्हारा–म–सी कितराक आदमी हूयाँ–सी चला गया।

(५) मांगनो, लेनो, बचनो, रोकनो आदि क्रियाओं के स्थान अथवा कारण-दर्शन में–बुरा—सी बचीन चलो, ओ–नऽ (व–न) म–सी रुपया लई गया।

(६) बायेर (बाहर), दूर, आगऽ (आगे) अव्ययों के साथ—घर-सी बायेर जाणू पाप छे, मारो खेत गाव-सी दूर छे, खेत-सी आगऽ अंगल छे।

(क) सम्बन्ध कारक

§५१७. सम्बन्ध कारक का प्रयोग अन्य कारकों से अधिक व्यापक है। निमाड़ी में निम्नांकित स्थितियों में इस कारक का प्रयोग होता है :—

(१) अधिकार प्रदर्शन में—म्हारो गाव, बापको धन, छोरान-का बाप।

(२) सम्बन्ध व्यक्त करने में—घरो का अदमी, थारो घर, हात की अंगठी।

(३) कार्य-कारण भाव में—ईंट का घर, सुन्ना का जेवर, लकड़ी का किवाड़।

(४) पारिवारिक सम्बन्ध के व्यक्तीकरण में—पटील को छोरो, म्हारो छोटो भाई।

(५) आधाराधेय भाव में—चमारन को पुरो (मोहल्ला), घिव को घड़ो, नद्दी को पानी।

(६) गुण-गुणी भाव में—फउज (सेना) की बड़ाई, भरोसा को नौकर, मक्खन की चिकनाई।

(७) सेव्य-सेवक भाव में—भगवान को भगत, मालक को नौकर, गाव (गांव) को जोसी।

(८) प्रयोजन-प्रदर्शन में—खेती का बइल, पीवन को पानी, बठन को ओठलो।

(९) परिमाण-प्रदर्शन में—दो हात की जघा (जगह), चार खंडी को खेत, कम उचाई को घर।

(१०) बाह्य-वाहक भाव में—गाड़ी को घोड़ो, छकड़ा का बइल, भैंसा की गाड़ी।

(११) मूल्य-प्रदर्शन में—रुपया का दो सेर घऊं, दो टका को अदमी, चार पैसा का चाउर।

(१२) काल अथवा अवस्था बतलाने में—जूना जमाना की बात, चार बरीस की छोरी।

(१३) सम्पूर्णता-प्रदर्शन के लिये—घर का घर, गाँव का गाव, कोठा का कोठा।

उपर्युक्त उदाहरणों में द्वितीय घर, गाव और कोठा शब्दों का प्रयोग बहुवचन में हुआ है। हिन्दी में सम्बन्ध कारक की विभक्ति 'को' बहुवचन में 'के' हो जाती है, पर निमाड़ी की सम्बन्ध कारक की एक वचन विभक्ति 'को' है, जो बहुवचन में 'का' हो जाती है। यही कारण है कि निमाड़ी के आकारान्त संज्ञा-शब्द, जो हिन्दी के एकवचन-से दिखाई देते हैं, वे निमाड़ी में वास्तव में बहुवचन में प्रयुक्त हैं।

(१४) अवधारण के अर्थ में—रांड की रांड गई, चार हात को घागरो बी गयो।

(१५) नियमितता-प्रदर्शन में—हप्ता का हप्ता, महिना का महिना, फागुन का फागुन।

(१६) विशेषता-प्रदर्शन में—कान को कच्चो, बात को धणी, जबान को पक्को।

(१७) असम्भावना व्यक्त करने के अर्थ में सम्बन्ध कारक प्रायः 'नी' (नहीं) के साथ आता है—या बात नी होन की, ऊ नी मरन को, ऊ ठिकाणा को नी रह्यो।

(१८) क्रियार्थक संज्ञा और भूतकालिक कृदन्त जब विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं, तब सम्बन्ध कारक दूसरे कारकों का प्रतिनिधित्व करने लगता है। यथा—

कर्त्ता के रूप में—भगवान को दियो सब कई छे।
कर्म के रूप में—म्हारा गाव की लूट मची छे।
करण के रूप में—भूक को मारो का नी करऽ।
अपादान के रूप में—डार को चूको बंदर, बाट (मार्ग) को भूलो अदमी।
अधिकरण के रूप में—खेत को उपजो अनाज, घर की बिगड़ी लुगाई।

(१९) क्रियाद्योतक और तत्काल बोधक कृदन्त अव्ययों के साथ सम्बन्ध कारक कर्ता और कर्म के रूप में आता है। यथा—

कर्ता के रूप में—म्हारा रहता थारो कोण बिगाड़ सकज।
कर्म के रूप में—चिट्ठी लिखता-लिखता रामू आ गयो।

(ख) अधिकरण कारक

§५१८. निमाणी में अधिकरण कारक की दो विभक्तियाँ—म तथा पर अथवा उप्पर का प्रयोग होता है, पर इन दोनों के प्रयोग की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं, जो इस प्रकार हैं :—

म (हिन्दी 'में') का प्रयोग निम्नांकित रूप में होता है :—

(अ) अभिव्यापक आधार[1] में—गुड़–मऽमिठास, तेल–मऽचिकनई, खेत–मऽअनाज।

(आ) औपश्लेषिक आधार में—ऊ नद्दी–मऽ कपड़ा धोवऽ छे, संदूक–मऽ रुपया रखदऽ।

(इ) वैषयिक आधार में—भजन–मऽरुचि, काम–मऽ ध्यान, मन–मऽ राम।

(ई) मूल्य बतलाने में—दस रुपया–मऽ गाय, छे आना–मऽ किताब।

(उ) स्थान निश्चित करने में—सती–मऽ सीता, राजा–मऽ भोज, सब–मऽ छोटो।

(ऊ) कारण-प्रदर्शन में—करोध (क्रोध)–मऽ अदमी बेड़ो होई जासे।

(ओ) मेल अथवा अन्तर बतलाने में—आत्मा अरु परमात्मा–मऽ भेद नी छे, बाप–बेटा–मऽ अनबन छे।

(औ) स्थिति–प्रदर्शन में—हऊँ बड़ी विपदा–मऽ फसी गयो, गोपाल चैन–मऽ छे।

(क) भरनो, समानो, घुसनो, मिलणो आदि कुछ क्रियाओं के साथ व्याप्ति के अर्थ में भी अधिकरण कारक की विभक्ति 'म' का प्रयोग होता है। यथा—घर-म धन भरो छे, भला-म बुरा नी समावज, काव्ठो-मऽ कोई रंग नी मिव्ठऽ आदि।

'पर' अथवा 'उप्पर' विभक्तियों का प्रयोग निम्नांकित स्थानों में होता है—

(क) स्थान-प्रदर्शन में—म्हारो घर सड़क का उप्पर छे, दरवाजो पर छोरो खड़ो छे।

(ख) दूरी बतलाने में—दो कोस पर दूसरो गाव छे, दो हात का फासला पर स्यामू खड़ो थो।

(ग) एक देशाधार में—कोठा का उप्पर मांजरी छे, कोई घर का उप्पर बठो छे।

(घ) विषयाधार में—म्हारो तुम पर बिसवास छे, ओको सब पर प्रेम छे।

---

१. व्याकरण में 'आधार' से प्रयोजन 'अधिकरण' से है। वैयाकरणों ने इसे तीन प्रकार का माना है—(१) जिसके प्रत्येक भाग में आधेय हो, वह अभिव्यापक आधार, जिसके किसी एक भाग में आधेय हो, वह औपश्लेषिक आधार और जिससे विषय का बोध हो, वह वैषयिक आधार कहलता है।

(च) कारण द्योतन में—छोटी-सी बात-पर झगड़ो हुई गयो।

(छ) अधिकता के अर्थ में—दिन—पर दिन बीती गया, तगादा—पर तगादा भेज्या।

(ज) स्वभाव-प्रदर्शन में—छोरो व—का बाप—पर गयो, बड़ा की चाल—पर चलज।

(झ) विरोध अथवा अनादर-प्रदर्शन में- जला—पर नोन, ऊ समझाना—पर बी नी मान्यो।

(ट) अनन्तरता-प्रदर्शन में—दवाई—पर परेज (परहेज) जरूरी छे. आपका आणा—पर काम होई जासे।

(ठ) निश्चित काल बतलाने में—घंटा—घंटा—म दवाई देनो, समे (समय)—पर भोजन करणो अच्छो छे।

(ड) चढ़नो, मरनो, छोड़नो, आनो आदि क्रियाओं के पूर्व प्रायः पर अथवा उप्पर विभक्ति का ही प्रयोग होता है। यथा—घर—पर चढ़नो, नाम—पर मरनो, दूसरा—पर छोड़नो, वुलाणा—पर आनो आदि।

ब्रज भाषा में 'पर' के स्थान पर 'पे' का प्रयोग होता है, पर बुंदेली में प्रायः पर विभक्ति ही प्रयुक्त होती है।

कुछ आकारान्त संज्ञाओं में अधिकरण कारक की विभक्तियाँ लुप्त हो जाती हैं। यथा—व—का दरवाजा कोण जाय, म्हारी अकल ठिकाणा नई छे।

(ग) सम्बोधन कारक

§५१७ इस कारक की प्रयोग सम्बन्धी कोई विशेषता नहीं है। खड़ी बोली अथवा पश्चिमी हिन्दी की अन्य बोलियों की तरह निमाड़ी में भी कोई विस्मयादि बोधक अव्यय सम्बोधन कारक के रूप में आता है। यथा—अरे भगवान, ओ भाई आदि।

ये विस्मयादिबोधक अव्यय इस कारक की विभक्ति मान लिये जाते हैं, पर वास्तव में इसकी कोई विभवित नहीं है। प्रा. भा. आ. भा. तथा म. भा. आ. भा. में इस कारक का कोई स्वतन्त्र स्थान नहीं है।

निमाड़ी और ब्रज के कारक

§५२० निमाड़ी में कर्ता कारक की विभक्ति न कर्म की ख, क, करण की स, सम्प्रदान की ख और कालेण, अपादान की सी, सम्बन्ध की को, का, की तथा अधिकरण कारक की विभक्ति म, पर, उप्पर होती है, जिनके स्थान पर ब्रज में क्रमशः ने (कर्ता), कौ, कौं, सों (कर्म), सों (करण), कौ, कौं

(सम्प्रदान), ते, तें (अपादान), को, का, की (सम्बन्ध) तथा में, मैं, मै (अधिकरण) विभक्तियों का प्रयोग होता है।

यदि हम इन दोनों बोलियों की विभक्तियों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करें तो देखेंगे कि खड़ी बोली और ब्रज, दोनों की कर्ता कारक की विभक्ति 'ने' ज्यों की त्यों है, पर निमाड़ी में 'न' का प्रयोग होता है। ब्रज में भी कभी कभी 'ने' के स्थान पर 'न' का प्रयोग होता है, विशेषकर प्राचीन ब्रज में। यथा--मुनिन आरती उतारी। कर्म कारक में खड़ी बोली में 'को' ब्रज में 'कौ-कौं-को' और निमाड़ी में कर्ता की विभक्ति की तरह अमात्रिक 'क' का प्रयोग होता है। करण कारक की विभक्ति खड़ी बोली में 'से', ब्रज में सों और निमाड़ी में पुनः अमात्रिक 'स' है। कहीं-कहीं इस 'स' के स्थान में 'सी' का भी प्रयोग होता है। सम्प्रदान में खड़ी बोली, ब्रज और निमाड़ी की स्थिति कर्म कारक-सी ही है, पर निमाड़ी में सम्प्रदान कारक की एक विभक्ति 'कालेण' भी है, जो खड़ी बोली और ब्रज से ही नहीं, पर हिन्दी की अन्य समस्त बोलियों से भी भिन्न है। खड़ी बोली में सम्प्रदान की विभक्ति 'के लिये' और बुन्देली में 'के लाने' का भी प्रयोग होता है। निमाड़ी की 'कालेण' विभक्ति बुन्देली की 'के लाने' विभक्ति से अधिक साम्य रखती है।

अपादान कारक की खड़ी बोली की विभक्ति 'से' है, पर ब्रज की इससे भिन्न ते, तें है, जबकि निमाड़ी में करण की विभक्ति की तरह अमात्रिक होकर 'स' ही प्रयुक्त होती है। सम्बन्धकारक की विभक्तियाँ इन तीनों बोलियों में लगभग समान हैं। खड़ी बोली की विभक्तियाँ का, के, की और ब्रज की को, का, की हैं। ये ही विभक्तियाँ निमाड़ी की भी हैं। अधिकरण कारक की विभक्तियों में हमें इन तीनों बोलियों में कोई विशेष अन्तर नहीं मिलता। खड़ी बोली और ब्रज दोनों की इस कारक की विभक्ति 'में' है। ब्रज में कहीं-कहीं 'में' के स्थान पर 'मैं' का प्रयोग होता है। यह विभक्ति निमाड़ी में अन्य कारकों की तरह अमात्रिक होकर (म) व्यवहृत होती है। खड़ी बोली की 'पर' विभक्ति ब्रज और निमाड़ी में भी उपस्थित है। कहीं-कहीं ब्रज में 'पर' के स्थान पर 'पे' तथा निमाड़ी में 'उप्पर' शब्द का प्रयोग मिलता है।

इस प्रकार हम उपर्युक्त तीनों बोलियों के कारकों की विभक्तियों में एक समरूपता देखते हैं। बुन्देली के कारकों में भी हमें यही स्थिति मिलेगी। एक ही परिवार (पश्चिमी हिन्दी) की बोलियाँ होने के कारण यह समरूपता स्वाभाविक भी है।

हमने ऊपर निमाड़ी के आठों कारकों के प्रयोग की भिन्न-भिन्न स्थितियाँ बतलाई हैं। इन्हीं स्थितियों और रूपों में इन कारकों का प्रयोग खड़ी बोली, ब्रज और बुन्देली में भी होता है।

व्युत्पत्ति

§५२१. प्रयाग विश्वविद्यालय के विद्वान प्राध्यापक डा० उदयनारायण तिवारी ने लिखा हैं "परसर्गों की उत्पत्ति बहुत बाद में हुई। ये वस्तुतः अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में आये, संस्कृत से नहीं। अपभ्रंश-काल में ही संज्ञा पदों के विभिन्न कारकों के रूप सिद्ध करने के लिए स्वतन्त्र सहायक शब्दों का व्यवहार होने लगा था। आगे चलकर, आधुनिक भाषाओं में, ये ही कारक-ज्ञापक सहायक शब्द परसर्गों में परिणत हो गये।[1] पं० कामताप्रसाद गुरु का मत डा० तिवारी के मत से कुछ भिन्न है। वे कहते हैं—"हिन्दी की अधिकांश विभक्तियाँ प्राकृत के द्वारा संस्कृत से निकली हैं।[2]

चाहे जो हों, पर इसमें सन्देह नहीं कि कारक तो प्रा. भा. आ. भा. में भी थे, पर कारकों की विभक्तियाँ आ. भा. आ. भा. की ही देन है। म. भा. आ. भा. में भी सभी कारकों की विभक्तियाँ नहीं मिलतीं।

(१) कर्ता की विभक्ति

§५२२. निमाड़ी में कर्ता कारक के मूल और विकृत में से किस रूप का प्रयोग किस स्थिति में होता है, यह पहले बतलाया जा चुका है। (अनु० ५१२) विभक्ति-युक्त कर्ता को हमन विकृत कर्ता लिखा है। प्राकृत में आकारान्त और पुल्लिग संज्ञाओं के अतिरिक्त शेष पुल्लिग और स्त्रीलिंग संज्ञाओं के प्रथमा एकवचन में कोई विभक्ति नहीं है। गुरुजी के मतानुसार कर्ता की 'ने' विभक्ति संस्कृत की तृतीया विभक्ति (करण कारक) के 'ना' प्रत्यय का रूपान्तर है।[3] यह 'ने' विभक्ति पश्चिमी हिन्दी की बोलियों की एक विशेषता है। इसी 'ने' का निमाड़ी की 'न' विभक्ति में विकास हुआ है। प्राकृत में यह विभक्ति 'एण', अपभ्रंश में 'ऐं' तथा आ. भा. आ. भा. की एक भाषा मराठी के दोनों वचनों में क्रमशः ने तथा नी होती है। पूर्वी हिन्दी में इसका प्रयोग नहीं मिलता। ट्रम्प के समान कुछ विद्वान 'ने' की व्युत्पत्ति प्रा. भा. आ. भा. की करण कारक की विभक्ति 'एन' से मानते हैं। उनका मत है कि वर्ण-व्युत्यय से 'एन' का 'ने' हो गया है। डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या तथा डा०

---

१. भोजपुरी भाषा और साहित्य (सन् १९५४) द्वितीय खण्ड पृ० १८८

२. हिन्दी व्याकरण (१९४८) पृ० २५५

३. हिन्दी व्याकरण (सं. २०१२ वि.) पृ. २५५

सुकुमार सेन 'ने' की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'कर्णं' शब्द से बतलाते हैं। उनका मत है कि 'ने' का प्राचीन रूप 'उने' था, जिसका प्रयोग हिन्दी की कुछ बोलियों में 'पास' के अर्थ में किया जाता है। यह प्रा. भा. आ. भा. का 'कर्णं', म. भा. आ. भा. में 'कुन्न' हो गया, जिसमें 'ऊ' तथा 'ह्' के लोप से नई और गुण-द्वारा 'ने' रूप निष्पन्न हुआ।[1]

(२) कर्म और सम्प्रदान कारकों की विभक्तियाँ

§५२३. निमाड़ी तथा पश्चिमी हिन्दी की कुछ अन्य बोलियों (मालवी, ब्रज, बुन्देली, खड़ी बोली) में भी कर्म और सम्प्रदान की विभक्तियाँ समान हैं। निमाड़ी में इन दोनों कारकों की विभक्ति 'क' (खड़ी बोली में 'को') है। पं० अम्बिका प्रसाद जी व्यास ने खड़ी बोली के कर्म की विभक्ति 'को' के सम्बन्ध में लिखा है कि यह कदाचित स्वार्थिक 'क' से निकला हो, पर इसका सूक्ष्म सम्बन्ध संस्कृत से जान पड़ता है, जैसे कक्षं 7 कक्खं 7 काखं 7 काहं 7 काहूं 7 कहूं 7 कहुं 7 कौं 7 कों 7 को। (भाषा प्रभाकर)।

इस सुदीर्घ व्युत्पत्ति में हमें बड़ी खींचतान दिखाई देती है। इस दृष्टि से पं० गोविंद नारायण मिश्र की 'विभक्ति-विचार' पुस्तक विशेष पठनीय है। उन्होंने कात्यायन के व्याकरण से अम्हाकं पस्ससि, सब्बकों, याको, अमुको आदि शब्दों के उदाहरण देकर तुम्हाकं, अम्हाकं, अम्ह रूप से ही हिन्दी के हमको, हमें, तुमको, तुम्हें, शब्दों का विकास बतलाया है। वे इसी आधार पर कर्म की विभक्ति 'को' का चलन होना मानते हैं। मिश्र जी का तर्क व्यासजी के तर्क से अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है। हिन्दी के इसी 'को' का विकास निमाड़ी के 'क' में हुआ है। हार्नले और बीम्स ने 'क' से आरम्भ होनेवाले परसर्गों की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'कक्षे' से मानी है। तदनुसार कक्ष-काख कर्मकारक एक बचन में 'काखं' बनेगा और उसमें ख-ह् के लोप से काहं, कंहे, को, क रूप निष्पन्न होंगे।[2]

निमाणी की सम्प्रदान कारक की एक विभक्ति "कालेण" भी है, जिसके सम्बन्ध में हम पहिले लिख चुके हैं। (अनु० ५२०) यह संस्कृत के "कारेण" का रूपान्तर जान पड़ती है।

(३) करण और अपादन कारकों की विभक्तियाँ

§५२४ निमाड़ी की करण और अपादान कारक की विभक्ति 'स' अथवा

---

१. डा० उदयनारायण तिवारी : हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास (सं. २०१२) पृ० ४४०–४१

२. हार्नले: गौ. ला. ग्रा. अनु. ३७६, बीम्स: ग्रा. भा. अनु. ५८, कैलॉग: हि. ग्रा. अनु. १९७

'सी' हैं, जो 'से' का संक्षिप्तीकरण है। पं० गोविंद नारायण मिश्रने 'से' विभक्ति की व्युत्पत्ति प्राकृत की पंचमी की विभक्ति 'सुन्तो' से बतलाई है। हार्नले का भी यही मत है। बीम्स 'से' की उत्पत्ति 'सम' से यथा कैलाँग 'संगे' से मानते हैं। मिश्र जी के मतानुसार ब्रज की तें और सो अथवा सों विभक्ति की उत्पत्ति भी प्राकृत की इसी विभक्ति से हुई है। अतः निमाड़ी की 'स' अथवा 'सी' विभक्ति का मूल भी प्राकृत की उपर्युक्त विभक्ति ही माननी चाहिये।

(४) सम्बन्ध कारक की विभक्तियाँ

§४२५ सम्बन्ध कारक की विभक्ति खड़ी बोली की का, के, की और ब्रज तथा निमाड़ी की को, का, की है। संस्कृत में 'क' प्रत्यय का प्रयोग इन्हीं विभक्तियों के अर्थ में हुआ है। यथा—मद्रक,—मद्र, देश का। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी 'पितु आयसु सब धर्मक टीका' पंक्ति में 'क' का प्रयोग 'का' के अर्थ में ही किया है। इससे खड़ी बोली की सम्बन्ध विभक्तियों—का, के, की अथवा ब्रज और निमाड़ी की विभक्तियों—को, का, की उत्पत्ति संस्कृत की 'क' विभक्ति से ही जान पड़ती है। निमाड़ी में 'को' एकवचन में, 'का' बहुवचन में और 'की' एकवचन तथा बहुवचन स्त्रीलिंग मे प्रयुक्त होता है।

प्राकृत में केरकं, केरलो, केरिआ और केर प्रत्ययों का उपयोग का, के, की के अर्थ में मिलता है। यथा—कस्यकेरकं एवं पवहणं (यह किसका वाहन है)। पृथ्वीराज रासो के केरा, केरो आदि प्रत्ययों का मूल भी प्राकृत के उपर्युक्त प्रत्यय ही हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी 'सफल रसाल पूगफल केरा' (अयो० ५-६) 'पंक्ति में' 'केरा' शब्द का प्रयोग 'का' के अर्थ में ही किया है। अतः खड़ी बोली की, का, के, की अथवा ब्रज और निमाड़ी की को, का, की विभक्ति की व्युत्पत्ति प्राकृत के इन प्रत्ययों से भी होना संभव हो सकती है। पुरुषवाचक सर्वनाम की सम्बन्ध कारक विभक्तियाँ रा, रे, री हैं, जो प्राकृत की केरा, केरो प्रत्ययों का रूप ही जान पड़ता है। इनमें मूल शब्दों से आद्य-वर्णों का लोप हो गया है।

(५) अधिकरण कारक की विभक्तियाँ

§५२६ खड़ी बोली में अधिकरण कारण की विभक्यिां में, पर, ब्रज में मे, मैं, पै तथा निमाड़ी में म, पर, उप्पर है। इनमें से मे, में अथवा म की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'मध्य' अथवा प्राकृत के 'म्मि' से हुई जान पड़ती है। इनमें से 'मध्य' की अपेक्षा 'म्मि' को ही इनकी व्युत्पत्ति का स्रोत मानना अधिक युक्ति-संगत जान पड़ता है। गुजराती की सप्तमी-विभक्तियाँ 'मां' की व्युत्पत्ति भी प्राकृत के 'म्मि' प्रत्यय से ही होना चाहिये।

सर्वनाम

§५२७ सर्वनाम संज्ञा के स्थान पर आनेवाले शब्द हैं, वे संज्ञा का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस दृष्टि से वे 'संज्ञा-प्रतिनिधि' भी कहे जा सकते हैं। प्रयोग के अनुसार निमाड़ी के सर्वनाम भी हिन्दी की अन्य बोलियों की तरह छः प्रकारों में विभक्त किये जा सकते हैं:—पुरुषवाचक, निजवाचक निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक सम्बन्धवाचक और प्रश्नवाचक सर्वनाम।

(१) पुरुषवाचक

§५२८ निमाड़ी में पुरुषवाचक सर्वनाम के रूप निम्न प्रकार हैं:—

प्रथम पुरुष—एक वचन	हऊँ, म,	बहुवचन	हम
द्वितीय पुरुष— ,,	तू	,,	तुम
तृतीय पुरुष— ,,	ऊ	,,	वो

प्रथम पुरुष सर्वनाम—

§५२९. प्रथम पुरुष 'हऊँ' का उपयोग केवल अविकारी एक वचन के रूप में ही होता है। अन्य कारकों के साथ 'हऊँ' के स्थान पर 'म' का ही उपयोग होता है। यथा—एक वचन अविकारी—हऊँ आऊँज (मैं आता हूँ)। अन्य कारकों के साथ—म–ख मत बोलो (मुझे मत बोलो)। इस 'म' का विकास संस्कृत से इस प्रकार हुआ है—मया + एन 7 में 7 में ∠ म।

कर्ता और कर्म कारक में 'म' के रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता, इसके आगे केवल इन कारकों की विभक्ति लग जाती है। यथा कर्ता–म न, कर्म—म–ख या पश्चिमी निमाड़ी में म–क।

अन्य कारकों के एक वचन में भी इस 'म' का रूप अक्षुण्ण रहता है। यथा—करण–म–सी, सम्प्रदान—म–ख, अपादान—म–सी, सम्बन्ध—म्हारो, अधिकरण—म–पर, म्हारा–पर, म्हारा–उप्पर।

अनेक स्थानों में 'म' के स्थान पर 'म्ह' बोला जाता है। इसी परिवर्तन के अनुसार म्हारो, म्हारा–पर आदि उपर्युक्त रूप हैं। ये रूप पूर्वी निमाड़ में अधिक प्रचलित हैं। पश्चिमी निमाड़ में गुजराती के प्रभाव-स्वरूप 'ह' का लोप होकर 'म्हारा' के स्थान में 'मारा' हो गया है।

एक वचन 'म' का बहुवचन निमाड़ी में भी हिन्दी की तरह 'हम' होता है और इसकी कारक रचना में भी सिवाय विभक्ति-प्रत्ययों के कोई अन्तर नहीं होता। यह 'हम' संस्कृत के 'अस्म' का रूप है—अस्म–अह्म 7 हम्म 7 हम।

संस्कृत में एक वचन षष्ठी का रूप 'मम' है, जिससे हिन्दी के 'मेरा', ब्रज और बुन्देली के 'मेरो' तथा निमाड़ी के 'म्हारो' अथवा 'मारो' का विकास हुआ ह। डा० तिवारी ने मेरा की व्युत्पत्ति 'मम-केर' से बतलाई है। (हि. उ. वि. पृष्ठ-४६२)।

इसी प्रकार संस्कृत बहुवचन षष्टी 'अस्माकम्' प्राकृत के 'अम्हाणं' और हिन्दी के 'हमारा' मे विकसित हुआ है, जिसका विकास हमें निमाड़ी में— म्हारा-म्हारो अथवा मारा-मारो के रूप में मिलता है।

'मुझे' की व्युत्पत्ति संस्कृत के महयम् से इस प्रकार सम्पन्न हुई है—

मह्यम 7 मज्झ 7 मुझ 7 नि० म्ह।

हमें निमाड़ी के प्रथम पुरुष एक वचन 'हऊँ' अथवा 'हउँ' का प्रयोग प्राकृत तथा ब्रज में भी इसी अर्थ में मिलता है :—

प्राकृत—"आयण्यामि भणु हउँ णिम्मलाहं"

(णाय कुमार चरिउ ३-१० पृ० ४ (डा० जैन)

ब्रज—"कहा कहों यहि रिसके मारे खेलन हौं नहीं जात।" (सूरदास)

हउँ, हऊँ या हौं की उत्पत्ति संस्कृत के 'अहम्' से इस प्रकार हुई है—अहम् 7 अहकं 7 हअं 7 हऊं।

प्रथम पुरुष—हऊँ, म

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	हऊं, म–न	हम, हम–न
कर्म	म–ख	हम–ख
करण	म्ह–सी	हम–सी
सम्प्रदान	म्हारा–लेण	हमारा–लेण
अपादान	म्हारा–सी	हमारा–सी
सम्बन्ध	म्हारा, म्हारो, म्हारी	हमारा, हमारो, हमारी
अधिकरण	म्हारा–म, म्हारा–पर म्हारा–उप्पर	हमारा–म, हमार–पर, हमारा–उप्पर

द्वितीय पुरुष सर्वनाम

§५३० 'तू' और 'तुम' निमाड़ी के क्रमश: द्वितीय पुरुष एक वचन और बहुवचन सर्वनाम हैं। ये ही हिन्दी (खड़ी बोली) के सर्वनाम शब्द हैं। ब्रज और बुन्देली में 'तू' के स्थान पर 'तूँ' या तुँ' बोला जाता है। अब खड़ी बोली

के प्रभाव से यह निरनुनासिक 'तू' हो गया है। संस्कृत के 'त्वम्' का विकास प्राकृत के 'तू' में हुआ। वहाँ से वह इसी रूप में आ. भा. आ. भाषाओं तथा उनकी बोलियों में भी आया। यह हिन्दी और उसकी बोलियों में ही नहीं, पर गुजराती और मराठी में भी इसी रूप में विद्यमान है।

इसी प्रकार 'तू' का बहुवचन 'तुम' संस्कृत के 'युष्य' शब्द का रूपान्तर है। संस्कृत के 'युष्य' का विकास प्राकृत के 'तुम्ह' में हुआ जो आ. भा. आ. भा. में 'तुम' हो गया।

निमाड़ी में द्वितीय पुरुष एक वचन 'तू' कर्ता और कर्म कारक में अक्षुण्ण है, पर अन्य कारकों में इसका यह रूप न रह सका। करण, सम्प्रदान, अपादान सम्बन्ध और अधिकरण कारक में 'तू' के स्थान पर 'थारा' शब्द का प्रयोग होता है, जो हमें राजस्थानी के प्रभाव का परिणाम जान पड़ता है। इस सम्बन्ध में यह भी स्मरणीय है कि खड़ी बोली में 'तू' का सम्बन्ध कारक–रूप तेरा, तेरे, तेरी हो गया है, जिनके स्थान में निमाड़ी के सम्बन्ध कारक–रूप–थारो, थारा, थारी है, किन्तु करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण कारक में यह सम्बन्ध कारक का पूर्ण रूप 'थारा' द्वितीय पुरुष एकवचन का पूर्ण रूप मानकर उसके आगे इन कारकों की विभक्तियाँ लगाई जाती हैं। यथा—करण, थारा–सी, सम्प्रदान–थारा–ख या थारा लेण, अपादान—थारा-पर आदि।

निमाड़ी में इसी प्रकार की कुछ विशेषताएँ 'तू' के बहुवचन-रूप 'तुम' में भी है। यह बहुवचन रूप कर्ता और कर्म कारक में अपरिवर्तित है, किन्तु करण, सम्प्रदान और अपादान कारक में हम इसके दो रूप देखते हैं। एक रूप में हिन्दी के 'तुम' की तरह इसके आगे इन कारकों की विभक्तियाँ लगा दी जाती हैं। यथा—करण–तुम–सी, सम्प्रदान—तुम–ख, अपादान—तुम–सी। सम्बन्ध कारक में निमाड़ी में भी तुम्हारो या तुम्हारा हो जाता है, पर करण, सम्प्रदान और अपादान तथा अधिकरण कारक के भी दूसरे रूप में बहुवचन सम्बन्ध कारक का 'तुम्हारा' मूल शब्द मान लिया जाता और उसके आगे इन कारकों की विभक्तियाँ जोड़कर उन्हें इन कारकों में बोला जाता है। यथा—करण—तुम्हारा-सी, सम्प्रदान—तुम्हारा-ख या तुम्हारालेण, अपादान–तुम्हारा-सी, अधिकरण-तुम्हारा-म, तुम्हारा-पर, तुम्हारा उप्पर आदि। तुम्हारा की व्युत्पत्ति डा० तिवारी के अनुसार युष्म-केर से हुई है।

इन विशेषताओं के साथ द्वितीय पुरुष सर्वनाम की कारक-रचना निमाड़ी में इस प्रकार होगी :—

द्वितीय पुरुष—तू

कर्ता	तू, तू—न	तुम—न
कर्म	तु—ख	तुम—ख
करण	तो—सी, थारा—सी	तुम—सी, तुम्हारा—सी
सम्प्रदान	तो—ख, थारा—ख, थारा—सी	तुम—ख, तुम्हारा—लेण
अपादान	तो—सी, थारा—सी	तुम—सी, तुम्हारा—सी
सम्बन्ध	थारा, थारो, थारी	तुम्हारो, तुम्हारा, तुम्हारी
अधिकरण	तो—म, तो—पर, थारा-म, थारा—पर थारा—उप्पर।	तुम—म, तुम—पर, तुम्हारा—म, तुम्हारा—पर, तुम्हारा—उप्पर।

मध्यभारतीय निमाड़ी भाषी क्षेत्र में तू के बहुवचन रूप 'तुम' को गुजराती के प्रभाव—स्वरूप 'तम' कहा जाता है, तदनुसार इसकी बहुवचन कारक—रचना क्रमश: तम—न, तम—ख, तमारा—सी, तमारालेण, तमारा—सी, तमारो—तमारा—तमारी, तमारा—म, तमारा—पर, तमारा—उप्पर होगी।

निमाड़ी में बड़े से बड़े आदमी को भी 'तुम' कहने की चाल है, पर अब नगरों में हिन्दी भाषियों के संसर्ग से 'आप' भी कहा जाने लगा है।

तृतीय पुरुष सर्वनाम

§५३१ निमाड़ी का तृतीय पुरुष एक वचन सर्वनाम 'ऊ' तथा बहुवचन 'वी' है। स्त्री—लिंग में 'ऊ' 'वा' हो जाता है। खड़ी बोली में हमें यह परिवर्तन नहीं मिलता। उसमें तृतीय पुरुष एक वचन सर्वनाम 'वह' दोनों लिंगों में समान ही रहता है। यथा—

कर्ता—पुल्लिग—एक वचन—(विभक्ति—रहित)	ऊ आवज (वह आता है)।
कर्ता—पुल्लिग एकवचन (बिभक्ति—सहित)—	ऊ—न पढ़यो (उसने पढ़ा)।
कर्ता—स्त्रीलिंग—एकवचन (विभक्ति—रहित)	वा आवज (वह आती है)।
कर्ता—स्त्रीलिंग एकवचन (विभक्ति—सहित)	वो—न पढ़्यो (उसने पढ़ा)।

कर्ता के अतिरिक्त कारकों में यह स्थिति बदल जाती है। अन्य कारकों के साथ स्त्री लिंग और पुल्लिग दोनों ऊ का रूपान्तर 'ओ' हो जाता है।

यथा—कर्म कारक के साथ यह 'ऊ' और 'वा'—ऊ–ख और वा–ख न होकर 'ओ–ख' हो जायगा।

'ऊ' का बहुवचन 'वी' है, पर इस बहुवचन 'वी' का प्रयोग केवल विभक्ति रहित कर्ताकारक में ही किया जाता है, अन्य कारकों में खड़ी बोली की तरह निमाड़ी में भी दोनों लिंगों में 'उन' हो जाता है। यथा—

कर्ता पुल्लिंग बहुवचन (विभक्ति–रहित) वी आवज (वे आते हैं)।

कर्ता दोनों लिंग (विभक्ति–सहित)—उन–न पढ़्यो, (उन्होंने पढ़ा)।

कर्म कारक दोनों लिंग— उन–ख मार्‌यो (उनको मारा)।

§५३२ उपर्युक्त विशेषताओं के अनुसार तृतीय पुरुष सर्वनाम की कारक-रचना निम्न प्रकार होगी :—

कारक	एक वचन	बहुवचन
कर्ता	ऊ, ऊ–न	ऊ, उन–न
कर्म	ओ–ख	उन–ख (उनानाख)
करण	ओ–का (ख)–सी	उनका–सी (ऊनानासी)
सम्प्रदान	ओका–लेण	उनका–लेण (उनाना का–लेण)
अपादान	ओका (खा)–सी	उनका–सी (उनाना–सी)
सम्बन्ध	ओ–का, वो–को, वो–की	उनका, उन–को, उन–की (उनान–का, को, की)
अधिकरण	ओ–म, ओ–पर, ओ–का उप्पर	उन–म, उन–पर, उनका–उप्पर (उनाना–म, पर, का उप्पर)

कोष्ठक में दिये शब्द मध्यभारतीय निमाड़ी-भाषी क्षेत्र में कहीं-कहीं बोले जाते हैं।

§५३३ ब्रज भाषा में 'वह' तथा 'वो' दोनों का प्रयोग तृतीय पुरुष एक वचन में होता है, जिनका बहुवचन-रूप खड़ी बोली की तरह 'वे' होता है। ब्रज में यह 'वह और 'वो' विभक्ति-रहित कर्ता के अतिरिक्त सविभक्ति एवं अन्य कारकों में एक वचन में 'वा' और बहुवचन में 'उन' हो जाता है। यथा—

कर्ता एकवचन (विभक्ति–रहित)—वो आउत है (वह आता है)

कर्ता एकवचन (विभक्ति सहित)—वाने पढ़्यो (उसने पढ़ा)।

कर्म एकवचन—वाकों मार्‌यो (उसे मारा)।

कर्म बहुवचन—उनकों बुलाइ लाओ (उन्हें बुला लाओ)। आदि।

§५३४ हिन्दी के तृतीय पुरुष वह तथा निमाड़ी के ऊ और ब्रज के 'वो' की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'सह' से हुई है। इसका षष्टी का रूप खड़ी बोली में

'उसका,' ब्रज में 'वाको' तथा निमाड़ी में 'ओको' संस्कृत के 'तस्य' का वर्तमान रूप है।

डा० तिवारी 'वह' की व्युत्पत्ति सं. 'अदस्' के रूप 'असौ' से इस प्रकार मानते हैं :—

असो—पा. असु 7 प्रा. असो 7 अहो 7 ओह 7 वह।

इसी प्रकार वे वह के बहुवचन—रूप 'वे' की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में कहते हैं कि अविकारी ए. व. के रूप 'वह' में करण कारक बहुवचन की सं. विभक्ति एभिः 7 अप. अहि 7 अइ 7 हि. ए जोड़ कर 'वे' रूप निष्पन्न हुआ प्रतीत होता है। (हि. भा. उ. वि. पृ. ४६४)।

(२) निजवाचक सर्वनाम

§५३५ पश्चिमी हिन्दी की खड़ी बोली, ब्रज और बुन्देली की तरह निमाड़ी में भी 'आप' शब्द का प्रयोग अपने-आप के लिये होता है। इसीलिये वह 'निज-वाचक' सर्वनाम कहलाता है। खड़ी बोली में 'आप' एक वचन तथा बहुवचन दोनों में होता है, पर निमाड़ी में निजवाचक 'आप' एकवचन में ही प्रयुक्त होता है। इसका बहुवचन-रूप आपन या आपण होता है। पहिले बतलाया जा चुका है कि 'न' निमाड़ी में बहुवचन का प्रत्यय है। (अनु० ४१९) यहाँ आपके बहुवचन में भी यही प्रत्यय लगा है। यह बहुवचन रूप 'आपण' कभी-कभी 'अपण' भी बोला जाता है, पर कर्ता और कर्म के अतिरिक्त अन्य कारकों में 'अपण' के स्थान पर 'अपणा' हो जाता है। यथा—

कर्ता	बहुवचन	अपण—न
कर्म	बहुवचन	अपण—ख
करण	बहुवचन	अपणा—सी आदि।

§५३६ निमाड़ी के 'आप' या 'आपण' की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'आत्मन्' शब्द से हुई है। इस शब्द के प्राकृत में दो रूप उपलब्ध हैं—अत्त तथा अप्प। इनमें से अप्प शब्द का ही विकास हिन्दी और निमाड़ी के 'आप' में हुआ है। प्रा. के अप्प का षष्टी रूप 'अपणा' है, जो इसी रूप में निमाड़ी में प्रयुक्त होता है। निमाड़ी में 'आप' शब्द की पूर्ण कारक-रचना इस प्रकार होगी—

निजवाचक—आप (अपण)

कर्ता	आप—न	अपण—न
कर्म	आप—ख	अपण—ख
करण	आप—सी	अपणा—सी
सम्प्रदान	आपकालेण	अपणालेण

अपादान	आप–सी	अपणा–सी
सम्बन्ध	आप–का, को, की	अपणा–अपणे, अपणी
अधिकरण	आप–म, आप–पर	अपणा–म, पर, अपणा उप्पर

निमाड़ी भाषी 'आप' के स्थान में 'खुद' शब्द का भी एक वचन निज-वाचक सर्वनाम में उपयोग करते हैं।

(३) निश्चयवाचक सर्वनाम

§५३७ निश्चय वाचक सर्वनाम दो प्रकार के हैं—निकटवर्ती निश्चय वाचक और दूरवर्ती निश्चयवाचक। 'यू' एक वचन निकटवर्ती सर्वनाम है, जिसका बहुवचन रूप 'ई' है। विभक्ति–रहित कर्ता कारक को छोड़कर शेष कारकों के साथ 'यू' के स्थान में 'ये' तथा 'ई' के स्थान में 'इन' शब्द का प्रयोग होता है। यथा—

विभक्ति–रहित–कर्ता–यू आवज (यह आता है)–ई आवज
(ये आते हैं)।

विभक्ति–युक्त कर्ता–ये–न मार्‌यो (इसने मारा)
उन–न मार्‌यो (उन्होंने मारा)।

§५३८ एक वचन 'यू' के स्थान में स्त्रीलिंग में 'या' शब्द का प्रयोग होता है। यह प्रयोग पूर्वी निमाड़ में अधिक है। इस निश्चयवाचक सर्वनाम का प्रयोग निम्नांकित स्थितियों में देखा जाता है:—

(१) किसी समीप की वस्तु के विषय में बोलते समय–यू म्हारोच छोरो छे (यह मेरा ही लड़का है)। या कोई नवी बात नी छे (यह कोई नई बात नहीं है)।

(२) किसी पहिले कही गई संज्ञा या संज्ञा–वाक्यांश के स्थान में–सीता म्हारी बहिण छे, ये–ख कोण नी जाणऽ (सीता मेरी बहिन है, इसे कौन नहीं जानता)।

(३) पूर्व कथित वाक्य के स्थान में—कोई खेत–मऽ आगी लगीन चल्यो गयो, यू म–नऽ म्हारा डोळा–सी देख्यो (कोई खेत में आग लगाकर चला गया, यह मैंने अपनी आँख से देखा)।

(४) आगे आने वाले वाक्य के स्थान में–ओ–नऽ यू चायो कि हऊँ ओ–की बात मान लेऊँ (उसने यह चाहा कि मैं उसकी बात मान लूं)।

(५) कभी-कभी संज्ञा या संज्ञा-वाक्यांश कहकर उसके पश्चात् ही निश्चय के अर्थ में इस सर्वनाम-शब्द का प्रयोग किया जाता है। यथा—बड़ो बणीन गरीब को जी दुखाणू यू तुम–खऽ सोभा नी देय (बड़े बनकर गरीब का जी दुखाना, यह तुम्हें शोभा नहीं देता)।

(६) कभी-कभी इसका प्रयोग क्रिया विशेषण के समान भी किया जाता है। यथा---यू तो थारो बड़ोपन छे (यह तो आपका बड़प्पन है)।

निकटवर्ती सर्वनाम की कारक रचना इस प्रकार होगी :—

निकटवर्ती निश्चयवाचक-ई

कर्ता	ये—न	इन—न
कर्म	ये—ख	इन—ख
करण	ये—सी	इन—सी
सम्प्रदान	ये—कालेण	इनका—लेण
अपादान	ये—सी	इन—सी
सम्बन्ध	ये—का, को, की	इनका, को, की
अधिकरण	ये—म, पर, ये का उप्पर	इन—म, पर, इनका उप्पर।

§५३९ 'ऊ' दूरवर्ती निश्चय वाचक सर्वनाम है, जिसका बहुवचन 'वी' है। इस सम्बन्ध में तृतीय पुरुष के प्रकरण में लिखा ही जा चुका है। पूर्व कथित दो वस्तुओं में से प्रथम के लिये 'ऊ' और द्वितीय वस्तु के लिये 'यू' का प्रयोग होता है—चोर न सावकार—म यू भेद छे कि ऊ छिपतो फिरज न यू सबका सामे रहज (चोर और साहूकार में यह अन्तर है कि वह छिपता फिरता और यह सबके सामने रहता हैं)।

§५४० हिन्दी के 'यह' और निमाड़ी के 'यू' की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'इदम्' से हुई है। हिन्दी का 'वह' और निमाड़ी का 'ऊ' 'सो' का रूपान्तर है। ब्रज में भी निमाड़ी की तरह ही निकटवर्ती सर्वनाम 'यू' ही होता है। दूरवर्ती में हिन्दी के 'वह' तथा निमाड़ी के 'ऊ' के स्थान में 'ओ' अथवा 'वो' का प्रयोग किया जाता है।

दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम की कारक-रचना तृतीय पुरुष सर्वनाम शब्द की तरह ही होगी।

(४) अनिश्चय वाचक सर्वनाम

§५४१ 'कोई' और 'कई' निमाड़ी के अनिश्चय वाचक सर्वनाम हैं। हिन्दी (खड़ी बोली) के अनिश्चयवाचक सर्वनाम 'कोई' और 'कुछ', हैं। ब्रज में 'कोई' के स्थान में 'कोऊ' और 'कुछ' के स्थान में 'कुछु' हो जाता है। निमाड़ी में 'कुछ' के स्थान पर 'कई' शब्द का प्रयोग होता है। यह 'कई' हिन्दी के संख्यावाचक 'कई' से भिन्न है।

§५४२ 'कोई' का एक वचन में प्रयोग निम्न स्थितियों में होता है :—

(१) किसी अज्ञात व्यक्ति के लिये—भायेर कोई आयो छे। (बाहर कोई आया है)।

(२) अनेक परिचितों में से किसी एक के लिये—अरे कोई नौकर छे ? (अरे कोई नौकर है ?)

(३) निषेधात्मक वाक्य में 'कोई' का प्रयोग 'सब' के अर्थ में होता है—कोई-ख सतानो अच्छो नी छे (किसी को सताना अच्छा नहीं है)।

(४) निमाड़ी में अनेक बार 'कोई' सर्वनाम के पूर्व 'सब' अथवा 'हर' विशेषण शब्द का प्रयोग देखा जाता है—सब कोई ह्यां आओ (सब कोई यहाँ आओ), यू काम हर कोई नी करी सकज (यह काम हर कोई नहीं कर सकता)।

(५) किसी अज्ञात पुरुष के स्थान में भी 'कोई' का उपयोग किया जाता है—या बात कोई दूसरा—सी मत कयजो (यह बात कोई और से मत कहना)।

(६) कभी-कभी 'कोई' की द्विरुक्ति भी देखी जाती है—कोई-कोई असा कहज (कोई-कोई ऐसा कहते हैं)।

(७) जब अवधारण के अर्थ में 'कोई' की द्विरुक्ति होती है, तब उनके बीच 'न' प्रत्यय लगा दिया जाता है—यू काम बी कोई न कोई करेगा (यह काम भी कोई न कोई करेगा)।

(८) जब 'कोई' शब्द का प्रयोग संख्यावाचक विशेषण के पूर्व किया जाता है, तब वह परिमाणवाचक क्रिया विशेषण बन जाती है—व्हाँ कोई दो सौ आदमी जुड़ा था (वहाँ कोई दो सौ आदमी जुड़े थे)।

§५४३ 'कोई' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'कोऽपि' शब्द से हुई है। इसका प्राकृत रूप—'कोवि' है, जो पश्चिमी हिन्दी और कुछ पूर्वी हिन्दी की बोलियों में भी 'कोई' हो गया। इसका बहुवचन नहीं होता। जब इसका बहुवचन के रूप में प्रयोग किया जाता है, तब द्विरुक्ति हो जाती है, जैसा कि ऊपर क्रमांक ६ में बतलाया है।

§५४४ कारक-रचना करते समय खड़ी बोली में विभक्ति रहित कर्ता के अतिरिक्त सभी कारकों में 'कोई' का 'किसी' हो जाता है, पर निमाड़ी में यह सभी कारकों के साथ अपरिवर्तित है। इसकी पूर्ण कारक-रचना इस प्रकार होगी :—

कर्ता	कोई—न
कर्म	कोई—ख
करण	कोई—सी
सम्प्रदान	कोई का लेण
अपादान	कोई—सी

सम्बन्ध कोई–का, कोई–की, कोई–को
अधिकरण कोई–म, कोई–पर, कोई का उप्पर.

§५४५ निमाड़ी में 'कई' अनिश्चयवाचक सर्वनाम का प्रयोग इन रूपों में होता है :—

(१) किसी अज्ञात वस्तु के स्थान में–घर–म कई छे (घर में कुछ है)।

(२) किसी छोटी वस्तु या पदार्थ के स्थान में––पानी-मऽ कई छे (पानी में कुछ है)।

(३) आनंद, आश्चर्य या तिरस्कार व्यक्त करने के लिये–ओ–की बात च कई अउर छे (उसकी बात ही कुछ और है), ऊ कई छोरो नी छे (वह कुछ लड़का नहीं है), ओ–को हाल कई न पूछो (उस का हाल कुछ न पूछो)।

(४) अवधारण के लिये 'कई' शब्द की द्विरुक्ति कर बीच में 'न' प्रत्यय लगा दिया जाता है–ओ–ख कई न कई मिलोच हो गया (उसे कुछ न कुछ मिला ही होगा)।

(५) भिन्नता अथवा विपरीतता व्यक्त करने के लिये–'कई' की द्विरुक्ति के बीच 'को' प्रत्यय लगा दिया जाता है-कई को कई हो गयो। (कुछ का कुछ हो गया)।

(६) दूसरे अज्ञात पदार्थ अथवा धर्म का बोध कराने के लिये–थारा मन–म कई अउर छे (तुम्हारे मन में कुछ और है)।

(७) विचित्रता सूचित करने के लिये–कई तू समझ्यो कई म समझ्यो (कुछ तू समझा कुछ मैं समझा)।

(८) निमाड़ी में अनेक बार 'कई' के पूर्व 'सब' अथवा 'भौत (बहुत) शब्द का प्रयोग देखा जाता है––म्हारा घर-म सब कई छे (हमारे घर में सब कुछ है), ऊ भौत कई कहज (वह बहुत कुछ कहता है)।

(९) 'कई' का उपयोग कभी-कभी समुच्चय बोधक अव्यय के समान भी देखा जाता है–कई तू–नऽकर्‌यो, कई म–नऽकर्‌यो (कुछ तूने किया, कुछ मैंने किया)।

§५४६ जिस प्रकार खड़ी बोली में 'कुछ' और ब्रज में 'कुछु' शब्द का प्रयोग बहुवचन में होता है, उसी प्रकार निमाड़ी का 'कई' शब्द भी बहुवचन का ही द्योतक है। इसकी कारक-रचना नहीं होती। जब इसका प्रयोग संज्ञा की तरह किया जाता है, तब संबोधन के अतिरिक्त अन्य कारकों में इसके रूप निम्न प्रकार होते हैं :—

कर्ता	कई–न	सम्प्रदान	कई–ख, कई कालेण
कर्म	कई–ख	अपादान	कई–स, सी
करण	कई–स, सी	सम्बन्ध	कई–क, का, की
		अधिकरण	कई, म, पर, उप्पर

§५४७ हिन्दी के कुछ, ब्रज के कुछु और निमाड़ी के कई की व्युत्पत्ति संस्कृत के किंचिद् से हुई है।

(५) सम्बन्ध वाचक सर्वनाम

§५४८ 'जो' और 'सो' खड़ी बोली के सम्बन्ध वाचक सर्वनाम हैं। ब्रज भाषा में भी इन्हीं शब्दों का उपयोग होता है, जिसका बहुवचन जो अथवा जे है। निमाड़ी में एक वचन में 'जे' तथा बहुवचन में कारकों के साथ 'जिन' होता है।

निमाड़ी में एक वचन में 'सो' के स्थान में 'ते' शब्द का प्रयोग होता है, जो बहुवचन में कारकों के साथ ब्रज में भी 'तिन' बोला जाता है। अब हिन्दी भाषियों के संसर्ग से नगरवासी हिन्दी की तरह 'सो' का भी प्रयोग करने लगे हैं। ब्रज में अनेक लोग 'सो' के स्थान में 'वह' भी बोलने लगे हैं। इसी प्रकार निमाड़ी में भी कहीं-कहीं 'ऊ' का प्रयोग भी करते हैं।

§५४९ निमाड़ी के सम्बन्ध-वाचक सर्वनाम 'जे' (हिन्दी का जो) और ते (हिन्दी का सो) के प्रयोग में निम्नांकित बातें स्मरणीय है:—

(१) जिस संज्ञा के स्थान में सम्बन्धवाचक सर्वनाम जाता है, उसके अर्थ की स्पष्टता के लिये इनमें से किसी एक सर्वनाम-शब्द का प्रयोग किया जाता है—हऊँ वा बात नी मोड़ूँगा, जे म-नऽकयदी (मैं वह बात न मोड़ूँगा जो मैंने कह दी)।

(२) कभी-कभी 'जे' सर्वनाम का प्रयोग विशेषण की तरह भी किया जाता है। इस स्थिति में वह सार्वनामिक या संकेतवाचक विशेषण बन जाता है—जे आदमी आया हता, ते चल्या गया (जो आदमी आये थे, वे चले गये)।

(३) कभी-कभी सम्बन्ध-वाचक सर्वनाम का लोप भी हो जाता है—गयो ते गयो (गया तो गया)।

(४) समूह-प्रदर्शन में 'जे' और 'ते' की द्विरुक्ति होती है— जे-जे आया था, ते-ते चल्या गया (जो-जो आये थे, सो-सो चले गये)।

(५) कभी-कभी 'जे' का प्रयोग समुच्चय-बोधक अव्यय के रूप में भी होता है—थारी ताकत नी जे तू ओ-खऽनिच्चो दिखा सकज (तुम्हारी ताकत नहीं, जो तू उसे नीचा दिखा सके)।

(६) कभी-कभी 'जे' के साथ अनिश्चय-वाचक सर्वनाम 'कई' भी जुड़ जाता है–जे कई कओ, विचारिन कओ (जो कुछ कहो, विचार कर कहो)।

§५५० 'जे' की पूर्ण कारक-रचना इस प्रकार होगी :—

कर्ता	जे–न	जिन–न
कर्म	जे–ख	जिन–ख
करण	जे–कासी	जिन–कासी
सम्प्रदान	जे–का लेण	जिन का लेण
अपादान	जे–कासी	जिन कासी
सम्बन्ध	जे–का, को, की	जिन–का, को, की
अधिकरण	जे–म, जे–पर, जे–का उप्पर	जिन–म, जिन–पर, जिन का उप्पर।

§५५१ 'ते' की कारक-रचना निम्नांकित है :—

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	ते–न	तिन–न
कर्म	ते–ख	तिन–ख
करण	ते–सी, स	तिन–सी, स
सम्प्रदान	ते–ख, ते कालेण	तिन–ख, तिनकालेण
अपादान	ते–सी–स	तिन–सी, स
सम्बन्ध	ते, को, का, की	तिनको, का, की
अधिकरण	ते–म, ते–पर, ते का उप्पर	तिन–म, पर, तिनका उप्पर

§५५२ हिन्दी के 'जो' तथा ब्रज और निमाड़ी के 'जे' की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'य:' से है,' जो प्राकृत में ही 'जे' और 'जो' हो गया था। 'सो' अथवा 'ते' की व्युत्पत्ति, जैसा कि तृतीय पुरुष के 'वह', 'ऊ', 'वो' की व्युत्पत्ति में बतलाया गया है संस्कृत के 'स:' से है। डा० चाटुर्ज्या 'सो' की व्युत्पत्ति इस प्रकार मानते हैं :—

प्रा. भा. आ. भाषा स: का विस्तृत रूप सक: 7 प्रा. सको 7 सगो 7 सओ 7 सउ 7 सो। 'ते' के बहुवचन रूप 'तिन' की व्युत्पत्ति सं. 'तेषां' से हुई है—तेषां 7 ताणां 7 तिन्।

(६) प्रश्नवाचक सर्वनाम

§५५३ 'कुण' और 'काई' निमाड़ी के प्रश्नवाचक सर्वनाम शब्द हैं। 'कुण' के स्थान में 'कोण' और 'काई' के स्थान में 'काइँ' का भी प्रयोग किया

जाता है। खड़ी बोली में 'कौन' और 'क्या' तथा ब्रज भाषा में 'को' 'कौन', 'कौन' तथा 'को' 'कहा' प्रश्नवाचक सर्वनाम शब्द हैं। इनमें ब्रज का 'कौन', निमाड़ी के 'कोण' के समान ही है। इसका बहुवचन रूप ब्रज और निमाड़ी दोनो में 'किन' होता है। 'कुण' अथवा 'कोण संस्कृत के 'कः पुनः' से तथा 'काई' संस्कृत के 'कः' शब्द से विकसित हुआ है। 'काई' का एक रूप 'कसो' संस्कृत के 'कस्य' से विकसित है।

§५५४ 'कुण अथवा 'कोण' का प्रयोग निम्नांकित रूपों में होता है :—

(१) तिरस्कार के अर्थ में—म–खऽ कहणवाळो तू कोण ? (मुझे कहनेवाला तू कौन ?)

(२) सामान्य प्रश्न के रूप में—ऊ कोण छे ? (वह कौन है ?)

(३) निर्धारण के अर्थ में—इन–मऽ भला कोण छे, ण बुरा कोण छे ? (इनमें भले कौन हैं और बुरे कौन हैं ?)

(४) आश्चर्य व्यक्त करने में—य–मऽ कोण बुराई छे ? (इसमें कौन बुराई है ?)

(५) चिंता अथवा खेद व्यक्त करने में—अरे या कोण मुसीबत ? (अरे, यह कौन मुसीवत है ?)

(३) 'कोण' का प्रयोग कभी-कभी विशेषण के रूप में भी होता है—ऊ कोण आदमी छे ? (वह कौन आदमी है ?)

(७) कभी कभी 'कोण' का प्रयोग क्रिया विशेषण के रूप में देखा जाता है—यू काम कोण कठण छे ? (यह काम कौन कठिन है ?)

(८) भिन्नता दिखलाने में—कोण-कोण आया छे ? (कौन-कौन आये हैं ?)

§५५५ 'कोण' सर्वनाम-शब्द की कारक-रचना इस प्रकार होगी :—

प्रश्नवाचक—कुण या कोण

कर्ता	कुण–न, कौन–न	किन–न
कर्म	कुण–ख, कोण–ख	किन–ख
करण	कुण–सी, कोण–सी	किन–सी
सम्प्रदान	कुण का लेण, कोण का लेण	किन का लेण
अपादान	कुण–सी, कोण–सी	किन–सी
सम्बन्ध	कुण–कोण–का, को, की	किन–का, को, की
अधिकरण	कुण–कोण–म, पर	किन–म, पर

§५५६ 'काई' (हिन्दी 'क्या') का प्रयोग निम्न रूपों में होता है :—

(१) किसी वस्तु का लक्षण जानने के लिये—पाप काई छे ? (पाप क्या है ?)

(२) तिरस्कार-प्रदर्शन के लिये—तू-न यू काई कर्‌यो ? (तूने यह क्या किया ?)

(३) अपमान करने के अर्थ में—ऊ आदमी काई राक स छे ? (वह आदमी क्या राक्षस है ?)

(४) गर्व या गौरव-प्रदर्शन में—ऊ म्हारे सामे काई चीज छे ? (वह मेरे सामने क्या चीज है ?)

देस का सामे जान काई छे ? (देश के सामने जान क्या है)

(५) आश्चर्य व्यक्त करने में—काई भयो ! ऊ मरी गयो ! (क्या हुआ ! वह मर गया ?)

(६) धमकी के अर्थ में—तुम काई बोलज ? (तुम क्या बोलते हो ?)

(७) 'काई' का प्रयोग कभी कभी क्रिया-विशेषण के रूप में भी देखा जाता है—काई अच्छी बात छे ! (क्या अच्छी बात है ।)

(८) दशा-दर्शन में—ऊ काई-सी काई होई गयो (वह क्या से क्या हो गया)।

(९) विस्मयादि बोधक अव्यय के रूप—काई तु–ख दिखऽनी ? (क्या तुझे दिखाई नहीं देता ?)

(१०) संभावना-हीनता प्रकट करने के लिये—ऊ म–खऽ काई मारगा ! (वह मुझे क्या मारेगा !)

यहाँ भी काई का प्रयोग क्रिया-विशेषण के रूप में ही हुआ है ।

(११) व्यग्रता या चिंता व्यक्त करने के लिये—मऽकाई बठी ? (मैं क्या बैठी हूँ ?)

(१२) बहुत्व प्रदर्शन में 'काई' द्विरुक्ति में आता है—तू काई-काई लायो ? (तूने क्या-क्या लाया ?)

(१३) समुच्चयबोधक अव्यय के रूप में—काई छोटा, काई बड़ा सबकी एकच दशा होणी छे (क्या छोटे, क्या बड़े सबकी एक ही दशा होनी है ।)

'काई' शब्द की कारक-रचना नहीं होती ।

§५५७ निमाड़ी के सर्वनामों की कुछ विशेषताएँ निम्नांकित हैं :—

(१) यू, ऊ सर्वनाम शब्दों के रूप ए तथा ओ के आगे 'तरो' प्रत्यय लगा देने से वे परिमाण वाचक विशेषण बन जाते हैं—एतरो (इतना) ओतरो (उतना) ।

(२) इसी प्रकार 'कोण' के रूप 'के' तथा सम्बन्ध-सूचक सर्वनाम 'जे' के आगे 'तरा' प्रत्यय लगाने से भी परिमाण-वाचक विशेष शब्द बन जाते हैं—केतरो (कितना), जेतरो (जितना)।

(३) यू, ऊ, ये सर्वनाम शब्दों को अकारान्त कर उनके आगे 'सो' प्रत्यय लगा देने से गुणवाचक विशेषण शब्द बन जाते हैं—असो आदमी, वसो छोरो, जसो बइल।

स्त्रीलिंग में 'सो' का 'सी' हो जायगा—असी लुगई, वसी छोरी, जसी गाय।

विशेषण

§५५८ खड़ी बोली की तरह निमाड़ी में भी चार प्रकार के विशेषण होते हैं—गुणवाचक, संख्यावाचक, परिमाणवाचक और सार्वनामिक अथवा संकेतवाचक।

(१) गुणवाचक विशेषण

§५५९ निमाड़ी के गुणवाचक विशेषणों की निम्नांकित विशेषताएँ हैं:—

(अ) संज्ञा-शब्दों की तरह निमाड़ी के कुछ गु० वा० विशेषण-शब्द भी ओकारान्त हैं। यथा—अच्छो घर, उच्चो आदमी, काळो बइल आदि।

इनके अतिरिक्त अकारान्त, इकारान्त, ईकारान्त आदि विशेषण शब्दों में कोई विकार नहीं होता, वे हिन्दी की तरह निमाड़ी में भी अपने मूल रूप में ही व्यवहृत होते हैं। जैसे चतुर छोरो, सुन्दर बगीचो, गवार अदमी, आलसी अदमी, गोरी लुगई आदि।

(आ) हिन्दी की तरह निमाड़ी में भी लिंग और वचन की दृष्टि से विशेषण शब्दों का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता, उनके लिंग-वचन उनके विशेष्यों के लिंग-वचनों के समान ही होते हैं, यथा—भली लुगाई में 'लुगाई' विशेष्य एकवचन, स्त्रीलिंग है, इसलिए 'भली' विशेषण शब्द भी एकवचन, स्त्रीलिंग ही होगा, पर यदि 'भली लुगाईन, कहें तो विशेष्य 'लुगाईन' बहुवचन में होने के कारण 'भली' विशेषण शब्द भी बहुबचन समझा जायगा, पर एकवचन से बहुवचन में प्रयोग होने पर भी विशेषण के मूल रूप में कोई विकार नहीं होगा।

(इ) निमाड़ी के ओकारान्त पुल्लिग विशेषण शब्द स्त्रीलिंग ईकारान्त हो जाते हैं। यथा—

पुल्लिग—काळो घोड़ो

स्त्रीलिंग—काळी घोड़ी

(ई) ओकारान्त पुल्लिग विशेषण शब्द बहुवचन में संज्ञा शब्दों की तरह ही आकारान्त हो जाते हैं, पर स्त्रीलिंग-विशेषण शब्द दोनों वचनों में समान ही रहते हैं। यथा—

एक वचन पुल्लिग—काळो घोड़ो
बहु वचन पुल्लिग—काळा घोड़ान
एक वचन स्त्रीलिंग—काळी घोड़ी
बहु वचन स्त्रीलिंग—काळी घोड़ीन

(उ) ओकारान्त के अतिरिक्त अन्य सभी विशेषण शब्दों के रूप दोनों लिंगों और दोनों वचनों में अविकृत ही बने रहते हैं। यथा :—

पुल्लिग एक वचन—चतुर छोरो
पुल्लिग बहु वचन—चतुर छोरान
स्त्रीलिंग एक वचन—चतुर छोरी
स्त्रीलिंग बहु वचन—चतुर छोरीन

(ऊ) हीनता के अर्थ में गुणवाचक विशेषण-शब्दों के आगे 'सो' प्रत्यय लगा दिया जाता है। यथा—बड़ी–सो–घर, छोटी-सी झोपड़ी, भारी-सो वजन आदि।

(ए) कभी-कभी 'सरीखो' अथवा 'बरोबर' विशेषण शब्द का प्रयोग सम्बन्ध-सूचक अव्यय की तरह होता है। यथा—थारा सरीखो कोण हुई सकज (तेरे समान कौन हो सकता है।) ये–का बरोबर म्हारा बी छोरा छे (इसके बराबर मेरा भी लड़का है।)

(ऐ) 'लाइक' शब्द का प्रयोग सम्बन्ध-सूचक अव्यय की तरह होने पर भी वह विशेषण ही रहता है। यथा—म्हारा लाइक काम होय तो बोलो (मेरे लायक काम हों तो बोलो।)

(ओ) जब गुणवाचक विशेषण-शब्दों का विशेष्य लुप्त होता, तब उनका प्रयोग संज्ञा की तरह ही होता है। यथा—बड़ा की बात सुणो, गरीब–ख मत सताओ आदि।

तुलनात्मक रूप

§५६० हिन्दी की तरह निमाड़ी में भी गुण वाचक विशेषण शब्दों की तीनों अवस्थाओं-मूलावस्था, आधिक्य बोधक और अतिशय बोधक का प्रयोग होता है, किन्तु आधिक्य बोधक और अतिशय बोधक अवस्था में हिन्दी की तरह 'तर' और 'तम' प्रत्यय का उपयोग नहीं किया जाता। निमाड़ी में

आधिक्य बोधक अवस्था बतलाने के लिए विशेषण शब्द के पूर्व 'जादा' और अतिशय बोधक अवस्था बतलाने के लिये विशेषण शब्द के पूर्व 'बड़ो' या 'सब सी' शब्द लगा देते हैं। यथा—

मूल या सामान्य अवस्था	ऊचो घर
आधिक्य बोधक अवस्था	जादा ऊचो घर
अतिशय बोधक अवस्था	बड़ो ऊचो घर या सब सी ऊचो घर

(२) संख्यावाचक विशेषण

§५६१ हिन्दी में संख्यावाचक विशेषण पाँच प्रकार के हैं। निमाड़ी में भी इन पाँचों प्रकार के संख्यावाचक विशेषणों का प्रयोग होता है। यथा—

(अ) गणनाबोधक	सात दिन, बारा आदमी, सोळा घर आदि।
(आ) क्रमबोधक	पहिलो छोरो, बारबो घर, चौदवो बरिस आदि।
(इ) आवृतिबोधक	दूनो काम, चौगनो मोल, तिहरी आमदनी आदि।
(ई) समुदायबोधक	पचासो आदमी, सैकड़ो लोग आदि।
(उ) प्रत्येक बोधक	हरेक घर, हर पाचवो आदमी आदि।

§५६२ संख्याबोधक विशेषणों के उपर्युक्त प्रकारों में से गणनाबोधक को हम पुनः दो प्रकारों में विभाजित कर सकते हैं—पूर्णाङ्क बोधक और अपूर्णाङ्कबोधक। एक, दो, तीन, चार आदि पूर्णाङ्क गणनाबोधक हैं और पाव, आधा, पौन, सवा आदि अपूर्णाङ्क गणनाबोधक विशेषण है, जो निमाड़ी में निम्न प्रकार बोले जाते हैं:—

पाव	पाव
आधा	आधो
पौन	पौण या पउण
सवा	सवा
देढ़	देड़
पौने दो	पौना दो
साढ़े तीन	साड़ा तीन

उपर्युक्त अपूर्णाङ्क गणनाबोधक विशेषण शब्दों में से पौण, सवा और देड़ शब्दों का परिमाणवाचक विशेषण के रूप में प्रयोग होने पर वे क्रमशः पौनो, सवायो और देवढ़ो बोले जाते हैं।

§५६३ संख्या बोधक विशेषण का एक प्रकार—अनिश्चित संख्याबोधक भी हो सकता है। सब, भउत या भौत, जादा, कम, कई (कुछ) ऐसे ही

संख्या-बोधक विशेष शब्द हैं। इन शब्दों का प्रयोग सदैव बहुवचन में ही होता है।

इनके अतिरिक्त 'अउर' (और) शब्द का प्रयोग भी कभी-कभी अनिश्चित संख्या-बोधक के रूप में होता है। यथा---अउर पैसा दऽ (और पैसे दे)।

संख्यावाचक विशेषणों की व्युत्पत्ति

§५६४ सभी संख्यावाचक विशेषण संस्कृत से प्राकृत द्वारा निमाड़ी में आये हैं। उदाहरणार्थ---

संस्कृत	प्राकृत	निमाड़ी
गणना बोधक		
एक	एक्क	एक
द्वि	दुवे	दो
त्रीणि	तिण्णि	तीन
चत्वारि	चत्तारि	चार
पञ्च	पंच	पाच (पाँच)
षट्	छह्	छे
सप्त	सत्त	सात
अष्ट	अट्ठ	आठ
नवं	णओ	नउ या नौ
दश	दह	दस
विंशति	वीसई	बीस
पञ्चविंशति	पंचवीस	पच्चीस
त्रिंशत्	तीसअ	तीस
चत्वारिंशत्	चत्तालीसा	चाळीस
पंचाशत्	पण्णासा	पचास
षष्टि	सट्ठि	साठ
सप्तति	सत्तरि	सत्तर
अशीति	आसीइ	अस्सी
नवति	नउए	नब्बे
शत	सअ	सौ
क्रमबोधक		
प्रथम	पठमो	पहिलो
द्वितीय	दुइअ	दूसरो

तृतीय	तइअ	तीसरो
चतुर्थ	चउत्थ	चौथो
पंचम	पंचमो	पाचवो
षष्ठम्	छट्ठो	छटवो

अपूर्णाङ्कबोधक

सवांद	सवाअ	सवा
पादोन	पाउण	पौन
तृतीयांश	तिताइअ	तिहाई
अर्द्धक	अद्धअ	आधो
द्विअर्द्धक	डिअड्ढ	ढोढ़ो
अर्द्धतृतीय (क)	अड्ढइअ	अढ़ाई

§५६५. साढ़े, तीन, साढ़े चार, साढ़े सात आदि के पूर्व पद साढ़े या निमाड़ी के साड़े की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'सार्द्ध' शब्द से है—सार्द्ध 7 सड्ढ़ 7 साढ़े या साड़े।

(३) परिमाणवाचक विशेषण

§५६६ थोड़ो, भौत, सब, पूरो, अधूरो, इतरो, उतरो, जितरो, कितरो आदि निमाड़ी के परिमाणवाचक विशेषण हैं।

§५६७ निमाड़ी में इन परिमाणवाचक विशेषण शब्दों का प्रयोग निम्न-प्रकार होता है :—

थोड़ो	थोड़ो पानी
भौत	भौत फसल
सब	सब समान
पूरो	पूरो काम
अधूरो	अधूरो काम
इतरो	इतरो काम
उतरो	उतरो नाज (अनाज)
जितरो	जितरो माल
कितरो	कितरो गल्लो

इनमें से थोड़ो, भौत, सब, इतरो, उतरो, जितरो, कितरो शब्दों का उपयोग अनिश्चित संख्या वाचक विशेषण शब्दों के रूप में भी होता है। यथा—

थोड़ो	थोड़ा आदमी आया छे ।
भौत	भौत लड़का उभा था।
सब	सब लुगाई न-ख बलाओ।
इतरो	इतरो जमाव कभी नी देख्यो।

उतरो या उतरे
जितरो या जितरे | जितरे आदमी, उतरे विचार

कितरो या—कितरे आदमी आया छे ?

कुछ विशेषताएँ

§५६८ निमाड़ी के परिमाण वाचक विशेषणों की रूप और प्रयोग की दृष्टि से निम्नांकित विशेषताएँ हैं :—

(१) निमाड़ी के परिमाण वाचक विशेषण शब्द एक वचन संज्ञा के साथ अक्षुण्ण रहते हैं, पर बहुवचन संज्ञाओं के साथ अनिश्चित संख्या वाचक विशेषण बन जाते हैं। यथा—

परिमाण बोधक	अनिश्चित संख्या बोधक
भउत दूद	भउत आदमी
थोड़ो काम	थोड़ा आदमी
पूरो काम	पूरा टुकड़ा

(२) निश्चित परिमाण बतलाने के लिये संख्या वाचक विशेषण के साथ परिमाण बोधक संज्ञा-शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यथा—चार सेर दूद, दस हात कपड़ों आदि।

(३) एक वस्तु का परिमाण बतलाने के लिये परिमाण वाचक संज्ञा शब्दों के आगे 'भर' प्रत्यय लगा दिया आता है। यथा—सेर-भर तेल, मन-भर गुड़ आदि।

(४) कुछ परिमाणवाचक विशेषण मिलकर आते हैं यथा—भउत सारा आदमी, थोड़ो-भउत काम, कम-ज्यादा जिमाण (भोजन करने वाले आदि)।

(५) निश्चय के अर्थ में थोड़ो, भउत, जरा के आगे 'सो' प्रत्यय लगा दिया जाता है। यथा—थोड़ो सो धन, बहुत सो फायदो, जरा सी बात आदि।

(६) परिमाणवाचक विशेषण कभी-कभी क्रिया विशेषण के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं। यथा—म-नऽओ—खऽभउत समझायो (मैंने उसे बहुत समझाया, सु-न्नो थोड़ो खोटो छे (सोना थोड़ा खोटा है) आदि।

सार्वनामिक विशेषण

§५६९ पुरुषवाचक और निजवाचक सर्वनामों के अतिरिक्त सर्वनाम शब्द

जब संज्ञा के पूर्व आते हैं, तब विशेषण बन जाते हैं। यथा—ई आदमी, वा छोरी, कोई घर आदि।

निमाड़ी में यू, ई, ऊ, वी निश्चयवाचक सर्वनाम शब्दों का ही सार्वनामिक विशेषणों के रूप में अधिक प्रयोग देखा जाता है। इनमें से यू, ई, निकटवर्ती और ऊ, वी दूरवर्ती हैं।

§५७० निमाड़ी मे सार्वनामिक विशेषणों के दो रूप मिलते हैं—मूल और यौगिक।

मूल—यथा-यू छोरो, ऊ छोरो, ई आदमी, वी आदमी, कई काम आदि।

यौगिक—यथा-असो घर, इतरो धन, जासो देस वसो भेस आदि।

विशेषताएँ

§५७१ निमाड़ी में मूल सार्वनामिक विशेषणों की निम्नांकित विशेषताएँ देखी जाती हैं :—

(१) 'ऊ' और उसका स्त्रीलिंग रूप 'वा' एक शब्द के साथ आने पर अनिश्चयवाचक हो जाता है। यथा—ऊ एक आदमी आ गयो थो, वा एक तेलेण-सी बखेड़ो होई गयो।

(२) 'कोण' और 'कई सर्वनाम किसी प्राणी अथवा पदार्थ के नाम के साथ ही आते हैं। यथा—कोणसा जंगल-मऽगयो थो ? (किस जंगल में गया था) कई लुगईन बड़ी लड़ाक रयस (कुछ स्त्रियाँ बड़ी लड़ाक रहती हैं)।

(३) आश्चर्य व्यक्त करने में 'काई' (हिन्दी 'क्या') सर्वनाम का प्रयोग सार्वनामिक विशेषण के रूप में किसी प्राणी, पदार्थ या धर्म के साथ होता है। यथा—ऊबी काई आदमी छे ? (वह भी क्या आदमी है ?) यू काई घर छे ? (यह क्या घर है), यह काई बात छे ? (यह क्या बात है)।

(४) प्रश्न में 'काई' का प्रयोग प्रायः भाववाचक संज्ञाओं के साथ ही होता है। यथा—काल हालत, काई नाव (नाम), काई काम आदि।

(५) 'कई' (हिन्दी 'कुछ') शब्द का प्रयोग भी भाववाचक संज्ञाओं के साथ ही होता है। यथा—कई बात छे (कुछ बात है), कइ जतन करणू चइजे (कुछ यत्न करना चाहिये) आदि।

§५७२ यौगिक सार्वनामिक विशेषणों की निम्नांकित विशेषताएँ हैं :—

(१) जब यौगिक सार्वनामिक विशेषण-शब्दों के साथ विशेष्य नहीं होता, तब वे संज्ञा हो जाते हैं। यथा—एतरा-म ऊ आई गयो (इतने में वह आ गया), जसो करोगा, तसो भरोगा (जैसा करोगे, वैसा भरोगे) आदि।

(२) यौगिक सम्बन्धवाचक सार्वनामिक विशेषणों के साथ उनके नित्य सम्बन्धी शब्दों का प्रयोग होता है। यथा—जसो देस, वसो भेस।

(३) कभी-कभी जसो और वसो सार्वनामिक विशेषण शब्दों का प्रयोग सम्बन्ध सूचक अव्यय की तरह भी देखा जाता है। यथा—यू काम तुम जसा आदमी-ख च सोभा देज (यह काम तुम जैसे आदमी को ही शोभा देता है), यू काम म्हारा असो आदमी को नी छे (यह काम मेरे-ऐसे आदमी का नहीं है)।

(४) यौगिक प्रश्नवाचक सार्वनामिक विशेषण शब्दों का प्रयोग आश्चर्य और अनिश्चय के अर्थ में भी होता है। यथा—आश्चर्य-आदमी कितनो कमायेगो ? अनिश्चय—छोरा होणा पर ओ-खऽकितरो आनन्द भयो (लड़का होने पर उसे कितना आनन्द हुआ)।

(५) परिमाण वाचक सार्वनामिक विशेषण—शब्दों का जब बहुवचन में प्रयोग किया जाता है, तब वे संख्यावाचक हो जाते हैं। यथा—म्हारा जितरा भाई छे, सबका सब हुस्यार छे (मेरे जितने भाई हैं, सबके सब होशियार हैं)।

(६) यौगिक सार्वनामिक विशेषणों का प्रयोग कभी-कभी क्रिया विशेषणों की तरह भी होता है। यथा—ऊ कितरो बी करऽ, नाव नी होय (वह कितना भी करे, पर नाम नहीं होता), वी कसा बेफिकर सोया छे ?(वे कैसे बेफिक्र सोये हैं ?) आदि।

क्रिया-पद

(अ) निमाड़ी की धातुएँ

§५७३ आ. भा. आ. भा. में प्रयुक्त क्रियाओं की धातुओं के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों ने बड़ा गम्भीर अध्ययन किया है। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का स्थान ऐसे भारतीय विद्वानों में प्रमुख है। उन्होंने आ. भा. आ. भा. की धातुओं को दो विभागों में विभक्त किया है :—

(१) सिद्ध धातु (Primary roots) और
(२) साधित धातु (Secondary roots)।

(१) सिद्ध धातुएँ

§५७४ इन धातुओं में से प्रायः सभी धातुएँ प्राकृत के द्वारा संस्कृत से आ भा. आ. भाषाओं तथा उनकी बोलियों में आई हैं। निमाणी में प्रयुक्त क्रियाओं की अधिकांश धातुएँ भी इसी प्रकार की हैं। ऐसी धातुएँ निम्नांकित हैं :—

क—कृण् 7 कस् 7 कसनो, कम्प 7 कांप् 7 कप 7 कपनो, कृत् 7 काट् 7 काटनो, कूर्द 7 कूद 7 कूदनो, कथम 7 कह् 7 कहनो, प्रा. कुट्ट 7 कूट 7 कूटनो।

ख—खन् 7 खन 7 खोदनो, खाद् 7 खा 7 खानो।

ग—गण 7 गन 7 गिननो, गल् 7 गल् 7 गलनो, ग्रंथ 7 गांथ् 7 गूथनो, गुंज 7 गूंज 7 गूंजनो, गर्ज 7 गरज 7 गरजनो ।

घ—घट् 7 घट् 7 होनो, घृष 7 घस – घिसनो, प्रा. घट्ट 7 घट् 7 घटनो ।

च—च्यव् 7 चु 7 चूनो, चि 7 चिनोति 7 चुन 7 चुनना 7 बीननो, चर् 7 चर् 7 चरनो, चल् 7 चल 7 चलनो, चक्ष 7 चख् 7 चखना, चुम्ब 7 चुम् 7 चूमनो, प्रा. चड्ढ 7 चढ़ – चढ़नो, प्रा. चुक्कई 7 चुक् 7 चूकनो ।

छ—छिद् 7 छेद 7 छेदनो, प्रा. छड्डइ 7 छोड़ 7 छोड़नो ।

ज—ज्ञा 7 जान 7 जाननो, जल्प 7 जप् 7 जपनो, जागृ 7 जाग 7 जागनो, जी 7 जित (भूतकालिक कृदन्त) 7 जित् 7 जीतनो, जीव् 7 जीनो ।

ट—त्रुट् 7 टूट 7 टूटनो, टंक 7 टांक 7 टाक 7 टाकनो, स्थग 7 ठग 7 ठगनो ।

ड—डुब्ब 7 डूब 7 डूबनो, दंश 7 प्रा. डसइ 7 डस 7 डसनो, प्रा. डरइ 7 डर 7 डरनो ।

ढ—प्रा. ढक्कइ 7 ढाँक 7 ढाक 7 ढाकनो, ढूंढइ 7 ढूंढ 7 ढूंड 7 ढूंडनो, ढुक्कइ 7 ढूक 7 ढूकनो ।

त—त्यज् 7 तज 7 तजनो 7 छोड़नो ।

थ—स्थम्भ 7 थम्भ 7 थल 7 थमनो ।

द—प्रा. देक्खई 7 देख 7 देखनो, दा 7 प्रा. देइ 7 दे 7 देनो ।

ध—धृ 7 धर 7 धरनो (पकड़ना), ध्वस 7 धस् 7 धसनो ।

न—नृत्य 7 प्रा. नच्चई 7 नाच 7 नाचनो, स्ना 7 न्हा 7 नहा 7 नहानो ।

प—पिवति 7 पी 7 पीनो, पृच्छति 7 प्रा. पुच्छई 7 पूछ 7 पूछनो, पढ 7 पढ़ 7 पढ़नो, प्रा. पक्क 7 पक 7 पकनो, प्रा. पिट्टइ 7 पीट 7 पीटनो ।

फ—स्फाट् 7 फाट 7 फट 7 फटनो, स्फुट 7 फुट 7 फूटनो, फुल्ल 7 फुल्लई 7 फूल 7 फूलनो ।

ब—बंट 7 बाँट 7 बाट 7 बाटनो, बन्ध 7 बाँध 7 बाँधनो, प्रा. बोल्लइ 7 बोल 7 बोलनो, वर्धयति 7 प्रा. बढ्ढई 7 बढ़ 7 बढ़नो, बुध 7 प्रा. बुज्झइ 7 बूझ 7 बुझनो, वप् 7 बो 7 बोनो ।

भ—भृ 7 भर 7 भरनो, भाव् 7 भाव 7 भानो, प्रा. भुल्लइ 7 भूल 7 भूलनो ।

म—मज्ज 7 मज्जइ 7 माँज 7 माँजनो, म्रक्ष 7 प्रा. मक्खइ 7 माख 7 मख 7 मखनो, मर्द 7 मल 7 मलनो ।

र——रक्ष > रक्खइ > रख > रखनो > राखनो, रुद्र > रो > रोनो, प्रा. रुस्सइ > रुस > रूसनो ।

ल——प्रा. लेइ > ले > लेनो, प्रा. लुंठ > लूट > लूटनो ।

स——श्रृणोति > सुणइ > सुन > सुननो, प्रा. सहइ > सह् > सहनो, सिध् > प्रा. सिज्झइ > सीज > सीजनो (पकना)।

ह——प्रा. हट्ट > हट > हटनो, हार > हार > ह.रनो ।

उपसर्ग संयुक्त धातुएँ

§५७५ आ-वृत् > अवट > अवटनो, उद् > वह > बह > बहनो, उत् > पद्यते > उपज > उपजनो, उत् > ज्वल > उजड़ > उजड़नो, उत् — खाट > उखाड़ > उखाड़नो, उद् — गम् > ऊग > ऊगनो, अव — तृ > उतर > उतरनो, उत् — चर > उचर > उड़ > उड़नो, निर — कस > निकस > निकल>निकलनो, निर् — ईक्ष > निरख > निरखनो, नि — मंत्र > न्योत > न्योतनो, नि — वह् > निबाह > निभा > निभानो, प्रविष्ठ — प्रा. > पइट्ठइ > पइठ > पइठनो, प्र. — उच्छ् > पोंछ > पोछ > पोछनो, प्र-सृ > पसर > पसरनो, परि-धा > पहिर > पइर > पहरनो (पहिरना), परि — वेश > परोस > परोसनो, प्र — क्षाल् > पखार > पखारनो, उप् — विष्ट > बैठ > बठ > बठनो, वि — कृ — प्रा. > बेच्चइ > बेच > बेचनो, अभि > अंच > भींज > भींजनो, सम् — हाल् > सम्हाल > समाल > समालनो, सम् — अर्प > सौंप > सोप > सोपनो ।

णिजन्त से आई सिद्ध धातुएँ

§५७६ उद्घाटयति > उघाड़ > उघाड़नो, उत्खाटयति > उखाड़ > उखाड़नो, चालयति > चाल > चालनो, छादयति > छा > छानो, छेदयति > छेद > छेदनो, झाटयति > झाड़ > झाड़नो, तापयति > ताव > तावनो (तपाना), स्नापयटि > नहा > नहानो > हनानो, प्राप्यति > पाव > पावनो, पानो, प्रसारयति > पसार > पसारनो, साधयति > साध > साधनो आदि ।

(२) साधित धातुएँ

§५७७ साधित धातुओं में से निमाड़ी में नाम धातु से बनी क्रियाओं का ही अधिक प्रयोग मिलता है । कुछ नाम धातुएँ निम्नांकित हैं :—

अंकुर > ऊगनो, अग्नि > आग्ग > जलनो, गर्त > गड्ड > गाड़ > गाड़नो, घूर्ण > घोल्ल > घोर > घोरनो, चौर > चोर > चुरानो; चिन्ह > चिन्हार > पहिचान > पहिचाननो > पछाननो, छिन्न > छिन > छीन > छीननो, क्षिप्त > छिट् > छिट > छिड़कनो; झगट् > झगड़ > झगड़नो; डल्ल > ढेर > ढेर लगानो, तप्त > तातो > तपनो, दग्ध > दड्ढ > जलनो, स्थिर > थिर > थिरनो,

प्रत्ययः 7 पच्चग्र 7 पतियानो, पिप्ट 7 पिट्ट 7 पीट 7 पीटनो, व्याख्या 7 वक्खाण 7 बखान 7 बखाननो, मूत्र 7 मुत्र 7 मूत 7 मूतनो, शुष्क 7 सुक्ख 7 सूखो 7 सूखनो ग्रादि।

सिद्ध धातुओं को 'मूल-धातु' तथा साधिक धातुओं को 'यौगिक-धातु भी कहते हैं।

क्रिया के प्रकार

§५७८ समस्त क्रियाएँ मुख्य रूप से दो प्रकारों में विभाजित की जा सकती हैं—अकर्मक और सकर्मक।

अधिकांश सिद्ध धातुओं से बनी क्रियाएँ अकर्मक होती हैं, पर कुछ अकर्मक क्रियाएँ ऐसी भी हैं, जो साधित धातुओं से बनती हैं। यथा चलनो, बठनो, नाचनो, खेलनो, कूदनो, हँसनो, रोनो आदि।

साधित धातुओं से बनने वाली क्रियाएँ सकर्मक होती हैं। सकर्मक क्रिया में कर्ता के व्यापार का फल कर्म पर पड़ता है, जबकि अकर्मक क्रिया में कर्ता के व्यापार का फल कर्ता पर ही पड़ता है। यथा—

अकर्मक क्रिया—रामू लिखज (रामू लिखता है)।

सकर्मक क्रिया—रामू मोहन-खऽ मारज (रामू मोहन को मारता है)।

§५७९ हिन्दी की क्रियाओं के सामान्य रूपों के अन्त में 'ना' होता है, पर निमाड़ी, ब्रज और बुन्देली की क्रियाओं के सामान्य रूप के अन्त में 'नो' होता है। निमाड़ी में अनेक बार 'न' के स्थान पर 'ण' का प्रयोग किया जाता है, तदनुसार खानो, पीनो, रहनो आदि क्रियाएँ खाणो, पीणो, रहणो उच्चरित होती हैं। पश्चिमी निमाड़ में ओकारान्त के स्थान पर कभी-कभी ऊकारान्त भी सुना जाता है, तदनुसार ये क्रियाएँ खाणू, पीणू, रहणू या रयणू उच्चरित होंगी।

जिस प्रकार खड़ी बोली में क्रिया के सामान्य रूप से 'ना' पृथक् कर देने से उस क्रिया की धातु ज्ञात हो जाती है, उसी प्रकार निमाड़ी की क्रियाओं के सामान्य रुप से 'नो' 'णो' अथवा 'णू' पृथक् करने से उस क्रिया की धातु ज्ञात हो जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि खड़ी बोली और निमाड़ी अथवा ब्रज या बुन्देली की क्रियाओं में उच्चारण-भेद का ही अन्तर है, धातुएँ सब की समान ही हैं।

§५८० ऊपर अकर्मक और सकर्मक क्रियाओं के जो उदाहरण दिये गये हैं, ये सामान्य वर्तमान-काल की क्रिया के उदाहरण हैं। निमाड़ी की सामान्य वर्तमान काल की एक वचन क्रिया धातु के आगे 'ज' प्रत्यय लगाकर बनाई

जाती है। इस बनावट के अनुसार निमाड़ी में तीनों पुरुषों के सामान्य वर्तमान काल एकवचन रूप इस प्रकार होंगे—

प्रथम पुरुष	हऊँ लिखूँज।
द्वितीय पुरुष	तू लिखज
तृतीय पुरुष	ऊ लिखज।

§५८१ निमाड़ी के सामान्य वर्तमान काल का यह 'ज' प्रत्यय गुजराती के 'छ' और 'च', बंगला के 'छि' तथा मराठी के 'आहे' प्रत्ययों के समान है। कुछ निमाड़ी-भाषी 'ज' के स्थान में 'च' प्रत्यय का भी प्रयोग करते हैं, जो गुजराती का अनुकरण जान पड़ता है।

§५८२ अकर्मक क्रियाएँ दो प्रकार की हैं—पूर्ण अकर्मक और अपूर्ण अकर्मक। निमाड़ी में इन दोनों प्रकार की अकर्मक क्रियाओं का प्रयोग होता है।

पूर्ण अकर्मक क्रियाएँ स्वयं पूर्ण होती हैं, उनका अर्थ स्पष्ट करने के लिये कर्ता के अतिरिक्त किसी अन्य संज्ञा या विशेषण शब्द की सहायता अपेक्षित नहीं होती। यथा—छोरो आवज (लड़का आता है)।

अपूर्ण अकर्मक क्रिया का अर्थ स्पष्ट करने के लिये उसके कर्ता के अतिरिक्त अन्य संज्ञा या विशेषण शब्द भी आवश्यक होता है। यथा—ऊ आदमी राजा छे, म्हारो नोकर इमानदार छे आदि।

इन वाक्यों में आदमी और नौकर कर्ता हैं, पर क्रिया का अर्थ स्पष्ट करने के लिये राजा और ईमानदार शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। ऐसे शब्द 'पूर्ति' कहलाते हैं।

§५८३ सकर्मक क्रियाएँ तीन प्रकार की हैं—पूर्ण सकर्मक, अपूर्ण सकर्मक और द्विकर्मक। निमाड़ी में इन तीनों प्रकार की सकर्मक क्रियाओं का प्रयोग होता है।

जिन सकर्मक क्रियाओं का आशय एक ही कर्म से पूणरूपेर्ण प्रकट होता है, वे पूर्ण सकर्मक क्रियाएँ कहलाती हैं। यथा—गज्जू रोटी खावज।

इस वाक्य में 'खावज' क्रिया पूण सकर्मक है, क्योंकि 'गज्जू' कर्ता और 'रोटी' कर्म मिलकर क्रिया का आशय पूणरूपेण प्रकट कर देते हैं।

एक कर्म के रहते हुए भी जिन क्रियाओं का आशय व्यक्त नहीं होता, वे अपूर्ण सकर्मक क्रियाएँ कहलाती हैं। ये क्रियाएँ भी दो प्रकार की होती हैं—एक तो वे जिनके साथ दो कर्म होते हैं। यथा—छोरीखन ओकी माय-ख कपड़ा दिया।

इस वाक्य में 'कपड़ा' मुख्य कर्म है, पर केवल इस एक कर्म से ही 'दिया' क्रिया का आशय स्पष्ट न होने के कारण 'माय' कर्म भी उसके साथ आया है। ऐसी क्रियाओं को द्विकर्मक क्रिया भी कहते हैं।

द्विकर्मक क्रियाओं का गौण कर्म सदैव सम्प्रदान कारक में होता है। उपर्युक्त वाक्य में 'माय-ख' गौण कर्म है, जिसका प्रयोग सम्प्रदान के रूप में हुआ है।

पूछना, दुहना, कहना आदि कुछ ऐसी सकर्मक क्रियाएँ हैं, जिनका गौण कर्म सम्प्रदान में न होकर अपादान कारक में होता है। यथा—

पूछना—ओ—नऽम—सी एक बात पूछी (उसने मुझसे एक बात पूछी)।

दुहना—गोपाल—न गाय—सी दूद दुह्यो (गोपाल ने गाय से दूध दुहा)।

कहना—दाजी न म—सी एक कायनी कही (दादा ने मुझसे एक कहानी कही)।

दूसरे प्रकार की अपूर्ण सकर्मक क्रिया में एक ही कर्म होता है, पर क्रिया का आशय स्पष्ट करने के लिए किसी संज्ञा या विशेषण शब्द का प्रयोग 'पूर्ति' के रूप में किया जाता है। यथा—म-न ऊ साधू-ख चोर समझ्यो (मैंने उस साधू को चोर समझा)।

इस वाक्य में 'साधू' कर्म है, पर 'समझ्यो' 'क्रिया का आशय स्पष्ट करने के लिये 'चोर' शब्द का प्रयोग 'पूर्ति' के रूप में किया गया है।

अकर्मक से सकर्मक

§५८४ निमाड़ी की अकर्मक धातुएँ निम्नांकित प्रकार सकर्मक हो जाती हैं :—

(१) धातु के आदि स्वर को दीर्घ कर देने से—कटनो-काटनो, पिटनो-पीटनो, दबनो-दाबनो, मरनो-मारनो आदि।

(२) त्र्यक्षरी धातु के द्वितीय वर्ण के स्वरान्त को दीर्घ कर देने से—उखड़ो-उखाड़नो निकलनो-निकालनो, बिगड़नो-बिगाड़नो आदि।

(३) किसी-किसी धातु के आदि स्वर 'इ' या 'उ' को गुण कर देने से—घुलनो-घोलनो, मुड़नो-मोड़नो, फिरनो-फेरनो आदि।

(४) कुछ धातुओं के अन्त्य व्यंजन 'ट' को 'ड़' कर देने से—छूटनो-छोड़नो, फूटनो-फोड़नो आदि।

क्रिया के रूप में विकार

§५८५ क्रिया शब्द के रूप में वाच्य, प्रयोग (लिंग, वचन, पुरुष) काल और अर्थ के कारण विकार होता है। अतः निमाड़ी में क्रिया शब्द के विकार और उस विकार के कारण बने उसके विभिन्न रूपों को समझने के लिए इन विकार उत्पन्न करने वाली बातों पर क्रमशः विचार करेंगे—

वाच्य

§५८६ वाच्य क्रिया शब्द के उस रूपान्तर को कहते हैं, जिससे यह जाना जाता है कि विधान कर्ता, कर्म अथवा भाव में से किसके विषय में किया गया है।

इस विधान के अनुसार वाच्य के तीन प्रकार होते हैं :--(१) कर्तृ-वाच्य (२) कर्मवाच्य और (३) भाव वाच्य ।

(१) कर्तृवाच्य

§५८७ जब क्रिया का विधान कर्ता के विषय के में होता है, तब कर्तृ वाच्य होता है । यथा--छोरो पानी पिवज, म-नऽ चिट्ठी लिखी आदि ।

कर्तृ वाच्य अकर्मक और सकर्मक दोनों प्रकार की क्रियाओं में होता है, जैसा ऊपर के वाक्यों में से पहिले वाक्य की क्रिया अकर्मक और दूसरे वाक्यों की क्रिया सकर्मक है ।

(२) कर्मवाच्य

§५८८ जब क्रिया के रूपान्तर से कर्म के विषय में विधान किया जाना ज्ञात होता है, तब कर्मवाच्य होता है । यथा--राम-सी पुस्तक पढ़ी गई, पानी पियो जाज आदि ।

कर्म वाच्य केवल सकर्मक क्रिया में होता है ।

(३) भाववाच्य

§५८९ जब क्रिया के रूपान्तर से वाक्य का उद्देश्य कर्ता या कर्म दोनों नहीं जान पड़ता, तब भाववाच्य होता है । यथा--म-सी बठ्यो नी जातो, ओम्-ना सी नी चला जातो आदि ।

भाववाच्य केवल अकर्मक क्रिया में होता है और हिन्दी की तरह निमाड़ी में भी इसका प्रयोग निषेधसूचक अव्यय के साथ एक वचन, पुल्लिंग और अन्यपुरुष में ही होता है, जैसा कि हम ऊपर के उदाहरणों में देखते हैं ।

§५९० यदि कर्तृ वाच्य को कर्म वाच्य या भाववाच्य में बदलना हो, तो कर्ताकारक में करण कारक की विभक्ति 'सी' लगा दी जाती है । यथा--

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
छोरी कपड़ो सीवज	छोरी-सी कपड़ो सिवो जावज
श्यामू रोटी खावज	श्यामू-सी रोटी खाइ जावज
म-नऽभात पकायो	म-सी भात पकाइ जावज
कर्तृ वाच्य	**भाववाच्य**
हऊँ इतरो न चली सकज	म-सी इतरो नी चली जावज
मोहन रात भरी जागज	मोहन-सी रात भरी जागो जावज
छोरो दौड़ज	छोरी सी दौड़ो जावज

प्रयोग

§५९१ जिसके द्वारा विधान किया जाता, उसके लिंग, वचन और पुरुष कभी कर्ता के अनुसार, कभी कर्म के अनुसार और कभी दोनों के भिन्न होते हैं। इस प्रकार विधान करने की रीति को प्रयोग कहते हैं। ये प्रयोग हिन्दी में तीन प्रकार के बतलाये गये हैं, जो हमें निमाड़ी में भी मिलते हैं।

(१) कर्तृरि प्रयोग

§५९२ जब क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्ता के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार होते हैं, तब उसे कर्तृरि प्रयोग कहते हैं, यथा---घोड़ो दौड़ज, राजू पुस्तक पढ़ज आदि।

(२) कर्मणि प्रयोग

§५३३ जब क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्म के लिंग, वचन और पुरुष के समान होते हैं, तब उस क्रिया में कर्मणि प्रयोग होता है। यथा---छोरा-न-पुस्तक पढ़ी, म-नऽकोट सिलायो, राधा-न गोपाल-ख-मार्‌यो. आदि।

(३) भावे प्रयोग

§५९४ जिस क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्ता अथवा कर्म के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार नहीं होते, उस क्रिया में भावे प्रयोग होता है। यथा---लुगाई-न छोरी-ख बुलायो, गोपाल-सी चली नी जावज आदि।

अर्थ (Moods)

§५९५ विधान करने की रीति बतलाने वाला क्रिया का रूपान्तर अर्थ कहलाता है। हिन्दी की क्रियाओं में पाँच अर्थ होते हैं, वे ही निमाड़ी में भी मिलते हैं।

(१) निश्चयार्थ

§५९६ विधान का निश्चय व्यक्त करने वाला क्रिया के रूपान्तर में निश्चयार्थ होता है। सामान्य भूतकाल, पूर्ण भूतकाल, अपूर्ण भूतकाल, सामान्य वर्तमान और सामान्य भविष्य काल की क्रियाएँ इसके उदाहरण हैं।

(२) सम्भावनार्थ

§५९७ विधान की संभावना बतलाने वाली क्रिया के रूप में सम्भावनार्थ होता है। सम्भाव्य वर्तमान और सम्भाव्य भविष्यत काल की क्रियाओं में सम्भावनार्थ होता है। यथा---ऊ लिख रह्‌यो होयगो, हऊँ लिखूँ आदि।

(३) संदेहार्थ

§५९८ क्रिया के जिस रूपान्तर के विधान में संदेह जान पड़े, उसमें संदेहार्थ होता है; जैसा कि हम संदिग्ध भूतकाल और संदिग्ध वर्तमान काल

की क्रियाओं में देखते हैं। यथा--म-नऽ लिख्यो होयगा, तू लिखतो होयगा आदि।

संकेतार्थ

§ जप ५९९ क्रिया के रूपान्तर द्वारा दो घटनाएँ कार्य-कारण से संबधित जान पड़ती हैं तब उसमें संकेतार्थ होता है। हेतुहेतुमद्भूतकाल की क्रियाएँ इसी अर्थ की होती हैं। यथा--गोपाल पढ़तो तो डाकतर बन जातो।

(५) आज्ञार्थ

§६०० आदेश, निषेध, उपदेश या निवेदन व्यक्त करने वाली क्रियाओं में आज्ञार्थ होता है। यथा–लिख, गा, बठीजा आदि।

काल

§६०१ निमाड़ी के तीनों कालों के रूप पर प्रकाश डालने के लिये यहाँ 'लिखनो' (हिन्दी में 'लिखना') क्रिया के तीनों कालों का रूप देना उपयुक्त होगा :—

(१) भूतकाल

पुरुष	एक वचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	म–न लिख्यो	हम–न लिख्यो
द्वितीय पुरुष	तू–न लिख्यो	तुम–न लिख्यो
तृतीय पुरुष	व–न लिख्यो	उन–न लिख्यो

इन उदाहरणों में हम देखते हैं कि हिन्दी की 'लिखा' क्रिया के स्थान पर निमाड़ी में 'लिख्यो' का प्रयोग है। इससे यह स्पष्ट है कि हिन्दी में 'लिखना' क्रिया की धातु 'लिख' अकारान्त से आकारान्त कर देने से ही भूतकालिक क्रिया बन जाती है, पर निमाड़ी में क्रिया की धातु को योकारान्त करना आवश्यक होता है। ब्रज भाषा के भूतकालीन रूप भी निमाड़ी के इन रूपों की तरह ही होते हैं। निमाड़ी का यह 'य' गुजराती, बंगाली, पंजाबी के य, इय अथवा इअ की तरह है।

वर्तमानकाल

पुरुष	एक वचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	हऊँ लिखूँज	हम लिखाँज
द्वितीय पुरुष	तू लिखज	तुम लिखोज
तृतीय पुरुष	ऊ लिखज	वी लिखज

§६०२ हिन्दी की वर्तमान कालिक (सामान्य वर्तमान) क्रिया का एक वचन रूप 'लिखता है', पर निमाड़ी के प्रथम पुरुष का रूप 'लिखूँज' और तृतीय पुरुष में 'लिखज' है। इससे स्पष्ट है कि निमाड़ी की वर्तमान कालिक एक वचन

क्रिया का रूप हिन्दी से बिलकुल भिन्न है। एक तो निमाड़ी में हिन्दी की तरह 'लिखना' क्रिया की धातु 'लिख' के आगे 'ता' प्रत्यय नहीं है और दूसरे 'होना' क्रिया का वर्तमान कालिक रूप 'है' भी नहीं है। इन दोनों के स्थान में निमाड़ी में 'लिख' धातु के आगे प्रथम पुरुष मे 'ऊँज' तथा द्वितीय और तृतीय पुरुष में 'ज' प्रत्यय लगाकर सामान्य वर्तमान कालिक क्रिया बना ली गई है। अवधी की एक शाखा 'बैसवाड़ी' में निमाड़ी के 'ज' की तरह वर्तमान कालीन रूप में 'ब' प्रत्यय का प्रयोग होता है।

§६०३ ब्रज भाषा में प्रथम पुरुष एक वचन में 'औं', द्वितीय पुरुष में 'ऐ' तथा द्वितीय पुरुष में 'ऐ' प्रत्यय लगाया जाता है। तदनुसार 'लिखना' क्रिया के रूप—लिखौं, लिखे, लिखै होंगे।

§६०४ बहुवचन रूप प्रथम पुरुष में 'लिख' धातु अनुस्वार सहित अकारान्त की आकारान्त और द्वितीय में अकारान्त की ओकारान्त हो गई, जब कि तृतीय पुरुष में दोनों वचनों के रूप समान हैं। हिन्दी के प्रथम पुरुष एक वचन के 'हूँ' के स्थान में निमाड़ी में 'ज' है, जो बहुवचन मे भी अपरिवर्तित है, केवल 'लिख' धातु को आकारान्त कर देने से ही उस 'ज' (है) ने मूल रूप मे रहते हुए भी हिन्दी के 'हैं' का काम कर दिया है और तृतीय पुरुष एक वचन में कोई भिन्नता न करने पर भी वह बहुवचन रूप हो गया है।

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निमाड़ी की वर्तमान कालिक (सामान्य वर्तमान काल) क्रिया को एकवचन से बहुवचन बनाने के लिय प्रथम पुरुष मूल धातु को आकारान्त तथा द्वितीय पुरुष में ओकारान्त कर देते हैं, किन्तु तृतीय पुरुष का एक वचन रूप बहुवचन में भी अपरिवर्तित रहता है।

भविष्यतकाल

पुरुष	एक वचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	हुऊँ लिखूँगा	हम लिखांगा
द्वितीय पुरुष	तू लिखगा	तुम लिखोगा
तृतीय पुरुष	ऊ लिखगा	वी लिखगा

§६०५ यहाँ हिन्दी के एक वचन रूप लिखूँगा, लिखेगा और लिखेगा के स्थान पर निमाड़ी में क्रमशः लिखूँगा, लिखगा और लिखगा हैं। इनमें प्रथम पुरुष का एक वचन रूप हिन्दी और निमाड़ी में समान ही है, किन्तु द्वितीय और तृतीय पुरुष के एक वचन में लिखेगा के स्थान में लिखगा है। भविष्यत काल-

द्योतक 'गा' प्रत्यय का उपयोग हिन्दी और निमाड़ी दोनों में समान है; अन्तर केवल इतना है कि मूल धातु 'लिख' जहाँ हिन्दी में अकारान्त से एकारान्त हो जाती है, वहाँ एक निमाड़ी में अपरिवर्तित है । इससे हम कह सकते हैं कि

(१) निमाड़ी में भविष्यत कालीन क्रिया (सामान्य भविष्यत काल) के प्रथम पुरुष एक वचन रूप हिन्दी के समान, क्रिया की धातु को अकारान्त करके उसके आगे 'गा' प्रत्यय लगा देने से बन जाता है, पर द्वितीय और तृतीय पुरुष एक वचन में मूल धातु में कोई परिवर्तन न करते हुए 'गा' लगा देते हैं ।

(२) भविष्यतकालीन क्रिया के बहुवचन में वर्तमान कालिक क्रिया का नियम लगता है । जैसे वर्तमान कालिक क्रिया में वर्तमान काल का द्योतक प्रत्यय 'ज' तीनों पुरुषों में अपरिवर्तित रहता है, उसी प्रकार भविष्यत काल का द्योतक प्रत्यय 'गा' भी तीनों पुरुषों में अपरिवर्तित रहता है । वह हिन्दी की तरह द्वितीय और तृतीय पुरुष में 'गा' से 'गे' नहीं होता, पर क्रिया की मूल धातु वर्तमान काल की तरह ही द्वितीय पुरुष में अकारान्त से ओकारान्त हो जाती है और तृतीय पुरुष में अपने मूल रूप में ही बनी रहती है ।

ब्रज भाषा में भविष्यत काल की क्रिया में धातु के आगे गा, गे के रूप एक वचन में तीनों पुरुषों में क्रमशः ऊँगो, एँगो और एँगो तथा बहुवचन में क्रमशः ऊंगो, ओ-गे और अं-गे लगते हैं ।

तीनों कालों के विभिन्न रूप

भूतकाल के रूप

§६०६ सामान्य भूतकाल के रूप पहिले दिये जा चुके हैं, भूतकाल की शेष क्रियाओं के रूप निम्नांकित हैं :—

(१) आसन्न भूतकाल (लिखना 'क्रिया')

पुरुष	एक वचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	म-न लिख्यो छे	हम-न लिख्यो छे
द्वितीय पुरुष	तू-न लिख्यो छे	तुम-न लिख्यो छे
तृतीय पुरुष	ओ-न लिख्यो छे	उन-न लिख्यो छे

लिखना क्रिया की धातु 'लिख्' है, जिसका आसन्न भूतकाल का हिन्दी रूप लिखा होता है । निमाड़ी मे धातु के अंतिम वर्ण में 'अ' के स्थान में 'य' हो गया और जहाँ हिन्दी में आसन्न भूतकाल का रूप आकारान्त होता है, वहाँ निमाड़ी में वह ओकारान्त है । इससे स्पष्ट है कि धातु के अन्तिम वर्ण में 'अ' के स्थान पर 'य' करके उसे ओकारान्त कर देने से निमाड़ी में आसन्न भूतकाल की क्रिया बन जाती है ।

§६०७ निमाड़ी की कुछ क्रियाएँ ऐसी हैं, जिनकी धातु का अन्तिम वर्ण उनके रूप के अनुसार 'य' होता है। ऐसी स्थिति में अकारान्त का ओकारान्त कर देने से ही आसन्न भूतकाल की क्रिया बन जाती है। यथा हिन्दी में 'कहना' क्रिया की धातु 'कह' होगी, पर निमाड़ी में हिन्दी की अकारान्त क्रिया यकारान्त बोली जाती है, इसलिये 'कहना' के स्थान में इस क्रिया का रूप 'कयनो, होगा और उसकी धातु 'कय' होगी, जिसका आसन्न भूतकालीन रूप अकारान्त से ओकारान्त कर देने से 'कयो, हो जायगा।

ब्रजभाषा में आसन्न भूतकालीन क्रियाओं का रूप निमाड़ी की तरह ही होता है।

(२) पूर्ण भतकाल

पुरुष	एक वचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	म—न लिख्यो थो	हम—न लिख्यो थो
द्वितीय पुरुष	तू—न लिख्यो थो	तुम—न लिख्यो थो
तृतीय पुरुष	वो—न लिख्यो थो	उन—न लिख्यो थो

§६०८ हिन्दी में आसन्न भूतकाल की क्रिया के आगे था, थे, थी लगा देने से पूर्ण भूतकाल की क्रिया बन जाती है। इसी नियम के अनुसार निमाड़ी में भी आसन्न भूतकाल की क्रिया के आगे 'थो, प्रत्यय लगा दिया गया है। जहाँ यह स्मणीय है कि हिन्दी में था, थे और थी प्रत्यय क्रमशः एक वचन, बहु वचन और स्त्रीलिंग रूपों में लगते है, पर निमाड़ी में 'थो' लगा देने से दोनों वचनों और दोनों लिंगों का काम चल जाता है।

(३) हेतुहेतुमद्भूतकाल

पुरुष	एक वचन	पुरुष
प्रथम पुरुष	हाऊँ लिखतो	हम लिखता
द्वितीय पुरुष	तू लिखतो	तुम लिखता
तृतीय पुरुष	ऊ लिखतो	वी लिखता

§६०९ हिन्दी की आकारान्त क्रिया निमाड़ी में ओकारान्त हो जाती है, तदनुसार हेतुहेतुद्भूतकाल की एक वचन क्रियाएँ भी ओकारान्त हो गई हैं, पर बहु वचन रूप हिन्दी के एक वचन रूप के ही समान है। इससे यह स्पष्ट है कि निमाड़ी की एकवचन ओकारान्त क्रियाएँ बहुवचन में आकारान्त हो जाती है।

(४) अपूर्ण भूतकाल

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	हाऊँ लिखतो थो	हम लिखता था
द्वितीय पुरुष	तू लिखतो थो	तुम लिखता था
तृतीय पुरुष	ऊ लिखतो थो	वो लिखता था

§६१० हिन्दी के समान निमाड़ी की अपूर्ण भूतकाल की क्रियाएँ हेतुहेतुमद्भूतकाल की क्रिया के आगे हिन्दी के 'था' का ओकारान्त 'थो' लग देने से बन गई है। इनके बहुवचन रूप में ऊपर बतलाये अनुसार ओकारान्त से आकारान्त (था का थो) हो गये हैं।

(५) संदिग्ध भूलकाल

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	म–न लिख्यो होयगा	हम–न लिख्यो होयगा
द्वितीय पुरुष	तू–न लिख्यो होयगा	तुम–न लिख्यो होयगा
तृतीय पुरुष	वो–न लिख्यो होयगा	उन–न लिख्यो होयगा

§६११ जिस प्रकार हिन्दी में आसन्न भूतकाल की क्रिया के आगे होगा, होंगे, होंगी काल-प्रत्यय लगा देने से संदिग्ध भूतकाल की क्रिया बन जाती है, उसी प्रकार निमाड़ी में भी आसन्न भूतकाल की क्रिया 'लिख्यो' के आगे हिन्दी के 'होगा' के स्थान पर 'होयगा' लग गया है, जो दोनों वचनों में अपरिवर्तित है, जब कि हिन्दी में होगा के स्थान पर बहुवचन में होंगे हो जाता है। इसी तरह स्त्रीलिंग में हिन्दी में 'होगा' का एकवचन में 'होगी' हो जाता है, पर निमाड़ी में स्त्रीलिंग के एकवचन और बहुवचन में भी 'होयगा' प्रत्यय का ही उपयोग होता है।

वर्तमान काल के रूप

§६१२ सामान्य वर्तमान काल के रूप पहिले दिए जा चुके हैं, संदिग्ध वर्तमान काल के रूप निम्नांकित होंगे।

पुरुष	एक वचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	हाऊँ लिखतो होऊंगा	हम लिखता होवाँगा
द्वितीय पुरुष	तू लिखतो होयगा	तुम (आप) लिखता होओगा
तृतीय पुरुष	ऊ लिखतो होयगा	वी लिखता होयगा।

§६१३ निमाड़ी के ये संदिग्ध वर्तमान काल के रूप विशेष रूप से विचारणीय हैं। (१) जिस प्रकार संदिग्ध भूतकाल में हिन्दी के 'होगा' के स्थान में

निमाड़ी में 'होयगा' होगया है, उसी प्रकार संदिग्ध वर्तमान काल के उपर्युक्त उदाहरणों में भी एकवचन में 'होगा' के स्थान में 'होयगा' हो गया है और हिन्दी की तरह की हेतुहेतुमद्‌भूतकाल की क्रिया के आगे 'होयगा' प्रत्यय लगाने से द्वितीय और तृतीय पुरुष की एकवचन क्रियाएँ बन गई हैं।

(२) प्रथम पुरुष के बहुवचन रूप में हिन्दी में 'होगा' का 'होंगे' हो जाता है और वही तृतीय पुरुष में व्यवहृत होता है, केवल तृतीय पुरुष में 'हों' के अनुसार का लोप हो जाता है, पर निमाड़ी के बहुवचन रूपों की स्थिति इससे भिन्न है। इसके प्रथम पुरुष के बहुवचन रूप में 'होगा' के विकृत रूप 'होयगा' का हिन्दी की तरह 'होंगे' के विकृत रूप 'होंयगे' न होकर 'होवांगा' हो गया है। अर्थात् मध्य वर्ण 'य' के स्थान में 'व' होकर वह अनुस्वारयुक्त आकारान्त हो गया है और तृतीय वर्ण 'गा' अपरिवर्तित ही रह गया है। द्वितीय पुरुष का बहुवचन रूप हिन्दी के 'होगे' के स्थान पर 'होंओगा' है। यहाँ निमाड़ी का एक वचन 'होयगा' बहुवचन में होओगा है। पूर्व नियम के अनुसार एकवचन ओकारान्त का आकारान्त (लिखतो का लिखता) तो हो गया है और 'गा' भी पूर्ववत् अपरिवर्तित है, पर 'होयगा' मध्यवर्ण 'य' बहुवचन में 'ओ' हो गया है। तृतीय पुरुष का बहुवचन रूप एक वचन के समान ही है।

भविष्यत काल के रूप

§६१४ सामान्य भविष्यत काल के रूप पहिले दे दिए हैं, संभाव्य भविष्यत काल की क्रियाओं के रूप निम्न प्रकार हैं:—

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	हऊँ लिखूँ	हम लिखाँ
द्वितीय पुरुष	तू लिखऽ	तुम लिखो
तृतीय पुरुष	ऊ लिखऽ	वी लिखऽ

§६१५ हिन्दी में सम्भाव्य भविष्यत काल की क्रिया बनाने के लिए धातु का अंतिम वर्ण पुरुष और वचन के अनुसार एकारान्त और ओंकारान्त हो जाता है अथवा उनमें यह परिवर्तन होने के पश्चात् वे सानुनासिक हो जाते हैं। निमाड़ी में भी यह नियम कुछ सीमा तक दिखाई देता है। प्रथन पुरुष का एकवचन रूप बिलकुल हिन्दी के समान ही है, बहुवचन में हिन्दी का 'लिखें' 'लिखाँ हो गया है।

§६१६ इसी प्रकार द्वितीय पुरुष एक वचन में हिन्दी की 'लिखे' क्रिया एकारान्त से अकारान्त हो गई है, पर उसका बहुवचन रूप हिन्दी के समान ही है। तृतीय पुरुष एकवचन क्रिया भी द्वितीय पुरुष के समान एकारान्त की अकारान्त हो गई है, जो बहुवचन में भी एक समान ही व्यवहृत है।

काल रचना के अनुसार निमाड़ी की विशेषताएँ

§६१७ काल रचना के अनुसार हम निमाड़ी में निम्नांकित विशेषताएँ देखते हैं :—

(१) निमाड़ी की सामान्य क्रियाएँ ओकारान्त होती हैं। जैसे--खातो, पीतो, लिखतो आदि ।

(२) धातु के अंतिम वर्ण के 'अ' के स्थान पर 'य' करके उसे ओकारान्त कर देने से सामान्य भूतकाल की क्रिया बन जाती है, जसा कि पहिले दी गई सामान्य भूतकाल की काल-रचना में देखा जाता है ।

(३) एकाक्षरी धातुओं से सामान्य भूतकाल की क्रिया बनाने के लिए उनके आगे 'यो' लगा देते हैं। यथा—'गाना' की धातु गा + यो = गायो।

(४) हिन्दी में सामान्य भूतकाल की क्रियाओं के रूप में लिंग और वचन के अनुसार परिवर्तन होता है, पर निमाड़ी में वे दोनों लिंगों, दोनों वचनों और तीनों पुरुषों में समान ही बनी रहती हैं। उदारण काल-रचना में देखिए।

(५) हिन्दी में सामान्य वर्तमान कालिक क्रिया के अंत में लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार धातु के आगे ताहूँ, ताहै, तीहै, तेहैं, लगा दिया जाता जाता है, पर निमाड़ी में धातु के आगे ऊंज अथवा ज लगा देने से ही काम चल जाता है। प्रथम पुरुष के बहुवचन रूप में धातु आकारान्त और तृतीय पुरुष में ओकारान्त हो जाती है।

(६) निमाड़ी में किसी भी काल की अधिकांश क्रियाएँ तृतीय पुरुष के दोनों वचनों में समान होती है, जैसा कि हम उपर्युक्त काल-रचना में देखते हैं।

(७) सामान्य भविष्यत काल द्योतक 'गा' प्रत्यय निमाड़ी में तीनों पुरुषों तथा दोनों लिंग-वचनों में अपरिवर्तित बना रहता है, जब कि हिन्दी में वह गे और गी हो जाता है।

(८) सामान्य भूतकाल की क्रिया के आगे 'छे' लगा देने से वह आसन्न भूतकालिक क्रिया हो जाती है, जो सभी लिंग, वचन और पुरुषों में अपरि-वर्तित रहती है।

(९) निमाड़ी की अधिकांश ओकारान्त एकवचन क्रियाएँ बहुवचन में आकारान्त हो जाती है। यथा—तू गयो थो—तुम गया था।

(१०) निमाड़ी के वर्तमान काल की क्रिया के रूप लिखज, जावज, खावज आदि होते हैं, पर कुछ स्थानों में 'ज' के स्थान में 'च' भी बोला जाता है।

(११) लिखज, जावज, खावज आदि सामान्य वर्तमान काल के रूप हैं, पर तात्कालिक वर्तमान काल—लिख रहा है, जा रहा है, खा रहा है आदि के निमाड़ी रूप सामान्य वर्तमान काल के रूपों से बिलकुल भिन्न हो जाते हैं। उपर्युक्त हिन्दी की क्रियाएं निमाड़ी के तात्कालिक वर्तमान काल में क्रमश: लिख रयो (ह्यो) छे, जा रयो छे, खा रयो छे, बोली जायेंगी।

(१२) क्रिया के विभिन्न रूप हिन्दी की तरह ही निमाड़ी में भी धातु से, हेतु-हेतुमद्भूत काल से और सामान्य भूतकाल के बनते हैं। ऊपर दी गई काल-रचना के अनुसार धातु से सामान्य भूतकाल, हेतुहेतुमद्भूत काल, सामान्य वर्तमान काल, सामान्य तथा संभाव्य भविष्यतकाल की क्रियाएँ, हेतुहेतुमद्भूत-काल से अपूर्ण भूतकाल, संदिग्ध बर्तमान काल की क्रियाएँ तथा सामान्य भूत-काल से आसन्न भूतकाल, पूर्ण भूतकाल, संदिग्ध भूतकाल की क्रियाएँ बनती हैं।

§६१८ 'छे' क्रिया गुजराती से निमाड़ी में आई है, पर इस क्रिया का उपयोग निमाड़ी-भाषी केवल आसन्न भूतकाल और तात्कालिक वर्तमान काल में ही करते है, जब कि गुजराती में इसका प्रयोग मुख्यतः सामान्य वर्तमान काल में ही किया जाता है। दूसरे गुजराती में जब 'छे' का प्रयोग सामान्य वर्तमान काल में होता है, तब वचन और पुरुष के अनुसार उसमें विकार होते जाते हैं, पर निमाड़ी में इसमें कोई विकार नहीं होता।

§६१९ इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गुजराती के संसर्ग से निमाड़ी-भाषियों ने उसकी 'छे' क्रिया स्वीकार तो कर ली है, पर उसका प्रयोग वे अपने ढंग पर ही करते हैं। विदेशी भाषाओं से लिए गए शब्दों के आत्मीकरण में हम प्राय: ऐसा ही देखते हैं। उदाहरणार्थ अंग्रेजी के टेबिल, आफिस, बटन आदि शब्द हमने हिन्दी में स्वीकार कर लिए हैं, पर उनके बहुवचन रूप टेबिल्स, आफिसेस, बटन्स का प्रयोग न कर अपनी भाषा के अनुसार टेबिलों, आफिसों, बटनों का प्रयोग करते हैं।

काल-द्योतक प्रत्यय

§६२० उपर्युक्त-काल-रचना के अध्ययन से हम काल-द्योतक प्रत्ययों के सम्बन्ध में निम्न निष्कर्ष पर पहुँचते हैं :—

धातु से बनने वाले काल

सामान्य भूतकाल

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	यो	यो
द्वितीय पुरुष	यो	यो
तृतीय पुरुष	यो	यो

हेतुहेतुमद्भूतकाल

प्रथम पुरुष	तो	ता
द्वितीय पुरुष	तो	ता
तृतीय पुरुष	तो	ता

सामान्य वर्तमान काल

प्रथम पुरुष	ऊँज	आँज
द्वितीय पुरुष	ज	ओज
तृतीय पुरुष	ज	ज

सामान्य भविष्यत काल

प्रथम पुरुष	ऊंगा	आंगा
द्वितीय पुरुष	गा	ओगा
तृतीय पुरुष	गा	गा

संभाव्य भविष्यतकाल

प्रथम पुरुष	ऊँ	आँ
द्वितीय पुरुष	मूल धातु	ओ
तृतीय पुरुष	मूल धातु	मूल धातु

हेतुहेतुमद्भूतकाल से बनने वाले काल

अपूर्णभूतकाल

प्रथम पुरुष	थो	था
द्वितीय पुरुष	थो	था
तृतीय पुरुष	थो	था

संदिग्ध वर्तमान काल

प्रथम पुरुष	होऊंगा	होवांगा
द्वितीय पुरुष	होयगा	होआंगा
तृतीय पुरुष	होयगा	होयगा

सामान्य भूतकाल से

आसन्न भूतकाल

प्रथम पुरुष	छे	छे
द्वितीय पुरुष	छे	छे
तृतीय पुरुष	छे	छे

पूर्णभूत काल

प्रथम पुरुष	थो	थो
द्वितीय पुरुष	थो	थो
तृतीय पुरुष	थो	थो

संदिग्ध भूतकाल

प्रथम पुरुष	होयगा	होयगा
द्वितीय पुरुष	होयगा	होयगा
तृतीय पुरुष	होयगा	होयगा

अन्य क्रियाएँ

§६२१ अकर्मक और सकर्मक क्रियाओं के अतिरिक्त प्रेरणार्थक क्रिया, विधि क्रिया, पूर्वकालिक क्रिया और संयुक्त क्रिया, अन्य प्रकार की क्रियाएँ हैं। इन सभी प्रकार की क्रियाओं के रूप निमाड़ी में उपलब्ध हैं।

प्रेरणार्थक क्रिया

६२२ सिद्ध धातु के जिस विकृत रूप से क्रिया के व्यापार में कर्ता पर किसी को प्रेरणा समझी जाती है, उस धातु से बनी क्रिया प्रेरणार्थक कहलाती है। यथा—राम-न लछमन-सी सौदो मंगायो (राम ने लछमन से सौदा मंगवाया)।

इस वाक्य में 'मांग' सिद्ध धातु है। इसका विकृत रूप मंगा है, जिससे 'मंगायो' क्रिया बनी है। सौदा लाने का काम लछमन ने किया है, पर उसने यह काम राम की प्रेरणा से किया है। अतः 'मंगायो' क्रिया प्रेराणार्थक है।

समस्त प्रेराणार्थक क्रियाएँ सकर्मक होती हैं। यथा—छोरी दर्जी-सी कपड़ो सिवाड़ज (लड़की दर्जी से कपड़े सिलाती है), बड़ा आदमी छोटा-सी बिगार करावज (बड़े आदमी छोटों से बेगार कराते हैं) आदि।

§६२३ निमाड़ी की प्रेरणार्थक क्रियाएँ निम्न प्रकार बनती हैं :—

(१) सिद्ध धातु में 'आ' जोड़ने से प्रथम प्रेरणार्थक और 'वा' जोड़ने से द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया बनती है। यथा—

धातु	प्र. प्रे.	द्वि. प्रे.
उठ	उठा—नो	उठवा—नो
गिर	गिरा—नो	गिरवा—नो
फैल	फैला—नो	फैलवा—नो

(२) द्वक्षरी धातु में, 'ऐ' तथा 'ओ' स्वरों के अतिरिक्त आदि स्वरों को दीर्घ से ह्रस्व और द्वितीय वर्ण के स्वर को ह्रस्व से दीर्घ कर देने से प्रथम प्रेरणार्थक तथा आदि स्वरों को ह्रस्व कर 'वा' लगा देने से द्वितीय प्रेरणार्थ-क्रिया बन जाती है। यथा—

धातु	प्र. प्रे.	द्वि. प्रे.
जाग	जगा—नो	जगवा—नो
भाग	भगा—नो	भगवा—नो
जीत	जिता—नो	जितवा—नो
डूब	डुबा—नो	डुबवा—नो

(३) अ्येक्षरी धातु में प्रथम प्रेरणार्थक के द्वितीय वर्ण का 'अ' निमाड़ी में अनुच्चारित होता है। यथा—

धातु	प्र. प्रे.	द्वि. प्रे.
चमक	चमका—नो	चमकवा—नो
समझ	समझा—नों	समझवा—नो
बदल	बदला—नो	बद्लवा—नो

(४) एकाक्षरी धातु के अन्त में प्रथम प्रेरणार्थक में 'ल' तथा द्वितीय प्रेरणार्थक में 'लवा' लग जाता है। यथा—

धातु	प्र. प्रे.	द्वि. प्रे.
छू	छुला—नो	छुलवा—नो
सी	सिला—नो	सिलवा—नो
जी	जिला—नो	जिलवा—नो

(५) कुछ सकर्मक धातु ऐसी हैं, जिनसे केवल प्रथम प्रेरणार्थक क्रियाएँ ही बनती हैं। यथा—गा (गानो)—गवानो, खो (खोनो)—खुवानो, ले (लेनो)—लिवानो आदि।

(६) कुछ धातुओं में प्रथम प्रेरणार्थक रूप में 'ला' अथवा 'वा' लगता है, और द्वितीय प्रेरणार्थक रूप में 'वा' लगता है। यथा—

धातु	प्रे. प्रे.	द्वि. प्रे.
सीखा	सिखाना—सिखलाना	सिखवानो
बठ	बठानो, बठालनो	बठवानो
दिख	दिखानो, दिखलानो	दिखवानो

§६२४ निमाड़ी की प्रेरणार्थक क्रिया के विभिन्न रूप ब्रज की अपेक्षा खड़ी बोली के अधिक निकट है। ब्रज भाषा में केवल 'आ' और 'ब' प्रत्यय के योग से ही प्रेणार्थक क्रिया के विभिन्न रूप बन जाते हैं।

अकर्मक धातु में 'अ' प्रत्यय लगा उसके आगे 'आउत' जोड़ देने से वह सकर्मक धातु हो जाती है। इसके पश्चात् 'व' प्रत्यय लगा देने से वह प्रेणार्थक क्रिया हो जाती है। यथा—अकर्मक-दूध तपत है, सकर्मक-बो दूध तपाउत है,

प्रेरणार्थक–बौ दूध तपवाउत हैं। इसमें सकर्मक क्रिया का दिया गया उदाहरण प्रथम प्रेरणार्थक और प्रेरणार्थक के साथ दिया उदाहरण द्वितीय प्ररणार्थक क्रिया का उदाहरण है। इसी प्रकार 'बो चलत है' अकर्मक क्रिया, 'बौ बच्चा को चलाउत है, सकर्मक एंव प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया का और 'बौ बच्चा को चलवाउत है' द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया का उदाहरण है।

उपर्युक्त वाक्य निमाड़ी में इस प्रकार होंगे :—

अकर्मक–ऊ चलज, प्र. प्रे. ऊ बच्चा–ख चलावज, द्वि. प्रे.–ऊ बच्चा–ख चलवावज।

इनमें ब्रज की 'चलत है' 'चलाउत है' और 'चलवाउत है', क्रियाओं के स्थान में निमाड़ी में 'चलज', चलावज और चलवावज क्रियाएँ आई हैं। इससे इन दोनों बोलियों के प्रेरणार्थक क्रियाओं के रूपों की भिन्नता स्पष्ट है।

§६२५ ब्रज में व्यंजनान्त धातुओं में अ, आ और आऊ प्रत्यय लगाने से वे प्रेरणार्थक बन जाती हैं। यथा—

अ—भविष्य आज्ञार्थ में—चलइऔ

आ—पूर्व कालिक कृदन्त—चलाइ, भूत कालिक कृदन्त-चलाओ, भविष्य–चलाइहै।

आऊ—वर्तमान कालिक कृदन्त-चलाउत, भविष्य-चलावैबो। इन उदाहरणों से भी निमाड़ी की प्रेरणार्थक क्रियाओं की ब्रज से भिन्नता स्पष्ट ह।

विधि-क्रिया

§६२६ विधि क्रिया को उसके स्वरूप के अनुसार आज्ञार्थ किया भी कहा जा सकता है; क्योंकि इस क्रिया का उपयोग आज्ञा अथवा उपदेश देने में ही होता है। यथा–तू लिख, घर-म जा, ह्यां बठीन मत रड़ आदि।

पूर्वकालिक क्रिया

ऊ जाईन पछतावज, रामू मदरसा-सी पढ़ीन आवज आदि।

§६२७ इन वाक्यों में मुख्य क्रियाओं 'पछतावज' तथा 'आवज' के पूर्व एक-एक क्रिया जाईन तथा पढ़ीन है, जिनका अर्थ हिन्दी में क्रमशः जाकर और पढ़कर होता है। पहिले वाक्य का कर्त्ता 'ऊ', पहिले जाने की क्रिया करता है और इसके पश्चात् पछताने की। इसी प्रकार दूसरे वाक्य का कर्त्ता रामू भी पहिले पढ़ने की और फिर आने की क्रिया करता है। अतः मुख्य क्रिया के पूर्व की जानेवाली क्रिया 'जाईन' और पढ़ीन, पूर्वकालिक क्रियाएँ हैं।

हिन्दी में धातु के आगे 'कर' लगा देने से पूर्वकालिक क्रिया बन जाती है, निमाड़ी में हिन्दी के 'कर' के स्थान मे 'इन' अथवा 'ईन' लगाकर पूर्वकालिक क्रिया बनाई जाती है, जैसा कि ऊपर के उदाहरणों से जान पड़ता है।

संयुक्त क्रिया

§६२८ कुछ क्रियाएँ ऐसी होती हैं, जो एक से अधिक धातुओं से मिलकर बनती हैं। यथा--'पहुँच गया' क्रिया में 'पहुँच' और 'जा' दो धातुएँ हैं। इसी प्रकार 'जाना पड़ेगा' क्रिया 'जा' तथा 'पड़' धातु के मेल से बनी है। निमाड़ी में भी ऐसी क्रिआओं की कमी नहीं है। ऐसी क्रियाओं में पहली क्रिया मुख्य और दूसरी क्रिया सहायक रहती है।

संयुक्त क्रिया के प्रकार

§६२९ रूप के अनुसार संयुक्त क्रिया छ: प्रकार की हैं :—

(१) जिसमें प्रथम क्रिया सामान्य रूप से रहती है। यथा—करनो चाहज।

(२) जिसमें एक प्रथम किया हेतुहेतुमद्भूत काल के रूप में रहती है। यथा—पढ़तो जातो।

(३) जिसमें प्रथम क्रिया सामान्य भूतकाल के रूप में रहती है। यथा—चल्यो गयो।

(४) जिसमें प्रथम क्रिया धातु के रूप में रहती है। यथा——पढ़ सकतो थो।

(५) जिसमें प्रथम क्रिया पूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त के रूप में रहती है। यथा——पढ़्या करज।

(६) पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएँ, यथा——समझी-बूझी, आणो-जाणो आदि।

§६३० उपरोक्त क्रियाओं में से प्रथम प्रकार की संयुक्त क्रियाएँ तीन प्रकार की होती हैं—(१) आवश्यकता बोधक (२) आरम्भ बोधक और (३) अनुमति बोधक। हिन्दी में इसका एक प्रकार अवकाश बोधक भी है, पर बनावट के अनुसार निमाड़ी में वह इस वर्ग में नहीं आती।

(१) आवश्यकता बोधक

§६३१ जिस संयुक्त क्रिया से क्रिया की आवश्यकता अथवा कर्त्तव्य का ज्ञान हो। यह क्रिया, क्रिया के सामान्य रूप के आगे 'पड़ेगऽ' या 'चाहिज' लगा देने से बनती है। यथा——जाणृ पड़ेगऽ, पढ़णू चाहिज आदि।

(२) आरम्भ बोधक

§६३२ जिस संयुक्त क्रिया से क्रिया के व्यापार का आरम्भ ज्ञात हो। यह क्रिया, क्रिया के सामान्य रूप को ओकारान्त से अकारन्त कर उसके आगे 'लग्यो' शब्द लगाने से बनती है। यथा——पानी पड़न लग्यो।

(३) अनुमतिबोधक

§६३३ जिस संयुक्त क्रिया से अनुमति या आज्ञा देने का बोध हो। यह क्रिया, क्रिया के सामन्य रूप को अकारान्त करके उसके आगे 'दियो' लगा देने से बनती है। यथा—ऊो-नऽम-खऽजाण दियो।

§६३४ जिन संयुक्त क्रियाओं की प्रथम क्रिया हेतुहेतुमद्भूतकाल में होती, है, वे दो प्रकार की हैं--(१) नित्यता बोधक और (२) योग्यता बोधक।

(१) नित्यता बोधक

§६३५ जिस संयुक्त क्रिया से क्रिया के व्यापार का निरंतर चलने का बोध हो। यह क्रिया हेतुहेतुमद्भूतकाल की क्रिया के आगे 'रहेगो', 'गयो' आदि लगाने से बनती है। यथा--छोरो भणतो रहेगो, पानी पड़तो गयो आदि।

(२) योग्यता बोधक

§६३६ जिस संयुक्त क्रिया से क्रिया करने की शक्ति अथवा योग्यता का का बोध हो। यह हेतुहेतुमद्भूतकाल की क्रिया के आगे 'बनना' क्रिया के रूप लगाने से बनती है। यथा—म्हारा-सी नी चलतो बनता।

§६३७ जिन संयुक्त क्रियाओं की प्रथम क्रिया सामान्य भूतकाल के रूप में रहती है, वे भी दो प्रकार की होती हैं। (१) इच्छा बोधक और (२) अभ्यास बोधक।

(१) इच्छा बोधक

§६३८ जिस संयुक्त क्रिया से क्रिया करने की इच्छा जानी जाय, वह क्रिया सामान्य भूतकाल की क्रिया के आगे 'चाहना' क्रिया के रूप लगाने से बनती है। यथा--ऊ आणू चाहज, सीखणू चाहज आदि।

(२) अभ्यास बोधक

§६३९ जिस संयुक्त क्रिया से क्रिया करने के अभ्यास का ज्ञान हो। सामान्य भूतकाल की क्रिया के आगे 'करज' लगाने से यह क्रिया बनती है। यथा—ऊ आया करज, श्याम पढ़्यो करज आदि।

§६४० जिन संयुक्त क्रियाओं की प्रथम क्रिया धातु के रूप में होती है, वे तीन प्रकार की हैं—(१) अवधारण बोधक (२) शक्ति बोधक और (३) पूर्णता बोधक।

(१) अवधारण बोधक

§६४१ जिस संयुक्त क्रिया की मुख्य क्रिया अधिक निश्चयात्मक होती है, वह अवधारण बोधक संयुक्त क्रिया कहलाती है। यह धातु के आगे उठना, बैठना, पढ़ना, डालना, देना आदि क्रियाओं के रूप लगाने से बनती है।

निमाड़ी में ये शब्द लगाने के पूर्व धातु अकारान्त से ईकारान्त हो जाती है। यथा—कही (ई) उठ्यो, उठी बठ्यो, जाई पड्यो, देई डाल्यो, खोई दियो आदि।

(२) शक्तिबोधक

§६४२ जिस संयुक्त क्रिया से क्रिया करने की शक्ति प्रकट हो। धातु के आगे 'सकना' क्रिया के रूप लगाने से यह क्रिया बनती है, पर इसमें भी 'सकना' क्रिया के रूप लगाने के पूर्व या तो क्रिया की धातु इकारान्त हो जाती है या उसके आगे 'ई' लगा देते हैं। यथा ऊ नी जाई सक्यो, ऊ रुपिया नी दई सक्यो, ऊ घर बनाई सकज आदि।

निमाड़ी में इस वर्ग की संयुक्त क्रिया का एक प्रकार अवकाश बोधक भी होना चाहिए। इसकी वनावट तो शक्ति बोधक की तरह ही होती है, पर क्रिया के इस रूप से क्रिया करने के अवकाश का बोध होता है। यथा—हऊँ नी जाइ सक्यो, छोरो मुस्कल-सी खाई सक्यो आदि।

(३) पूर्णताबोधक

§६४३ जिस संयुक्त क्रिया से क्रिया का पूर्ण होना जान पड़े। यह धातु के आगे 'चुकनो' लगाने से बनती है। यथा—कर चुकनो, खा चुकनो आदि।

(६४) जिन संयुक्त क्रियाओं की प्रथम क्रिया पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत के रूप में होती है, वे दो प्रकार की हैं—(१) निरंतर बोधक और (२) निश्चय बोधक।

(१) निरन्तरबोधक

§६४५ जिस संयुक्त क्रिया से क्रिया के व्यापार की निरंतरता प्रकट हो। यह क्रिया पूर्ण क्रिया द्योतक कृदंत के आगे 'जाना' क्रिया के रूप लगाने से बनती है। यथा—ऊ पढ्याच जाज।

(२) निश्चयबोधक

§६४६ जिस संयुक्त क्रिया की मुख्य क्रिया से निश्चय प्रकट हो। यह पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत के रूप के आगे लेना देना, डालना आदि क्रिया के रूप लगा देने से बनती है। यथा—हऊँ दई देऊंगा, ऊ मारी डालतो थो आदि।

क्रियार्थक संज्ञा

§६४७ निमाड़ी में इस क्रिया से बनी संज्ञा का प्रयोग सामान्यतः भाव-वाचक संज्ञा की तरह ही होता है। यथा—कहनो सरळ छे, पर करनो कठण

छे। यहाँ 'कहनो, 'और करनो' क्रियार्थक संज्ञा शब्द हैं। इनका प्रयोग बहुवचन में नहीं होता। पश्चिम और 'दक्षिण ब्रजभाषी प्रदेश में ब्रज की क्रियार्थक संज्ञाएँ भी निमाड़ी की तरह 'नो' प्रत्यय लगाकर बनाई जाती हैं। बुन्देली की क्रियार्थक संज्ञाएँ भी 'नो' प्रत्यय के योग से बनती हैं। क्रियार्थक संज्ञा का यह निमाड़ी, ब्रज और बुन्देली में दिखाई देने वाला साम्य महत्वपूर्ण है।

क्रियार्थक संज्ञा का उद्देश्य प्राय: सम्बन्धकारक में ही आता है। यथा—पानी को बरसनो सुरु हो गयो।

§६४८ निमाड़ी की क्रियाथक-संज्ञाओं के प्रयोग में हम निम्न विशेषताएँ पाते हैं :—

(१) भूतकालिक क्रियाओं की समकालीनता बतलाने के अर्थ में प्रथम क्रिया 'थो' के साथ क्रियार्थक संज्ञा के रूप में आती है। यथा—ओको व्हाँ पहुचनो थो कि गाड़ी आई गई।

(२) अनेक बार संज्ञा शब्दों की तरह निमाड़ी की क्रियार्थक-संज्ञा के पूर्व विशेषण और पश्चात् विभक्ति-प्रत्यय आते हैं। यथा—ओ-खऽ अच्छो काम करना पर इनाम मिल्यो। इस वाक्य में 'करना' क्रियार्थक संज्ञा के पूर्व 'अच्छो' विशेषण और पश्चात् अधिकरणकारक की विभक्ति 'पर' का प्रयोग हुआ है।

(३) कभी-कभी कुछ क्रियाओं से बनी क्रियार्थक संज्ञाओं के साथ क्रिया विशेषण का भी प्रयोग मिलता है। यथा—कोई बी काम जल्दी करनो चायजे। यहाँ 'जल्दी' क्रिया विशेषण है।

(४) जब क्रियार्थक संज्ञा विधेय में आती है, तब उसका प्राणिवाचक उद्देश्य सम्प्रदान कारक में और अप्राणिवाचक उद्देश्य कर्त्ता कारक में रहता है। यथा—सम्प्रदान में—मखऽ जानों छे। कर्त्ता में—यू सगुन-को काई फल होयगा ?

(५) निमाड़ी की कुछ क्रियार्थक संज्ञाएँ अकारान्त में होती हैं। यथा—हऊं खान–ख जाऊँ छे, म–ख जान–ख कयदी, ऊ गान कालेण बठी गयो।

§६४९ ब्रज भाषा में क्रियार्थक संज्ञा का विकृत रूप व्यंजनान्त अथवा अकारान्त धातुओं में 'अन' लगाकर तथा दीर्घ स्वरान्त धातुओं में 'न' लगा कर बनता है। यही नियम निमाड़ी में भी प्रयुक्त होता है। यथा—बेचन, खान, लेन, देन आदि।

निमाड़ी और ब्रज में कुछ धातु के आगे 'नी' लगाने से भी वे क्रियार्थक संज्ञा बन जाती हैं। यथा—हो—होनी, कह—कहनी, बो–बोनी आदि।

व्युत्पत्ति

§६५० निमाड़ी में भूतकाल का मुख्य प्रत्यय थो (कहीं-कहीं हतो), वर्त्तमान काल का प्रत्यय ज (हिन्दी हूँ के स्थान में) और भविष्यत काल का प्रत्यय गा है। विद्वानों ने हूँ की व्युत्पत्ति संस्कृत के अस्मि से इस प्रकार बतलाई है—अस्मि 7 अत्थि 7 अहि 7 है। 'हूँ' के स्थान पर निमाड़ी में प्रयुक्त होने वाला ज या च प्रत्यय कहाँ से आया, निश्चित रूप से कहना कठिन है।

थो अथवा हतो की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'सन्त' से जान पड़ती है। सन्त का असन्त होने पर इस प्रकार रूपान्तर हो गया है—असन्त 7 अहन्त 7 हन्तों 7 हतो 7 था।

गा प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'गत्' शब्द से इस प्रकार जान पड़ती है—गत् 7 गअ 7 गा। इसी प्रकार हेतुहेतुमद्‌भूतकाल के 'होता' प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'भवन्' शब्द से इस प्रकार निष्पन्न हुई है—भवन् 7 होंन्तों 7 होता (नि.होतो)।

आठवाँ अध्याय

रूप-तत्व-अविकारी शब्द

क्रिया विशेषण

§६५१ क्रिया-विशेषण सामान्यत: क्रिया की विशेषता बतलाने वाले ही अविकारी शब्द हैं, पर कुछ क्रिया विशेषण शब्द ऐसे भी हैं, जो विशेषण अथवा दूसरे क्रिया विशेषण शब्दों की भी विशेषता बतलाते हैं। यथा—

क्रिया की विशेषता—हम काल आया।
विशेषण की विशेषता—मदन बड़ो अच्छो छोरो छे।
क्रिया विशेषण की विशेषता—रामू भौत धीरऽ चलज।

§६५२ निमाड़ी के समस्त क्रिया-विशेषण शब्दों का विभाजन तीन प्रकार से किया जा सकता है—प्रयोग की दृष्टि से, रूप की दृष्टि से और अर्थ की दृष्टि से।

§६५३ प्रयोग की दृष्टि से निमाड़ी में तीन प्रकार के क्रिया विशेषण मिलते हैं—साधारण, संयोजक और अनुबद्ध।

(१) साधारण क्रिया विशेषण

जिन क्रिया विशेषणों का प्रयोग वाक्य में स्वतन्त्र रूप में होता है, उन्हें हम 'साधारण क्रिया विशेषण की कोटि में रखते हैं। यथा–ऊ भौत हँसज, गाड़ी धीरे-चेलज, तू काँ गयो थो ? आदि

(२) संयोजक क्रियाविशेषण

किसी उपवाक्य से सम्बन्ध रखने वाले क्रिया विशेषण 'संयोजक क्रिया-विशेषण, हैं। यथा–जाँ (जहाँ) पहिल गाव थो, व्हाँ (वहाँ) अब मैदान छे, जसा काम वसा नाव। आदि।

(३) अनुबद्ध—जो क्रिया विशेषण शब्द समुच्चय बोधक और विस्मयादि-बोधक अव्यय के अतिरिक्त अन्य किसी भी शब्दभेद के साथ अवधारण के लिये आते हैं, अनुबद्ध क्रिया विशेषण कहलाते हैं। यथा–थारा आनऽ भर की देर छे, गोपाल काल बी आयो थो आदि।

§६५४ रूप की दृष्टि से भी क्रिया विशेषण के तीन प्रकार हो सकते हैं–(१) मूल, (२) यौगिक और (३) स्थानीय

(१) मूल—जो क्रियाविशेषण शब्द किसी अन्य शब्द के मेल से नहीं बनते, वे मूल क्रियाविशेषण कहलाते है। यथा–थारो घर नजीक छे, हम पाछी लौटी गया आदि।

(२) यौगिक—दूसरे शब्दों के मेल से बने क्रियाविशेषण शब्द यौगिक क्रिया विशेषण कहलाते हैं। ` साधारणत: निम्नांकित शब्दभेदों से बनते हैं :—

(१) संज्ञा से—रात तक, दिन भर, प्रेम-सी, छिन भर, सायत, बखत आदि।

(२) सर्वनाम से—ह्याँ, व्हाँ, काँ, जसो, कसो आदि।

(३) विशेषण से—इतरा-म, पहिलऽ, धीरऽ आदि।

(४) क्रिया की धातु से—जाता, भणता, बठी-न आदि।

(५) अव्यय से—ह्याँ तक, कब का, झटपट, आगऽ, सामनऽ, बाद, आज, काल, तुरत, बार-बार, अब, अभी, कब, जब, तब आदि।

शब्दों की पुनरुक्ति से भी यौगिक क्रियाविशेषण शब्द बनते हैं। यथा—

(१) संज्ञा की पुनरुक्ति से—घर-घर, घड़ी-घड़ी, रोज-रोज आदि।

(२) दो भिन्न संज्ञा शब्दों के मेल से—रात-दिन, देस-विदेस, सुबो-साम आदि।

(३) विशेषणों की पुनरुक्ति से—थोड़ो-थोड़ो, ठीक-ठीक, साफ-साफ, आदि।

(४) क्रियाविशेषणों की पुनरुक्ति से—धीरे-धीरे, कबी (भी)-कबी आदि।

(५) दो भिन्न क्रिया विशेषणों के योग से—ह्याँ-व्हाँ, नीचा-उप्पर, सा-मऽ-प-छऽ आदि।

(६) विशेषणों और संज्ञा शब्दों के योग से—एक साथ, हर घड़ी, एक बार आदि।

(७) अव्यय से अन्य शब्दों का योग होने से—भरपेट, दररोज, बिन जाने आदि।

(८) विशेषण और पूर्व कालिक कृदन्त के योग से—बहुतेक, खासकर, एक-एक करीन आदि।

(३) स्थानीय—जब दूसरे शब्द भेद बिना किसी परिवर्तन के क्रिया-विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं, तब वे स्थानीय क्रिया विशेषण कहलाते है। यथा—

(१) संज्ञा—तुम सिर पढ़ोगा, ओ-ख फत्तऽर (पत्थर) आवज।

(२) सर्वनाम—हाऊँ यू चाल्यो, छोरो ऊ जाई रह्‌यो ज।

(३) विशेषण—छोरो उदास बठ्यो छे, लोग भूका छे आदि।

(४) वर्तमानकालिक कृदन्त—ऊ रोतो आवज, हत्ती भूमतो चलज।

(५) भूतकालिक कृदन्त—सब **सोया** पड़्या था, ऊ **घबरायो हुयो** भाग्यो आदि ।

(६) पूर्वकालिक कृदन्त—तुम **दौड़ी-न** चलज, बिचारो **गिरी-न** मरी गयो, ऊ–**पढ़ी-न** सोवज आदि ।

§६५५ अर्थ की दृष्टि से क्रियाविशेषण के चार प्रकार हैं (१) कालवाचक (२) स्थानवाचक (३) रीतिवाचक और (४) परिमाणवाचक।

(१) कालवाचक—क्रियाविशेषण क्रिया का काल बतलाते हैं । यथा—अब, जब, तब, अभी, कभी, तुरत, आखिर आदि ।

(२) स्थानवाचक क्रियाविशेषण शब्द क्रिया का स्थान बतलाते हैं । यथा—अल्यांग, वल्यांग, कल्यांग, दूर, नजीक, उप्पर, नीचऽ, भीतर, भायर आदि ।

(३) रीतिवाचक क्रियाविशेषण क्रिया की रीति बतलाते हैं । यथा—धीरऽ, जल्दी, जरूर, सच, नी, ठीक आदि ।

(४) परिमाणवाचक क्रियाविशेषण से क्रिया का परिमाण प्रकट होता है । यथा—नानो भोत रड़ज, हम या बात बिल्कुल भूली गया आदि ।

(क) कालवाचक क्रियाविशेषण

§६५६ कालवाचक क्रियाविशेषण तीन प्रकार के होते हैं—समय-वाचक, अवधिवाचक और क्रमवाचक ।

(१) समयवाचक—आज, काल, परसो, अब, जब, तब, कब, अभी, कभी, जभी, फिर, तुरत, सुबा, साम, आगऽ, पीछऽ, अखीर आदि ।

(२) अवधिवाचक—आजकाल, सदा, हमेस, अबतक, दिनभर, अब बी (भी), कबी न कवी, कब का, कदी (कभी) आदि ।

(३) क्रमवाचक—बार-बार, दररोज, दरमयना (महीना), घड़ी-घड़ी, हरदफा आदि ।

निमाड़ी में अब, जब, तब और कब, अवँ, अवँ, तवँ और कवँ भी बोले जाते हैं ।

§६५७ निमाड़ी के कालवाचक क्रियाविशेषण निम्नांकित शब्दभेदों से बनते हैं :—

(१) संज्ञा से—छन (क्षण), समे (समय), पहर, जल्दी, फुर्ती, चटनऽ (तुरंत), देर, सब दिन, हमेस (हमेशा), रोज (प्रतिदिन), हररोज, हरमयना, बखत, हरबखत, काल, परसो, नरसो, गयसाल, (गतवर्ष) साँज (साँझ) सबेरो आदि ।

(२) सर्वनाम से—अब, जब, कब, तब, अबच (अभी), अबकी, तबच तबकी, कबकों (कभी का), जबच, जबको, फिर, फिरकी (फिर से—दूसरी बार) आदि ।

(३) विशेषण से—पहिल, आगऽ, पछऽ, एतरा–मऽ, ओतरा–पर आदि।

§६५८ उपर्युक्त क्रियाविशषण शब्दों में से छन, समे (समय) जल्दी, पहर, रोज, साँज शब्द ब्रज और बुन्देली में भी ज्यों के त्यों प्रयुक्त होते हैं। अन्य कुछ शब्द किंचित परिवर्तित होकर प्रयुक्त होते हैं। यथा—अब–अबै जब–जबै. कब–कबै, कबौं, तब–तबै, आगऽ–आगे, पछऽ–पाछे, पाछें आदि।

(ख) स्थानवाचक क्रिया विशेषण

§६५९ निमाड़ी में स्थानवाचक क्रियाविशेषण दो प्रकार के होते हैं—स्थितिवाचक और दिशासूचक।

(१) स्थितिवाचक—याँ, व्हाँ, जाँ, काँ, आगऽ, पीछऽ, उप्पर, निच्चऽ सामे या सामनऽ (सामने), भायर, भित्तर, पास, नजीक आदि।

(२) दिशासूचक—अल्यांग, वल्यांग, कल्यांग, दूर, दायने, बाये, आर-पार, चारी तरप (फ) आदि।

स्थितिवाचक के याँ, व्हाँ जाँ, काँ खड़ी बोली के यहाँ, वहाँ, जहाँ, कहाँ के समान हैं। ब्रज और बुन्देली में खड़ी बोली के रूपों का ही प्रयोग होता है। कभी कभी ब्रज में 'वहाँ' के स्थान पर 'उहाँ' शब्द का भी प्रयोग होता है।

दिशासूचक स्थानवाचक क्रियाविशेषण में निमाड़ी के अल्यांग, बल्यांग, कल्यांग खड़ी बोली के इस ओर, उस ओर और किस ओर के पर्यायवाची हैं। ब्रज भाषा में इस ओर के लिए कहीं-कहीं 'याआंग' और 'उस ओर' के लिये 'वाआंग' भी बोला जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि निमाड़ी में अल्, वल्, और कल् शब्दों का प्रयोग इस, उस, और किस शब्दों के अर्थ में किया गया है और उनके आगे 'आँग' शब्द जोड़ कर ये शब्द बना लिये गये हैं। 'आँग, शब्द का प्रयोग मालवी में भी 'तरफ' के अर्थ में किया जाता है। निमाड़ी की अनेक अकारान्त धातुओं में 'य' प्रत्यय लगाकर क्रिया बनाई जाती है। यथा—कह् + य = कह्य, रह् + य = रह्य आदि। उपर्युक्त शब्दों में भी निमाड़ी की इसी प्रवृत्ति के अनुसार अल्, वल् और कल् में 'य' प्रत्यय लग गया है।[1]

§६६० निमाड़ी के स्थानवाचक क्रियाविशेषण इन शब्द भेदों से बनते हैं:—

(१) संज्ञा से—अल्यांग, वल्यांग, कल्यांग, या जघा (जगह), ठाव आदि।

(२) सर्वनाम से—ह्याँ, व्हाँ, जाँ, काँ (कहाँ) आदि।

---

१. अंग्रेजी 'अलांग' (along) का अर्थ भी 'इस ओर' होता है। अरबी का 'अलंग' शब्द भी 'ओर' या 'तरफ' के अर्थ का द्योतक है।

(३) विशेषण से—निच्चऽ, उप्पर, बिचलो, आगऽ, पछऽ, पहिल, नगीच, दूर, पल्यांग, मांझ, भायर, सामनऽ आदि।

§६६१ उपर्युक्त क्रिया विशेषण शब्दों में से अधिकांश शब्द ब्रज भाषा में भी व्यवहृत होते हैं, पर उनके रूप में भाषा-प्रकृति के अनुसार कुछ परिवर्तन हो जाता है। यथा—आगऽ–आगे, भायर–बहिर, भित्तर–भीतर, वहाँ–उहाँ, हूयाँ–यहाँ, व्हाँ–वहाँ, काँ–कहाँ, निच्चऽ–नीचे, पछऽ–पाछे, पीछे, उप्पर–ऊपर आदि।

इस भाषा के ये रूप निमाड़ी की अपेक्षा खड़ी बोली के अधिक समीप हैं। प्राचीन ब्रज में यहाँ, वहाँ, कहाँ जहाँ शब्दों के स्थान में इत, उत, कित, शब्दों का प्रयोग मिलता है।

(ग) रीतिवाचक क्रियाविशेषण

§६६२ निमाड़ी में प्राप्त रीतिवाचक क्रिया विशेषण सात प्रकार के हैं—

(१) प्रकारवाचक—असो, वसो, कसो, जसो, जसो–जसो, असो–वसो, धीरऽ, बिरथा (व्यर्थ), असोच, वसोच, कसोच, जसोच, जसो–तसो, अपणा-आप, एक–सात (साथ) मन–सी, ध्यान–सी, चटपट, फटाफट, तड़तड़, फट–सी, उल्टो आदि।

(२) निश्चयवाचक—जरूर, सई (सही), सचमुच, बेसक, अलबत्ता, खासकर, दर-असल, सचमुच-मऽ आदि।

(२) अनिश्चववाचक—कदाचित, भौतकरखऽ, भौतकर (बहुत करके) आदि।

(४) स्वीकृतिवाचक—हौ, जी, ठीक सच्ची आदि।

(५) कारणवाचक—एकासी (इसलिए), याच कारन (इसी कारण), काई, काई कालेण (किसलिये) आदि।

(६) तिषेधवाचक—नी, मत आदि।

(७) अवधारणवाचक—वी (भी), तो, च (हीं), भर, तक, सो आदि।

§६६३ ब्रज भाषा में असो, वसो, कसो, जसो के स्थान में ऐसो, वैसो, कैसो, जैसो शब्दों का प्रयोग होता है। कहीं-कहीं ऐसे, ऐसें, वैसे, जैसे, जैसें, कैसे, कैसें शब्दों का भी प्रयोग होता है।

प्राचीन ब्रज में ऐसे के लिए अस, जैसे के लिए जस, तैसे के लिए तस और कसे के लिए कस शब्द का प्रयोग मिलता है। प्राचीन ब्रज के ये क्रिया-विशेषण शब्द निमाड़ी में अकारान्त के स्थान पर ओकारान्त मिलते हैं।

प्राचीन ब्रज में निमाड़ी के निषेधवाचक क्रिया विशेषण 'नी, के स्थान में 'नई' शब्द मिलता है, जो खड़ी बोली के 'नहीं' का ब्रज-रूप है। 'मत' शब्द का प्रयोग ब्रज में भी होता है। प्राचीन ब्रज में इसके लिए 'जनि' शब्द मिलता है।

§६६४ निमाड़ी के रीतिवाचक क्रियाविशेषण निम्नांकित शब्द भेदों से बने हैं :—

(१) संज्ञा से—तना-अच्छीतना, तरा-अच्छीतरा (अच्छी तरह) सच्ची, मन-सी, ध्यान-सी।

(२) सर्वनाम से—असो, वसो, जसो, कसो, तसो, अपणा-आप।

(३) विशेषण से—बिरथा, एक-सात, दर-असल।

(४) अव्यय से—बी, तो, भर, तक।

(घ) परिमाणवाचक क्रियाविशेषण

§६५५ निमाड़ी में प्रयुक्त परिमाणवाचक क्रियाविशेषण पाँच प्रकार के हैं :—

(१) आधिक्यबोधक—भौत, बड़ो, भारी, अति, बिलकुल, निरो, खूब, भरपूर आदि।

(२) न्यूनताबोधक—थोड़ो, कुछ, ज़रा, हलको आदि।

(३) पर्याप्तबोधक—बस, बरोबर, ठीक, काफी, पूरो आदि।

(४) तुलनावाचक—जादा (ज्याद:), कम, इतनो, एतरो, उतनो, कितनो, कितरो, बढ़ीन, (बढ़कर), आदि।

(५) क्रमवाचक—थोड़ो-थोड़ो, जरा-जरा, एक-एक, तिल-तिल, भौत-भौत आदि।

निमाड़ी क्रिया विशेषणों का प्रयोग

§६६६ ऊपर निमाड़ी में प्रयुक्त जिन विभिन्न क्रियाविशेषणों के उदाहरण दिये गये हैं, वे अर्थ और प्रयोग के अनुसार निम्न प्रकार व्यवहृत होते हैं :—

काल-परसों—इन कालवाचक क्रिया विशेषणों का प्रयोग भूत और भविष्य दोनों कालों में होता है। यथा—मऽकाल आयो थो (भूतकाल) मऽकाल जाऊंगो (भविष्यतकाल), ऊ परसो मिल्यो हतो (भूत०) ऊ परसो आणवाळो छे (भवि०)।

आगऽ, पछऽ—इनका प्रयोग कालवाचक और स्थानवाचक दोनों प्रकार के क्रिया विशेषणों में होता है। यथा—

स्थानवाचक-म्हारो घर तारा घर का आगऽ छे, म्हारा घर का पछऽ लीम को झाड़ छे।

पास, दूर—इनका प्रयोग भी कालवाचक और स्थान वाचक दोनों में होता है। यथा—

कालवाचक—दीवाळी पास छे की दूर ?

स्थानवाचक—म्हारो गाव पास छे, म्हारा घर-सी बजार दूर छे।

तब, फिर—ये दोनों समानार्थी कालवाचक क्रिया विशेषण हैं, पर कभी-कभी इन दोनों का प्रयोग एक साथ ही होता है। यथा—तब फिर तू काई करगा ?

कभी—यह अनिश्चित कालवाचक क्रिया विशेषण है। इसका प्रयोग स्वीकृति और निषेध, दोनों अर्थों में होता है। यथा—

स्वीकृति—मऽकभी आ जाऊँगो।

निषेध—असो काम कभी मत करजो।

'कभी' शब्द का प्रयोग क्रमागत-काल में भी किया जाता है। यथा—कभी दुख अरु कभी सुख चलतोच रहज (कभी दुख और कभी सुख चलता ही रहता है)।

कहाँ, कहीं—'कहाँ', का प्रयोग स्थान-प्रदर्शन तथा अन्तर-प्रदर्शन में होता है। यथा—

स्थान-प्रदर्शन—तू कहाँ जावज ? (तू कहाँ जाता है ?)

अन्तर-प्रदर्शन—कहाँ ऊ न कहाँ मऽ ? (कहाँ वह और कहाँ मैं) 'कहीं' शब्द का प्रयोग स्थान-प्रदर्शन के अतिरिक्त 'अधिक' के अर्थ में भी किया जाता हैं। यथा—

स्थान-प्रदर्शन—ऊ कहीं गयो छे।

अधिक के अर्थ में—ऊ म-सी कहीं सुखी छे।

दो बातों का विरोध दिखाने में भी 'कहीं' का प्रयोग होता है। यथा—कहीं धूप कहीं छाव, कहीं गानो, कहीं रोनो—आदि।

ह्याँ, याँ (यहाँ), वाँ (वहाँ)—इनका प्रयोग पृथक्-पृथक् तथा एक साथ भी होता है। एक साथ प्रयोग विचित्रता-द्योतन में ही होता है। यथा—

पृथक्-पृथक्—घड़ो याँ रखो थो, गोपाळ वाँ नी गयो।

एक-साथ—याँ सुख, न वाँ (व्हाँ-वहाँ) रंज।

जब तक—इस यौगिक क्रिया विशेषण शब्द का प्रयोग दो रूपों में होता है—

(१) निषेधात्मक——जब तक ऊ नी कयऽ (कहे), तब तक तू ह् याँच बठो रय (जब तक वह न कहे, तू यहीं बैठा रह)।

(२) समानाधिकरण——जब तक दिन डूबऽ तू यू काम करलऽ (जब तक दिन डूबता है, तू यह काम कर ले)।

यकालेण (इसलिये) इस शब्द का प्रयोग क्रिया विशेषण और समुच्चय-बोधक अव्यय दोनों के रूप में होता है। यथा——

क्रिया विशेषण——ऊ यकालेण गयो छे, की ओ-खऽ सुन्नो मिळ जाय (वह इसलिये गया है कि उसे सोना मिल जाय)।

सम्मुच्चय बोधक——तू गरीब छे, यकालेण म थारी सायता करूँज (तू गरीब है, इसलिये मैं तेरी सहायता करता हूँ)।

न, नी——इन दोनों क्रिया विशेषण शब्दों का प्रयोग निषेधावस्था में ही होता है। इनमें से 'न' का प्रयोग दो उप-वाक्यों के आरम्भ में भी होता है। यथा——

निषेधात्मक——न ऊ आयो, न तू आयो (न वह आया और न तू आया), मोहन नी आवऽ (मोहन नहीं आता)।

निमाड़ी में 'न' का प्रयोग समुच्चयबोधक अव्यय और कर्ता की विभक्ति के रूप में भी होता है। यथा——

समुच्चयबोधक——रामू न दामू आया छे (रामू और दामू आये हैं)।

कर्ता की विभक्ति——राम-न बोझो उठायो (राम ने बोझा उठाया)।

च, तो——निमाड़ी में 'च' का प्रयोग हिन्दी के 'ही' के अर्थ में होता है। यह किसी भी शब्दभेद के साथ निश्चयार्थ में आता है। यथा——

संज्ञा——रामूच (रामू ही), सर्वनाम-उ-च (वही), विशेषण-काळोच (काला ही), क्रिया-करनोच (करना ही), क्रि. वि. आजच (आज ही), अव्यय-रात भरच (रात भर ही) आदि।

'तो' का प्रयोग निश्चय और आग्रह के अर्थ में होता है। यथा——

निश्चय——तुम गया तो था (तुम गये तो थे)।

आग्रह——तुम-ख तो आणूच पड़गा (तुम्हें तो आना ही पड़ेगा)।

'तो' का प्रयोग समुच्चयबोधक अव्यय के रूप में भी होता है। यथा——तुम जावगा तो ऊ आवगा (तुम जाओगे तो वह आयेगा)।

'तो' शब्द का प्रयोग किसी भी शब्दभेद के साथ होता है। यथा——

संज्ञा——धन तो सबका पास छे (धन तो सबके पास है)।

सर्वनाम——ऊ तो आजच आयो (वह तो आज ही आया)।

विशेषण——ओको रंग काळो तो छेच, पर भद्दो बी छे (उसका रंग काला तो है ही, पर भद्दा भी है)।

भर, तक---'भर' शब्द जब परिमाणवाचक संज्ञा शब्दों के साथ आता है, तब विशेषण बन जाता है। यथा---मुट्ठी भर नाज ददऽ (मुट्ठी भर अनाज दे दे), सेर भर दूद पीलऽ (सेर भर दूध पी ले) आदि।

कभी-कभी 'भर' शब्द का प्रयोग 'सब' के अर्थ में भी होता है। यथा---गाव भर का लोग आया था (गाँव भर के लोग आये थे)।

कभी-कभी 'भर' शब्द का प्रयोग 'केवल' के अर्थ में होता है। यथा---म्हारा पास कपड़ा भर था (मेरे पास केवल कपड़े थे), नौकर आयो भर (नौकर केवल आया) आदि।

'तक' शब्द का प्रयोग व्यापकता के अर्थ में होता है। यथा---

या बात तो जानवर तक समझी सकज (यह बात तो जानवर तक समझ सकते हैं), आज काल्ठ मजूर तक सनेमा देखज (आजकल मजदूर तक सिनेमा देखते हैं) आदि।

सो---इस शब्द का प्रयोग कभी प्रत्यय, कभी क्रिया विशेषण और कभी सम्बन्ध सूचक अव्यय के रूप में होता है। यथा---

प्रत्यय---म-सो (मुझसा), गनेश-सो (गणेश-सा) आदि।

क्रिया विशेषण---बालक फूल-सो सुन्दर छे (बच्चा फूल-सा सुन्दर है)।

सम्बन्ध-सूचक---लुगई-को-सो बोल सुन पड्यो (स्त्री का-सा बोल सुनाई पड़ा।)

'सो' का प्रयोग परिणामवाचक विशेषणों के साथ अवधारण के अर्थ में होता है। यथा---भउत-सो धन, थोड़ो-सा पैसा, जरा-सी छोरी आदि।

व्युत्पत्ति

§६६७ निमाड़ी के अधिकांश क्रिया विशेषण शब्दों की व्युत्पत्ति प्रा. भा. आ. भाषा से ही निष्पन्न हुई है। उदाहरणार्थ कुछ क्रिया विशेषण शब्दों की व्युत्पत्ति इस प्रकार है :---

छिन 7 क्षण

घड़ी 7 प्रा. घिड़िआ 7 सं. घटिका

फुर्ती ∠ स्फूर्ति

आगऽ ∠ अग्गे ∠ अग्र

आज ∠ अज्ज ∠ अद्य

कल ∠ कल्लं ∠ कल्यम्

तुरत ∠ तुरं ∠ त्वरन्त

नित ∠ नित्यम्

बार ∠ बार ∠ बारंबारम्

अब ∠ एव्व ∠ एवम् (डा० चाटुर्ज्या)

याँ ∠ तो + इहा अथवा यो + स्मिन् (सप्तमी)

व्हाँ ∠ व + इहा अथवा व + स्मिन्

जाँ ∠ ज + इहा अथवा ज + स्मिन्

काँ ∠ क + इहा अथवा क + स्मिन्

भायेर (बाहर) ∠ पा. बाहिरो प्रा. बाहिर ∠ सं० ∠ वहि:

भीतर ∠ पा. अब्भन्तर ∠ अभ्यन्तर

अउर ∠ प्रा. अवर ∠ अपर

भौत (बहुत) ∠ बहुत ∠ बहुत्वम् अथवा प्रा. बहुको ∠ पा. बहु ∠ सं. बहुः ।

अरबी-फारसी से गृहीत क्रिया विशेषण शब्द

§६६८ सायत, बखत, नजीक, जादा, कम, रोज-रोज, सुबो-साम, दररोज, खासकर, आखिर, आखरी, जरूर, जल्दी, हरबखत, परसों, दरसाल, हरदफा आदि।

सम्बन्ध-सूचक अव्यय

§६६९ निमाड़ी के अधिकांश सम्बन्ध सूचक अव्यय सामान्य हिन्दी के ही समान हैं। भाषा के रूप की दृष्टि से कुछ सम्बन्ध सूचक शब्दों में नाममात्र का परिवर्तन देखा जाता है। यथा—आगऽ (आगे), पछऽ (पीछे) उप्पर (ऊपर), पास, बिना, सरीखो (सरीखा), भायेर (बाहर), करी-न (करके) आदि।

§६७० रूप की दृष्टि से निमाड़ी के सम्बन्ध सूचक दो प्रकार के हैं—(१) मूल और (२) यौगिक।

(१) मूल—जो सम्बन्ध सूचक अव्यय शब्द स्वतन्त्र (बिना किसी अन्य शब्द के मेल के) होते हैं, वे मूल कहलाते हैं। बिना, तक आदि इसी प्रकार के सम्बन्ध सूचक अव्यय हैं।

(२) यौगिक—दूसरे शब्दभेदों से बनने वाले सम्बन्ध सूचक अव्ययों को हम यौगिक कहते हैं। ये संज्ञा, विशेषण, क्रिया और क्रिया विशेषण से बनते हैं।

संज्ञा से बने—वास्तऽ, बदले, लेखे आदि।

विशेषण के बने—समान, सरीखो, जसो, असो आदि।

क्रिया से बने—लाने, मारे, करी-न आदि।

क्रिया विशेषण से—भायेर, भित्तर, उप्पर, पछऽ, आगऽ, पास आदि।

§६७१ प्रयोग के अनुसार हम निमाड़ी के सम्बन्धसूचक अव्यय शब्दों को दो प्रकारों में विभाजित देखते हैं—(१) सम्बद्ध और अनुबद्ध।

(१) सम्बद्ध—जिन सम्बन्धसूचक अव्ययों के पूर्व कारकों की विभक्तियाँ आती हैं, वे सम्बद्ध सम्बन्धसूचक कहलाते हैं। इस सम्बन्ध में निमाड़ी में निम्नांकित बातें स्मरणीय हैं :—

(अ) कभी-कभी मारे (मारा), सिवा और बिना सम्बन्धसूच कों के पूर्व कारकों की विभक्तियाँ नहीं होती। यथा—**मारा** पानी के कीचड़ मची गयो, **सिवा** थारा म-ख कोण पूछज, **बिना** बईल का खेती कसी होई सकज।

(आ) मारे और सिवा शब्द जब सर्वनाम शब्दों से सम्बन्धित होते हैं, तब उनके पहिले कारकों की विभक्तियाँ स्पष्ट नहीं देखी जाती। यथा—तारा **मारे** हाऊँ तरसी गयोज, थारा **सिवा** म्हारो कोण छे?

(इ) बिना, अनुसार, पछऽ भूतकालिक कृदन्त के रूप के पश्चात आने पर उनके पूर्व विभक्ति नहीं होती। यथा—थारा गया बिना काम नी चलगा, हाऊँ थारा कह्या अनुसार (मुताबिक) काम करूँज, वहाँ गया पछऽ बात मालूम पड़गऽ।

(ई) 'लायक' शब्द क्रियार्थक संज्ञा के विकृत रूप के पश्चात आने पर उसके पूर्व विभक्ति नहीं होती। यथा—या पुस्तक पढ़ना **लायक** नी छे।

(फ) सम्बन्धसूचक अव्यय शब्दों के पूर्व प्रायः सम्बन्ध कारक की विभक्तियों का प्रयोग होता है। यथा—मोहन का घर का पछाड़ी लीम को पेड़ छे, रामू का सिवा कोण आवगा आदि।

(ऊ) आगऽ, पाछी, भायेर, उप्पर आदि शब्दों के पूर्व कभी-कभी सम्बन्ध कारक की विभक्तियों—का, को, की, के स्थान में 'सी' का भी प्रयोग होता है। यथा—ओ-सी आगऽ हाऊँ आवज, राम्या-सी पछी कोण आयो? घर-सी भायेर मत निकळो, भगवान-सी उप्पर कोण छे। आदि।

(२) अनुबद्ध—हिन्दी में संज्ञा शब्दों के विकृत रूपों के साथ आने वाले सम्बन्धसूचक अव्यय अनुबद्ध कहलाते हैं। हिन्दी के ये ही शब्द ज्यों के त्यों अथवा किंचित परिवर्तन के साथ निमाड़ी में व्यवहृत होते हैं।

§६७२ इस वर्ग के सम्बन्धसूचक अव्यय शब्द निम्न भागों में विभाजित हो सकते हैं :—

(अ) कालसूचक—आगऽ, पछऽ या पाछी, उपरान्त, पहिल, बाद।

(आ) स्थानसूचक—नजीक, दूर, भित्तर, भायेर, आगऽ, पाछी।

(इ) दिशासूचक—तरफ, आसपास, आरपार।

(ई) साधनसूचक—जरिये, सहारे, मारफत।

(उ) कार्यकारण-सूचक—वास्तऽ, लेण, कारन, सबब, खातिर।

(ऊ) विषयसूचक—बाबत, निस्बत, लेखे आदि।

(ए) भिन्नतासूचक—सिवा, अलावा, बिन, बिगर आदि।

(ऐ) समानतासूचक—समान, तरे, बरोबर, लायक, अनुसार, सरीखो, असो, जसो आदि।

(ओ) विरोधसूचक—खिलाफ, उलटो, बिरध आदि।

(औ) सहचारसूचक—संग, साथ, समेत आदि।

(अं) संग्रह सूचक—भर, तक, समेत + आदि। बनिस्बत, आगऽ, या आगू, सामनऽ (सामने)

(अः) तुलना-सूचक—

यौगिक सम्बन्ध-सूचक अव्यय

§६७३ निमाड़ी के अधिकांश सम्बन्धसूचक अव्यय यौगिक हैं। वे निम्न प्रकार बने हैं :—

(१) संज्ञा से—पलटे, वास्तऽ, तरफ, नाम, मारफत आदि।

(२) विशेषण से—समान, उलटा या उलटो, सरीखो, सो, जसो, असो, लाइक आदि।

(३) क्रिया से—कालेण, मारे, करी-न आदि।

(४) क्रियाविशेषण से—उप्पर, निच्चऽ, ह्याँ अथवा याँ, भायर, भित्तर, पास, पछऽ आदि।

निमाड़ी के कुछ सम्बन्धसूचक अव्यय फारसी से भी गृहीत हैं। यथा—रूबरू, नजीक या नज़दीक, सबब, बाद, तरे (तरह), वास्तऽ (वास्ते), ज़रिये, एवज़, अलावा आदि।

§६७४ निमाड़ी में प्रयुक्त कुछ सम्बन्धसूचक अव्ययों का प्रयोग इस प्रकार होता है :—

आगऽ, पछऽ—ये सम्बन्धसूचक शब्द कालवाचक और स्थानवाचक दोनों होते हैं। यथा—

कालवाचक—होळी का आगऽ, थारा आणा का पछऽ।

स्थानवाचक—घर का आगऽ, बाड़ी का पछऽ।

भित्तर, भायर—इन सम्बन्धसूचक अव्ययों का प्रयोग भी कालवाचक और स्थानवाचक, दोनों रूपों में होता है। यथा—

कालवाचक—घंटा भर का भित्तर, समे (समय) का भायर।

स्थानवाचक—घर का भित्तर, गाँव का भायर।

उप्पर, निच्चऽ—इनका प्रयोग प्रायः स्थानवाचक-रूप में ही होता है, पर पदों की छुटाई-बड़ाई व्यक्त करने में भी इनका प्रयोग होता है। यथा—सिपाइन-मऽ जमादार सबसे उप्पर छे, बड़ा सायेब का निच्चऽ तहसीलदार रहज आदि।

पास—इस सम्बन्धसूचक अव्यय का प्रयोग दूरी व्यक्त करने के सिवाय अधिकार सूचित करने में भी होता है। यथा—थारो घर पास छे (दूरी) म्हारा-पास दो गाय छे (अधिकार)।

सिवाय, सात (साथ)—'सिवाय' का शुद्ध फारसी-रूप 'सिवा' है, जिसका प्रयोग निमाड़ी में हिन्दी के (वास्वव में संस्कृत के) 'अतिरिक्त' शब्द के अर्थ में किया जाता है। यथा—थारा सिवा म्हारो कोण छे ?

'साथ', जो निमड़ी में 'सात' उच्चरित होता है, कभी कभी, 'सिवा' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। यथा—बजार-सी गुड़ लेम्रा, या का सात तेल बी लेई आजो।

समान, लाइक—ये दोनों विशेषण से बने सम्बन्ध-सूचक अव्यय हैं। निमाड़ी में इनका प्रयोग सम्बन्धसूचक अव्ययों के रूप में होने पर भी ये संज्ञा की विशेषता बतलाते हैं। यथा—यू बड़ा का लाइक घर नी छे। (यह बड़ों के योग्य घर नहीं है), छोरा ओका बाप का समान छे आदि।

सरीखो—इस सम्बन्धसूचक अव्यय के पूर्व विभक्ति नहीं आती। यथा—व्हाँ तुम सरीखा आदमी नी छे (वहाँ तुम सरीखे आदमी नहीं हैं)।

असो, वसो, जसो—इन सम्बन्धसूचक अव्ययों का प्रयोग विशेषण की तरह भी होता है। यथा—असो आदमी, वसो घर, जसो तमासो आदि।

सो, भर, तक—शब्दों के प्रयोग पर क्रियाविशेषण-प्रकरण में लिख दिया गया है।

बिना—यह जब कृदन्त अव्यय के साथ जाता है, तब क्रियाविशेषण हो-जाता है। यथा—बिना कोई बात को कारन जाने बोलनो अच्छो नी छे (बिना किसी बात का कारण जाने बोलना अच्छा नहीं है)।

उलटा, उलटो—यह वास्तव में विशेषण है, पर इसके पूर्व सम्बन्धकारक की विभक्ति आने पर यह सम्बन्धसूचक अव्यय हो जाता है। यथा—रामू पटील का उल्टा छे (रामू पटेल के विरुद्ध) है।

समुच्चयबोधक अव्यय

§६७५ हिन्दी की तरह निमाड़ी में भी समुच्चयबोधक अव्यय मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं (१) समानाधिकरण और (२) व्यधिकरण

§६७६ (१) **समानाधिकरण**—जो समुच्चयबोधक शब्द दो उपवाक्यों को जोड़ते या अलग करते हैं, वे समानाधिकरण कहलाते हैं। प्रयोग के अनुसार इन्हें चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(अ) संयोजक, (ब) विभाजक, (स) विरोधदर्शक और (ड) परिणामदर्शक।

§६७७ **संयोजक**—दो या दो से अधिक मुख्यवाक्यों को जोड़नेवाले शब्द संयोजक समुच्चयबोधक कहलाते हैं। यथा—राम अरु श्याम जावज, नौकर व्हाँ गयो न काम करी-न लौटी आयो, तुम आओगा अन हम व्हाँ पहोचांगा।

संयोजक समुच्चय बोधक अव्यय दो वाक्यों के अतिरिक्त दो शब्दों को भी जोड़ते हैं। यथा—रामू अरू श्यामू, गोपाल न गबरू आदि।

इन वाक्यों में अरू (और), न तथा अन संयोजक समुच्चबोधक अव्यय हैं।

'नी' शब्द का प्रयोग भी निमाड़ी में कभी-कभी संयोजकसूचक अव्यय के रूप में होता है। यथा—तू नी थारो भाई हुश्यार छे। (तू और तेरा भाई होशियार है।)

(ब) विभाजक

§६७८ एक मुख्य उपवाक्य को दूसरे मुख्य वाक्य से पृथक् करने वाले शब्द विभाजक समुच्चयबोधक अव्यय कहलाते हैं। हिन्दी के 'या' और 'अथवा' विभाजक समुच्चयबोधक निमाड़ी में ज्यों के त्यों व्यवहृत होते हैं यथा—राम या श्याम-ख बुलाओ, मोहन अथवा राधा आवगा आदि।

§६७९ (स) **विरोधदर्शक**—हिन्दी में पर, परन्तु, किन्तु, लेकिन, मगर, बरन ओर बल्कि विरोधदर्शक समुच्चयबोधक होते हैं। निमाड़ी में छोटे-छोटे वाक्यों का ही अधिक प्रयोग प्रचलित है, जिससे हिन्दी के इन सभी विरोधदर्शक समुच्चयबोधक अव्यय शब्दों का प्रयोग उसमें नहीं मिलता। निमाड़ी में पर, परन्तु और किन्तु के स्थान में केवल 'पण' (और कभी-कभी 'पर') शब्द का ही अधिक प्रयोग मिलता है, जो मराठी से मूल रूप में स्वीकार कर लिया गया है। फारसी के 'मगर' शब्द का प्रयोग भी कहीं-कहीं देखा जाता है, पर बहुत कम। अब हिन्दी के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण नगरों में रहने वाले शिक्षित लोग 'लेकिन' और 'बल्कि' शब्द का भी प्रयोग करते देखे जाते हैं। निमाड़ी के मूल रूप को देखते हुए केवल 'पण' को विरोधदर्शक समुच्चबोधक मानना चाहिये। यथा—हऊँ व्हाँ गयो थो, पण ऊ नी मिळ्यो (मैं वहाँ गया था, पर वह नहीं मिला)।

(ड) परिणामदर्शक

§६८० हिन्दी में इसलिये, अतएव, अतः और सो शब्दों का प्रयोग परिणामदर्शक समुच्चयबोधक अव्यय के रूप में होता है, पर निमाड़ी में इन सब

शब्दों के बदले केवल 'या-सी' शब्द का ही अधिक प्रयोग मिलता है। यथा—ऊ बेमार (बीमार) थो, या-सी नी आ सको, म्हारो घर गिरी गयो या-सी हम ह्याँ चली आया आदि।

इसके अतिरिक्त जेसे (जिससे) तथा एका वास्तऽ (इस वास्ते) शब्दों का भी प्रयोग परिणामदर्शक समुच्चयबोधक अव्यय के रूप में होता है। यथा—ऊ-बेमार छे, जेसे नी आई सक्यो, तुम हुश्यार छे, एकऽवास्तऽ तुम-खऽ भेजणो भाग पड़्यो आदि।

§६८१ **व्यधिकरण** समुच्चय बोधक अव्यय भी चार प्रकार के हैं :

(अ) स्वरूपवाचक

§६८२ जिन व्यधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय शब्दों से जुड़े हुए वाक्यों या शब्दों में से पहिले वाक्य या शब्द का स्वरूप पिछले वाक्य या शब्द से जाना जाता है, वे स्वरूपवाचक कहलाते हैं। हिन्दी में कि, जो, अर्थात, याने, मानों शब्दों का प्रयोग स्वरूपवाचक समुच्चय बोधक अव्यय के रूप में होता है। निमाड़ी में इनमें से प्रायः 'कि' का ही प्रयोग होता देखा जाता है, पर उसका उच्चारण दीर्घ होता है यथा—बाप-न कयो की तू एकलो मत जा। इसमें 'की' स्वरूपवाचक समुच्चय बोधक है।

(ब) कारणवाचक

§६८३ हिन्दी में क्योंकि, और, कारण कि, शब्दों का प्रयोग इस रूप में होता है। निमाड़ी में प्रायः 'कारन की' शब्द का प्रयोग ही इस रूप में देखा जाता है। यथा—छोरो एकलो रड़तो बठ्यो थो, कारन की ओ-की माय मरी गई थी।

(स) उद्देश्यवाचक

§६८४ हिन्दी में 'कि, जो, ताकि और इसलिए शब्दों का प्रयोग उद्देश्य-वाचक समुच्चयबोधक अव्यय के रूप में होता है। निमाड़ी में 'कि' और 'जेसे' शब्दों का ही प्रयोग इस रूप में मिलता है। यथा—म जात हतो कि ऊ आ गयो, ऊ आळसी छे, जेसे भूको मरज।

(ड) संकेतवाचक

६८५ हिन्दी में 'तो' शब्द का ही प्रयोग स्पष्ट रूप में संकेतवाचक समुच्चयबोधक अव्यय के रूप में होता है। निमाड़ी में भी यही शब्द ज्यों का त्यों काम में लाया जाता है। यथा—म्हारापास पैसा रहतो तो थारी सायता करतो, तुम करी सको तो हम कव्हाँ आदि।

§६८६ ब्रजभाषा में निम्नांकित शब्दों का प्रयोग समुच्चयबोधक अव्यय के रूप होता है।

संयोजक—अउर, और, ओ, अस, केरि, पुनि।

इसमें से 'अउर' शब्द का प्रयोग निमाड़ी में भी संयोजक समुच्चयबोधक अव्यय के रूप में होता है।

विभाजक—के, कि। ये निमाड़ी से सर्वथा भिन्न हैं।

विरोधदर्शक—पर, पै। इनमें से पर का प्रयोग निमाड़ी में भी होता है।

कारणसूचक—तो। निमाड़ी मे 'तो' का प्रयोग संकेतवाचक में होता है।

संकेतदर्शक—जदपि। यह हिन्दी के 'यद्यपि' का ब्रज-रूप है, जिसका निमाड़ी में प्रयोग नहीं होता।

व्याख्यादर्शक—ताने, तातें, तासों।

ब्रज के ये रूप निमाड़ी से भिन्न हैं। निमाड़ी में इन शब्दों के पर्यायवाची शब्द के रूप में 'वास्तवऽ, या-सी, ये काव्ठेण शब्दों का प्रयोग होता है।

विषयदर्शक—कि, जो।

इनमें से 'कि' समुच्चयबोधक अव्यय का प्रयोग निमाड़ी में भी होता है। यथा—ऊ आयो थो कि म-बी पहुँच गयो।

निमाड़ी के समुच्चयबोधक शब्दों का प्रयोग

§६८७ निमाड़ी में समुच्चयबोधक शब्दों का प्रयोग निम्न प्रकार मिलता है—

अरु, न, नी—इन समुच्चकबोधक शब्दों का प्रयोग इन रूपों में होता है—

(१) दो विषयों का सम्बन्ध बतलाने में—ऊ छे अरु तुम छे, राम न लछमन चल्या गया, हऊँ व्हाँ गयो नी काम करीन पछऽ लौटी आयो आदि।

(२) दो समकालीन क्रियाओं के संयोग में—गाड़ी चलीन रुक गई, तुम गया अरु हऊँ बी चल्यो गयो आदि।

(३) धमकी या तिरस्कार के अर्थ में—अब हऊँ छे अरु तू छे।

या—यह विभाजक समुच्चयबोधक अव्यय है। इसका प्रयोग दो वाक्यों या शब्दों में से किसी एक के त्याग अथवा ग्रहण करने के लिए होता है। यथा—मुलिया या लछमी-खऽ भेजदऽ, घर लेलेऽ या याव करलऽ (घर लेले या विवाह कर ले)।

कि, की—इनमें से 'कि' का प्रयोग 'या' के सामान ही किया जाता है। यथा—पढ़लऽ कि गालऽ (पढ ले कि गा ले)।

'की' का प्रयोग पहिले कहे शब्द या वाक्य का प्रयोजन जानने के लिए दूसरे वाक्य के आदि में किया जाता है। यथा—ओ-नऽकह्यो की तू ह्याँ-सी निकव्ठ जा।

पण, पर—ये सम्बन्ध-सूचक अव्यय दो उपवाक्यों के बीच विरोध, निषेध यापरिमिति व्यक्त करते हैं। कुछ नगरवासी निमाड़ी इनके स्थान पर फारसी के 'लेकिन' शब्द का भी प्रयोग करते देखे जाते हैं। यथा—

विरोध—हऊँ जाऊँगो, पण कई काम नी करूँगो (मैं जाऊँगा, पर कुछ काम न करूँगा)।

निषेध—तू जा, पर लउट-ख, मत आजो (तू जा, पर लौट कर मत आना)।

परिमिति—सच-झूट भगवान जानऽ पर म्हारा मन-म सकच छे (सच-झूठ भगवान जाने, पर मेरे मन में शक ही है)।

यासी, जेसे, वास्तऽ—ते तीनों शब्द हिन्दी के इससे, जिससे और के लिये के पर्यायवाची हैं। किसी घटना या क्रिया के होनें का कारण बतलाने के लिये इन समुच्चयबोधक अव्ययों का प्रयोग होता है। यथा—ऊ कमजोर छे, यासी नी चली सकज, ऊ भूको थो, जेसे रड़ी रयो थो, हऊँ थकी गयो थो, या वास्तऽ बठी गयो आदि।

व्युत्पत्ति

§६८८ अन्य शब्द भेदों की तरह निमाड़ी के अव्ययों की भी व्युत्पत्ति का मूल संस्कृत ही है। कुछ शब्दों की व्युत्पत्ति क्रिया-विशेषण के प्रसंग में दे दी गई है (अनु. ६६७)।

अब, जब, कब, तब, क्रमशः अ के साथ ब, क के साथ ब और त के साथ ब के मिलने से बने हैं, जिनके निमाड़ी—रूप अवँ, जवँ, कवँ, तवँ हैं। 'बार-बार' द्विरुक्ति अव्यय शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'बारंबारम्' से हुई है। इसी प्रकार 'अनते' या 'अन्ते' की व्युत्पत्ति का स्रोत संस्कृत का 'अन्यत्र' शब्द और 'पास' की व्युतपत्ति का स्रोत संस्कृत का 'निकट' शब्द है, जिससे ब्रज, अवधी और भोजपुरी के 'नियर' शब्द का उद्गम हुआ है।

इसी प्रकार 'बहुत' की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'बहुत्वम्' और 'अउर' की 'अपरं' से हुई है। 'फिर' संस्कृत के 'पुनः' का रूप है, जिससे अवधी और ब्रज का 'पुनि' शब्द उद्भूत हुआ है।

विस्मयादिबोधक अव्यय

§६८९ हिन्दी के प्रायः सभी विस्मयादिबोधक अव्यय निमाड़ी में उपलब्ध हैं और वे प्रायः मूल रूप में ही व्यवहृत होते हैं। यथा—

(१) आश्चर्यसूचक — अरे, ओहो ऐं आदि।

(२) आनन्दसूचक — वाह, अहा, वाहवा आदि।

(३) शोकसूचक हाय, अरे-अरें, हाय-हाय आदि ।
(४) अनादरसूचक धुत, धत्थारी, हट, थू आदि ।
(५) स्वीकृतिसूचक हाँ, हो, जी आदि ।
(६) अनुमोदनसूचक अच्छो, भौत, अच्छी, शाबास आदि ।
(७) सम्बोधनसूचक ओ, रे, अरे आदि ।

अनेक बार हरे राम, भगवान, अरे बाप (संज्ञा), भलो, अच्छो, (विशेषण), हट, चुप (क्रिया) आदि शब्दों का प्रयोग भी विस्मयादि बोधक अव्यय के रूप में किया जाता है ।

व्याकरण की दृष्टि से विस्मयादिबोधक अव्ययों का कोई विशेष महत्व नहीं है । वाक्य-विन्यास में इनसे कोई सहायता नहीं मिलती । इनका प्रयोग भावों की तीव्रता व्यक्त करने के लिये ही किया जाता है ।

व्युत्पत्ति

§६९० निमाड़ी के सभी विस्मयादिबोधक अव्यय-शब्दों की व्युत्पत्ति भी अन्य शब्दों की तरह संस्कृत से ही निष्पन्न हुई जान पड़ती है । यथा—आश्चर्य-सूचक—ओहो, ऐं की उत्पत्ति संस्कृत के अहो शब्द से हुई है । ओः (निमाड़ी में ओहो) भी संस्कृत में विद्यमान है ।

वाह और वाहवा—फारसी से गृहीत शब्द हैं ।

हाय-हाय—हाय का मूल संस्कृत का आह शब्द है । 'हा' संस्कृत का मूल शब्द है ।

धत्, थू, दुर्, छी में से धत् संस्कृत के धिक् का रूपान्तर है । थू संस्कृत के थूत्कार शब्द से आया है । दुर संस्कृत के दूर का रूपान्तर है । छी प्राकृत का शब्द है ।

अच्छो 'शब्द' की व्युत्पत्ति सं. अच्छः से हुई है । पाली में ही अच्छः का अच्छो हो गया था, जो निमाड़ी में इसी रूप में वर्तमान है । शाबास फारसी का शब्द है । हे, अरे, रे संस्कृत के तत्सम शब्द हैं ।

शब्द-व्युत्पत्ति

§६९१ प्रत्यय, उपसर्ग, कृदन्त, तद्धित और समास का विचार शब्द-व्युत्पत्ति के प्रकरण के अन्तर्गत होता है । एक शब्द से दूसरा नया शब्द मूल शब्द के आरम्भ या अन्त में कोई शब्दांश या शब्द लगाकर बनाया जाता है । किसी भी भाव को व्यक्त करने के लिए कम से कम एक पूर्ण शब्द आवश्यक है, पर ऐसी ध्वनियाँ भी हैं, जो पूर्ण शब्द न होने के कारण स्वयं सार्थक नहीं होती,

पर जब उनका संयोग किसी शब्द से होता है, तब वे उस शब्द का रूप और अर्थ ही बदल देती हैं। यथा 'सु' ध्वनि पूर्ण अर्थ की द्योतक नहीं है, पर यदि उसे 'फल' शब्द के आरंभ में जोड़ दें, तो 'सुफल' 'शब्द 'अच्छा फल' अर्थ का द्योतक हो जाता है।

ये ध्वनियाँ दो प्रकार की हैं। कुछ ध्वनियाँ शब्दों के आरंभ में जोड़ी जाती हैं और कुछ अन्त में। शब्दों के आरंभ में जुड़नेवाली ध्वनियाँ 'उपसर्ग' और अन्त में जुड़नेवाली 'प्रत्यय' कहलाती हैं।

उपसर्ग

§६९२ निमाड़ी में हिन्दी के प्रायः सभी उपसर्गों का उपयोग होता है। कुछ थोड़े फारसी के उपसर्गों का भी इसमें प्रयोग मिलता है, पर संस्कृत के उपसर्ग प्रायः बहुत कम हैं। इसका कारण लोकभाषा के स्वभाव की सरलता है। जहाँ कहीं संस्कृत के किसी उपसर्ग का उपयोग हुआ भी है, वहाँ वह सरल बना लिया गया है, यथा—प्र-प्रतिज्ञा-परतिग्या, निर्-निर्जीव-निरजीव आदि।

निमाड़ी में प्रयुक्त हिन्दी के उपसर्ग

§६९३ निमाड़ी में हिन्दी के निम्नांकित उपसर्गों का प्रयोग मिलता है :—

अ—अमोल, अजाण, अजाण्यो, अचेत, अकाव्ठ, अबेर, अलग, अछूत।
अध—अधपको, अधमरो, अधसेरो, अधकच्चो।
अन—अनजाण, अनरीत, अनमनो।
क—कपूत।
नि—निकम्मो, निडर, निधड़क, निरोगी।
भर—भरपेट, भरपूर।
दु—दुबलो, दुकाल।
बिन—बिनजाणो, बिनदेख्यो, बिनबुलायो, बिनब्याह्यो।
स—सपूत, सगुन।
अध—अधपको, अधखिल्यो, अधकच्च्यो।
औ—औगुन, औधड़, औदसा।
सु—सुडोल, सुकाव्ठ, सुवरन।

उपर्युक्त उपसर्ग वास्तव में संस्कृत से ही उद्भूत हैं, पर इनका प्रयोग आधुनिक हिन्दी में विशेष होने से हमने इन्हें हिन्दी के उपसर्ग कहा है।

निमाड़ी में प्रयुक्त संस्कृत के उपसर्ग

§६९४ निमाड़ी में संस्कृत के निम्नांकित उपसर्ग मिलते है :—

अति—अत्याचार, अतिबल, अतिधन ।

अधि—अधिकार ।

अप—अपजस, अपमान, अपराध ।

अभि—अभिमान, अभिलास, अभ्यास ।

अव—अवगुन, अवतार ।

आ—आकार, आकास, आचरन ।

इति—इतिहास ।

उत्—उन्नति, उत्पन्न ।

उप—उपकार, उपदेस, उपयोग ।

कु—कुकरम, कुरूप ।

दुर्—दुरबल, दुरगुन, दुरदसा ।

नि—निदान, निवास, निरोग ।

निर्—निरभय, निरवाह, निरदोस, ।

परा—पराकरम, पराधीन ।

परि—परिकरमा (परिक्रमा), परिनाम, परिमान ।

प्र—परतिग्या, परकास, परचार, परबल, परलय ।

वि—विधवा, विवाद, विसेस, विदेस ।

सम्—सन्तोस, संयोग, संन्यास, संस्कार ।

निमाड़ी में प्रयुक्त फारसी के उपसर्ग

§६९५ अल—अलबत्ता, अलाल ।

ऐन—ऐनबखत ।

कम—कमउमर, कमजोर, कमकीमत, कमहिम्मत ।

खुश—खुसखबर, खुसदिल, खुसकिस्मत, खुसहाल ।

गैर—गैरवाजब, गैरसमज ।

दर—दरखास (दरख्वास्त), दरहकीगत, दरअसल, दररोज ।

ना—नादान, नापसंद, नाउम्मेद, नादान, नाराज ।

ब—बदोलत ।

बद—बदकिस्मत, बदमास, बदनाम, बदनामी ।

बर—बरखास (बरख्वास्त), बरदास (बरदाश्त) ।

बिल—बिलकुल ।

बिला—बिलाकसूर बिला इजाजत ।

बे—बेइमान, बेचारो, बेरहम ।

ला—लाचार, लावारस ।

हर—हररोज, हरसाल, हरतरा (हर तरह) ।

प्रत्यय

§६९६ हिन्दी की तरह निमाड़ी में भी प्रत्ययों का उपयोग दो प्रकार से होता है—क्रिया की धातु के अंत में जोड़कर और धातु के अतिरिक्त अन्य शब्दों के अंत में जोड़कर। जब क्रिया की धातु के अंत में प्रत्यय जोड़कर नये शब्द बनाये जाते हैं, तब वे कृदन्त कहलाते हैं और जब धातु के सिवाय अन्य शब्दों के अन्त में प्रत्यय जुड़ते हैं, तब वे तद्धित कहलाते हैं।

कृदन्त

§६९७ हिन्दी में कृदन्त मुख्य दो प्रकार के होते हैं—विकारी और अविकारी। निमाड़ी में भी कृदन्त के ये दोनों रूप प्राप्त हैं।

विकारी कृदन्त

§६९८ विकारी कृदन्त प्रायः संज्ञा अथवा विशेषण शब्दों के अन्त में प्रत्यय लगाकर बने होते हैं और इन शब्दों के लिंग-वचन के अनुसार इनके रूप में भी परिवर्तन हो जाता है; इसलिये ये विकारी कृदन्त कहलाते हैं। ये सात प्रकार के हैं :—

(१) **भाववाचक कृदन्त**—जब क्रिया की धातु ही भाववाचक संज्ञा का रूप धारण कर लेती है, तब उसे भाव वाचक कृदन्त कहते हैं। यथा—बोल, दौड़, लूट आदि।

निमाड़ी में भाववाचक कृदन्त निम्न प्रकार से बनते हैं :—

(अ) क्रिया के सामान्य रूप के अन्तिम वर्ण नो, णो अथवा नू या णू का लोप करने से—मार, दौड़, लूट आदि।

(आ) धातु में 'आव' प्रत्यय जोड़ने से—चढ़ाव, बनाव (बणाव) आदि।

(इ) क्रिया के सामान्य रूप के अंतिम वर्ण को 'न' या 'ण' कर देने से—देन, देण, गाण आदि।

(ई) धातु के अंतिम वर्ण का ओकारान्त कर देने से—झटको, रगड़ो घेरो आदि।

(उ) सामान्य क्रिया के अंतिम वर्ण को 'न' कर देने से—खटन, लपटन आदि।

(ऊ) धातु में 'आई' प्रत्यय लगाने से—लड़ाई, खुदाई, पिटाई, पिसाई आदि।

(ए) क्रिया की धातु के अंत में 'वट' या 'हट' प्रत्यय लगाने से सजावट, बनावट, घबराहट आदि।

(ए) धातु के आगे 'आवट' प्रत्यय लगाने से—थकावट, दिखावट, रुकावट आदि।

(ओ) धातु के आगे 'ण' या 'न' प्रत्यय लगाने से—लिखाण, उठान, थकाण आदि।

(औ) धातु के अंतिम वर्ण को ईकारान्त करने से—बोली, धमकी, घुड़की आदि।

(क) धातु में 'ती' प्रत्यय लगाने से—बढ़ती, भरती, गिनती, (गिणती) आदि।

(ख) धातु में 'नी' प्रत्यय जोड़ने से—कटनी, बोनी, करनी आदि।

(ग) धातु में 'त' प्रत्यय लगाने से—बचत, खपत, चपत आदि।

(घ) धातु के आगे 'आवो' प्रत्यय जोड़ने से—पहिनावो, बुलावो, पछताओ आदि।

(२) करणवाचक कृदन्त

§६९९ जिन धातुज शब्दों से कर्ता के द्वारा क्रिया का व्यापार करना ज्ञात हो, वे करणवाचक कृदन्त कहे जाते हैं।

निमाड़ी में ये निम्न प्रकार से बनते हैं:—

(अ) क्रिया की धातु में 'ओ' प्रत्यय जोड़कर—झूलो, ठेलो आदि।

(आ) क्रिया की धातु में 'ई' प्रत्यय लगाकर—टाकी फासी आदि।

(इ) क्रिया की धातु में 'न' लगाकर-झाड़न, जामन आदि।

(३) कर्मवाचक कृदन्त

§७०० जो धातु से बने शब्द कर्म के द्योतक होते हैं, वे कर्म वाचक कृदन्त कहलाते हैं। ये इस प्रकार बनाये जाते हैं:—

(क) धातु के अन्त में 'नो' या 'णो' लगाकर—गाणो, खाणो, बोलनो आदि।

(ख) क्रिया की धातु में 'नी' लगाकर—चटनी, ओढ़नी, कहणी।

(४) कर्तृवाचक कृदन्त

§७०१ क्रिया की धातु से बने जिन शब्दों से कर्तृत्व का ज्ञान हो, वे कर्तृ-वाचक कृदन्त कहलाते हैं। ये निम्न प्रकार से बनते हैं:—

(क) सामान्य क्रिया के अन्तिम वर्ण को अकारान्त कर 'वाळो' प्रत्यय लगाने से—पढ़नवाळो, मारनवाळो, आदि।

(ख) धातु के अंत में 'आऊ' प्रत्यय जोड़ने से—उड़ाऊ, जुझाऊ, कमाऊ आदि।

(५) गुणवाचक कृदन्त

§७०२ जो धातु से बने शब्द किसी विशेष्य की विशेषता या गुण बतलाते हैं, वे गणवाचक कृदन्त कहलाते हैं। ये निमाड़ी में इस प्रकार बनते हैं:-

(अ) धातु के अंत में 'आवणो' प्रत्यय जोड़ने से—सुहावणो, डरावणो, लुभावणो आदि।

(आ) धातु में 'आऊ' प्रत्यय जोड़ने से—बिकाऊ, जलाऊ, टिकाऊ आदि।

(इ) धातु में 'तो' प्रत्यय लगाने से—हँसतो (स्वभाव-सुभाव), रोतो (आदमी) आदि।

(६) वर्तमानकालिक कृदन्त

§७०३ जिन धातुज शब्दों से वर्तमानकाल में काम करने का ज्ञान होता है, वे वर्तमानकालिक कृदन्त कहलाते हैं। इनकी बनावट इस प्रकार है :—

(क) धातु के अंत में 'तो' प्रत्यय लगाने से—बह्यतो, कह्यतो, मरतो आदि।

(ख) अनेक बार उपरोक्त शब्दों के आगे 'हुयो' शब्द भी लगा देते हैं। यथा—बह्यतो, हुयो, कह्यतो हुयो आदि।

उपर्युक्त शब्दों का प्रयोग प्रायः विशेषण के रूप में ही होता है।

(ग) जब इन शब्दों का प्रयोग संज्ञा के रूप में होता है, तब इनका रूप आकारान्त संज्ञा शब्दों की तरह ही होता है। यथा—मारता का आगऽ भूत भागऽ।

(घ) जब वर्तमान काल की द्विरुक्ति होती है, तब इन वर्तमान कालिक कृदन्त शब्दों का उपयोग क्रिया विशेषण की तरह होता है। यथा—घूमता-घूमता थकी गयो, पढ़ता-पढ़ता सोई गयो आदि।

(७) भूतकालिक कृदन्त

§७०४ जिन धातुज शब्दों से काम का भूतकाल में होना मालूम होता है, वे भूतकालिक कृदन्त कहलाते हैं। भूतकालिक कृदन्त निम्न प्रकार बनते हैं :—

(क) अकारान्त धातु के अंतिम वर्ण को हलन्त करके 'यो' प्रत्यय लगाने से—डर्‌यो, गुण्यो, भण्यो आदि।

ऐसे कृदन्तों का उपयोग विशेषण शब्दों की तरह होता है। यथा—डर्‌यो छोरो, भण्यो आदमी आदि।

(ख) आकारान्त, एकरान्त और ओकारान्त धातु में 'यो' लगाने से—लायो, खायो, पायो आदि।

(ग) ईकारान्त धातु को इकारान्त कर 'यो' प्रत्यय लगाने से—पियो, सियो आदि।

(घ) ऊकारान्त धातु को उकारान्त कर 'यो' लगाने से—छुयो, धुयो आदि।

(ङ) कुछ भूतकालिक कृदन्त शब्द बे नियम भी बनते हैं। यथा—दियो, लियो, कियो, हुयो आदि।

अविकारी कृदन्त

§७०५ जिन कृदन्त शब्दों के रूप में लिंग, वचन आदि के कारण कोई विकार नहीं होता, वे अविकारी कृदन्त कहलाते हैं। ये निमाड़ी में तीन प्रकार के मिलते हैं :—

(१) क्रियाद्योतक

§७०६ जिन कृदन्त शब्दों से मुख्य क्रिया के साथ होने वाले व्यापार की पूर्णता अथवा अपूर्णता का ज्ञान होता है, वे क्रियाद्योतक कृदन्त कहलाते हैं। पूर्णता बतलाने वाले क्रियाद्योतक कृदन्त निमाड़ी में धातु के अंतिम वर्ण को आकारान्त कर देने से बन जाते हैं। यथा—वो-खऽ **मरा** तीन बरिस हो गया, राम्यो बड़ी रात **बीता** (बीत्या) घर आयो आदि।

कभी-कभी इसमें द्विरुक्ति भी देखी जाती है। यथा—ऊ वजन लादा-लादा (लादतो-लादतो) थकी गयो।

अपूर्ण क्रियाद्योतक वर्तमानकालिक कृदन्त के अंतिम वर्ण 'ता' को 'तो' कर देने से बन जाता है। यथा—ऊ रोतो हुयो घूमतो थो।

अनेक बार अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त में भी द्विरुक्ति देखी जाती है। यथा—ऊ डरतो-डरतो म्हारा पास आयो।

(२) तात्कालिक कृदन्त

§७०७ जिन कृदन्त शब्दों से मुख्य क्रिया के साथ होने वाले व्यापार की त्वरित समाप्ति जान पड़े, वे तात्कालिक कृदन्त कहलाते हैं। वर्तमानकालिक कृदन्त के आगे 'च' लगा देने से निमाड़ी में तात्कालिक कृदन्त शब्द बन जाते हैं। यथा—म्हारा **जाता च** ऊ समझी गयो।

कभी-कभी इस कदन्त में भी वर्तमानकालिक कृदन्त की द्विरुक्ति देखी जाती है। यथा—ऊ देखता च देखता लोप हुई गयो।

(३) पूर्वकालिक कृदन्त

§७०८ जिन कृदन्त शब्दों से मुख्य क्रिया के पूर्व व्यापार की समाप्ति जान पड़े, वे पूर्वकालिक कृदन्त कहलाते हैं। निमाड़ी म ये क्रिया की धातु को

ईकारान्त कर उसके आगे 'न' प्रत्यय लगाने से बनते हैं। यथा——झाऊँ पूछी-न आऊँज।

व्युत्पत्ति

§७०९ निमाड़ी में जिन कृदन्त शब्दों का प्रयोग होता है, वे संस्कृत, हिन्दी और फारसी के प्रत्ययों से बने हैं।

संस्कृत-प्रत्ययों से निर्मित निमाड़ी कृदन्त

§७१० अ (कर्तृवाचक)——चुर् (चुराणो)-चोर, दीव (चमकनो)-दिवो, दिव् (चमकनो)-देव, सृप (सरकनो)-सर्प, व्यध् (मारनो)-व्याधो।

भाववाचक—— कम् (इच्छा करनो)—काम, क्रुध् (क्रोध करनो)—क्रोध—करोध, जि (जीतनो)—जय, मुह् (अचेत होनो) मोह।

अक (कर्तृवाचक) गै-गायक, दा-दायक, लिख्-लेखक, नी-नायक, तृ-तारक।

भाववाचक—— स्था-स्थान, पाल्-पालन, भुज्-भोजन, मृ-मरन, हु-हवन।

करणवाचक—— नी-नयन, चर्-चरण, वह्-वाहन (बाहन)।

अना (भाववाचक) विद्-वेदना (बेदना), घट्-घटना, रच्-रचना, तुल्-तुलना, प्र-अर्थ—प्रार्थना।

अनीय (गुणवाचक) दृश-दर्सनीय (दर्शनीय), रम्-रमनीय।

आ (भाववाचक) इष्-इच्छा, कथ्-कथा, गुह्-गुहा (गुफा), पूज-पूजा, चिंत-चिंता, व्यथ्-व्यथा (विथा)।

आलु (गुणवाचक) दय्-दयालु (दयालू)।

इन् (कर्तृवाचक) इस प्रत्यय के लगाने से जो कर्तृवाचक कृदन्त बनते हैं, उनके प्रथमा का एक वचन ईकारान्त होता है। अतः नीचे ईकारान्त के ही उदाहरण दिये जा रहे हैं——त्यज्-त्यागी, दुष्-दोषी, युज्-योगी (निमाड़ी में 'जोगी' ही अधिक प्रचलित है।), उप — कृ — उपकारी।

उक (कर्तृवाचक) भिक्ष-भिच्छुक।

ता (कर्तृवाचक) मूल प्रत्यय 'तृ' है, किंतु निमाड़ी में इस प्रत्यय वाले शब्दों के प्रथमा के पुल्लिग एक वचन का रूप ताकारान्त होता है। अतः यहाँ ताकारान्त के ही उदाहरण दिये जा रहे हैं—— दा-दाता, कृ-कर्ता, नी-नेता, श्रु-स्रोता (श्रोता), हृ-हर्ता।

ति (भाववाचक) कृ-कृति, प्री-प्रीति, री-रीति।

या (भाववाचक) विद्-इद्या (विद्या), कृ-किरिया-(क्रिया)।

हिन्दी-प्रत्ययों से निर्मित निमाड़ी कृदन्त

§७११ अ (भाववाचक)—लूटना-लूट, जाँचना-जाच (जाँच), पहुँचना-पहुच (पहुँच), मारना-मार, चमकना-चमक, समझना-समज (झ)।

किसी-किसी धातु की आद्य ई और उ का गुण हो जाता है। यथा—मिलना-मेल, झुकना-झोका।

कहीं-कहीं धातु का आद्य 'अ' 'आ' हो जाता है। यथा—अड़ना-आड़, चलना-चाल, फटना-फाट आदि!

अन्त (भाववाचक) गढ़ना-गढ़न्त, लड़ना-लड़न्त, रटना-रटन्त।

ओ (भाववाचक) घेरना-घेरो, फेरना-फेरो, जोड़ना-जोड़ो, झगड़ना-झगड़ो, झटकना-झटको, रगड़ना-रगड़ो।

कहीं-कहीं 'आ' प्रत्यय लगने के पूर्व आद्य स्वर में गुण हो जाता है। यथा—मिलना-मेलो, टूटना-टोटो, झुकना-झोको आदि।

भूतकालिक-कृदन्त—मरना-मरो, पड़ना-पड़ो, धोना-धोयो, रोना-रोयो, बनाना-बनायो।

करणवाचक—झूलना-झूलो, झारना-झारो, ठेलना-ठेलो, फाँसना-फासो। निमाड़ी में हिन्दी के आकारान्त शब्द ओकारान्त हो गये हैं।

आई (भाववाचक) लड़ना-लड़ाई, चढ़ना-चढ़ाई, पढ़ना-पढ़ाई, सुनाना-सुनाई, जुतना-जुताई, पिसना-पिसाई, चरना-चराई, खिलाना-खिलाई, घुलाना-घुलाई, बनवाना-बनवाई।

आऊ (गुणवाचक) टिकना-टिकाऊ, चलना-चलाऊ, जलना-जलाऊ, बिकना-बिकाऊ, दिखना-दिखाऊ।

आक (कर्तृवाचक) लड़ना-लड़ाक।

आन (भाववाचक) उठना-उठान, लगना-लगान, मिलना-मिलान, चलना-चलान।

आप (भाववाचक) मिलना-मिलाप।

आव (भाववाचक) चढ़ना-चढ़ाव, छिड़कना-छिड़काव, बचना-बचाव, दबना-दबाव, बहना-बहाव, पड़ना-पड़ाव, घूमना-घुमाव।

आवट (भाववाचक)—लिखना-लिखावट, दिखना-दिखावट, रुकना-रुकावट, सजना-सजावट, थकना-थकावट, बनना-बनावट, मिलना-मिलावट।

आवनो (विशेषण) सुहाना-सुहावणो (नो), लुभाना-लुभावणो (नो), डराना-डरावनो। (निमाड़ी में ओकारान्त)।

आवा (भाववाचक) भुलाना-भुलावो, बुलाना-बुलावो, पहिरना-पहिरावो। उपर्युक्त शब्द निमाड़ी रूप में आकारान्त से ओकारान्त हो गये।

आस (भाववाचक) पीना-पिआस, ऊंघना-ऊँघास।

आहट (भाववाचक) चिल्लाना-चिल्लाहट, घबराना-घबराहट।

ई (भाववाचक) हँसना-हँसी, बोलना-बोली, धमकाना-धमकी।

त (भाववाचक) बचना-बचत, खपना-खपत, पड़ना-पड़त, रंगना-रंगत।

ती (भाववाचक) बढ़ना-बढ़ती, घटना-घटती, भरना-भरती, झड़ना-झड़ती, पाना-पावती, चढ़ना-चढ़ती, गिनना-गिनती।

न (भाववाचक) चलना-चलन, सीना-सीवन, लेना-देना-लेनदेन।

ना (कर्मवाचक) खान-खानो, गाना-गानो, बोलना-बोलनो।

निमाड़ी-रूप में हिन्दी के आकारन्त शब्द ओकारान्त हो गये हैं।

नी (भाववाचक) करना-करनी, कटना-कटनी, बोना-बोनी।

कर्मवाचक--चाटना-चटनी।

करणवाचक—ओढ़ना-ओढ़नी, छानना-छननी, ढाकना-ढकनी।

उपर्युक्त प्रत्यय वास्तव में संस्कृत के ही तद्भव रूप हैं, जिनका हिन्दी में अधिक प्रयोग होता है।

फारसी प्रत्ययों से निर्मित निमाड़ी कृदन्त

§७१२ अ (भाववाचक) आमद, खरीद, बरखास, दरखास, रसीद। इश (भाववाचक) परवरिस, कोसिस, नालिस, मालिस।

निमाड़ी में आकारान्त फारसी शब्द ओकारान्त हो गये हैं।

तद्धित

§७१३ हिन्दी में तद्धित के पाँच प्रकार बतलाये गये हैं। ये पाँचों प्रकार निमाड़ी में भी मिलते हैं। वे इस प्रकार हैं:--

(१) कर्तृवाचक

§७१४ कर्तृत्व का बोध करने वाले तद्धित कृर्तृवाचक कहलाते हैं। ये संज्ञा के आगे आर, इयो, वाळो, ई, री, गर, गार, दार और ची प्रत्यय लगने से बनते हैं। यथा—सुतार, अढ़तियो, खिलोनावाळो, भंडारी, सपेरो, कारीगर, मददगार, अफीमची आदि।

(२) भाववाचक

§७१५ धातु को छोड़कर अन्य शब्दों के आगे प्रत्यय लगकर बनने वाले जो शब्द भाववचक संज्ञा की तरह ही रहते हैं, ये भाववाचक तद्धित कहलाते हैं। ये संज्ञा शब्दों के आगे पन, पो, आई, आयत, ण, ई, वट, हट, वाको, आटो,

आस आदि प्रत्यय लगाने से बनते हैं। यथा—बाळपन, बुढ़ापो, चतुराई, पंचायत, लंबाण, चौड़ाई, मिलावट, घबराहट, सनाको, अर्राटो, मिठास आदि।

(३) गुणबोधक

§७१६ संज्ञा या विशेषण शब्दों में प्रत्यय लगाने से बनने वाले विशेषण शब्द गुणबोधक तद्धित कहलाते हैं। ये मान, वान, मंत, वंत, लु, ईलो, ऊ तथा ई प्रत्यय लगाने से बनते हैं। यथा—बुद्धिमान, धनवान, श्री (सिरी) मंत, दयावन्त, दयालु, रंगीलो, बजारू, गुनी आदि।

(४) सम्बन्धवाचक

§७१७ जो तद्धित शब्द सम्बन्ध सूचित करते हैं, वे सम्बन्धवाचक कहलाते हैं। ये संज्ञा के आगे आल, जो, ड़ो, ल आदि प्रत्यय लगाने से बनते हैं। यथा—ससराल, भाणजो, मुखड़ो, नकेल आदि।

(५) ऊनवाचक

§७१८ जिन तद्धित शब्दों से लघुता का बोध होता है, वे ऊनवाचक कहलाते हैं। निमाड़ी के ऐसे तद्धित शब्द संज्ञा के आगे इया, ई, री, ली आदि प्रत्यय लगाने से बनते हैं। यथा—खाट-खटिया, टोकना-टोकनी, छत-छतरी, सूपो-सुपली आदि।

व्युत्पत्ति

§७१९ कृदन्तों की तरह निमाड़ी में प्रयुक्त तद्धित शब्द भी संस्कृत, हिन्दी और फारसी के प्रत्ययों के योग से बनते हैं।

संस्कृत-प्रत्ययों से निर्मित तद्धित शब्द

§७२० संस्कृत के बहुत कम प्रत्ययों का निमाड़ी के तद्धित शब्दों में प्रयोग होता है। प्रयुक्त प्रत्यय निम्नांकित हैं :—

ई (कर्तृवाचक) 'ई' प्रत्यय वाले शब्दों के प्रथमा एक वचन में निमाड़ी में 'न' का लोप होकर वे ईकारान्त हो जाते हैं। अतः यहाँ ऐसे शब्दों के ही उदाहरण दिये जा रहे हैं। यह प्रत्यय प्रायः अकारान्त शब्दों में ही लगता है। यथा—धन-धनी, क्रोध-क्रोधी, योग-योगी (जोगी), पक्ष-पक्षी, सुख-सुखी।

इमा—(भाववाचक)—महत्-महिमा।

ईन—(गुणवाचक)—कुल-कुलीन, ग्राम-ग्रामीण, नव-नवीन।

क (ऊनवाचक)—बाल-बालक।

वान (गुणवाचक)—धन-धनवान, ज्ञान-ग्यानवान, गुण-गुनवान, भाग्य-भागवान।

अधीन---(गुणवाचक)---स्वाधीन, पराधीन।

हिन्दी प्रत्ययों से निर्मित तद्धित शब्द

§७२१ निमाड़ी के अधिकांश तद्धित शब्द हिन्दी-प्रत्ययों से ही निर्मित हुए हैं। ये निम्नांकित हैं।

आ (विशेषण)---भूखा-भूको (खो), प्यार-प्यारो, प्यास-प्यासो, ठंढ-ठंढो, (ठंडो), मैल-मैलो, खार-खारो।

निमाड़ी के रूप के अनुसार यहाँ हिन्दी के आकारान्त शब्द ओकारान्त हो गये हैं।

आई (भाववाचक)---भला-भलाई, बुरा-बुराई, चतुर-चतराई (चतुराई), बनिया-बनियाई।

इस प्रत्यय से कुछ जातिवाचक संज्ञा-शब्द भी बनते हैं। यथा---मीठा-मिठाई, खट्टा-खटाई, चिकना-चिकनाई आदि।

आका (भाववाचक)---सन्-सनाको, भड़-भड़ाको, धड़-धड़ाको, धम-धमाको, सड़-सड़ाको।

यहाँ भी निमाड़ी की प्रवृत्ति के अनुसार हिन्दी के आकारान्त शब्द ओकारान्त हो गये हैं।

आटा (भाववाचक)---अर्राटो, सर्राटो, भर्राटो, घर्राटो। (आकारान्त के स्थान पर ओकारान्त)।

आन (भाववाचक) घमस-घमासान, लंबा-लंबान, चौड़ा-चौड़ान, ऊँचा-उचान, नीचा-निचान।

आर (जातिवाचक) सुनार, लुहार, कुम्हार, चमार, सुनार। 'आर' प्रत्यय संस्कृत के 'कार' का विकृत रूप है।

आरी (जातिवाचक) पूजा-पुजारी, भण्डार-भण्डारी, भीख-भिखारी।

आल---निमाड़ी में प्रयुक्त किसी-किसी शब्द में इन प्रत्ययों का प्रयोग संस्कृत के 'आलय' शब्द के अर्थ में हुआ है। यथा---ससुर (श्वसुर)-ससुराल, या सुसराल, गंगा-गंगाल।

आलू (गुणवाचक) झगड़ा-झगड़ालू, लाज-लजालू।

आस (भाववाचक) मीठा-मिठास, खट्टा-खटास।

आहट (भाववाचक) कड़ुवा-कड़ुवाहट, चिकना-चिकनाहट।

निमाड़ी में 'हकार' के लोप की प्रवृत्ति है, तदनुसार कड़ुवाहट और चिकनाहट के स्थान में कड़वावट और चिकनावट शब्द बोले जाते हैं।

इया (ऊनवाचक) खाट-खटिया, फोड़ा-फुड़िया।

ई (भाववाचक) चोर-चोरी, किसान-किसानी, दलाल-दलाली। खेत-खेती, महाजन-महाजनी, सवार-सवारी।

ईलो (विशेषण) रंग-रंगीलो, जहर-जहरीलो, लाज-लजीलो। (हिन्दी के आकारान्त शब्द ओकारान्त में प्रयुक्त हुए हैं।)

ऊ (विशेषण) ढाल-ढालू, घर-घरू, बजार-बजारू।

एरा (सम्बन्धवाचक) काका-ककेरो, फूफा-फुफेरो, मामा-ममेरो। (आकारान्त के स्थान में ओकारान्त)।

क (भाववाचक)—धड़-धड़क, भड़-भड़क, धम-धमक।

त (भाववाचक)—रंग-रंगत, मेल-मिल्लत।

ती (भाववाचक)—कम-कमती, गम्मत-गमती।

ली (ऊनवाचक)—टीका-टिकली, सूप-सूपली।

वाला-निमाड़ी में 'वाव्ठो' (भाववाचक)—टोपी-टोपीवाव्ठो, हल-हलवाको, गाड़ी-गाड़ीवाव्ठो, काम-कामवाव्ठो।

फ़ारसी-प्रत्ययों से निर्मित तद्धित—

आनह् (आना) जुर्म-जरीबानो (जुर्माना), नज़र-नजरानो, बय-बियानो (बयाना), तलब-तलबानो, हर्ज-हर्जानो।

निमाड़ी की प्रवृत्ति के अनुसार फारसी के आकारान्त शब्द भी यहाँ ओकारान्त हो गये हैं।

ई (भाववाचक) खुश-खुसी (खुशी), नेक-नेकी, बद-बदी।

कार (कर्तृवाचक) पेश-पेसकार (पेशकार), बद-बदकार, काश्त-कास्तकार (काश्तकार), सलाह्-सलाकार (सलाह्कार)।

'सलाह्कार' शब्द से निमाड़ी में 'ह्' का लोप हो गया है।

गार (कर्तृवाचक) मदद-मददगार, याद-यादगार, गुनाह्-गुनागार (गुनाह्गार)।

यहाँ भी 'गुनाह्गार' फारसी शब्द से 'ह्' का लोप हो गया है।

वर (विशेषण) ताकतवर, हिम्मतवर, नामवर।

कुन—कारकुन।

खोर—हरामखोर, चुगलखोर।

दार—जमींदार, जमादार, दूकानदार, मालदार।

साज—जालसाज, घड़ीसाज।

बाज़—दगाबाज, नसाबाज़।

समास

§७२३ समास को भारोपीय भाषाओं में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ये समास भारत की भाषाओं में ही नहीं, पर उनकी विभिन्न बोलियों में भी उपलब्ध हैं। भारतीय भाषाओं तथा उनकी बोलियों में प्राप्त समास तीन प्रकार के हैं—संयोग-मूलक, आश्रय-मूलक और वर्णन-मूलक।

(१) संयोग मूलक समास

§७२४ संयोग-मूलक समास के अन्तर्गत केवल द्वन्द्व समास का स्थान है। न्द्व समास में दो शब्दों या पदों के बीच से समुच्चयबोधक अव्यय लुप्त होकर उन दोनों शब्दों का अपने मूल रूप में संयोग होता है। निमाड़ी में द्वन्द्व समास के उदाहरण निम्नांकित हैं:—

माय-बाप, भाई-बहिण, लोग-लुगाई, बाप-बेटा, बाप-भाई, भाई-भौजई, बहिण-बहणोई, माय-बहिण, छोरा-छोरी, लुगाई-लड़का, सासू-जवाई, ससरा-जवाई, सासू-बहू या बऊ, बेटा-बऊ, भाई-भाई, बहिण-बहिण, ससरा-बऊ (बहू), नंद-भौजई, हात-पाय, नाक-कान, डोळ्ठा-ड़ोळ्ठा, पेट-पीठ, दार-भात, भाजी-रोटी, हलवो-पूरी, दूद-दई (ही), गुड़-सक्कर, दही-भात, नोन-तेल, कानों-खोड़ो, रात-दिन, दिन-रात, साम-सबेर, लोहो-लंगड़, ईंट-फत्तर, मास-मच्छी, खट्टो-मीठो, खारो-चरपरो (चरखो), आज-कल, गाय-बइल, घोड़ा-घोड़ी, मुर्गा-मुर्गी, तीतर-बटेर, कुत्ता-बिल्ली, तोता-मैना, आनो-जानो, उठनो-बैठनो, चलनो-फिरनो, राजा-परजा, नौकर-चाकर, सेट (ठ)-सावकार, छोटा-बड़ा, भला-बुरा, ऊचो-नीचो, ठण्डो-तातो, खेती-बाड़ी, बनिज-बेपार, कमी-बेसी, राजा-रानी, चन्दा-सूरज, नफो-नुकसान, वकील-बलिस्टर, गरीब-अमीर, चिट्ठी-पत्री, हिसाब-किताब, दवा-दारू, उप्पर-निच्चऽ, भायेर-भित्तर, आगऽ-पछी आदि।

§७२५ कुछ द्वन्द्व समास में दो से अधिक शब्दों या पदों का संयोग भी मिलता है। यथा—नोन-तेल-लकड़ी, नाक-कान-डोळ्ठा, हत्ती-घोड़ा-पालकी, लोग-लुगाई-लड़का आदि।

§७२६ निमाड़ी में प्राप्त कुछ द्वन्द्व समास एकार्थी अथवा सहचर स्वरूप के हैं। ऐसे सामासिक शब्दों में दो पर्यायवाची शब्दों का संयोग हुआ है। यथा—काम-काज, धर-पकड़, जीव-जन्तु, भूल-चूक, लाठी-काठी, लूट-मार, घास-फूस, चाल-चलन, दिया-बत्ती, भलो-चंगो, चमक-दमक, दान-धरम, कील-काटा आदि।

§७२६ निमाड़ी के कुछ द्वन्द्व सामासिक शब्द ऐसे है, जिनमें हम अनुगामी शब्दों का संयोग पाते हैं। यथा—चोरी-छिनालो, माल-टाळ उक्खल-मूसळ्ठ,

आस-पास, दया-मया, पान-फूल, गोला-बारूद, नाच-रंग, दिम-दुफेर, खानो-पीनो आदि।

§७२८ कुछ द्वन्द्व समासों में प्रतिचर शब्दों का संयोग हुआ है। यथा—रात-दिन, आज-काल, राजा-रानी, लोग-लुगाई, पाप-पुन, खानो-खरचो, घाम-छाव, लेन-देन, आगो-पीछो, चढ़ा-उतरी, कहा-सुनी आदि।

§७२९ कुछ सामासिक शब्दों में विकार-युक्त शब्दों का संयोग भी मिलता है। यथा—ठीक-ठाक, कमठो-कमाठो, फूक-फाक, खाम-खूम, अड़ोस-पड़ोस, बात-चीत, चाल-ढाल, देख-भाल, दौड़-धूप आदि।

§७३० कुछ द्वन्द्व समासों में हमें दो विभिन्न भाषाओं के शब्दों का भी संयोग मिलता है। यथा—धन-दौलत, कागज-पत्तर, हसी-मजाक आदि।

(२) आश्रय-सूचक समास

§७३१ आश्रय-मूलक समासों में तत्पुरुष, कर्मधारय और द्विगु समास का स्थान है।

तत्पुरुष समास

इस समास का प्रथम पद द्वितीय पद के अर्थ को सीमित करता है। द्वितीय पद भी प्रधान होता है। इसके दो मुख्य प्रकार हैं—व्यधिकरण तत्पुरुष और समानाधिकरण तत्पुरुष।

(१) व्यधिकरण तत्पुरुष

§७३२ व्यधिकरण तत्पुरुष के दोनों शब्दों में से प्रथम शब्द के आगे कर्त्ता और सम्बोधन कारक के अतिरिक्त किसी एक कारक की विभक्ति रहती है, जिसका लोप कर वह द्वितीय शब्द से संयुक्त होता है। कारकों की विभक्तियों के लोप के अनुसार ही संस्कृत में इस समास को द्वितीय तत्पुरुष, तृतीय तत्पुरुष, चतुर्थी तत्पुरुष, पंचमी तत्पुरुष, षष्टी तत्पुरुष और सप्तमी तत्पुरुष नाम दिए गए हैं। निमाड़ी में इन सभी प्रकार के व्यधिकरण तत्पुरुष के उदाहरण मिलते हैं। यथा—

द्वितीय तत्पुरुष—भत-खौवा, हांडी-फोड़, चिड़ी-मार, फुल-सुंघनी आदि।

तृतीय तत्पुरुष—आग-जलो, भुकमरो, पानी-प्यासो, गेरवा-मारो (गेरवा गेहूँ की फसल में लगने वाली एक बीमारी है। इससे मरा गेहूँ, गेरवामारो गेहूँ कहलाता है।), मनमानो, मुँहमांगो आदि।

चतुर्थी तत्पुरुष—पाठशाला, मालगुदाम, रेलभाड़ा, गाड़ी-किराया, हिन्दी-स्कूल, चोर-बजार, रसइ-घर, हत-कड़ी आदि।

पंचमी तत्पुरुष—देस-निकाळो, अक्कल-हीन, घर-छोड़्या, गुरु-भाई कामचोर आदि।

षष्ठी तत्पुरुष—हातघड़ी, गंगाजळ, लखपती, घर-मालक, जङ्गल-दरोगा, फुलमाली, द्वारपाल, कठघोड़ो, बनमानुस, घुड़दौड़, रजपूत, बइलगाड़ी आदि ।

सप्तमी तत्पुरुष—मनमौजी, बनवास, आपबीती, घर-घुसेल आदि ।

§७३३ उपर्युक्त प्रकारों के अतिरिक्त संस्कृत-व्याकरण के अनुसार अलुक, उपपद और नञ् समास भी तत्पुरुष समास के प्रकार हैं । इनके भी कुछ उदाहरण निमाड़ी में मिल जाते हैं ।

अलुक् तत्पुरुष—*जब तत्पुरुष समास के पूर्व पद की विभक्ति का लोप* नहीं होता, तब वह अलुक् तत्पुरुष कहलाता है । यथा—हतकतो (हाथ-कता), युधिष्ठिर (युद्ध-स्थिर), ऊटपटांग, मक्खीमार आदि ।

उपपद तत्पुरुष—इस प्रकार के तत्पुरुष समास का द्वितीय पद ऐसा कृदन्त होता है, जिसका स्वतन्त्र रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता । यथा—लक्कड़-फोड़, फत्तरतोड़, बनचर, नक्टो, कानकटो, चीड़ीमार आदि ।

नञ् तत्पुरुष—इस समास के आरम्भ में निषेधात्मक उपसर्ग लगा होता है; इसीलिये यह 'नञ्' कहलाता है । यथा—अधरम, अकरम, अनाथ, अकाज, अनादर, अनबन, अनजान, अधूरो, अनरीत आदि ।

(२) समानाधिकरण तत्पुरुष (कर्मधारय)

§७३४ इस तत्पुरुष समास के विग्रह में उसके दोनों पदों में एक ही कारक की विभक्ति लगाई जाती है । तत्पुरुष समास के इसी रूप को 'कर्मधारय' समास कहा गया है । यह कर्म अथवा वृत्ति धारण करने वाला समास है । इसका प्रथम पद विशेषण होता है । इसमें वास्तव में विशेषण-विशेष्य का संयोग होता है, किन्तु कभी-कभी हमें इसमें विशेष्य-विशेषण, विशेषण-विशेषण और विशेष्य-विशेष्य का संयोग भी मिलता है । यथा—

विशेषण-विशेष्य—परमात्मा, महारानी, महाजन, सुभदिन, काली-मिरच, लालझंडी, खासदारनी, तलघर, भलोमानस, कालोपानी, साड़ातीन आदि ।

विशेष्य-विशेषण—घनस्याम, प्रभुदयाल, सिवदास आदि ।

विशेषण-विशेषण—स्यामसुन्दर, भलो-बुरो, लाल-कालो, ऊँच-नीच, खट-मिट्ठो । आदि ।

विशेष्य-विशेष्य—राजाबहादर, पटेलसाहेब ।

§७३५ कर्मधारय समास तीन प्रकार के होते हैं । निमाड़ी में ये तीनों प्रकार प्राप्त हैं :—

(१) **विशेषताबोधक**—जिस कर्मधारय समास से विशेष्य-विशेषण-भाव व्यक्त होता है, वह विशेषता-बोधक कर्मधारय है, जैसा कि उपर्युक्त विशेषण-विशेष्य के संयोग वाले उदाहरणों से जान पड़ता है।

(२) **उपमाबोधक**—इस वर्ग के कर्मधारय समास में उपमा-उपमेय का संयोग होता है। चन्द्रमुख, कमलनयन आदि इसके उदाहरण हैं। इस प्रकार के सामासिक शब्दों का प्रयोग निमाड़ी में नहीं मिलता। कभी-कभी चिढ़कर या तिरस्कार करने के लिये घुड़मुँही, कोयलमुखी, बन्दरमुँही आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

(३) **मध्यम पद लोपी**—इस प्रकार के कर्मधारय समास में प्रथम पद का द्वितीय पद से सम्बन्ध बतलाने वाला शब्द लुप्त होता है। यथा—परनकुटी, (पर्ण-निर्मित कुटी), दहीबड़ा (दही मिला बड़ा), गोबरगनेस (गोबर से बना गणेश)।

द्विगु समास

§७३६ यह वास्तव में कर्मधारय समास का ही एक रूप है। जब विशेषता-बोधक कर्मधारय समास का विशेषण-पूर्व पद संख्यावाचक होता है, तब वह द्विगु समास हो जाता है। यथा—चौकोण, तिपाई, तिरभुवन, पसेरी, चौबोलो, चौमासो, अठवाड़ो, छदाम, दुअन्नी, दुपट्टो आदि।

बहुव्रीहि समास

§७३७ इस समास का रूप अन्य समासों से सर्वथा भिन्न है। इसके दोनों पद मिलकर किसी अन्य अर्थ का ही द्योतन करते हैं। यथा—चतुरभुज-चार हैं भुजाएँ जिसकी अर्थात् विष्णु।

§७३८ इसके चार प्रकार हैं—व्यधिकरण, समानाधिकरण, व्यतिहार और मध्यम पदलोपी। निमाड़ी में इन चारों प्रकारों के बहुव्रीहि के उदाहरण मिलते हैं।

(१) **व्यधिकरण बहुव्रीहि**—इस वर्ग के बहुव्रीहि का पूर्व पद विशेषण नहीं होता। इसके विग्रह में दोनों पदों के साथ भिन्न-भिन्न विभक्तियों का प्रयोग होता है। यथा—चन्द्रसेखर—जिसके शेखर में चन्द्र हो अथात् शिव।

(२) **समानाधिकरण बहुव्रीहि**—इसका पूर्व पद विशेषण और उत्तर पद विशेष्य होता है। विग्रह करते समय इसके दोनों पदों के साथ एक ही कारक की विभक्ति लगती है। यथा—नीलकण्ठ, नील हो कण्ठ जिसका अर्थात् शिव, लम्बोदर—लम्बा हो उदर जिसका अर्थात्-गणेश।

(३) **व्यतिहार बहुव्रीहि**—इसमें सापेक्षता प्रकट करने के लिये एक ही पद की पुनरावृति होती है। यथा—मुक्का-मुक्की, धक्का-धक्की, लट्ठा-लट्ठी, तड़ा-तड़ी, भड़ा-भड़ी आदि।

(४) **मध्यम पद लोपी बहुव्रीहि**—जहाँ दोनों पदों के मध्यागत पद का लोप हो जाता है। यथा—पचगजो, दोहत्तो आदि।

§७३९ बहुव्रीहि समास के पदों के स्थान अथवा अर्थ के अनुसार निम्नांकित प्रकार भी हो सकते हैं:—

(१) विशेषण-पूर्व पद—लमटंगो, मिठबोलो, बड़पेटो, जबरजस्त।

(२) विशेषणोत्तर-पद—कनकटो, सिरकटो, पावफटो, मनचलो।

(३) अवधारण-पूर्व पद—तपोबल, इद्य (विद्या) धन।

(४) मध्यम पद लोपी—घुड़मुँहो, बालतोड़।

इस समास के दो प्रकार और हैं—उपमान-पूर्वपद और विषय-पूर्व पद। इन समासों के उदाहरण निमाड़ी में नहीं मिलते।

अव्ययीभाव समास

§७४० जिस सामाजिक शब्द का पूर्व पद अव्यय हो, वह अव्ययीभाव समास कहलाता है। यह पूर्व पद प्रायः क्रियाविशेषण अव्यय होता है। यथा—हरसाल, दरमहिना, भरताकत आदि।

निमाड़ी में कुछ अव्ययीभाव समास ऐसे हैं, जिनमें पूर्व पद विकृत होकर आता है। यथा—रातोरात या रातमरात, हातोहात, एकाएक आदि।

कुछ अव्ययीभाव समास ऐसे हैं, जिनमें हमें अव्ययों की द्विरुक्ति मिलती है। यथा—बीचोबीच, धड़ाधड़, तड़ातड़, भड़ाभड़, भराभर आदि।

निमाड़ी समासों की विशेषताएँ

§७४१ निमाड़ी में उपलब्ध समासों की निम्नांकित विशेषताएँ हैं:—

(१) तत्पुरुष समास में यदि प्रथम पद का अद्य स्वर दीर्घ हो, तो वह ह्रस्व हो जाता है। यथा—घुड़दौड़, रजवाड़ा।

घोड़ागाड़ी, रामकहानी, राजदरबार और सौनामाखी इस नियम के अपवाद हैं।

(२) कर्मधारय—समास का पूर्व पद यदि आकारान्त हो, तो वह अकारान्त हो जाता है। यथा—लमडोर, खटमिट्ठो, अधपको।

(३) बहुव्रीहि समास के पूर्वपद का आद्य स्वर यदि दीर्घ हो, तो ह्रस्व हो जाता है और द्वितीय पद ओकारान्त हो जाता है। यथा—दुदमुँहो, नकटो, टुटपुंजियो, कनकटो।

(४) बहुव्रीहि और द्विगु में जो पूर्व संख्या-वाचक विशेषण आते हैं, वे विकृत हो जाते हैं। यथा—दुगुनो, दुचितो, दुपट्टा, तिवाई, चौखूटो, सतखंडो आदि।

(५) निमाड़ी समासों में प्रायः पुल्लिंग शब्द पहिले और स्त्रीलिंग उसके पश्चात् आते हैं। यथा—भाई-बहेण, भाई-भौजाई, दूद-रोटी, घिव-शक्कर, छोरा-छोरी, लोटा-थाली, देखादेखी।

माय-बाप, सास-ससरो इस नियम के अपवाद है।

—:०:—

निमाड़ी और उसका साहित्य

द्वितीय खण्ड

निमाड़ी का साहित्य

पहिला अध्याय

निमाड़ी साहित्य का सामान्य परिचय

निमाड़ी का साहित्य दो रूपों में उपलब्ध है---मुद्रित और अमुद्रित ।

(१) मुद्रित साहित्य---निमाड़ी का जो मुद्रित साहित्य प्राप्त है, वह दो भागों में विभाजित किया जा सकता है---पुस्तकों के रूप में और पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित ।

पुस्तकाकार प्रकाशित साहित्य निम्न प्रकार है---

(१) दृढ़ उपदेश :---मुझे यह छोटी सी पुस्तक सिंगाजी ग्राम में एक सज्जन के पास देखने को मिली । इसके आरम्भ और अंत के कुछ पृष्ठ नहीं थे। प्रत्येक पृष्ठ के शीर्ष पर छपे 'दृढ़ उपदेश' शब्द से ही पुस्तक के नाम का अनुमान किया जा सकता था ।

'दृढ़ उपदेश' सिंगाजी की रचना बताई जाती है, पर सिंगाजी के वर्तमान महन्त श्री मांगीलाल जी के संग्रह में इस नाम का जो संकलन है, वह इससे सर्वथा भिन्न है । इस हस्त लिखित संकलन में २०१ पद हैं और सभी पद दोहे-चौपाइयों में लिखे हुये हैं । महन्त जी के संग्रह के 'दृढ़ उपदेश' की भाषा भी पूर्ण निमाड़ी नहीं है, फिर भी उसमें निमाड़ी शब्दों की अधिकता अवश्य है । पुस्तक में आरम्भीय पृष्ठ न होने से प्रकाशन-काल और प्रकाशक का नाम न जाना जा सका ।

(२) सिंगाजी की परिचरिया---इस पुस्तक पर लेखक का नाम खेमदास लिखा हुआ है, जो निमाड़ी के एक सन्त कवि बतलाये जाते हैं। पूर्ण पुस्तक चार-चार पंक्तियों की ९२ चौपाइयों में लिखी गई हैं। यह निमाड़ी साहित्य की एक कृति कही जाती है, पर इसकी भाषा में निमाड़ीपन तक नहीं है ।

(३) सलिता नौ याव :---यह निमाड़ी साहित्य की मुद्रित प्राप्त पुस्तकों में सबसे बड़ी है और भाषा की दृष्टि से भी बहुत कुछ निमाड़ी कही जा सकती है । अमुद्रित साहित्य भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के हाथ में पड़कर अपनी मौलिकता खो बैठता है । बहुत सम्भव है कि मुझे जिस रूप में यह पुस्तक देखने को मिली उससे इसका मौलिक रूप कुछ भिन्न रहा हो। इसमें जो खड़ी बोली के शब्द मिलते हैं, उनमें से कुछ शब्द बाद को मिलाये हुये भी हो सकते हैं, फिर भी इसके अधिकांश शब्द निमाड़ी अवश्य हैं। कुछ खड़ी बोली और ब्रज भाषा के

शब्दों के अतिरिक्त शब्दों में भी निमाड़ी नहीं तो निमाड़ीपन अवश्य है। पूर्ण पुस्तक १४७ पृष्ठों में प्रकाशित है। यह पुस्तक की द्वितीय आवृत्ति है, जो जगदीश्वर प्रेस बम्बई से संवत् १९६६ वि० में प्रकाशित हुई है। लेखक का नाम शुकदेव लिखा है, जिनके सम्बन्ध में अन्य कोई जानकारी प्राप्त न हो सकी।

(४) श्रीराम-विनय :—यह निमाड़ी में रचित श्री शिवानन्द जी ब्रह्मचारी की आधुनिक कृति है, जो संवत् १९५८ में संतोषकुटी भामगढ़ (निमाड़) से प्रकाशित हुई है। पूर्ण पुस्तक १०९ ओवी छंदों में लिखी गई है।

(५) रंकनाथ पदावली :—यह श्री स्वामी कृष्णानंद के पदों का एक संग्रह है। यह पूर्ण निमाड़ी भाषा की रचना नहीं कही जा सकती। इसमें निमाड़ी के अतिरिक्त हिन्दी, ब्रजभाषा, गुजराती, संस्कृत और मराठी भाषा में लिखे पद भी संकलित हैं। इनका वास्तविक नाम कृष्णानंद था, पर इन्होंने पद-रचना रंकनाथ के नाम से की ह।

(६) दीनदास पदावली :—यह श्री रंकनाथ के शिष्य श्री दीनदास जी के भक्ति-विषयक पदों का संग्रह है। इस संग्रह में भी निमाड़ी के पद कम और ब्रज भाषा के पद ही अधिक है। निमाड़ी के पद भी ब्रज भाषा से बहुत प्रभावित हैं।

(७) निमाड़ी लोक गीत :—श्री रामनारायण जी उपाध्याय काल-मुखी का इस नाम का एक गीत-संग्रह मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन नागपुर-द्वारा प्रकाशित हुआ है, जिसमें उन्होंने ४५ विविध विषयों से सम्बन्धित गीत संकलित किये हैं।

(८) अनामी सम्प्रदाय के भजन :—इस सम्प्रदाय की स्थापना बड़वानी के अफजल साहब-द्वारा आज से लगभग १५० वर्ष पूर्व की गई बतलाई जाती है। इस सम्प्रदाय का उद्देश्य सहज योगाभ्यास-द्वारा सायुज्य मुक्ति प्राप्त करना है। इसमें सभी जाति के व्यक्ति प्रवेश पा सकते हैं। इसके मठ से इस सम्प्रदाय के गीतों (भजनों)का एक संग्रह पाँच वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ है। पूर्ण संग्रह में २५२ पद है। सभी पद निमाड़ी भाषा में हैं। अफजल साहब, नंदलाल, दशरथ साहब, धनजीदास, अभिनाथ, कबीर, सिंगाजी, धर्मदास, बाईदास, दलूदास, स्वामी खुशाल, भादवदास, मछन्दरनाथ, गोरखनाथ, अमरनाथ, भूतनाथ आदि द्वारा रचित गीत इसमें संगृहीत हैं।

पत्र-पत्रिकाओं में :—हमें केवल 'जाति-सुधार' (खण्डवा), वाणी (खरगोन) और निमाड़ (मण्डलेश्वर) ही ऐसे पत्र-पत्रिका मिले, जिनमें समय-समय पर निमाड़ी भाषा की कुछ चर्चा की गई और कुछ निमाड़ी का लोक-साहित्य भी प्रकाशित हुआ है। 'निमाड़' पत्र अभी भी प्रकाशित हो रहा है।

(२) अमुद्रित साहित्य

निमाड़ी का अमुद्रित साहित्य वास्तव ही बड़ा मूल्यवान है। इसकी विशालता को देखते हुये मुद्रित साहित्य को इसके कुछ उदाहरणमात्र ही समझना चाहिए। इस साहित्य को भी हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं (अ) लिपिबद्ध और (ब) मौखिक।

(अ) लिपिबद्ध साहित्य

निमाड़ी भाषी क्षेत्र के कुछ स्थानों में इसका अमुद्रित लोक-साहित्य उपलब्ध है, जो प्रायः पूर्ण ही विविध गीतों, पदों, लावनियों, भजनों और कलंगी-तुर्रों से भरा हुआ है। प्राप्त अमुद्रित साहित्य का विवरण इस प्रकार है :—

(१) संत सिंगा का साहित्य

अमुद्रित साहित्य में सबसे अधिक सन्त सिंगा का साहित्य है। हमें सिंगा जी के महन्त से संत सिंगा का जो अमुद्रित साहित्य प्राप्त हुआ है, उसमें सिंगाजी के भजनों के अतिरिक्त उन्हीं के द्वारा रचित कही जाने वाली छोटी-बड़ी १० पुस्तकें भी प्राप्त हुई हैं। जो निम्न प्रकार हैं :—

(१) **भागवत महापुराण द्वादस स्कंद**—पूरी पुस्तक दोहे-चौपाइयों में लिखी गई है। कहीं ४, कहीं ८, कहीं १२ और कहीं २० चौपाइयों के पश्चात् एक दोहा लिखा गया है। इस प्रकार पुस्तक ७ अध्यायों में विभाजित है। पुस्तक के अंतिम पृष्ठ पर इसका लेखन-समाप्ति काल माघ वदी ३ सं० १८७९ वि० (सूर्य उत्तरायण) लिखा है। नकल कर्ता का नाम भीकासाद है।

(२) **महिम्न स्तोत्र**—यह पुस्तक ४० पदों में रचित है। पुस्तक के अन्तिम पृष्ठ पर लिखा है "पुष्टदंताचार्य विरचित महिम्नाक्ष्य स्तोत्र संपूर्ण सं० १९०३ शके १७६८ उत्तरायण वैशाख शुद्ध १२ द्वादसी भ्रगुवार त्रतिय पहर समाप्तः लेखक भास्कर भट्ट पुराणिक परणार्थ राजेश्री कालुबाजी व चिरंजीव लक्ष्मण भाई वास्तव्य श्री सिंगाजी महाराज।"

(३) **सिंगाजी का दृढ़ उपदेश**—पूरी पुस्तक में २०१ पद हैं। प्रत्येक ४ चौपाइयों के पश्चात एक दोहा है। इस दोहे के पश्चात ही पद की टेक आरम्भ होती है। इसके अंतिम पृष्ठ पर ऊपर की पुस्तकों की तरह कोई निर्देश नहीं है।

(४) **जयदेव महाराज की आठरपद**—पूर्ण पुस्तक ९ पदों में समाप्त हो गई है। इसके अंतिम पृष्ठ से यह किसी जयदेव नामक कवि की रचना मालूम होती है। भाषा ब्रज-प्रभावित निमाड़ी है।

(५) **पद्रतीत**—इसमें प्रतिपदा से पूर्णिमा तक की दिनचर्या चौपाइयों में दी गई है। पुस्तक में कुल १५ पद हैं।

(६) **अठवार सिंगाजी का**—इसमें मंगलवार से आरम्भ कर सोमवार तक के ७ दिनों का महत्व धार्मिक दृष्टि से लिखा गया है।

(७) **बाणावढ़ै**—इसमें २६ पद है, जिनमें मानव-स्वभाव के दोषों पर प्रकाश डाला गया है।

(८) **आतम ध्यान**—इस १६ पदों में लिखी पुस्तिका में ईश्वर का निवास बतलाकर उसका ध्यान करने का उपदेश दिया गया है।

(९) **जाप**—इस पुस्तक में शरीर को आधार मान कर बाह्य संसार का वर्णन कर शरीर के भीतर ब्रह्म का वास बतलाया गया है। पुस्तक के अन्त में राजबाबा सिंघाजीकृत लिखा हुआ है।

(१०) **नराज**—इस पुस्तिका के २० पदों में निराकार ब्रह्म का वर्णन किया गया है।

इन पुस्तकों में हमें नं० ५ से १० तक की पुस्तकें ही सिंगाजी-द्वारा रचित ज्ञात पड़ती हैं।

(ब) सिंगा-परिवार का साहित्य

संत सिंगाजी सन्यासी नहीं थे। वे एक गृहस्थ के रूप में रहते थे। उनके स्त्री-पुत्रादि भी थे। सिंगाजी नामक स्थान में उनकी समाधि है। सिंगाजी की शिष्य-परम्परा नहीं हैं। वंश परम्परा के अनुसार एक के पश्चात दूसरा उसी वंश में उत्पन्न व्यक्ति सिंगाजी-देवस्थान का पुजारी होता है। सिंगाजी के शिष्यों की संख्या विशाल थी। खेमदास और धनजीदास उनके शिष्यों में प्रमुख कहे जाते हैं। इन दोनों की अनेक रचनाएँ निमाड़ी में प्राप्त है। प्राप्त रचनाएँ निम्नांकित हैं:—

(१) **दलूदास के भजन**—इनके द्वारा रचित ११ सौ पद (भजन) कहे जाते हैं, जो अप्रकाशित हैं। हमें ऐसे लगभग १०० पद प्राप्त हुए हैं, जिनकी अन्तिम पंक्ति में दलूदास या जनदलू शब्द आया है। इन्हें हम इनके द्वारा रचित समझते हैं।

(२) **सिंघाजी की परचुरी**:—सन्त सिंगा के जीवन पर प्रकाश डालने वाली एक पुस्तक "सिंगाजी की परिचरिया" का हम मुद्रित साहित्य के अन्तर्गत उल्लेख कर चुके हैं। यह भी उनके जीवन-चरित्र और जीवन में घटित प्रमुख घटनाओं पर प्रकाश डालने वाली ही एक अमुद्रित पुस्तक है। पुस्तक के अंतिम

पृष्ठ पर लेखक का नाम 'षेम' लिखा है, जो खेमदास ही जान पड़ता है, पर इस पुस्तक में ४४२ पद हैं, जब कि पूर्व मुद्रित पुस्तक में केवल ९२ पद ही हैं। इससे मुद्रित पुस्तक इस पूर्ण पुस्तक का संक्षिप्त संस्करण जान पड़ता है। इस पर पुस्तक का लेखन काल सं० १७५१ लिखा है।

(३) **महाभारत** :—यह किसी हालू नामक कवि ने लिखा है। यह सम्भवतः निमाड़ी का सबसे बड़ा पद्यबद्ध ग्रन्थ होगा। पूर्ण पुस्तक १८ पर्वों में समाप्त हुई है।

(४) **अभिमन्यु का ब्याह**:—यह संत सिंगा के एक शिष्य धनजीदास की रचना है। पुस्तक २६ बड़े-बड़े भजनों में समाप्त होती है। पूर्ण पुस्तक स्व० फकीरानाथ के पुत्र गोपालनाथ ने खंडवा से प्रकाशित होने वाले 'जाति-सुधार' मासिक के मार्च १९५२ के अंक में प्रकाशित कराई थी, पर पुस्तकाकार कहीं देखने को नहीं मिली। निमाड़ी गीत साहित्य की रक्षा की दृष्टि से इस पुस्तक का सुसम्पादित संस्करण प्रकाशित करना अत्यावश्यक है। पुस्तक की भाषा पूर्णरूपेण निमाड़ी है।

(५) **सुभद्रा हरण** :—यह छोटी पुस्तक भी संत कवि धनजीदास-द्वारा रचित है। पूर्ण पुस्तक में ९ भजन हैं। प्रत्येक भजन ४ से १२ पदों तक के हैं।

(६) **लीलावती** :—यह भी संत धनजीदास-द्वारा रची गई पुस्तक कही जाती है। पदों के अन्त में उनका नाम आया है। पूर्ण पुस्तक १२ पदों में लिखी गई है।

(७) **सेठ तारनसा महाजन की कथा** :—श्री धनजीदास ने ११ पदों में यह पुस्तक समाप्त की है। लेखन-पद्धति भजनों की है।

(स) अन्य कवियों की रचना

(१) **नरसिंग कथा**—यह किसी भादवदास नामक कवि की रचना है। रचयिता का यह नाम मंगलाचरण के प्रथम पद के अंत में ही आया है। पूर्ण कथा ९ भजनों में लिखी गई है, पर किसी भी भजन में कहीं भादवदास का नाम नहीं है। प्रत्येक भजन में ४ से २८ तक पद हैं। अंतिम पद में 'नरोत्तमदास अरजी बोले' कहा गया है, जिससे यह कथा नरोत्तमदास-द्वारा लिखी भी समझी जा सकती है। आरम्भ से अन्त तक भाषा एक सी है। रचना कितनी प्राचीन है, यह कहना भी प्रमाणों के अभाव में कठिन है।

(२) **रुखमिणी का ब्याह** :—यह २२ भजनों में लिखी गई पुस्तक है। इसके रचयिता का प्रश्न भी विवाद-ग्रस्त है। प्रथम मंगलाचरण के पद में 'कह जन दलू सुनो भाई सादू 'कहा गया है। इससे इसके रचयिता संतसिंगा के सम्प्रदाय से सम्बन्धित दलूदास जान पड़ते हैं, पर दूसरे से २१ वें भजन तक

कहीं भी किसी का नाम नहीं है। प्रत्येक भजन के साथ कथा आगे बढ़ती गई हैं। अंतिम भजन की अंतिम पंक्ति में 'गावे फकीरानाथ' कहा गया है। इससे फकीरानाथ इस पुस्तक के रचयिता भी हो सकते हैं और गायक भी हो सकते हैं। बहुत सम्भव है कि इस कथा की रचना दलूदास के द्वारा ही हुई हो, पर फकीरानाथ (जो दलूदास के बहुत समय पश्चात हुए) को यह रचना विशेष प्रिय हो, जिससे उन्होंने गायक के रूप में अंत में अपना नाम जोड़ दिया हो। पढ़ने से भी भजन के ५ पदों के पश्चात् के तीन पद भिन्न जान पड़ते हैं। इससे ऐसा जान पड़ता है कि ये अंतिम तीन पद दलूदास की रचना में जोड़ दिये गये हैं। यदि यह रचना वास्तव ही दलूदास की है, तो यह उनकी इस ढंग की एकमात्र रचना मानना पड़ेगा; क्योंकि इसके अतिरिक्त उनकी अन्य कोई रचना पुस्तकाकार प्राप्त नहीं हैं। उनके जो भजन प्राप्त हैं, उनमें या तो निराकार ब्रह्म का निरूपण और उसकी उपासना का संदेश है या संत सिंगाजी की महानता के गीत हैं।

(३) **गऊ लीला**—यह फकीरानाथ-द्वारा लिखी एक छोटी-सी पुस्तक है, जिसमें रघुवंश-उल्लेखित नंदिनी गाय और सिंह की कथा बीस पदों में लिखी गई है।

(४) **भिलनी चरित्र**:—यह भी साधू फकीरानाथ-द्वारा रचित चौबीस पदों की एक रचना है।

(५) **कथा मोतीलीला**:—यह भी फकीरानाथ द्वारा लिखित इक्कीस भजनों की एक पुस्तक है। इसमें कृष्ण के द्वारा राधाजी का मोती का हार चुराने का बड़ा सुन्दर वर्णन है।

(६) **कथा बिंदा**:—यह ३४ पदों में लिखी वृंदा और जालंधर की पौराणिक कथा है। पुस्तक पर कहीं लेखक के नाम का पता नहीं है। यह साधू फकीरानाथ की रचनाओं के संग्रह में से एक है। संभव है इसकी रचना भी उन्होंने ही की हो।

(७) **नाग मंथनलीला**:—इसमें केवल तीन भजन है, पर सभी बहुत बड़े हैं। प्रत्येक भजन की अंतिम पंक्ति में 'मीरा के प्रभु गिरधर नागर' आया है, पर ऐसा जान पड़ता है कि ये कृष्ण चरित्र विषयक भजन होने के कारण ही इनमें मीरा का नाम जोड़ दिया गया हो। भजनों की भाषा निमाड़ी है, जो मीरा की होना सम्भव नहीं है।

(८) **श्री कृष्णचन्द्र की बारामासी**:—इसमें कृष्ण-वियोग में गोपियों की व्यथा का वर्णन बारह महिनों के क्रम से किया गया है। कुल बारह पद हैं। इसके अन्त में भी सूरदास का नाम जोड़ दिया है। भाषा निमाड़ी है, जिससे

सूरदास द्वारा इसकी रचना करने की कल्पना ही व्यर्थ है। यह बारहमासी किसी निमाड़ी भाषी अज्ञात कवि की ही रचना होनी चाहिये।

(६) **संमन कथा** :—यह अर्जुन के गर्व-दमन की एक पद्यबद्ध कहानी है, जिसमें संमन को अर्जुन से भी बड़ा कृष्ण-भक्त बतलाया गया है। रचयिता का नाम 'नानकदास' लिखा है।

अन्य साहित्य

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त 'मालव लोक साहित्य परिषद' उज्जैन के एक पर्यवेक्षक दल ने भी श्याम परमार एम० ए० के साथ मध्यभारत के निमाड़ी भाषी क्षेत्र की यात्रा की थी, जिसे महेश्वर के निकट स्थित चोली ग्राम में श्री भारती महाराज के पास कलगी-तुर्रा की कुछ हस्तलिखित अमुद्रित पुस्तकें मिली हैं। इस दल ने संत सिंगा की कथित जन्मभूमि पीपल्या (मध्य-भारत) से संत सिंगा के लगभग २०० भजनों का एक हस्तलिखित संग्रह भी प्राप्त किया है।

(३) मौखिक साहित्य

मुद्रित और अमुद्रित (लिपिबद्ध) निमाड़ी का जितना लोक साहित्य प्राप्त है, उससे कई गुना अधिक उसका मौखिक साहित्य है। विभिन्न विषयों से सम्बन्धित स्त्री-पुरुषों-द्वारा गाये जाने वाले गीत, लोक कथाएँ, लोकोक्तियाँ, प्रहेलिकाएँ आदि सभी विपुल प्रमाण में प्राप्त हैं।

किसी भी लोक भाषा और उसके साहित्य का क्षेत्र मर्यादित होता है। दूसरे वह विशेष रूप से ग्राम-वाणी होने के कारण भी उसके अपने क्षेत्र में भी उसका सम्मान सदैव ही राज भाषा से न्यून होता है। जब तक किसी लोक भाषा को संयोगवश साहित्य की भाषा बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता, तब तक उसकी ओर कोई विशेष ध्यान भी नहीं देता, वह केवल ग्रामीण परिवारों के व्यवहार का ही माध्यम बनकर जीती है।

निमाड़ी की भी यही स्थिति रही, जिससे इसका साहित्य उपेक्षित बना रहा। अतः इसके विकास की विभिन्न सीढ़ियाँ निश्चित करना अथवा इसके लोक साहित्य का इतिहास की दृष्टि से विभाजन प्रायः असंभव है। अपनी खोज के आधार पर हम निमाड़ी-लोक-साहित्य का निम्नांकित काल-विभाजन कर सकते हैं। सम्भव है सभी विद्वान हमारे इस काल-विभाजन से सहमत न हों, पर वस्तुस्थिति को देखते हुए हम इससे अधिक निश्चित विभाजन में असमर्थ हैं।

हम निमाड़ी के लोक साहित्य को मोटे रूप से दो कालों में विभाजित कर सकते हैं (१) पूर्व ग्रियर्सन काल और (२) आधुनिक काल।

(१) पूर्व ग्रियर्सन काल

सोलहवीं शताब्दी से १९०० ई० तक के समय को हम पूर्व ग्रियर्सन काल के अन्तर्गत मानते हैं। इस काल का निमाड़ी का जो साहित्य प्राप्त है, वह प्रायः सभी सन्त कवियों-द्वारा सृजित है और सभी पद्यबद्ध है। पर ये कवि, जिन्हें वास्तव में धर्मोपदेशक अथवा लोकगायक ही कहना चाहिये, काव्य शास्त्र के पण्डित न थे। इनमें से कुछ तो कबीर की तरह निरक्षर ही थे और जो साक्षर थे, वे भी अत्यल्प। ऐसी स्थिति में इनके द्वारा रचित पद्य साहित्य का शास्त्रीय कसौटी पर खरा उतरना सम्भव नहीं है, पर इसमें सन्देह नहीं कि इन्होंने युग की आवश्यकता को परख कर तत्कालीन जनता को जो कुछ दिया वह अमूल्य है। इनका लोक-साहित्य जनता के कंठ में समाकर अमर हो गया और मुद्रण के अभाव में भी आज तक जीवित है। इस काल को हम निमाड़ी-लोक-साहित्य का 'भक्तिकाल' कह सकते हैं।

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल अनेक विचारधाराओं को लेकर आया और परिणाम-स्वरूप हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में अनेक धाराएँ प्रवाहित हुई। इनमें से एक एकेश्वरवादी धारा थी, जिसका उद्गम इस्लाम धर्म के प्रभाव से हुआ था। दूसरी नाथ-हठ योगियों की धारा थी, तीसरी प्रेम समन्वित निर्गुणपंथ की ज्ञानाश्रयी धारा थी। चौथी वैष्णव-भक्ति-धारा थी, जो राम, कृष्णादि की सगुण भक्ति पर आधारित थी। पाँचवी सूफी विचार धारा थी, जिसका जन्म इस्लाम की कट्टरता की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। इनके अतिरिक्त शैव और शाक्त मत भी चल ही रहे थे।

इन विचारधाराओं से निमाड़ी-भाषी भू-भाग भी अप्रभावित न रह सका। हमने ऊपर पूर्व ग्रियर्सन काल के सन्त कवियों की जिस श्रृंखला का उल्लेख किया है, उनमें से अधिकांश निर्गुण विचारधारा के समर्थक और प्रचारक हैं। संत सिंगा इनमें अग्रगण्य हैं। यदि हम इनके काव्य और काव्यगत विचारधाराओं को देखकर इन्हें निमाड़ी का कबीर कहें, तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। निमाड़ी लोक साहित्य में हमें एक ऐसी सन्त-परम्परा मिलती है, जो विद्वानों के अनुसंधान का एक स्वतन्त्र विषय हो सकती है।

(१) पूर्व ग्रियर्सन काल के लोककवि

इस दिशा में किये गये हमारे अनुसंधान के अनुसार निमाड़ी-लोक-साहित्य की उपर्युक्त सन्त-परम्परा के जनक ब्रह्मगिर जान पड़ते हैं, जिनका बहुत कम साहित्य उपलब्ध है। इनके जन्म, मृत्यु आदि के सम्बन्ध में अभी तक कोई निश्चित प्रमाणबद्ध जानकारी प्राप्त न हो सकी, पर अनुमान से ये कबीर

के समकालीन जान पड़ते हैं। कबीर पंथियों के मतानुसार कबीर का जन्म सं० १४५५ वि० माना जाता है। सन्त ब्रह्मगिर की जो रचनाएँ प्राप्त हुई हैं, वे कबीर की विचारधारा की पूर्ण समर्थक हैं। कबीर का मृत्युकाल कबीर-पंथियों के विश्वास के अनुसार सं० १५७५ वि० है। अतः सन्त ब्रह्मगिर का काल भी इसी बीच होना चाहिए। हमारे इस अनुमान का एक आधार भी है। हमें निमाड़ी-लोक-साहित्य के अनुसंधान में संत सिंगा का एक पद्यबद्ध जीवन चरित्र प्राप्त हुआ है। इस हस्तलिखित जीवन-चरित्र के अन्तिम पृष्ठ पर इसे संत सिंगा के एक शिष्य (क्षेमदास) खेमदास-द्वारा सं० १७४९ वि० में लिखा हुआ बतलाया गया है। इस ग्रंथ के अनुसार सिंगाजी का मृत्युकाल सं० १६६४ वि० जान पड़ता है और यह भी ज्ञात होता है कि मृत्यु के समय इनकी आयु ९० वर्ष की थी। इससे इनका जन्म संवत् १५७४ वि०, कबीर की मत्यु के एक वर्ष पूर्व होना चाहिए। इनके गुरु का नाम मनरंग अथवा मगरंगिर था, जो स्वाभाविक ही आयु में सिंगाजी से कुछ बड़े रहे होंगे। ब्रह्मगिर मनरंगिर के गुरु थे। इस प्रकार सिंगाजी ब्रह्मगिर की द्वितीय शिष्य परम्परा में आते हैं। यदि हम दोनों परम्पराओं को कम से कम २५ वर्ष की भी मान लें, तो भी ब्रह्मगिर कबीर के समकालीन और आयु में कबीर से कुछ ही छोटे जान पड़ते हैं। इनका निर्गुण ब्रह्म विषयक एक गीत इस प्रकार है:—

निरगुन ब्रह्म को चीना[1] जद भूल गया सब कीना।
सोहं[2] सबद[3] है सार, सब घटमूँ[4] संचरा चार।
जहाँ लाग रहा एक तार, सब घटमूं श्री ओंकार॥
कोई मीन मारग ढूंढ़[5] लीना॥ निरगुन०॥
जिसे लाग गई आवनकी[6], उसे लाज नहीं दुनियाँ की।
सिर चोट पड़त है घनकी[7], मूरख क्या जाने तन की॥
कोई फाजल[8] हो कभी न॥ निरगुन०
आई भवर गुफा[9] निज घाट, जहाँ भरा है अमीरस पाट[10]
जहाँ तिरबेनी का मेल[11] उसमें जी सारा खेल।
कोई सन्त भगत रस पीना[12]॥ निरगुन०॥

---

१. पहिचाना, २. मैं वही हूँ, अपने को ब्रह्ममय जानना, ३. शब्द, ४. हृदय में, ५. मछली का मार्ग—जल के प्रति अनन्य प्रेम का भाव (यहाँ एक मात्र ब्रह्म के सम्बन्ध की भावना है), ६. जन्म लेना, ७. आपत्ति, ८. व्यर्थ, ९. ब्रह्मरंध्र, १०. अमृत का घड़ा, ११. इंगला, पिंगला और सुषुम्ना का योग, १२. भक्ति रसामृत।

ब्रह्मगिर कहत पुकार, सोहं सी कर बेड़ा पार।
जहाँ लाग रहे बाजार, काजी मुल्ला जहाँ हजार।।
कोई समज[1] सौदा करना।। निरगुन०।।

इस पद में निमाड़ी का प्रभाव मात्र है, पर निमाड़ी-भाषी जनता इनके पदों को अपनी सम्पत्ति मानती है। अभी तक इस सम्पत्ति पर किसी ने अधिकार भी नहीं किया है; यद्यपि इस पद में कबीर के भाव और विचारधारा ही नहीं, वरन भाषा-साम्य भी स्पष्ट है। निर्गुण काव्य धारा की दृष्टि से इस पद का महत्व कबीर के पदों से किसी प्रकार भी न्यून नहीं है।

मनरंगिर :—सिंगाजी के शिष्य खेमदास-लिखित 'सिगाजी की परचुरी' (हस्तलिखित) के अनुसार मनरंगिर रामनगर नामक ग्राम के रहने वाले थे। इनके जन्म, मृत्यु तथा पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित सभी बातें अज्ञात के गर्भ में विलुप्त हैं। उक्त परचुरी से केवल इतना ही जान पड़ता है कि एक दिन जब सिंगाजी किसी जातीय निमंत्रण पर हरसूद से जा रहे थे, तब मार्ग में इनके कान में मनरंगिर-द्वारा गाये जानेवाले एक भक्तिपूर्ण गीत की कुछ पंक्तियाँ पड़ गईं। सिंगाजी इतने प्रभावित हुए कि ये तुरन्त ही उनके पास पहुँच गये और उनसे दीक्षा लेने की प्रार्थना की, पर वे उन्हें कुछ उपदेश देकर रामनगर चले गये, जहाँ सिंगाजी ने ने कुछ समय के पश्चात् जाकर उनसे दीक्षा ली और उनके उपदेशानुसार घर-द्वार त्यागकर एक मात्र ईश्वर के ही चिंतन में लग गये। इस परचुरी की 'नामदेव कबीर गुरु के सरता' पंक्ति के इनका कबीर और नामदेव का समकालीन होना प्रकट होता है। संभव है कि कबीर के जीवनकाल में ये रहे हों। इनकी कोई रचना प्राप्त नहीं हैं।

संत सिंगा :—इनका जन्म संवत् १५७४ वि० में खजूरी नामक ग्राम में हुआ, जो पश्चिमी निमाड़ जिले में है। इनके पिता का नाम भीमा तथा माता का नाम गौरीबाई था। ये जाति के गौली थे। कुछ दिनों के पश्चात् इनके पिता पूर्वी निमाड़ के हरसूद नामक स्थान में आये। एक दिन जब ये अपने किसी सम्बन्धी के निमंत्रण पर जा रहे थे, तब मार्ग में इनकी संत मनरंगिर से भेंट हुई और जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, इन्होंने उनसे दीक्षा देने का आग्रह किया और अन्त में रामनगर जाकर इन्होंने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया। ये अपने गुरु के बड़े आज्ञाकारी थे। बिना उनकी आज्ञा के कोई कार्य न करते थे। आरम्भ में इन्होंने संन्यास लेने का हठ किया, पर गुरु मनरंगिर नें कहा कि 'एक सच्चे भक्त को संन्यास लेने की आवश्यकता नहीं है, वह

१. सोच-विचार कर।

अपने घर अपने परिवार के साथ रहकर भी ईश्वर को पा सकता है। तुम गृहस्थ रहते हुए भी अपने को संसार से विरक्त समझो और धन, स्त्री पुत्रादि को ईश्वर की वस्तु समझते हुए आत्मदेव का ध्यान करो।'[1] सिंगाजी अपने घर आ गये, और उसी दिन से संसार से विरक्त होकर आत्मा में निवास करने वाले प्रभु के ध्यान में मग्न हो गये।

संत सिंगा के जीवन से संबंधित अनेक चमत्कार पूर्ण घटनाएँ सुनी जाती हैं। खेमदास ने 'सिंगाजी की परचुरी' में लिखा है कि एक बार इनकी भैंसें चोर चुरा ले गये। घरभर ने इन्हें उनका पता लगाने को कहा, पर उन्होंने कोई ध्यान न दिया। अन्त में माता के नाराज होने पर ये चुराई गई भैंसों के केड़े और केड़ियाँ (भैंस के बच्चे) लेकर जंगल की ओर चले गये और कुछ ही समय के पश्चात् भैंसों के साथ घर लौट आये।[2]

एक बार इनके परिवार ने इन्हें मांधाता की यात्रा करने के लिए अपने साथ चलने को कहा। इन्होंने उत्तर दिया कि आदिओंकार तो हमारे घर में ही निवास करते हैं, उनके दर्शन को मांधाता जाने की आवश्यकता नहीं हैं। अन्त में इनका परिवार इनसे नाराज होकर मांधाता चला गया और तीसरे दिन वहाँ पहुँचा। वहाँ पहुँचने पर परिवार वालों ने देखा कि सिंगाजी एक नाव में बैठे नर्मदा में विहार कर रहे हैं। खेमदास ने इसी प्रकार की और भी कुछ घटनाएँ उनकी परचुरी में लिखी हैं।

बहुत दिनों तक हरसूद में रहने के पश्चात् सिंगाजी पीपल्या ग्राम को चले गये। वहाँ डोंगरु हुजू नामक एक भिलाला पटेल ने इनके निवास की व्यवस्था कर दी। खेमदास ने लिखा है कि यहीं भगवान ने इन्हें एक संन्यासी के रूप में दर्शन दिए और सिंगाजी ने उनसे पुनः जन्म ग्रहण न करने का बरदान प्राप्त किया। आजकल इस ग्राम के समीप जो नदी बहती है, वही उस समय की बाणगंगा कही जाती है।

परचुरी में लिखा है कि एक दिन उनके पास कुछ संन्यासी आये और उन्होंने इनसे दूध पिलाने को कहा। इन्होंने कहा कि स्त्री दूध दुहने गई है, आप कुछ समय तक बैठें, पर संन्यासी बहुत भूखे थे, वे वहाँ से वहीं चले गये, जहाँ इनकी स्त्री दूध दुह रही थी। उन्होंने दुहा हुआ सब दूध पी लिया और सिंगाजी की स्त्री जसोदा खाली बर्तन ले घर आ गई, पर उसने जैसे ही ये खाली बर्तन सिर से उतार नीचे रखे, उन्हें दूध से भरा पाया।[3]

---

१. सिंगाजी की परचुरी (अमुद्रित) पृ० ७-८

२. सिंगाजी की परचुरी (अमुद्रित) पृ० १३

३. सिंगाजी की परचुरी (अमुद्रित) पृ० २१

संत सिंगा ने अपने जीवन के अन्तिम दिन पीपल्या ही में ही बिताये। जब इनका मृत्युकाल समीप आया, तब इन्होंने एक शिष्य को रामनगर भेजकर गुरु मनरंगिर से शरीर त्याग परमधाम जाने की आज्ञा माँगी। आज्ञा प्राप्त होते ही इन्होंने अपने परिवार और शिष्य-मण्डल को सूचना दे दी। इन्होंने स्नान किया और अपने मस्तक पर चंदन का तिलक लगा ध्यानस्थ हो गये और इस प्रकार अपनी आत्मा में स्थित निराकार ब्रह्म का ध्यान करते हुये श्रावण शुक्ला ९ सं० १६६४ वि० को परमधाम सिधारे।

खेमदास ने संवत १७४८ में उन्हें सिंगाजी द्वारा दर्शन देने तथा अपना सब चरित्र सुनाने का उल्लेख किया है। तदनुसार खेमदास-लिखित "सिंगाजी की परचुरी" सिंगाजी-द्वारा बतलाई गई बातों पर आधारित कही गई है।[1]

संत सिंगा की रचना,

काव्य-रचना की दृष्टि से संत सिंगा निमाड़ी लोक साहित्य के दूसरे प्रमुख लोककवि हैं। ये वास्तव ही लोककवि हैं। इनके पद निमाड़ी भाषी क्षेत्र के अतिरिक्त मध्यप्रदेश के होशंगाबाद, बैतूल, छिन्दवाड़ा जिलों और मध्यभारत के कुछ मालवी-भाषा-भाषी भाग में भी सुने जाते हैं। संत सिंगा और उनके पदों के प्रति इस क्षेत्र की ग्रामीण जनता की अटूट श्रद्धा है। ये प्रत्येक उपवास, व्रत और त्यौहारों के अवसर पर गाये जाने वाले भजनों में इनके पदों को प्रमुख स्थान देते और झूम-झूम कर गाते हुए भक्ति-विभोर हो जाते हैं। हम संत सिगा के पदों को विषय की दृष्टि से निर्गुण स्वरूप-वर्णन, ब्रह्म और जीव की एकता, पाखंड, उल्टबासी, रहस्यवाद, रूपक, सतगुरु-महिमा, विनय तथा भक्ति के पदों में विभाजित कर सकते हैं। कुछ उदाहरण देखिये :—

निर्गुण ब्रह्म

निरगुन ब्रह्म है न्यारा, कोई समझो समजनहारा।
खोजत ब्रह्म जलम[2] सिरानो,[3] मुनिजन पार न पावे।
खोजत-खोजत शिवजी थाके, ऐसा अपरम्पारा ॥ १ ॥
वेद कहे एक अगम बानी, सुरता[4] करो विचारा।
काम, क्रोध, मद, मत्सर व्यापे, झूठा कलप[5] पसारा ॥ २ ॥
त्रिकुटि-महल[6] में अनहद[7] वाजे, होत सबद झनकारा।

---

१. कही सो सब चितराषी। तामें परचुरी सिंधा की भाषी ॥
(अन्तिम पृष्ठ)

२. जन्म, ३. बीत गया, ४. समझदार, ५. संसार, ६. दोनों भौहों के बीच का स्थान (आज्ञाचक्र का मध्यभाग), ७. ब्रह्मरंध्र में होने वाला शब्द,

सुकमन[1] सेंज सुन्न[2] में झूले, सोहम्[3] पुरुष हमारा ॥ ३ ॥
सहसई[4] निसदिन रटे, रैन दिवस इक सारा।
रिखि-मुनि और सिद्ध चौरासी, तैंतिस कोटि पचहारा ॥ ४ ॥
एक ब्रह्म की रचना सारी, जा का सकल पसारा।
सिंगाजी भर नजरों देखे, वों ही गुरु हमारा ॥ ५ ॥

इस पद की विचारधारा हिन्दी के सन्त-साहित्य की ही विचारधारा है। कबीर की त्रिकुटी-महल, अनहद, सुकमन-सेज आदि की कल्पना हमें सिंगाजी के इस पद में भी उसी रूप में मिलती है। भाषा-साम्य भी स्पष्ट है।

पाखण्ड-खण्डन :—कबीर की तरह सन्त सिंगा ने भी उपासना और भक्ति के नाम पर किये जाने वाले आडम्बरों को पाखण्ड की संज्ञा दी है। वे एक पद में कहते हैं :—

बिन देही को सायेब[5] मेरो, देह धरी संसारे।
ताल पखावज बजे झाझरी, ज्ञान कहे बहुतेरा रे।
किरतन[6] कर्‌यो बार बहुतेरा, तोबी[7] सायब नाहिं माना रे ॥ १ ॥
देव देव पूजा बहुतेरा, बैठो देऊँ तुलादान रे।
लिंग भांग[8] पूजा बहुतेरा, सो बी सायेब नाहिं माना रे ॥ २ ॥
नागा मूनी और डिगम्बर, मुगत[9] राह नाहिं जाना रे।
करे तपस्या झूले-उर्धमुख[10], सो बी सायेब नाहिं माना रे ॥ ३ ॥
मैं तो देखूँ पाखण्ड सारा, मोहे पीछे जाना रे।
कह जन सिंगा सुनो भाई साधू, आपहि आप पहचाना रे ॥ ४ ॥

इस पद में संत सिंगा ने कीर्तन, देव-पूजा, तुलादान, लिंग-पूजा, आदि सनातन कर्मकाण्डों का ही नहीं, पर नाथ पंथियों की बज्रयान शाखाओं की क्रियाओं तक की भर्त्सना कर उन्हें पाखण्ड बतलाया है।

सिंगाजी की दृष्टि में अपनी आत्मा में निवास करने वाले 'बिना देही के साहब' को पहिचानने का प्रयत्न ही मुक्ति का साधन है।

उलटबासी

कबीर की तरह सिंगा ने भी कुछ 'उलटबासी-युक्त' पद रचे हैं। उनका निराकार ब्रह्म पर रचित एक पद इसी प्रकार का है :—

---

१. सुषुम्ना, २. शून्य (ब्रह्माण्ड), ३. अपने ही रूप में, ४. शेषनाग। ५. साहब-स्वामी, ६. कीर्तन, ७. तोभी, ८. भग (एक विशिष्ट संप्रदाय के लोग भग की पूजा करते हैं), ९. मुक्ति, मोक्ष, १०. नीचा मुँह (शीर्षासन)।

फल नजदीक नजर नाहिं आवे, सतगुरु बिन कौन बतावे ।।
बिना पाल को सरवर कहिये, लहरी उठकर आवे ।
बिना चोंच को हंसा कहिये, मोती चुग चुग खावे ।।
बिना बीज को बीरछ कहिये, डाल नवी नवी आवे ।
बिना पंख को पंछी कहिये, उड़ि अकाश को जावे ।।
बिना पत्र की बेली कहिये, छाय नजर नहीं आवे ।
बिना फूल फल लागा उनको, कोई साधुजन पावे ।।
उलट ज्ञान कोई बिरला बूझे और न बूझे कोई ।
कहे जन सिंग सुन भाई साधू, चौरासी छुट जावे ।।

इस एक ही पद में इस लोकगायक सन्त कवि ने कितनी सुन्दरता से अजन्मा और निराकार ब्रह्म के स्वरूप तथा उसकी आश्चर्यमयी विविध लीलाएँ उपस्थित कर दी है ?

रहस्यवाद :—कबीर हिन्दी-काव्य-जगत में रहस्यवाद के प्रथम सृष्टा के रूप में प्रसिद्ध हैं । उन्होंने निर्गुण ब्रह्मोपासना के विस्तार के साथ जिस रहस्य-वाद को जन्म दिया, उसके प्रभाव स्वरूप तत्कालीन अनेक सन्त कवियों का आविर्भाव हुआ । उन सभी ने निर्गुण काव्य धारा को मूल्यवान योग प्रदान किया, पर उसमें से अधिकांश कबीर की तरह अपने काव्य में रहस्यवाद को स्थान देने में पूर्ण सफल न हो सके । हमें मध्यप्रदेश के एक अनुन्नत कोने में निर्गुण भक्ति की मस्ती में मस्त सन्त सिंगा के अनेक ऐसे पद प्राप्त हैं, जिनमें हम कबीर कालीन अनेक कवियों से कहीं अधिक स्पष्ट और विकसित रूप में रहस्यवाद के दर्शन करते हैं । उदाहरणार्थ उनका एक पद देजिये :—

"कोई देखो दरियाव की लहरी,
सतगुरु सौदा हेरि[1] ।
इस दरियाव में सात समुन्दर[2] ।
बीच गयेब[3] की डेरी[4] ।।
डेरी अन्दर अलख[5] बिराजे,
जहाँ सुरत[6] लाग रही मेरी ।
इस दरियाव में बाजा बाजे,
बाजे आठो पहरी ।
ताळ पखावज बाजे झांझरी,
बंसी बाजे गयरी ।।

१. ढूँढना, २. समुद्र, ३. अदृश्य ब्रह्म, ४. निवास, ५. न दिखाई देने वाला, ६. ध्यान ।

बिना पीड़ को बीरछ कहिये,
डाल पंख न फेरी ॥
अगम अगोचर पद पाया भाई,
क्या पूछो ऐ मेरी ।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधू,
निर्भय माला फेरी ॥

दलूदास

ये संत सिंगा के पौत्र कहे जाते हैं। इनके जन्म, मृत्यु अथवा जीवन संबंधी कोई जानकारी प्राप्त नहीं है, पर इसके द्वारा रचित अनेक पद निमाड़ी-भाषी क्षेत्र तथा उससे बाहर भी सुने जाते हैं। इनके पदों की संख्या १५ सौ कही जाती है। हमें लगभग १०० पद अभी तक प्राप्त हुए हैं, जो सिंगाजी के पदों की तरह ही सुन्दर, प्रभावशाली और भक्ति-पूर्ण हैं । दोनों के पदों में भाव और भाषा की दृष्टि से इतना साम्य है कि यदि इनकी अन्तिम पंक्ति पृथक् कर एक साथ रख दिये जावें, तो उनका निश्चित विभाजन असंभव हो जायगा। भाषा की दृष्टि से दलूदास के पदों में अधिक निमाड़ीपन है, जबकि संत सिंगा के पद कबीर की भाषा से अधिक प्रभावित हैं ! सन्त दलूदास ने कुछ पद सन्त सिंगा की प्रशंसा में भी लिखे हैं और शेष विनय, विरक्ति, संसार की नश्वरता, माया, ब्रह्म आदि से सम्बन्धित हैं। दलूदास का एक पद इस प्रकार है :—

दया करो म्हारा नाथजी,
हाऊँ[1] तो गरीब जाणो एकलो[2] ॥
अन[3] हो चुंगाता चूंगसे,
पंछी पंख पसार ।
वाही-मऽ हंसा एकलो,
मोती चुग चुग खाय ॥
अठारा भार बनसपति,
फूली डालम डाल ॥
वाही-मऽ चंदन एक्लो,
जाकी परमल बास ॥
नौलख[4] तारा छाई रह्या,
रजनी भई खटुमास[5] ॥
वाही-मऽ चंदा एकलो,
जाकी निरमल जोत ॥

---

१. मैं, २. अकेला, ३. भोजन (अन्न), ४. नौलाख, ५. उदास ।

बार खाण चौरासी माँ,
सब दूरि रहे हो समाय ।।
दलू पतित जाकी वीनती,
राखो चरण अधार ।।

हम देखते हैं कि सिंगाजी के पश्चात् की पीढ़ी ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गई, त्यों-त्यों उनकी पद-रचना में निमाड़ी निखरती गई और उसे एक विकसित स्वरूप प्राप्त होता गया। सिंगाजी के अधिकांश पद कबीर की भाषा से अत्यधिक प्रभावित हैं। इनके बहुत थोड़े ऐसे पद हैं, जिन्हें हम पूर्णरूपेण निमाड़ी भाषा के पद कह सकते हैं, किन्तु उनकी शिष्य-परम्परा ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गई, उसकी पद-रचना पर से कबीर की भाषा का प्रभाव न्यून होता गया और उसके स्थान में निमाड़ी भाषा का प्रभाव बढ़ता गया। सन्त दलूदास का उपर्युक्त पद इसका प्रमाण है।

कबीर और तुलसी ने राम से अधिक राम के नाम को महत्व प्रदान किया है। सन्त दलूदास ने भी अपना यही विश्वास 'भजन है तीन लोक से बढ़कर' कहकर व्यक्त किया है। इसी प्रकार दलूदास ने अपने 'दुणिया बड़ी बीख भुजंग' पद में संसार को विष से पूर्ण कहकर संसार से विरक्ति व्यक्त की है।

खेमदास

इनके जीवन के सम्बन्ध में भी कोई सामग्री प्राप्त नहीं है। इनके सम्बन्ध में केवल इतना ही जाना जा सका है कि ये संत सिंगा के अत्यन्त प्रिय शिष्यों में से थे। पूर्वोल्लिखित सिंगा की परचुरी के अतिरिक्त इनकी कोई अन्य रचना अथवा पद भी प्राप्त नहीं हैं। परचुरी की कुछ पंक्तियाँ पहिले दी जा चुकी हैं।

धनजीदास

इनके जन्म-मृत्यु आदि से सम्बन्धि कोई जानकारी प्राप्त नहीं है। ये जाति के नाई बतलाये जाते हैं। सिंगाजी के शिष्यों में इन्हें महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इनके द्वारा रचित पुस्तिकाओं का परिचय पहले दिया जा चुका है। उल्लेखित रचनाओं के अतिरिक्त इनके कुछ स्फुट पद भी प्राप्त हैं। इन्होंने अभिमन्यु-विवाह आरम्भ करते समय सर्व प्रथम गणपति की वन्दना की है। इससे ऐसा जान पड़ता है कि ये संत सिंगा की परम्परा के अनुसार निर्गुण ब्रह्म को मानने के सिवाय अन्य दे ों पर भी विश्वास करते थे और यदा-कदा अपने पदों-द्वारा उनकी भी वंदना किया करते थे। उक्त गणपति-वंदना की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

प्रथम गाऊँ गणपती ।
गवरी का नंदन मंगल मुरती ।।
कंठ कोकिला माता सरसती ।
अखण्ड जोत नाम की सुरती ।।
मात पिता गुरु गोविन्द गाऊँ ।
सब सन्तन को सीस नवाऊँ ।।
सब सन्तन की आज्ञा पाऊँ ।
अहिवन कथा को मतीरो सुनाऊँ ।।
दास धनजी करऽहरिजी की अरजी ।
इनी कथा पर कृष्ण जी राजी ।।

जगन्नाथगिर :—ये संत सिंगा के समकालीन संत कवि थे । इनके जीवन से संबंधित कोई सामग्री तो प्राप्त नहीं है, पर इनके कुछ पद अवश्य मिलते हैं, जो कबीर और सिंगा की निर्गुण धारा के पोषक हैं । सिंगाजी की तरह ये भी मनरंगिर के शिष्य थे । एक पद के अन्त में इन्होंने अपने गुरु मनरंगिर की प्रशंसा इस प्रकार की है :—

अनहद की झनकार ।
म्हारो मगन दुलीचो[1] गगनो[2] ।।
प्रथम गणपति बिनवा[3] ।
जाको नवी नवी[4] करो प्रणाम ।।
जो मोहि सुध बुध ऊपजे ।
उपाया अगम की राह ।।
संतगुरु बुध[5] उपजाविया[6] ।
गुरु गुण किया परगास[7] ।।
आपा[8] माहीन खोया[9] हो ।
निरगुन किया परगास ।।
बारा-सोला सार[10] मंडी[11] ।
पाँच-पचीस को खेल हो ।
गउ कम्पन रमण कियो ।
निण[12] कियो ऊनी[13] ठाय[14] ।।

---

१. गलीचा, २. आकाश, ३. विनय करता हूँ, ४. झुकझुक कर, ५. बुद्धि, ६. उत्पन्न, ७. प्रकाश, ८. अपने, ९. देखा, १०. नर्द, चौसर की गोटियाँ, ११. जमाई, १२. नृत्य, १३. उस, १४. स्थान ।

चन्द्र-सुरज दोई थकि रह्या ।
जाकी अविचल जोत ॥
रैन-दिवस उपजे नाहीं ।
जहाँ पाप पुन्न[1] नहिं होय ॥
इन्द्र-चन्द्र बहु रास रच्यो ।
जहाँ नारद कियो परगास हो ॥
पाँव पलक तीन लोक में ।
जाको मान कियो अपमान ॥
सर्व देव रुसी बैठिया[2] ।
देवा तेतिस करोड़ हो ।
छै सो अठासी रुसी[3] बैठिया ।
बैठ्या आसन जोड़ ॥
मगन दुलीचो अजब बन्यो ।
राखु लियो निरधार हो ।
बिना हो लोभ सोभा बनी ।
खेलन को आंगन पार ॥
मगन दुलीचो अजब बन्यो ।
जहाँ हीरा को परगास हो ॥
मानक मोती की सालरी ।
जहाँ फूले निरंजन नाथ हो ॥
सतगुरु से चित चेतिया ।
मनरंग लियो जगजीत हो ।
आद-अन्त अनभव कथा ।
गावे जगन्नाथगिर हो ॥

धनजीदास के पश्चात् निमाड़ी लोकसाहित्य में जिन दो प्रमुख लोककवियों का आविर्भाव हुआ, वे श्री कृष्णानन्द अथवा रंकनाथ और दीनदास हैं । इन दोनों के द्वारा निमाड़ी लोकसाहित्य में 'सगुणधारा' का सूत्रपात होता है ।

कुछ विद्वान ब्रह्मगिर से दीनदास तक के निमाड़ी साहित्य को 'लोक साहित्य' न मान पृथक् सन्त सहित्य की भी संज्ञा दे सकते हैं, किन्तु मैं उस समस्त अमुद्रित और मौखिक साहित्य को 'लोक साहित्य' समझता हूँ, जो आज भी साहित्यकों के सम्पादन और मुद्रण की अपेक्षा किये बिना सहस्र-सहस्र अविक-

---

१. पुण्य, २. बैठे, ३. ऋषि ।

सित ग्रामीणों की भावना, विश्वास, भक्ति और नित्य व्यवहार की वस्तु बना हुआ है। इस दृष्टि से यह समस्त साहित्य 'सन्त साहित्य' होते हुये भी पूर्णरूपेण 'लोक साहित्य' है। 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' के अनुसार मुझसे कुछ विद्वानों का मतभेद होना स्वाभाविक है।

कृष्णानन्द अथवा रंकनाथ

इनका जन्म संवत् १८४८ विक्रमी में हर्दा तहसील के नजरपुर ग्राम में हुआ था। आप के पिता श्री काशीराम जी इनके जन्म के कुछ समय पश्चात् ही नजरपुरा से कुड़वा आकर बस गये थे। जब कृष्णानन्द की आयु केवल सत्रह वर्ष की थी, तभी इनके पिता का स्वर्गवास हो गया और परिवार का भार इनके कंधे पर आ पड़ा। ये अपने पिता के स्थान में पटवारी का कार्य करन लगे। एक दिन गंगागिर नामक एक संन्यासी इनके घर आ पहुँचे और उन्होंने इनसे श्रीमद्भागवत की कथा सुनाने का आग्रह किया, पर इन्हें इसका ज्ञान न था। अतः इन्होंने श्री गंगागिर से अपनी असमर्थता प्रकट कर दी, किन्तु वे न माने और उन्होंने संध्या समय श्रीमद्भागवत सुननेवालों को एकत्र कर लिया। श्री गंगागिर ने श्री कृष्णानन्द को जबरदस्ती आसन पर बिठा दिया और उनकी पीठ पर हाथ रखकर कहा कि 'अच्छा अब कथा अरम्भ कर दो।' कहते हैं कि गंगागिर के यह कहते ही इन्हें श्रीमद्भागवत की पूर्ण कथा कण्ठस्थ हो गई और वे बड़े विद्वत्तापूर्ण ढंग से कथा सुनाने लगे।

यह घटना श्री कृष्णानन्द के जीवन में एक अपूर्व परिवर्तन का कारण बन गई। इन्होंने श्री गंगागिर से दीक्षा ग्रहणकर उनकी शिष्यता ग्रहण कर ली और कृष्णानन्द से रंकनाथ होकर भगवान कृष्ण की आराधना में तल्लीन हो गये। आप ८४ वर्ष की अवस्था में संवत् १९३२ वि० की भाद्रपद शुक्ल एकादशी को स्वर्ग सिधारे[1]। आपने हिन्दी (ब्रज), निमाड़ी, गुजराती, मराठी और राजस्थानी में अनेक भक्तिपूर्ण पद लिखे हैं।

इनके निमाड़ी में रचे पद भक्तिपूर्ण शान्त रस के सुन्दर उदाहरण हैं। तुलसीदास जी ने अपने उपास्य राम को एक पत्र लिखकर उनसे उसे स्वयं पढ़ने का आग्रह किया था। श्री रंकनाथ ने भी इसी प्रकार का एक पत्र निमाड़ी भाषा में अपने उपास्य कृष्ण को लिखा था, जो इस प्रकार है—

लिखाँ छै पाती म्हारा नाथजी,
त्यारे[2] बाँचजो गिरधारी।

---

१. रंकनाथ पदावली पृ० १६, २. उसे।

ब्राह्मण जाणँ कमला रूसी[1],
बात किथी[2] जा सुहाती ।
जिन अपराध नाथ आवि थाने,
मारी भृगु ने लाती ।
कमल-थी जनम भयो लक्ष्मी-जू,
त्यासू कमला कहाती ।
सरस्वती पुजवाना कारण,
त्यारे तोड़े[3] दिनराती ।
आदि बैर लक्ष्मी सरस्वति को,
त्यारे सेवे दिनराती ।
माता रुसियो, तमि[4] न रुसजो,
म्हारा विपता ना साथी ।
रंक नु तमे बिन कोई न थी,
हवे[5] आमि लिखी छै पाती ।∠

दीनदास

निमाड़ी लोक साहित्य में रंकनाथ को सगुण भक्ति की कृष्ण-काव्य-धारा का और श्री दीनदास को राम-काव्य धारा का प्रवर्तक कहना चाहिये। आपका जन्म संवत् १८९२ विक्रमी में मकड़ाई राज्य के सिराली नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम नरोत्तमदास शुक्ल था। ये जाति के नार्मदीय ब्राह्मण थे। श्री दीनदास का वास्तविक नाम सदाशिव था। आरम्भ में आप अनेक दिनों तक अपने पिता की तरह पौहित्य-कार्य करते रहे। ज्यों-ज्यों समय आगे बढ़ता गया, त्यों-त्यों आपका चित भगवद्भक्ति की ओर आकर्षित होता गया। आपने श्री रंकनाथ जी से दीक्षा ग्रहण कर विरक्त वृति धारण कर ली। श्री रंकनाथ जी कृष्णोपासक थे, पर आप राम की उपासना पर ही लुब्ध थे। इनके जीवन की एक घटना निम्न प्रकार बतलाई जाती है।

कहते हैं कि एक बार इनके गुरु रंकनाथ बहुत दिनों तक इनके पास ठहरे रहे। एक दिन जब ये राम के पूजन में तल्लीन थे, रंकनाथ ने हँसते हुए इनसे कहा कि 'मेरा कृष्ण बड़ा उदार और दयालु है। मैं उनसे जो मांगता हूँ वह मुझे वही दे देता है। क्या तेरा राम भी कुछ दे सकता है ?"

दीनदास ने विनम्रता से उत्तर दिया :—'महाराज ! मेरा राम मुझे क्या नहीं दे सकता, पर मुझे उससे अधिक कुछ मांगने की आवश्यकता ही

१. अप्रसन्न हो गई, २. कितनी, ३. त्योरी बदलती, ४. तुम, ५. इसलिये।
∠ रंकनाथ पदावली पृ० ६५-६६

नहीं होती। मुझे प्रतिदिन एक रुपये की आवश्यकता होती है और वह मुझे दे दिया करता है। आप जब से आये हैं, मैंने उससे अपनी एक रुपये रोज की मजदूरी भी नहीं ली। देखिये यह उनके चरणों के पास रखी है।' रंकनाथ ने देखा कि राम की मूर्ति के पास २२ रुपये रखे हुये हैं। रंकनाथ को आने को २२ दिन ही हुये थे। यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे अपने शिष्य की रामभक्ति देखकर बड़े प्रसन्न हुए। आप कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी संवत् १९५६ वि० को स्वर्गवासी हुए।[1] इनके निमाड़ी में जो पद प्राप्त हैं, वे सभी राम-भक्ति से पूर्ण हैं। इनका आत्मबोध से सम्बन्धित एक पद इस प्रकार है:—

मन रघुबर क्यों नहिं गावे।
हरि छांड़ अवर[2] कस भावरे॥
भयो कुपथकारी दुर्जन संगत,
लघु लालच-खऽ[3] चाहे।
कल्पवृक्ष सम संत समागम,
अवध राम रस भावरे॥
बहु साधन फल देतु न कलि-मूँ[4],
श्रम करि वय-ख[5] गमावे।
नाम-सुधा-सरि त्यागी करि केऊँ[6],
तू मृगजल-खऽ धावरे॥
सन्त-कल्पतरु अविचल छाया,
सो तरु पर नहिं जावे।
मन अभिमान मोह-गृह बांधके,
कुमत छान छवावरे॥
सुर नर नाग असुर नृप संनिध,
जात न कोई जुड़ावे।
दीनदास आलसी कुपात्र से,
राम के पेट समावरे॥

(२) आधुनिक काल

साधू फकीरानाथ से निमाड़ी-लोकसाहित्य का आधुनिक काल आरम्भ होता है। आप खरगोन से लगभग ६ मील दूरी पर स्थित उमरखली नामक

१. दीनदास पदावली पृ० ३५, २. अन्य, ३. को, ४. कलियुग में, ५. उम्र, ६. क्यों।

ग्राम के निवासी थे । ये कई दिनों तक खण्डवा में भी रहे। खण्डवा से सन् १९११-१२ में प्रकाशित होने वाले 'जाति सुधार' नामक मासिक पत्र में आपकी अनेक भक्तिपूर्ण रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। आपकी धार्मिक और समाज-सुधार विषयक रचनाओं का निमाड़ी भाषियों में बड़ा सम्मान है। आपके पुत्र गोपालनाथ अभी जीवित हैं, जिनके पास इनकी कुछ रचनाएँ संगृहीत हैं। विरक्ति-भावना और भगवद्भक्ति श्री फकीरानाथ जी की विशेषता है। आपका भगवद्भक्ति से पूर्ण एक पद इस प्रकार हैं:—

भीलनी का बोर[1] सुदामा का तांदुल[2],
खिचड़ी खाई बाई करमा[3] ।
बिदुर की भाजी पर मन हुओ राजी,
प्रेम-सी जिमऽ[4] घनश्यामा ।
नाग-नाथ को देउळ[5] फिरायो,
आयो पंढरपुर गामा ।
बादशाह घर आई दाम चुकायो,
भगत बचाया श्रीदामा[6] ।
नामदेव की छान छवाई,
धन धन श्री रघुरामा ।
मांडवगढ़ पर गाय-खऽ जिवाड़ी[7],
बठी हुई बोली हामा-हामा ।
गुरु का चरन सी कय[8] नाथ फकीरा,
अरज सुणो म्हारी रामा ।
गाँव उमरखली प्रभु सुणजो सामल,
ते पहिचानी मारा धामा ।

अनामी सम्प्रदाय के गायक

निमाड़ी के पद-साहित्य में अनामी सम्प्रदाय के भक्त कवि दशरथ साहब, खुशाल, भादवदास, रामदास, अफजल, साहब आदि की रचनाएँ भी बड़ी महत्वपूर्ण हैं। सभी पद निर्गुण विचारधारा के समर्थक हैं। उदाहरणार्थ हम यहाँ दशरथ साहब का एक पद दे रहे हैं।*

---

१. वैर, २. चाँवल, ३. भगवद्भक्ता करमाबाई, ४. भोजन करते हैं, ५ मन्दिर, ६. महाराष्ट्र के दामाजी, ७. जीवित की, ८. कहे।

*अन्य रचनाएँ 'अनामी सम्प्रदाय के भजन' पुस्तक में देखिये।

साइबा[1] प्रीत-लड़ी[2] लागी छै तुम्हारा नामनी[3] होजी ।
ये तो आस लड़ी लागी छै निराधार ।।
साइबा प्रीत-लड़ी दरसन प्रेमनी आलजो[4] होजी ।
ये तो आस लड़ी न पुरवो तमे आस ।।
साइबा साकलड़ी थारी छै जुनात-जुगनी[5] होजी ।
ये तो दास लड़ीन हिरदे[6] बांधी गाँठ ।।
साइबा बीरध[7] बाणा[8] केरी लज्जा राखजो होजी ।
ये तो हाँसी थई जासे तुम्हारी साख ।
साइबा कामी क्रोधी भक्त-लजावण शरण आया ।
होजी ये दशरथ साहब करजो प्रतिपाल ।

संत साहित्य की अन्य रचनाएँ

निमाड़ी-भाषी क्षेत्र में हमें कुछ ऐसे गीत भी मिले हैं, जिनकी अंतिम पंक्ति से वे गुरु गोरखनाथ, कबीर और मीरा के पद जान पड़ते हैं, पर इनकी भाषा निमाड़ी है, जो इन भक्ति-काव्य-रचयिताओं की भाषा से सर्वथा भिन्न है । इन कवियों के कभी निमाड़ी भाषी क्षेत्र में आने का प्रमाण भी प्राप्त नहीं है । इससे ऐसा जान पड़ता है कि इन कवियों के कहे जाने वाले पदों की रचना किसी अन्य ने की होगी, पर गोरखनाथ, कबीर और मीरा के गीतों की लोक-प्रियता देखकर इन गीतों के प्रचलन के लिए अंत में इनके साथ इन कवियों के नाम जोड़ दिये गये होंगे । इनमें से गोरखनाथ और कबीर का कार्य-क्षेत्र उत्तर भारत ही रहा है और मीरा का कार्य-क्षेत्र राजस्थान से पूर्व में मथुरा, वृन्दावन तथा पश्चिम में द्वारका तक रहा है । इससे हमारा उपर्युक्त कथन ही हमें सत्य जान पड़ता है। इन भक्तिमार्गियों के नाम पर निमाड़ी में पद प्रचलित होने के कारण की खोज आवश्यक है । हम यहाँ इनमें से प्रत्येक के नाम से सम्बद्ध एक-एक पद दे रहे हैं।

गोरखनाथ

ऐसी भक्ति साधु मत कीजै, जग में होय हाँसी।
कंठ पकड़ि यम मारसे[9], गव्ठ[10] दई दिसे[11] फाँसी।।
देखन का बग[12] ऊजव्ठा[13], मन मैला हो भाई।
आँख मींच मुनिजन भये, मछरी गुटकाई ।।

---

१. साहब, स्वामी, २. डोर, ३. नामकी, ४. पसीजना, ५. युग-युग से, ६. हृदय, ७. कीर्ति, ८. बान, ९. मरेगा, १०. गला, ११. दे देगा, १२. बगुला, १३. सफेद, ।

सुणऽ मंजारी[1] हरि कथा, बरत ऐसो मन कीजे।
भगती सुनी सीताराम की, मूसा२ गिळ३ लीना॥
जळ हो घणा४ कुंजर धसे, जल बहे भरपूर।
जल से निकल बाहेर हुए, सिर पर डालत धूर॥
गुरु गोरख गुण गावत, साँची बात सुणाव।
चलो न दुवारिका५ जाइए, हरि दर्शन पाव॥

इस पद की अंतिम पंक्तियों में सगुण उपासना का भी आभास है, जिससे इस पद का गोरखनाथ-द्वारा रचित होना बिल्कुल संभव नहीं है।

कबीर

थारो[6] साँच बिना तप काँचो[7],
पपीया लोधी[8] डारो मत साँचो।
कहाँ थारी सुनिय[9], कहाँ थारी दुणिया,
कहाँ तू-नऽ सुरत लगाई।
की थारा कपड़ा हारीलिया[10] कोई,
की रूठी घर नारी।
दो जीव तोहे जीवता आलूं,
दाय दऊँ तोहे भारी रे।
पाँच बाण म्हारा तण का आलूँ,
की दऊँ सुनिया नारी।
हाटी-हाटी[11] बात लोधीड़ो[12] पूछे,
नपीया[13] तू मेरा भाई।
चढ़ाय धनुष सर सांदण[14] लाग्यो,
की बोले की मारूँ।
मुनीवर छाँड़ तापियो बोल्यो,
लोधीड़ो तू मेरो भाई।
मोर मुकुट सिर छत्र बिराजे,
जो जीव आन मिलाओ।
बन बन ढूंढे लोधीड़ा डोले,
सो जीव कहीं नहीं पावे।

---

१. बिल्ली, २. चूहा, ३. निगलना, ४. बहुत, ५. द्वारकापुरी ६. तुम्हारी, ७. कच्चा, झूठा, ८. योगी, ९. सुन्नत, १०. छीन लिया, ११. आग्रह पूर्वक, १२. योगी, १३. तपस्वी, १४. संधान।

कहाड़[1] खड़ंग कंठ छेदन लाग्यो,
बांधो कृष्ण आवे।
आगू कृष्णजी पा-छउ लोधीड़ो,
डोलत चालत आये।
कहे कबीर सुणो भाई साधू,
दोनों बराबर राखे।

मीरा

भजो सांझ सबेरा हो, पिया मानो अरज[2] म्हारी ।।
या तन को करूँ दीवलो[3], मनसा करूँ बाती हो।
तेल जलाऊँ रुड़ा[4] प्रेमरो, झारूँ दिन अरु राती ।।
सावन भादां उमग रह्या, बरसा ऋतु आई हो।
बीज[5] झलामल होइ रही, नैना झड़ लागी हो।
पठिया पाड़ाँ अमे[6] भावंनी[7], रूढ़ी माँग सँवारा हो ।।
प्रभुजी तुम्हारा कारणे, रूड़ो पंथ निहारा हो।
सेजलड़ी[8] बहु भाँतना, रूड़ा फूल बिखेराँ हो।
प्रभुजी आऊँ-आऊँ होई रह्या, ऐसे अजहूँ न आये हो ।।
तुम तो पूण पूरि रह्या, पूरा यश लीयो हो।
मीरा बियोगन हो रही, अपनी कर लीजो हो ।।

आधुनिक काव्य-रचना

भारतीय स्वतन्त्रता के पश्चात् जिस आत्मीयता की भावना का जन्म हुआ, उसी से प्रेरित होकर शिक्षित निमाड़ी भाषियों का ध्यान भी अपनी मातृ भाषा की ओर आकृष्ट हुआ और उनमें से कुछ साहित्यानुरागियों ने निमाड़ी में समयानुकूल काव्य-रचना भी आरंभ की। यद्यपि इस दिशा में अभी तक कोई उल्लेखनीय कार्य न हो सका; तथापि नवयुवकों द्वारा किया गया प्रयत्न उत्साह-वर्धक अवश्य है। स्वाधीनता-पूर्व भी कुछ विशेष घटनाओं और विषयों को लेकर निमाड़ी में काव्य-रचना हुई है, जो लोक साहित्य की एक सुन्दर कड़ी है। इस काव्य-रचना में कलगी-तुर्रा के गीत, लावनियाँ तथा कुछ पोवाड़े मुख्य हैं।

कलगी-तुर्रा के गीत तथा लावनियों के रचयिताओं के नाम अज्ञात हैं। इन्हें गाने वाले कलगी के गीत के अंत में सायरअली और तुर्रा-गीतों के अंत में

---

१. निकालकर, २. प्रार्थना, ३. दीपक, ४. सुन्दर, ५. बिजली, ६. मुझे, ७. अच्छी नहीं लगती, ८. सेज।

तुखनगीर गोसाई का नाम लेते हैं। ये ही दोनों इनके रचयिता माने जाते हैं, पर इनके सम्बन्ध में अन्य कोई जानकारी प्राप्त नहीं है। गाने वाले अनेक बार अपने गाये कलगी और तुर्रे के गीतों में कुछ समयानुकूल पंक्तियाँ अपनी ओर से भी जोड़ देते हैं। कभी-कभी वे अंत में अपना नाम भी ले लेते हैं। इससे ऐसा जान पड़ता है कि ये दोनों प्रकार के प्रचलित गीत गत ५०-६० वर्ष के भीतर समय-समय पर बनते गये हैं और ऐसे नये गीतों के साथ भी सायरअली और तुखनगीर के नाम जुड़ते गये हैं। इससे वास्तव में सायरअली और तुखनगीर के द्वारा रचित गीतं कौन से हैं और अन्यों-द्वारा रचित कौन से; निश्चय करना कठिन है। लावनियों की भी स्थिति यही है।

आजकल निमाड़ी में काव्य-रचना करने वालों में सर्व श्री सोमेश्वर जोशी, भगवान शर्मा, गौरीशंकर आदि प्रमुख हैं। इसमें से श्री भगवान शर्मा की 'नर्मदाष्टक' कविता यहाँ दी जा रही है।

नाव नरबदा माय छे, वण्यो निमाड़ी देश।
बोली निमाड़ी अथा, कथन करूं वा बेश।
पहाड़ फोड़ फाड़ती, चली बड़ी उतावली,
कराड़ तोड़ झाड़ मोड़, खोद मावली[1]।
करोड़ मोड़ मोड़ती, घसाड़[2] धाड़ ठाँवकी[3],
पड़्यो अजाण नर्मदा घणी वखाण[4] मायकी।

⊙ ⊙ ⊙ ⊙

पड़ीत धार धारड़ी, धड़ा धड़ी करी रई,
सिल्लान[5] झाड़ पाड़ती, भड़ा भड़ी लगी रई।
धसी न कुंड छार-छार, दूद धार मायकी,
पड़्यो अजाण नर्मदा, घणी बखाण मायकी।

⊙ ⊙ ⊙ ⊙

फिरी फिरीन धार पार, टोल[6] गोल सूचता,
पणीन महादेव बाण, ठाँय ठाँव पूजता।
फिरी मनूस देश तो, कमी-मऽ[7] रेग[8] काँय की,
पड़्यो अजाड़ नर्मदा, घणी बखाण मायकी।

⊙ ⊙ ⊙ ⊙

घुणी रमी रया घणा, वणीन साधु-संत छे,
कई जणा विचारता, बठीन अन्त तन्त[9] छे।

---

१. माता, २. घुसेड़, ३. बिलकुल, ४. प्रशंसा, वर्णन, ५. चट्टानें, ६. पत्थर, ७. कमी में, ८. रहेगी, ९. सार, तथ्य।

उंकारनाथ भेट घाट, धार को अथाय की,
पड़्यो अजाण नर्मदा धणी बखाण मायकी।

⊙ ⊙ ⊙ ⊙

जड़ी बुटी खड़ी बड़ी, दवा-म काम आवती,
घरी न खाय नाम नेम, रोग देख पावती।
मुसंड संड सांड होय, लोट पोट काय की[1],
पड़्यो अजाण नर्मदा, धणी बखाण मायकी।

⊙ ⊙ ⊙ ⊙

चिड्या-चिड़ी, चकोर, मोर, बोल बोलता घणा,
पखेरू पांख झाड़ता, लगी रया सुवावणा।
चरी रई हरी-हरी, दुरू व झुण्ड गायकी,
पड़्यो अजाण नर्मदा, धणी बखाण मायकी।

⊙ ⊙ ⊙

कई बण्याज[2] घाट बाट, डाट[3] आड़ घाटकी,
चड़ीन नाव घाट की, रया कवीनि आट की[4]।
डरीन न्हाट काल तो, अफाट डाट[5] पायकी,
पड़्यो अजाण नर्मदा, धणी बखाण मायकी।

⊙ ⊙ ⊙ ⊙

वरो परो घड़ो कर्‌यो, यकातई[6] डर्‌यो करूँ,
करो खमा मयाळ्ठ माँ, अजाण जाण लेकरूँ[7]।
कई रई नि आवता, जगा नई उपाय की,
पड़्यो अजाण नर्मदा, धणी बखाण मायकी।

इस रचना में अनुप्रास की मनोमुग्धकारी छटा, छंद का अविरल प्रवाह और अनुरूप शब्दों का प्रयोग कवि-कौशल का द्योतक है।

---

१. शरीर की, २. बने हैं, ३. घने, ४. अटकना, ५, बहुत डर, ६. इसलिए, ७. बच्चा।

दूसरा अध्याय

निमाड़ी का गीत-साहित्य

उपोद्‌घात

ऐसा जान पड़ता है कि मनुष्य ने अपने विचारों के व्यक्तीकरण के लिये शब्दों की भाषा स्वीकार की और उसके पश्चात् अपने मनोरंजन के लिये उसे पद्य का लय-युक्त स्वरूप दिया। इस प्रकार गद्य-मय भाषा का जन्म पहिले हुआ और इसके पश्चात् पद्य का आविर्भाव हुआ, किन्तु उसकी भाषा का गद्य-स्वरूप सुरक्षित न रह सका, पर संगीत के माधुर्य के कारण उसका पद्य एक कंठ से दूसरे कंठ में आता हुआ आज भी जीवित है। यही पद्य हमें आज लोकगीतों के रूप में उपलब्ध है। मानव ने गद्य को पद्य का जो स्वरूप दिया, उसमें उसके प्रयास का अभाव है। हम देखते हैं कि अबोध शिशु संगीत की स्वर-लहरी से प्रभावित हो रोना भूल जाता है; यद्यपि वह उस संगीत को समझने में असमर्थ है। वह संगीत के भाव से नहीं, पर लय अथवा राग से प्रभावित होता है। मानव स्वभावतः राग-प्रिय है। उसकी इसी स्वाभाविकता ने इसकी गद्यमयी भाषा को गीतों का स्वरूप दिया।

आरम्भ में गीतों में अर्थ का कोई स्थान न था। जो कुछ लय के साथ गाया जाता, वही गायक का गीत हो जाता था। भाषा का कुछ विकास होने पर मानव का ध्यान अर्थ की ओर गया और वह अर्थ-पूर्ण गीतों की रचना करने लगा। अब उसे निरर्थक लय के स्थान में अर्थ-पूर्ण लय अधिक रुचिकर जान पड़ने लगी। इसी प्रकार लोकगीतों में पहले निरर्थक धुन समाई, निरर्थक गीत बने और इसके पश्चात् उनमें अर्थ आया तथा सार्थक गीत बने।

लोकगीतों का निर्माण काव्य की तरह कवि-कल्पना पर आधारित नहीं होता, पर उस सामग्री पर आधारित होता है, जिसे गीतकार प्रत्यक्ष देखता है; इसीलिये लोकगीतों में स्वाभाविकता होती है। फिलिपबेरी ने लोकगीतों को 'जातीय पुनर्निर्माण' (Communal recreation) कहा है, किन्तु लोकगीत वास्तव में एक जाति की निर्मिति नहीं, वरन व्यक्ति विशेष की निर्मित है, जिसे एक जाति ने स्वीकार कर अपनी बना ली है। गायक गाते समय कभी अपने गाने की सुविधा के कारण और

कभी अवसर-विशेष की आवश्यकता के कारण इन गीतो में अपनी ओर से भी कुछ मिला देते हैं और इस प्रकार एक गीत के अनेक रूप हो जाते हैं। इसी स्थिति के कारण हम एक ही गीत भिन्न-भिन्न समाज और स्थान में भिन्न-भिन्न रूप में गाया जाता सुनते हैं। वे जितने स्थानो में गाये जाते हैं, उतनी ही उनकी धुनें भी होती हैं। इस तरह वे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी, एक स्थान से दूसरे स्थान और एक धुन से दूसरी धुन में पहुँचते हुए अपना मौलिक स्वरूप तो खो देते हैं, किन्तु उनके इस विकास और प्रसार का क्रम तब तक चलता रहता है, जब तक वह परम्परा जीवित है, जिसका प्रतिनिधित्व ये गीत करते हैं।

लोकगीतों का वर्गीकरण

लोकगीतों का विभाजन विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से किया है। हम निमाड़ी के लोक-गीतो का स्वरूप और विस्तार की दृष्टि से निम्न विभाजन उचित समझते हैं—

(१) संस्कार-सम्बन्धी गीत—सोहर (गर्भावस्था और जन्मोत्सव के गीत), यज्ञोपवीत, विवाह आदि के गीत।

(२) ऋतु-संबंधी गीत—कजली (सावन के गीत), शरद ऋतु के गीत, फाग, चौमासे अथवा बारह मासे के गीत।

(३) जीवन विषयक गीत—पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डालने वाले गीत।

(४) धार्मिक गीत—देवी के गीत, जन्माष्टमी के गीत, गोधन के गीत, गनगौर के गीत, तीर्थयात्रा संबंधी गीत, भजन आदि।

(५) ऐतिहासिक गीत—लोकगाथाएँ।

(६) अन्य गीत—प्रकृति-वर्णन, भौगोलिक चित्रण, लोरियाँ, चौपाल के गीत आदि।

(१) संस्कार सम्बन्धी गीत

निमाड़ी में प्राप्त संस्कार संबंधी गीतों को हम (अ) सोहर-गीत (ब) जन्मोत्सव-गीत (स) यज्ञोपवीत के गीत (ड) विवाह-गीत और (इ) मृत्यु-गीत में विभाजित कर सकते हैं।

(अ) सोहर के गीत

सोहरगीतों में हास्य और शृंगार रस की प्रधानता देखी जाती है, पर कुछ सोहर-गीत हम करुणारस से पूर्ण भी देखते हैं। निमाड़ी का एक गीत इसी प्रकार का है। इस गीत का भावार्थ इस प्रकार है :—

रनु अपनी ससुराल दूर छोड़कर पितृ-गृह आई हुई थी। वह एक मनोहर तालाब के तट पर खड़ी थी। समीप ही मौर छाये अमृत की तरह मधुर फल देने वाले आम्र वृक्ष थे। वहाँ एक दिन जब रनु पानी भरने आई, तो उसने वहाँ एक ससुराल में रहने वाली वधू को रोते हुए देखा। उसने उससे पूछा, "तू क्यों रो रही है ? तेरा मैका दूर है या तेरी सास सौतेली है ?"

वधू ने उत्तर दिया, "न मेरा मैका दूर है और न सास ही सौतेली है, मेरे रोने का कारण सौत से होने वाली भावी दुःख की सम्भावना है। संतान न होनें से मेंरे पति दूसरा विवाह करने पर तुले हुए हैं।"

रनु उसे आश्वासन देती है कि "मैं तुझे सौत के दुःख से मुक्त कर दूंगी। मैं तुझ बांझ के घर झूला झुला दूंगी।"[1]

इस गीत में व्यक्त सन्तान-हीन नारी की मनोव्यथा मानव-हृदय में करुणा का एक स्रोत प्रवाहित कर देती है।

पूर्वी निमाड़ में एक गीत प्रचलित है, जो उस समय गया जाता है, जब गर्भावस्था पूर्ण होने के दिन समीप आ जाते हैं। कहीं-कहीं जन्म के पश्चात् भी यह गीत गाया जाता है। इस जिले की हरसूद तहसील में यह गीत जन्म के दिन ही गाया जाता है। इसमें बच्चे के जन्म पर नव-शिशु-प्राप्त पिता के हृदय के हर्ष को व्यक्त करने के लिये ही पति-पत्नी (शिशु के माता-पिता) का एक विनोद भी है, जो वास्तव में बड़ा सुन्दर और आकर्षक है। गीत के एक चरण में पति-द्वारा पुत्र-जन्म होने की हर्षोन्मीलित व्यग्रता और दूसरे चरण में पत्नी-द्वारा विनोद-पूर्ण ढंग से उस व्यग्रता का समाधान है। गीत के प्रश्नोत्तर अज्ञात लोक गीतकार की कुशलता और सुन्दर कल्पना के द्योतक हैं।

परदेश से लौटता पति अपने गाँव की सीमा पर आते ही ढोल की आवाज सुनता है। वह गर्भिणी पत्नी को घर छोड़ गया था, इसलिये सोचता है संभवतः उसके घर पुत्र-जन्म हुआ हो। वह गाँव के पनघट पर आता है, वहाँ पानी का असामान्य बहाव देखता है। इससे उसकी पुत्र-जन्म की कल्पना और अधिक पुष्ट हो जाती है। गाँव के भीतर आने पर वह अबीर-गुलाल उड़ती देखता है, उसकी पुत्र-जन्म की संभावना अधिक बढ़ जाती है और आंगन में आते ही वह सोंठ की गंध पाकर अपन घर पुत्र होने पर पूर्ण विश्वास करने लगता है, पर उसकी पत्नी बड़ी विनोद-प्रिय है, पति के पूछने पर यह ढोल बजने का कारण गाँव में विवाह होना,

---

१. परिशिष्ट अ—गीत संख्या १।

पानी के असामान्य बहाव का कारण सावन-भादों की वर्षा, गुलाल उड़ने का कारण गाँव के लोगों का होली खेलना, अजवायन की सुगन्ध का कारण सास के पेट दर्द की चिकित्सा और सोंठ की गंध आने का कारण भाभीजी के सिर दर्द की चिकित्सा बतलाकर बड़े सुन्दर ढंग से पुत्र-जन्म की बात छिपा लेती है। अन्त में जब पति जच्चा के कमरे में आता है, तब पत्नी की सेज पर शिशु को देख लेता है और पत्नी हंसती हुई अपनी हार स्वीकार कर लेती है। पति-पत्नी का पुत्र-प्राप्ति का आनन्द द्विगुण हो उठता है।[1]

(ब) जन्मोत्सव के गीत

जन्म और जन्मोत्सव से सम्बन्धित गीत भी सोहर गीतों के ही अन्तर्गत आते हैं। इन गीतों का विशेष महत्व होने के कारण हम इन पर पृथक् विचार कर रहे हैं।

निमाड़ी में हमें जन्म विषयक तीन प्रकार के गीत प्राप्त हैं। कुछ गीत ऐसे हैं, जो बच्चे के जन्म की सूचना मात्र देने वाले हैं। दूसरे प्रकार के गीतों में उन देवी-देवताओं के प्रति आभार प्रदर्शन किया गया है, जिनकी कृपा से पुत्र-प्राप्ति का सौभाग्य उपलब्ध हुआ है। तीसरे प्रकार के गीतों में बच्चे के माता-पिता तथा परिवार के अन्य व्यक्तियों का भाग्य सराहा गया है, उन्हें बधाई दी गई या उनके हृदय का हर्ष प्रकट किया गया है।

इस प्रकार के जन्म गीतों की संख्या अधिक है। इनमें अधिकांश गीत कृष्ण और राम के जन्मोत्सव से सम्बन्धित होते हैं। स्त्रियाँ कृष्ण और राम के स्थान में शिशु के और नंद-यशोदा अथवा दशरथ-कौशल्या के स्थान में शिशु के माता-पिता के होने की कल्पना करती हैं। हमने परिशिष्ट में निमाड़ (मध्यप्रदेश) की हरसूद तहसील से प्राप्त इस प्रकार के दो गीत दिए हैं। इनमें से प्रथम गीत में नंद के घर कृष्ण का जन्म होने पर लक्ष्मी, ब्रह्माणी, रिद्धि-सिद्धि, पार्वती, ग्वालिनी, तमोलिन, मालिन आदि के द्वारा बधाई लाने का उल्लेख कर पुत्र-जन्म पर हर्ष व्यक्त किया गया है।[2]

दूसरे गीत में शिशु के माता-पिता और परिवार के अन्य सदस्यों के हृदय का हर्ष व्यक्त होने के साथ ही पुत्र-जन्म पर हर्ष की अतिरेकता में अपना सर्वस्व न्यौछावर करने की भावना निहित है।[3]

छठी के गीत

जन्म-दिन से पाँचवें अथवा आठवें दिन छठी पूजन होता है। छठी भाग्य देवी

---

१. गीत संख्या ३। २. गीत संख्या ४। ३. गीत संख्या ५।

समझी जाती है। स्त्रियों का विश्वास है कि छठी का पूजन करने से शिशु स्वस्थ रहता है और उसका भाग्योदय होता है, इसीलिए ग्रामीण समाज में सदैव से यह प्रथा चली आ रही है। इसी दिन पहिले पहल शिशु की आँखों में काजल लगाया जाता है। पूजन के सयय तिल-तेल का दीपक जलाया जाता है, जो शिशु की दृष्टि से ओझल रखा जाता है। कहते हैं इस दीपक के देख लेने से शिशु की दृष्टि में विकृति आ जाती है। शिशु की खटिया के नीचे दावात-कलम रख लेते हैं, जिससे छठी माता के द्वारा शिशु का भाग्य लिखने की कल्पना की जाती है।

छठी-पूजन के समय देवी के गीत गाए जाते हैं। निमाड़ जिले की खण्डवा तहसील में इस अवसर पर गाए जाने वाले एक गीत में देवी-पूजन की विधि, महत्व और पूजन से प्राप्त होने बरदान का उल्लेख है।[१]

(स) नामकरण संस्कार के गीत

जन्म होने के पश्चात् बच्चे का बारहवें दिन और बच्ची का ग्यारहवें दिन नामकरण संस्कार होता है। कहीं-कहीं २१वें दिन और कहीं सवा महीने में भी नामकरण संस्कार किया जाता है। जिस दिन नामकरण संस्कार होता है, उस दिन प्रातःकाल ही शिशु और उसके माता-पिता को स्नानादि करा नये वस्त्र पहिना दिये जाते हैं। माता प्रसूतिकाल के पश्चात् इसी दिन सोलह शृंगार से सुशोभित होती है, परिजन, सम्बन्धी और परिचित स्त्री-पुरुष निमंत्रित किये जाते हैं। इसे 'जव्ठवाय' का निमंत्रण कहते हैं। यह 'पुड़ा' (भुवाने में) अथवा 'पगल्या' भी कहलाती है। पण्डित से हवन कराया जाता है और वह शिशु के जन्म-काल पर से उसकी राशि निश्चित कर जो नाम बतलाता है, वही उस शिशु का नाम होता है। नामकरण संस्कार के अवसर पर 'बधावा' अथवा झूले के गीत गाये जाते हैं। खरगोन-निमाड़ में गाया जाने वाला एक गीत परिशिष्ट में देखिये।[२]

इस गीत में लीदो (लिया). पालणा (झूला), नीव्ठी (नीली) और सिवाव्ठूँ (सिलाऊँ) गुजराती भाषा के शब्द हैं, जिनका मध्यभारत के निमाड़ी क्षेत्र में व्यवहार किया जाता है। वाव्ठा (बच्चा), चेंडू (गेंद) और मोत्या (मोती) मूलतः मराठी भाषा के शब्द हैं, जो खानदेशी (मराठी का एक रूप) के प्रभाव के साथ निमाड़ी में आ गए हैं।

यज्ञोपवीत संस्कार के गीत

यज्ञोपवीत संस्कार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में होता है। यज्ञोपवीत संस्कार सात से बारह वर्ष तक की अवस्था के बीच अवश्य सम्पन्न कर लिया

१. गीत संख्या ६। २. गीत संख्या ७।

जाता है। क्षत्रिय और वैश्य वर्ण में कभी-कभी विवाह-संस्कार के साथ ही यह संस्कार भी होता है, किन्तु इस समय यज्ञोपवीत धारण करने के अतिरिक्त यज्ञोपवीत संस्कार की अन्य कोई क्रिया नहीं की जाती।

हमारे सभी संस्कारों के अवसर पर गीत गाने की प्रथा है। यज्ञोपवीत संस्कार के अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं, उनमें से एक गीत बहुत ही भावपूर्ण और वात्सल्य रस से युक्त है। इस गीत में बतलाया गया है कि झिलमिल वर्षा के बीच भीगते खड़े कृष्ण पर माता यशोदा की दृष्टि पड़ती है। वे देखती हैं कि वे यज्ञोपवीत धारण किये हुए हैं। यह देखकर वे हंसती हुई पूछतीं हैं—"मेरे चतुर कन्हैया, तुम्हें यह यज्ञोपवीत किसने पहिनाया है" कृष्ण उत्तर देते हैं—"वृन्दाबन में गुरुजी मिल गये थे, मुझे उन्होंने ही यह यज्ञोपवीत धारण कराया है।"

गीत में आगे माता यशोदा के स्थान में भिन्न-भिन्न सम्बन्धित स्त्रियाँ मां, चाची, फूफी, मौसी आदि और गुरुजी के स्थान में पुरुष सम्बन्धियों पिता, चाचा, फूफा, मौसिया आदि के नाम आते हैं और गीत आगे बढ़ता जाता है। अन्त में मामा का नाम लिया जाता है और उसके द्वारा भिक्षा प्राप्त होने की बात कही जाती है। इससे यज्ञोपवीत संस्कार के समय बटुक द्वारा भिक्षा-वृत्ति करने की परम्परा का पता लगता है।

यह गीत खरगौन (मध्यभारतीय निमाड़) क्षेत्र में ब्राह्मण परिवारों में यज्ञोपवीत संस्कार के अवसर पर सुना जाता है। इस गीत में मिठिया (मिल गये) और दीवी (दी) गुजराती भाषा के शब्द हैं।[1]

विवाह संस्कार के गीत

"पाणि-ग्रहण संस्कार" विवाह संस्कार का ही पर्यायवाची शब्द है। जिस संस्कार के द्वारा वर-वधू एक दूसरे का पाणि (हाथ) ग्रहण करते हैं, वही पाणि-ग्रहण संस्कार है। यही वह संस्कार है, जिसके द्वारा दो विभिन्न वंश और परिवार में जन्म ग्रहण करने वाले दो पूर्वापरिचित प्राणमय शरीर एक सूत्र में आबद्ध हो एक प्राण, एक मन और शरीर होकर जीवन-यात्रा के कंटकाकीर्ण लम्बे पथ पर, अग्रसर होते हैं।

विवाह गीतों का वर्गीकरण

लग्न-पत्रिका लेखन के दिन से वर के वधु को लेकर अपने घर पहुँचने और वहाँ उनके स्वागत के अवसर पर गाये जाने वाले गीत "विवाह-गीतों" के ही अन्तर्गत समझना चाहिये।

---

१. गीत संख्या ८।

विवाह के गीतों का वर्गीकरण मुख्यत: दो भागों में किया जा सकता है—(१) वर-पक्ष के गीत और (२) कन्या पक्ष के गीत । इन दोनों प्रकार के गीतों को हम दो भागों में पुन: विभाजित कर सकते हैं—(१) बरात आने के पूर्व वर के घर और बरात आने के पूर्व कन्या के घर गाये जाने वाले गीत और (२) बरात आने के पश्चात् कन्या के घर गाये जाने वाले गीत ।

वर-पक्ष के गीत

(१) तिलक के गीत, (२) मतवानी के गीत, (३) माटी-खोदाई (खन-मिट्टी) के गीत, (४) लावा-पुजाई के गीत, (५) चंदन के गीत, (६) हल्दी के गीत, (७) मंडप के गीत, (८) वस्त्र-धारण के गीत, (९) मौर के गीत, (१०) वर-पड़ोछन के गीत, (११) गोद-भराई के गीत, (१२) कोहवर के गीत, (१३) पाँसा-खैलाई के गीत, (१४) कंगन-छुड़ाई के गीत (१५) कन्या-पक्ष पर आरोपित गालियाँ।

इनमें से क्रमांक १ से १० तक के गीत वर की बरात रवाना होने के पूर्व तक और शेष गीत बरात लौटने पर गाये जाते हैं।

कन्या-पक्ष के गीत

(१) तिलक के गीत, (२) माटी-खोदाई के गीत, (३) कलसा धराई के गीत, (४) लावा-पुजाई के गीत, (५) चंदन के गीत, (६) हल्दी के गीत, (७) मण्डप के गीत, (८) मातृ-पूजन के गीत, (९) तेल-चढाई के गीत, (१०) द्वार-पूजा के गीत, (११) पितृ-पूजन के गीत, (१२) बरात-आगमन के गीत, (१३) पाणिग्रहण के गीत, (१४) भाँवर के गीत, (१५) दहेज के गीत, (१६) द्वार रोकने के गीत, (१७) परिहास-गीत, (वर पक्ष पर आरोपित गालियाँ) (१८) भोजन के गीत, (१९) मण्डप खोलाई के गीत, (२१) हल्दी डलाई के गीत, और (२२)बेटी के बिदा के गीत।[1]

इनमें से क्रमांक १ से ११ तक के गीत वर की बरात आने के पूर्व और शेष ११ प्रकार के गीत बरात आने के पश्चात् गाये जाते हैं।

इनमें गीतों के अतिरिक्त कन्या के विवाह की चिन्ता व्यक्त करने वाले पुत्री-द्वारा पिता से सुन्दर, सुशील और विद्वान् वर खोजने की प्रार्थना विषयक गीत, कन्या के माता-पिता द्वारा कन्या की बिदाई के पूर्व दिये जाने वाले उप-देशों से पूर्ण गीत तथा कन्या की माता की अपने जामाता से अपनी पुत्री को सुख से रखने की प्रार्थना से सम्बन्धित गीत भी विवाह के गीतों के अन्तर्गत ही समझे जा सकते हैं।

---

१. ये सब गीत लेखक की 'निमाड़ी लोकगीत' पुस्तक में देखिये।

तिलक के गीत

तिलक के गीत से ही विवाह के गीत आरम्भ होते हैं। जिस प्रकार देवताओं के पूजन में सर्व प्रथम गणपति का पूजन किया जाता है, उसी प्रकार विवाह का प्रथम गीत भी गणपति के आवाहन से आरम्भ होता है। यह गीत प्रश्नोत्तर के रूप में गाया जाता है। कन्या के घर लग्न-पत्रिका लेखन के समय भी यही गीत गाया जाता है।[१]

चंदन लगाने के गीत

वर को चन्दन लगाते समय गाये जाने वाले गीत उत्साह, हर्ष और भावी जीवन की शुभ कामना से पूर्ण होते हैं। विवाह संस्कार के पूर्व कुछ दिनों तक वर-वधू को चन्दन लगाने की प्रथा प्रायः सभी जातियों में देखी जाती हैं। इस अवसर पर गाया जाने वाला एक सुन्दर गीत परिशिष्ट में देखिये।[२]

हलदी के गीत

आरम्भ में सात दिन या समय की न्यूनता हो तो दिन-रात करके सात बार वर-वधू को चन्दन लगाने के पश्चात् सात बार हलदी लगाई जाती है। हलदी का हमारे मंगल कार्यों में विशेष स्थान है। विवाह-कार्य में तो इसे सबसे अधिक महत्व प्राप्त है। 'विवाह' शब्द के लिये 'कन्या के हाथ पीले करना' मुहावरे का उपयोग होता है। कन्या को हलदी लगाते समय गाये जाने वाले गीतों में हलदी के गुणों का वर्णन तथा प्रशंसा और उसके बनी को शोभने का विवेचन रहता है।[३]

मण्डप के गीत

निमाड़ी-भाषी समाज में मण्डप के गीत दो प्रकार के मिलते हैं। कुछ गीत केवल मण्डप से सम्बधित होते हैं और कुछ गीत विवाह में आने वाले निकट सम्बन्धियों से सम्बन्धित होते हैं। मण्डप के कुछ गीत वर-वधू की माता द्वारा अपने नैहर से आने वाले स्वजनों की प्रतीक्षापूर्ण व्यग्रता व्यक्त करने वाले ही हैं। वर और वधू दोनों के घर गाये जाने वाले ये गीत प्रायः एक ही होते हैं। मध्यभारतीय निमाड़ी में मण्डप का जो गीत गाया जाता है, उसमें बतलाया गया है कि पण्डित, निमाड़ी में 'जोसी' शुभ मुहूर्त देखकर आया है और वह बड़े विचार के साथ लग्न लाया है, इसीलिये मण्डप सुन्दर (अति रंग) दिखाई देता है। इसी प्रकार बजाज, सुनार, तम्बोली आदि के शुभ मुहूर्त में विवाह की सामग्री वस्त्र,

---

१. गीत संख्या ९। २. गी सं० १२। ३. गीत सं० १३।

आभूषण, पान आदि लेकर आने से मण्डप के सुन्दर दिखाई देने की कल्पना की गई है।[१]

पितृ-पूजन के गीत

मण्डप के दिन रात्रि को वर और कन्या दोनों के घर पितृ-पूजन होता है। इस समय स्वर्गवासी पितृ आमंत्रित किये जाते हैं। उनसे विवाह में सम्मिलित होने की प्रार्थना की जाती है और निर्विघ्न विवाह सम्पन्न होने के लिये उनका अशीर्वाद प्राप्त किया जाता है। इस समय कन्या और वर के घर गाया जाने वाला गीत एक ही होता है। पितृ-पूजन का दृश्य बड़ा ही हृदय-द्रावक होता है। स्त्रियाँ एक-एक स्वर्गस्थ स्त्री-पुरुष का नाम लेकर गीत गाती जाती हैं और नेत्रों से अश्रु-धारा प्रवाहित होते हुए पितृ-पूजन होता जाता है।

गीत में आकाश में उड़नेवाली गृद्धनी के द्वारा पितरों को संदेश भिजवाया गया है—"हे आकाश में उड़नेवाली गृद्धनी, हमारा एक संदेशा ले जाओ। अमुक स्वर्गवासी पितृ से कहना कि आज तुम्हारे घर मंगल-कार्य (विवाह) हो रहा है, अतः तुम भी उसमें उपस्थित होओ।"

पितृ उत्तर देते हैं—"जिस प्रकार हो, उस प्रकार यह मंगल-कार्य सम्पन्न कर लो, हमारा तो आना न हो सकेगा। हमारे बाहर निकलने के द्वार पर बज्र कपाट और लोहे की मजबूत कड़ियाँ लगा दी गई हैं[२]।"

वस्त्र-धारण के गीत

वर को बरात रवाना होने के पूर्व और कन्या को पाणि-ग्रहण के पूर्व विवाह के वस्त्र धारण कराये जाते हैं। एक ओर वस्त्र धारण का कार्य होता रहता है और दूसरी ओर समीप ही उपस्थित महिला-मण्डल के मन-भावने गीत चलते रहते हैं। ये 'बन' के गीत कहलाते हैं। इन गीतों में दूल्हे को पहिनाये जाने वाले बागा, साफा, कुण्डल, कण्ठा, अँगूठी, सेहरा आदि का वर्णन करते हुए उनसे उनकी बढ़ने वाली शोभा का व्यक्तीकरण होता है। अन्त में इन विविध वस्त्राभूषणों की तरह ही बने और बनड़ी के भी शोभा देने की बात कही जाती है। इस समय के गीतों को सुनकर वर तथा वर-पक्ष के सभी स्त्री-पुरुषों में उत्साह-मिश्रित एक अपूर्व हर्ष दिखाई देने लगता है।[३]

पाणि-ग्रहण संस्कार के दिन कन्या का भी उसे मण्डप में लाने के पूर्व शृंगार किया जाता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीत भी निमाड़ी

---

१. गीत सं० १४। २. गीत सं० १५। ३. गीत सं० १६।

लोक साहित्य में प्राप्त हैं। इन गीतों में बनड़ी, जिसे निमाड़ी में 'लाड़ी' कहा जाता है---को पहिनाये जाने वाले वस्त्रों और आभूषणों का वर्णन तथा उनमें कन्या की बढ़ने वाली शोभा का चित्रण रहता है।[१]

बरात-प्रस्थान का गीत

बर की बरात प्रस्थान करते समय भी 'बने के गीत' ही गाये जाते हैं, किन्तु ये गीत पूर्व बतलाये गये इस प्रकार के गीतों से कुछ भिन्न होते हैं। इस समय के गीतों में यही हर्ष तथा बरात के प्रस्थान का चढ़ा-बढ़ा वर्णन रहता है।

बरात-प्रस्थान के दिन वर-पक्ष में तो विशेष हर्ष देखा ही जाता है, पर इस दिन कन्या-पक्ष भी कम हर्षित नहीं होता। कन्या-पक्ष बड़ी उत्सुकता से बरात-आगमन की प्रतीक्षा में रत रहता है और उस पक्ष की स्त्रियाँ बरात-प्रतीक्षा व्यक्त करने वाले गीत गाती हैं।[२]

वर-पड़छने की गीत

बरात के कन्या-ग्राम में जाने पर कन्या-पक्ष उसका स्वागत करता और इसके पश्चात् वर बरात के साथ विवाह-मण्डप में जाता है। मण्डप में पहुँचने पर वह मण्डप की तोरण के नीचे खड़ा होता और कन्या की माता सर्व प्रथम उसका स्वागत करती है। वर-स्वागत का कार्य ही 'वर-पड़छा' कहलाता है। कन्या की माता मूसल, तकुवा, सूपा, राई, सुपारी आदि से वर पड़छती है। बर की सास जिस-जिस वस्तु से वर पड़छती है, स्त्रियाँ उसी वस्तु का नाम लेकर गाती जाती हैं।[3]

लगन के गीत

पड़छने के पश्चात् वर बरातियों सहित मण्डप में प्रवेश करता है। वहाँ उन सबका उचित सम्मान होने के पश्चात् पण्डित शास्त्री विधि से लग्न लगाता है। लग्न लगने के समय वर कन्या का हाथ पकड़ता है और उस समय से यह उसकी सदैव के लिये जीवन-संगिनी हो जाती है। इस मधुर-मिलन के अवसर पर गाये जाने वाले गीत बड़े सुन्दर और भावपूर्ण होते हैं।[४]

हमें विवाह-गीतों में अनेक ऐसे गीत मिलते हैं, जो राम और सीता के विवाह को आधार बनाकर गाये जाते हैं। इन गीतों में या तो वर के स्थान में राम और वधू के स्थान में सीता को प्रतीक रूप से रखा जाता है या राम-सीता के विवाह का उल्लेख कर वर-वधू के भी उनके समान होने की कामना की जाती है। हमारा संगृहीत गीत इसी भावना का द्योतक है।[५]

---

१. गीत सं० १७। २. गीत सं० १८। ३. गीत संख्या १९। ४. गीत संख्या २०। ५. गीत संख्या २१।

दहेज का गीत

पाणि-ग्रहण के पश्चात् कन्या के माता-पिता, परिवार के अन्य व्यक्ति, कन्यापक्ष के रिश्तेदार तथा ग्राम के स्नेहीजन अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार वर-वधू को वस्त्राभूषण एवं गृहस्थी के कार्य में आने वाले ताम्बे-पीतल के बर्तन आदि भेंट करते हैं। यह दहेज कहलाता है। इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं, उनमें से मध्यभारतीय निमाड़ में गाया जाने वाला एक गीत इस प्रकार है :—

"मांग कुंवर बाई दायजू सयेलिये[1]।
छूट छै[2] वाव्ठइयो[3] बाप।
हांडा[4] न झारी दीजो दायजो।
सरस कंचोड़ा[5] न दान।
सयेलिये मांगऽ कुँवर बाई दायजू।"

आगे बाप के स्थान में काका, मामा, फूफा आदि शब्द दहेज देने वाले के स्थान में जोड़कर गीत बढ़ाया जाता है।

चौसर के गीत

वर-वधू द्वारा चौसर खेलने की प्रथा बहुत प्राचीन है। आजकल के अधिकांश वर-वधू चौसर खेलना तो नहीं जानते, पर इस प्रथा के निर्वाह के लिये उनसे कौड़ियों या इमली के बीजों द्वारा खेल खिलाया जाता है। इस अवसर पर जो गीत गाया जाता है, वह वर-वधू के बीच चलने वाले प्रश्नोत्तर के रूप में है। गीत गाने वाली लड़कियाँ अपने गीत में पहले कन्या की ओर से प्रश्न करती हैं और फिर आप ही वर की ओर से उत्तर देती हैं। पूर्ण गीत में एक सुन्दर विनोद के साथ ही वर-वधू के हृदय का स्नेह बड़े सुन्दर ढंग से उद्वेलित हुआ है। गीत संयोग-शृंगार का सुन्दर उदाहरण है। गीत की भाषा पूर्णरूपेण निमाड़ी है।[6]

गाली-गीत

विवाह के गीतों में गालियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। गालियों के गीतों का विवाह से सीधा सम्बन्ध नहीं है, पर ऐसा जान पड़ता है कि मनोरंजन की दृष्टि से ही गाली-गीतों को विवाह के गीतों में स्थान दिया गया है।

---

१. सखी। २. मुक्त होगा। ३. कन्या का। ४. बड़ा घड़ा। ५. एक प्रकार का बर्तन। ६. गीत संख्या २२।

भीतर से वधू-पक्ष की स्त्रियाँ समधियों के नाम ले-लेकर गालियाँ गाती हैं और समधी बाहर बैठे उन गालियों को सुन-सुन कर प्रसन्न होते हैं।

निमाड़ी समाज में गाये जाने वाले एक गाली-गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

"कोठी-मऽ कंसार[1] थरथर कांपऽ ।
(समधी का नाम) पंगत लेत हायव्ळू[2] फाट रे ॥
फाटत-फाटत दीसा[3] पंगत लीसा रे[4] ।
तारी (समधिन का नाम) न गयण-मेल[5] पंगत लीसा रे ॥"

आगे गीत की द्वितीय पंक्ति में दूसरे-दूसरे समधी और चतुर्थ पंक्ति में उनकी स्त्रियों के नाम लेकर गीत आगे बढ़ाया जाता है। यह गीत समधियों को भोजन कराते समय गाया जाता है।

कूकड़ा-गीत

विवाह के दिनों में प्रतिदिन प्रातःकाल समधियों को जगाने के लिये कुछ गीत गाये जाते हैं। ये 'कूकड़ा-गीत' कहे जाते हैं। जिस प्रकार प्रातः काल सूर्योदय के पूर्व मुर्गा, जिसे निमाड़ी भाषा में कूकड़ा कहा है, बोलकर प्रातःकाल होने की सूचना देता है, उसी प्रकार इन गीतों के द्वारा प्रातःकाल होने की सूचना दी जाती है, इसीलिये इन्हें 'कूकड़ा' गीत कहते हैं, । निमाड़ी के एक कूकड़ा-गीत में प्रातःकाल होने का स्मरण कराके पहिले चारों देवताओं—गणपति, शिव, ओंकार मान्धाता और महाकाल के जागने का वर्णन है। यहाँ यह स्मणीय है कि निमाड़ी भाषी जनता की मान्धाता के ओंकारेश्वर और उज्जैन के महाकलेश्वर के प्रति महान् श्रद्धा ह । यही कारण है, जो इस गीत में गणपति और शिव के साथ उनके नाम लिये हैं।

इसके पश्चात् प्रथम कन्या-पक्ष के चार व्यतियों के नाम लेकर उन्हें सरदार कहा गया है। इसके पश्चात् वर-पक्ष के चार व्यक्तियों के नाम लेकर उन्हें भाण्ड कहा गया है। इस प्रकार यह कूकड़ा-गीत भी गाली-गीत बना लिया गया है।[6]

कूकड़ा-गीत बरात जाने के पश्चात् कन्या के घर ही गाये जाते हैं। इस गीत का प्रथम पंक्तियों में उल्लेखित विनोद भाई कन्या-पक्ष का व्यक्ति है, जिसे प्रातःकाल जगाकर श्रीराम का नाम लेने, झारी के पानी से मुंह धोने,

---

१. घी में साना हुआ आटा। २. हृदय, ३. दोगे। ४, लेगे। ५. गिरवी रखो। ६. गीत सं० २३ ।

गंगा-स्नान करने और गौ का दान देने को कहा गया है। आगे की पंक्तियों में शंकर वर पक्ष का व्यक्ति है, जिसे भाण्ड कहकर अल्लाखुदा का नाम लेने, गड्ढे के जल से दतौन करने, गंदे जल के डबरे से स्नान और अपनी काकी को दान में देने को कहकर उसका मजाक उड़ाया गया है।

बेटी की विदा के गीत

बेटी-बिदा के करुणापूर्ण दृश्य से कौन परिचित नहीं है? अपनी लड़की को बिदा करते समय कितनी वेदना होती है, इसका वास्तविक अनुभव उन्हीं माता-पिता को है, जिन्हें कभी अपनी पुत्री का विवाह कर उसे बिदा करने का अवसर प्राप्त हुआ है।

इस अवसर पर निमाड़ी-भाषी समाज में गाये जाने वाले एक गीत में मातृ-हृदय की विवशता बड़े मार्मिक शब्दों में व्यक्त की गई है। माता बेटी बिदा करते समय अपनी विवशता देखकर कहती है कि "मैं आम का वृक्ष लगाती हूँ, पर उसमें फल लगते ही कोयल उन्हें लेकर चल देती है। मैं कुंआ खोदती हूँ पनिहारिन उसका पानी लेकर चल देती है। मैं पुत्र को जन्म देती हूँ, बधू उसे ले लेती है। जब मैं कन्या को जन्म देती हूँ, उसे समधी लेकर चल देता है। कितनी दयनीय स्थिति है बेचारी की।[१]"

परिचय-गीत

निमाड़ी के विवाह-गीतों में हमें कुछ ऐसे गीत भी मिले हैं, जिन्हें हम परिचय-गीत कहना ही उचित समझते हैं। गीत बरात लौटते समय मार्ग में गाये जाते हैं। इसमें से एक गीत वर-वधू के प्रश्नोत्तर के रूप में है। गीत में वधू को पति-गृह का पूर्ण परिचय दिया जा रहा है। यह गीत दूल्हे के साथ जानेवाली स्त्रियाँ या लड़कियाँ गाती हैं। गीत में निमाड़ प्रदेश का निवास, जल-स्रोत, भोजन, पहनाव, रीति-रिवाज आदि के साथ पूर्ण जन-जीवन का चित्र है।[२]

स्वागत-गीत (बधावा)

जब वर अपनी नव विवाहिता वधू को लेकर अपने घर जाता है, तब वहाँ का वैवाहिक आनन्द चौगुना हो उठता है। समस्त परिवार और ग्राम के स्नेहीजन वर-वधू का स्वागत करने के लिये उमड़ पड़ते हैं। इस अवसर पर खरगोन निमाड़ में गाये जाने वाले एक गीत में वर-वधू के आगमन पर बधाई,

---

१. गीत सं० २४। २. गीत सं० २५।

वधू को उपदेश और परिवार वालों के हृदय में होने वाले हर्ष तथा संतोष का चित्रण हो गया है ।[1]

(ई) अंतिम संस्कार के गीत (मृत्यु-गीत)

मृत्यु के साथ जीवन-लीला समाप्त हो जाती है । दार्शनिक और तत्वज्ञानी की दृष्टि में जीवन की अनेक प्रमुख घटनाओं की तरह मृत्यु भी एक घटना है । पुनर्जन्म के सिद्धान्त के अनुसार प्राणी मृत्यु के साथ पुराना शरीर त्याग कर नया शरीर धारण करता है, अतः मृत्यु कोई शोकजनक घटना नहीं है, किन्तु मृत्यु का व्यावहारिक रूप इस तात्विक रूप से सर्वथा भिन्न है । सभी, धर्म, जाति के लोग मृत्यु को एक शोकजनक घटना मानते हैं और किसी न किसी रूप में अपनी-अपनी प्रथा के अनुसार परिवार के किसी व्यक्ति अथवा अन्य सम्बन्धी बंधु-बान्धव, मित्रादि की मृत्यु पर शोक प्रकट करते ही हैं; किन्तु यह कितने आश्चर्य की बात है कि हमारे जीवन का यह शोकजनक अवसर भी गीत और संगीत-समारोह से शून्य नहीं है ।

निमाड़ी के एक मृत्यु-गीत में वर्णित संसार का स्वरूप और ब्रह्म की प्राप्ति के अभाव में बार-बार जन्म धारण का उल्लेख हमारी धार्मिक भावनाओं पर आधारित है । गीत की अन्तिम पंक्तियों में इस संसार से पृथक् स्वर्ग की स्थिति और वहाँ परम पुरुष की उपस्थिति की कल्पना हमारी परम्परागत धारणा की प्रतीक है ।

गीत की अंतिम पंक्तियों से यह कबीर-द्वारा रचित गीत जान पड़ता है, किन्तु हमें इसमें सन्देह है । ऐसा जान पड़ता है कि गीत में कबीर की विचार-धारा होने के कारण उसके अन्त में कबीर का नाम जोड़ दिया गया है ।[2]

(२) ऋतु-सम्बन्धी गीत

'ऋतु-वर्णन' कवियों का सदैव से प्रिय विषय रहा है । हिन्दी के प्राचीन कवियों में कोई ऐसा नहीं, जिसने बिना ऋतु-वर्णन के अपना काव्य अपूर्ण न अनुभव किया हो ।

इन कवि-पुंगवों का अमर ऋतु-वैभव हमें उनके काव्य-ग्रन्थों में मुद्रित रूप में प्राप्त है, पर हम उन अज्ञात लोककवियों की कितनी प्रशंसा करें, जिन्होंने प्रकृति की एकान्त गोद में मानव-जीवन के अविकसित आदिम काल में ऐसे काव्य की रचना की, जो मुद्रित स्वरूप प्राप्त न होने पर भी सहस्रों युग से लोक-कण्ठ में प्रति स्वरित होता हुआ आज भी हमें आनन्द-विभोर बना

---

१. गीत सं० २६ । २. गीत सं० २७ ।

देता है। लोकगीतों में हमें सभी ऋतुओं का सम्यक् वर्णन नहीं मिलता। सावन के गीत, फाग के गीत, चेता, चौमासा और बारहमासा ही लोक-गीतों के ऋतु-वर्णन की सम्पत्ति हैं।

वर्षा-गीत

चार मास के भीषण आतप के पश्चात् मानव ही नहीं, संसार के समस्त प्राणी और धरती के एक-एक कण वर्षा-ऋतु का स्वागत करने के लिये उतावले हो जाते हैं। हमारा ग्रामीण समाज जानता है कि वर्षा मेघों से होती है, पर उसका विश्वास है कि इन्द्र मेघों का राजा है, अतः इन्द्र की प्रसन्नता अथवा अप्रन्नता पर ही वर्षा का होना अथवा न होना निर्भर है। अतएव जब वह वर्षाभाव देता है, तब अपनी भावना और धारणा के अनुसार इन्द्र को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है। स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सभी अपने-अपने ढंग से मेघों के राजा इन्द्र को प्रसन्न करने में लग जाते हैं। निमाड़ी लोकसाहित्य में कुछ ऐसे गीत मिलते हैं, जिन्हें निम्नश्रेणी की स्त्रियाँ वर्षाभाव देख ग्राम में घूम-घूम कर गाती हैं। इस गीत में इन्द्र से प्रार्थना की गई है कि "हे राजा इन्द्र, आप दूर आकाश में गर्जना कर पृथ्वी के समीप आकर बरसिये। आप पृथ्वी से अप्रसन्न क्यों हो गये हैं?"

स्त्रियाँ उनसे आगे कहती है—"आप वर्षा करके इन छोटे-छोटे कुम्हलाते पौधों को हरा कर दीजिये। साथ में अपनी बहिन बिजली को भी ले आइये।"

इन्द्र की विलास-प्रियता प्रसिद्ध ही है, अतः उससे कहा जा रहा है—"आप स्त्री के लोभी (कामुक) हैं, कहीं ऐसा तो नहीं है कि आप सुरपुर की कोमलांगियों पर मुग्ध हो वहीं रुक गये और आपको पृथ्वी पर जाने का ध्यान ही न रहा?"

"वायु रानी को एक कमरे में बन्द कर दीजिये और आने के पूर्व उस कमरे में सात ताले लगा दीजिये, जिससे वह बाहर न निकल सके।"

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि ग्रामीण स्त्रियों को यह ज्ञात है कि वायु के बहने से बादल तिरोहित हो जाते हैं और वर्षा नहीं हो पाती, इसलिये वे वायु को सात ताले लगाकर कमरे में बन्द करके आने की प्रार्थना करती हैं।

जन-साधारण की यह धारणा है कि मेण्डक के बोलने पर वर्षा अवश्य होती है। इसी धारणा के अनुसार स्त्रियाँ इन्द्र से कहती हैं कि "मेण्डक रानी को बाहर निकालो, जिससे उसे बोलने का अवसर मिले और वर्षा हो।"

आगे की पंक्तियों में इन्द्र का ध्यान बैलों की दीन दशा की ओर आकर्षित करते हुए उससे प्रार्थना की जा रही है कि "हे राजा इन्द्र, गौ के बच्चे भूखे मर रहे हैं। आप राम-लक्ष्मण के समान बाण (मेघ-बाण) कर शीघ्र वर्षा कीजिये। हे राजा इन्द्र, तेज धूप पड़ रही है और उसकी उष्णता से पृथ्वी तप्त होकर झुलस रही है। उष्णता से त्रस्त होकर भूरे बैल ने सिर नीचा कर अपने कंधे से जुवा उतार दिया है अर्थात् वह जमीन जोतने में असमर्थता प्रगट कर रहा है। हे इन्द्र, आप का जी बार-बार आने को तो हो रहा है, पर आप हम सबको भ्रम में डालकर ही रह जाते हैं, आते नहीं, शीघ्र आइये। आप पृथ्वी से इस प्रकार अप्रसन्न क्यों हो गये हैं कि आपके आने का समय हो जाने पर भी आप नहीं आते। हे इन्द्र, आकाश में गर्ज कर शीघ्र आइये और पृथ्वी पर वर्षा करके सब प्राणियों की रक्षा कीजिये[१]।"

सावन के गीत

सावन वैसे ही गीतों का मास है। इसका आगमन होते ही ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में वृक्षों की डाल से झूले बंध जाते हैं और झूलों की चर्र-चूँ के साथ मनोमुग्धकारी कर्ण-मधुर संगीत से समस्त ग्राम संगीतमय हो जाता है। कहीं कजली, कहीं बिरहा और कहीं नव दम्पत्ति के नव स्नेह से पूरित गीत हमारे हृदय को असीम आनन्द से भर देते हैं।

निमाड़ी-भाषा क्षेत्र में गाये जाने वाले एक गीत में बहिन की भाई से मिलने की उत्सुकता और भाई का बहिन के प्रति उद्वेलित स्नेह बड़ी सुन्दरता से चित्रित हुआ है। बहिन नीम के वृक्ष में निंबोरी आती देखकर सावन का आना जान लेती है और अपने पीहर जाकर भाइयों से मिलने को उतावली हो जाती है। वह कहती है "बड़े भाई, सावन का महिना आ गया, तुम्हें कैसे नींद आ रही है? क्या तुम्हें अपनी बहिन को ससुराल से लाने का ध्यान नहीं है? तुम्हारी छोटी बहिन ससुराल में झुर रही है और तुम निश्चिन्त होकर सो रहे हो।" फिर भाई की ओर से कहा गया है कि "यह संभव नहीं है कि मैं अपनी झुरने वाली बहिन को झुरने दूंगा। मैं उसे न झुरने दूंगा, शीघ्र ही जाकर ले आऊँगा।"

बहिन सोचती है कि मेरे दो भाई हैं। घर का काम चलाने के लिये उनका नौकरी करना भी आवश्यक है। फिर कौन नौकरी करेगा और कौन मुझे लेने को गुजरात आयगा? वह अपने प्रश्न का आप ही उत्तर देती है, "बड़ा भाई नौकरी करेगा और छोटा भाई मुझे लेने गुजरात आयगा।[२]"

---

१. गीत संख्या २८। २. गीत संख्या २९।

निमाड़ी लोक साहित्य में हमें सावन के ऐसे गीत भी मिलते हैं, जिसमें बहिन के द्वारा भाई को राखी बाँधने और भाई के द्वारा बहिन को भेंट देने का उल्लेख है।

रक्षाबंधन हमारा एक सांस्कृतिक त्यौहार होने के साथ ही ऐतिहासिक त्यौहार भी है। रक्षाबंधन के पीछे भारतीय नारियों के सतीत्व का इतिहास है, एक अत्यन्त मूल्यवान् परम्परा है, और है उस परम्परा में निहित भारतीय आदर्श की झाँकी।

निमाड़ी लोक साहित्य में राखी के जो गीत हैं, वे अत्यन्त सरल और सादगी से पूर्ण हैं। उनका अधिक सम्बन्ध भी ग्राम्य जीवन से ही है, जैसा कि हम इस गीत में देखते हैं :—

पयली[1] राखी म्हारा नाना[2] भाई-लऽ बाँधू ।
नाना भाई-न दीवी[3] लाल गाय ।।
लाल गाय का जाया घोरी[4] हाल[5] हाँकू ।
दूसरी राखी म्हारा मोठा भाई-खऽ बाँधू ।।
मोठा भाई-नऽ दीवी श्याम गाय ।
श्याम गाय का जाया घोरी हाल हाँकू ।।

नियमानुसार बहिन को पहिले अपने बड़े-भाई को राखी बाँधना चाहिये, पर इस गीत की निमाड़ी बहिन का स्नेह छोटे भाई पर अधिक जान पड़ता है। अतः पहिले वह अपने छोटे भाई को ही राखी बांधती है। छोटा भाई उसे लाल गाय भेंट करता है। वह कल्पना करती है कि जब उस लाल गाय के बछड़ा होगा, तब वह उसे हल हांकने के काम में लायेगी। इससे इस ग्रामीण बहिन का आकर्षण अपने जीवन के एकमात्र साधन हल, बखर और कृषि-कार्य तक ही सीमित होना स्पष्ट है। आगे की पंक्तियों में उनके बड़े भाई को राखी बांधने और इससे श्याम गाय प्राप्त होने का उल्लेख है। वह इस गाय से उत्पन्न बछड़े का भी उपयोग हल हांकने में करने की कल्पना करती है। इस प्रकार उसे दो गायें मिल जाती हैं। इन दोनों गायों से प्राप्त दो बछड़ों के प्राप्त होने तथा उनका उपयोग अपनें खेत को जोतने में करने की कल्पना उसे आनन्द-विभोर कर देती है।

चौमासा-गीत

सावन के मास में चौमासे के गीत भी गाये जाते हैं। निमाड़ी में गाये

---

१. पहिली। २. छोटा। ३. दी। ४. बछड़ा। ५. हल।

जाने वाले 'एक चौमास गीत' में वर्षा ऋतु के चार मासों के वर्णन के साथ होने वाले विधि क्रिया-कलापों का चित्रण मिलता है ।[१]

बारह मासा-गीत

निमाड़ी भाषा में एक "कृष्णचन्द का बारह मासा" प्राप्त है। इस गीत में बारह मासों की विविध स्थिति और उनका जन-मन पर प्रभाव बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है। गीत में राधा-कृष्ण को स्थान देकर अज्ञात लोक-कवि ने इसे स्नेह से शराबोर कर दिया है। प्रत्येक मास के वर्णन में एक सूक्ष्म निरीक्षण है। स्थान-स्थान पर दी जाने वाली उपमाओं और उत्प्रेक्षा ने इस लोक-गीत को भाषा-साहित्य के समकक्ष स्थान प्रदान कर दिया है[२] ।

विरह-गीत

जहाँ सावन के दिन अन्यों को हर्ष और उल्लास का सुखद सन्देश देते है, वहाँ वे वियोगिनियों को दाहक बन जाते हैं। वे बेचारी दोनों कुलों के सुख से वंचित हो आँसू बहाती रहती हैं। इन विरह-व्यथा-व्यथित वियोगिनियों के हृदय का सन्ताप व्यक्त करने वाले गीत भी निमाड़ी लोक-साहित्य में उपलब्ध हैं।[३]

शरद ऋतु के गीत

निमाड़ी भाषा भाग में शरद ऋतु में गाये जाने वाले गीत 'गर्वागीत' के नाम से प्रसिद्ध है। गर्वा-गीत वास्तव में इस प्रदेश में मनाया जाने वाला एक धार्मिक उत्सव है। यह महोत्सव आश्विन मास में नवरात्र के दिनों में मनाया जाता है। यह विशेषकर स्त्रियों-द्वारा मनाया जाने वाला ही एक महोत्सव है, पर पुरुषों का भी इसमें योग रहता है। स्त्रियाँ इसे नवरात्र में और पुरुष इसे दशहरे के पश्चात् मनाते हैं, जो शरद पूर्णिमा तक चलता रहता है। इन दिनों निमाड़ के ग्रामों तथा नगरों में रात्रि के समय बड़ी चहल-पहल देखी जाती है।

गर्वा निमाड़ में एक देवी मानी जाती है और नवरात्र इसी देवी की रातें मानी जाती हैं। नवरात्र के प्रथम दिवस से आरम्भ होने वाला यह महोत्सव शरद पूर्णिमा को उत्साह और आनन्द की चरम सीमा को पहुँच जाता है। यह निमाड़ी का एक परम्परागत महोत्सव है और इसका अपना एक इतिहास है।

---

1. The years of the songs are rather melancholy though they are tuned to express different feelings and sentiments--Gierson Journal of Asiatic Society Part V--I (1884) Page 233.

१. गीत संख्या ३० । २. गीत संख्या ३१ । ३. गीत संख्या ३२ ।

अविवाहित कुमारियाँ योग्य वर प्राप्ति के लिये, निस्सन्तान स्त्रियाँ सन्तान प्राप्ति के लिये, सन्तानवती स्त्रियाँ सौभाग्य बनाये रखने के लिये और पुरुष आनन्दमय जीवन की प्राप्ति के लिये यह महोत्सव मनाने में योग दान करते हैं।

मिट्टी का जो पात्र कुमारियाँ तथा अन्य स्त्रियाँ अपने सिर पर रखती हैं, वह गर्वा कहा जाता है। इसमें चारों ओर एक खुला स्थान होता है, जिसमें से पात्र के भीतर जलने वाले मिट्टी के दीपक का प्रकाश बाहर निकलता रहता है। स्त्रियाँ इस पर चूने से गर्वा देवी के चित्र बना लेती हैं। कन्याएँ और स्त्रियाँ इस पात्र में दीपक रख उसे अपने-अपने सिर पर रख लेतीं और गर्वा गीत गाती हुई समूह में बाहर निकलती हैं। पूर्ण ग्राम में घूम लेने पर वे एक स्थान पर रुक जातीं और वहाँ गीत गा-गाकर नृत्य करती हैं। यह नृत्य भी गर्वा-नृत्य कहलाता है।

गीत में गर्वा के इन्द्रलोक से इन्द्राणी के द्वारा पृथ्वी पर आने की कल्पना की गई है। गीत की प्रथम चार पंक्तियों से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। वे पंक्तियाँ वैभवपूर्ण जीवन बिताने की कल्पना से ही पूर्ण हैं।[1]

पुरुषों-द्वारा गाये जाने वाले गर्वा अथवा गर्वागीत कृष्ण-चरित पर ही आधारित हैं। इनमें से अधिकांश गीतों में कृष्ण-द्वारा आयोजित रास-क्रीड़ा का ही चित्रण मिलता है। इस प्रकार के एक गर्वा गीत में राधा का सौन्दर्य-वर्णन और उसके कृष्ण से रुठने का जो चित्रण किया गया है, वह भाषा काव्य में वर्णित सौन्दर्य से किसी प्रकार कम नहीं हैं।[2]

जिन गर्वा गीतों में दधि लीला के प्रसंग लेकर कृष्ण की बढ़ती हुई ढिठाई और उद्दण्डता का उल्लेख हुआ है, उनमें हम नीति-पालन में पूर्ण कड़ाई नहीं पाते। दधि-लीला विषयक एक गर्वा गीत में एक ग्वालिन कृष्ण के द्वारा उसके साथ की गई शरारत की शिकायत करती हुई कहती हैं—"यशोदा का लाल देखने में बहुत छोटा जान पड़ता है, पर वह दधि लूटते समय बड़ा दिवाना हो जाता है। उसने मुझसे पूछा कि हे ग्वालिन, सिर पर दधि की मटकी रखे तू दही बेचने को कहाँ जा रही है ? पर ऐसा पूछने के पश्चात् ही उसने जो शरारत की वह मैं किससे कहूँ ?"

"उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और मुझे नीचे बिठा दिया। हे सखि, तू उस पर नजर रख। कहीं ऐसा न हो कि वह तुझसे भी ऐसी ही शरारत करे, क्योंकि दधि लूटते समय बड़ा दिवाना हो जाता है।"

१. गीत सं० ३३। २. गीत सं० ३४।

"वह इतना ही करके नहीं रह गया। उसने मेरी साड़ी फाड़ दी और वह भी ऐसी-वैसी नहीं, उसने उसके दो-चार टुकड़े कर दिये। हे सखि, मैं पहिली बार दधि बेचने आई थी, पर मैंने देखा कि वह बड़ा दिवाना होकर दधि लूटने लगता है।"

"मैं जैसे ही दही बेचने निकली, श्याम मुरली बजाने लगा और मेरे समीप आते ही वह दौड़कर आया और मेरा सब दही खा गया। वह बड़ा दिवाना होकर दही लूटता हैं।[1]"

होली के गीत

होली भारत का एक सार्वजनिक त्योहार है। इसमें सभी वर्ण और जाति के लोग भाग लेते और अपने नित्य की दैनिक व्यथाओं, वेदनाओं और जीवन-संघर्ष को इस दिन भूल जाने का प्रयत्न करते हैं।

हमें भारतीय लोकगीतों में होली के इतने सुन्दर और आकर्षक गीत मिलते हैं, कि जिनका रसास्वादन कर हमें कुछ क्षणों के लिये हिन्दी के महा-कवियों के काव्य का रसास्वादन भी फीका लगने लगता है। हम होली के अवसर पर लोकगीत ही गाते देखते हैं, कवियों की उच्च-कल्पना और अलंकारों की छटा से सुसज्जित कविता नहीं। ब्रजभाषा में गाये जाने वाले होंली के गीत तो प्रसिद्ध ही हैं, पर निमाड़ी में भी ऐसे गीतों का अभाव नहीं है। अधिकांश होली-गीतों में राधा-कृष्ण द्वारा खेली जाने वाली होली का चित्रण है। गीत की प्रत्येक प्रथम दो पंक्तियों में प्रश्न और उसके पश्चात् की दो पंक्तियों में उसका उत्तर है।[2]

हम होली के अवसर पर गाये जाने वाले दो अन्य निमाड़ी गीत भी परि-शिष्ट में दे रहे हैं। इन गीतों में भी अन्य होली-गीतों की तरह राधा-कृष्ण की होली का ही चित्रण है। हम ऐसे गीतों में राधा-कृष्ण का उल्लेख प्रकृति-पुरुष अथवा स्त्री-पुरुष के स्थान में प्रतीक रूप में ही पाते हैं।[3]

(३) धार्मिक गीत

भारत सदा से धर्म-परायण देश रहा है। यदि हम यह कहें कि इस देश की जनता के जीवन का निर्माण ही धार्मिक तत्वों के आधार पर हुआ है, तो यह अत्युक्ति न होगी। इस देश में वैदिक काल से आज तक के लोक-जीवन के इतिहास में इसकी धार्मिक परम्पराएँ, धार्मिक भावनाएँ और

---

१. गीत सं० ३५। २. गीत सं० ३६। ३. गीत सं० ३७।

धार्मिक प्रवृत्तियाँ भरी पड़ी हैं। इस देश के सामाजिक विकास के मूल में भी यहाँ की परम्परागत धार्मिक विचार-धारा और भावनाएँ ही कार्य करती देखी जाती हैं। संक्षिप्त में भारतीय जीवन कभी भी धर्म-निरपेक्ष न रह सका। इस देश की धार्मिक प्रवृत्तियाँ हमारे साहित्य को भी निरन्तर प्रभावित करती रहीं और परिणाम-स्वरूप उसे समयानुसार भिन्न-भिन्न स्वरूप प्राप्त होता गया। हिन्दी-काव्य की निर्गुण धारा और सगुण धारा इसी धार्मिक प्रभाव का परिणाम है। ये धार्मिक विचार धारा पर आधारित दोनों काव्य-धाराएँ हिन्दी में ही नहीं, वरन अन्य भारतीय भाषाओं के काव्य में भी हमें समान रूप से मिलती हैं। भारतीय लोकगीत धार्मिक भावना से इतने अधिक प्रभावित हैं कि जिन गीतों को हम सामाजिक अथवा पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित कहते हैं, उनमें से अधिकांश गीतों के मूल में भी हम धार्मिक भावना ही देखते हैं।

निमाड़ी में उपलब्ध धार्मिक गीत दो भागों में विभाजित किये जा सकते हैं—निर्गुण धारा के गीत और सगुण धारा के गीत। पहिले संत सिंगा, उसके सम्प्रदाय तथा अनामी सम्प्रदाय की जो रचनाएँ की गई हैं, वे निर्गुण धारा की ही रचनाएँ हैं। व्रत सम्बन्धी गीत सगुण धारा के अन्तर्गत हैं। निर्गुण धारा के गीत एक मात्र पुरुषों के ही द्वारा गाये जाने वाले धार्मिक गीत हैं, पर ये सगुण धारा के गीत स्त्रियों के द्वारा ही विभिन्न धार्मिक पर्वों पर और व्रतों के अवसर पर गाये जाते हैं। शीतला माता के गीत, नाग पंचमी के गीत, जन्माष्टमी के गीत, गणगौर के गीत, हरतालिका के गीत, मानता के गीत, शारदा माता के गीत और तीर्थ-यात्रा के गीत ऐसे ही गीत हैं।

शीतलामाता के गीत

सभी स्थानों में किसी के माता की व्याधि से पीड़ित होने पर शीतला माता के गीत गाये जाते हैं। ज्वर-विज्ञान में पर्याप्त खोज होने के पश्चात् भी ग्रामीण जनता और नगरों तथा शहरों की भी अशिक्षित जनता की माता की बीमारी के सम्बन्ध में पुरातन काल से चली आई धारणा का अन्त नहीं हुआ। आज भी शीतला माता के प्रकोप से ही माता अथवा चेचक की व्याधि से पीड़ित होने की धारणा ज्यों की त्यों बनी हुई है और इस व्याधि से ग्रसित होने पर शीतला माता की प्रसन्नता के लिये उनका पूजन किया जाता है तथा उसके गीत गाये जाते हैं। मध्यभारत क्षेत्र के निमाड़ जिले में गाया जाने वाला शीतला माता का एक गीत इस प्रकार है—

पान छायो माण्डवो, फुल छाई बाड़ी,
फूलन छावल सीतला माता ऊठी।

रतन कंचौड़ा दूध पियन्ता,
मारा नाना भाई ये देखया
त्यार मारी सीताबाई ये—
लिमलूण कीदा ॥

"हरे पत्तों से मण्डप छाया हुआ है और बाड़ी फूलों से छा दी गई है। फूलों से छाये स्थान में शीतला माता बैठी है। हमारे अमुक भाई शीतला माता को रत्न-जटित कटोरे में दूध पीती देख रहे हैं। यह देखकर हमारी सीताबाई ने नीम धारण कर ली।"

ग्रामों में शीतला माता की प्रसन्नता के लिए स्त्रियों को विशेष कर माता की व्याधि से ग्रसित बालक अथवा बालिका की माता को अपने समस्त शरीर पर नीम की पत्तियाँ धारण करते देखा जाता है।

उक्त गीत में जहाँ नाना भाई शब्द है, वहाँ माता की व्याधि से ग्रसित व्याधि के पिता और दूसरे निकट सम्बन्धित पुरुष का तथा सीताबाई के स्थान पर उस पुरुष की स्त्री का नाम लेकर गीत आगे बढ़ाया जाता है।

नागपंचमी के गीत

नागपंचमी का त्यौहार प्रति वर्ष श्रावण शुक्ला पंचमी को मनाया जाता है। भारत के अधिकांश भाग में इस दिन नाग-पूजा होती है। लोग दिन भर उपवास करते और रात्रि को पूजा करते हैं। ग्रामों में यह एक विशेष त्योहार माना जाता है। कहीं-कहीं इस दिन नाग-पूजा की पौराणिक कथा भी सुनी जाती है। खरगोन क्षेत्र में नागपंचमी के दिन स्त्रियों-द्वारा नाग-नाथन लीला का एक गीत गाया जाता है। मुझे यह गीत इन्दौर के श्री भीकाजी बिल्लोरे अवकाश-प्राप्त शिक्षाधिकारी से प्राप्त हुआ है।[1]

इस गीत के अज्ञात लोककवि ने बालकृष्ण के गेंद खेलने और नाग नाथने का जो क्रमबद्ध वर्णन किया है, उससे नाग नाथन लीला का एक सजीव चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। गीत की कोमल कान्त शब्द-योजना और माधुर्य दर्शनीय है। इस गीत में वात्सल्य रस, शान्त रस, वीर रस और करुण रस का प्रवाह एक साथ ही प्रवाहित देख लोक कवि के रचना-चातुर्य पर अनायास ही हमारे मुंह से 'वाह-वाह!' निकल पड़ता है। यह गीत स्त्रियों-द्वारा विशेष रूप से गाया जाता है, पर इसे पुरुष भी गाते देखे जाते हैं।

---

१. गीत सं० ३८।

जन्माष्टमी के गीत

निमाड़ में गाये जाने वाले जन्माष्टमी के गीत कृष्ण-जन्म और बाल-कृष्ण की लीलाओं से ही सम्बन्धित होते हैं। इस प्रकार के अनेक गीत इस क्षेत्र में प्रचलित हैं।

कंस के कारागार में जन्म होने के पश्चात् वसुदेव नवजात कृष्ण को अपने मित्र नंद के घर गोकुल पहुँचा देते हैं। इस समय देवकी के द्वारा कृष्ण को दिया गया उपदेश जन्माष्टमी के अवसर पर गाये जाने वाले एक गीत में निहित है।

देवकी जानती है कि यशोदा उसके बालक को प्राणों की तरह प्यार करेगी और उसे वहाँ किसी प्रकार का कष्ट न होगा, किन्तु माता का हृदय बड़ा विचित्र होता है। यह सब जानते हुये भी कृष्ण के उसकी गोद से पृथक् होते समय वह अधीर हो जाती है। एक ओर वह अपने बच्चे को गोकुल भेजकर कंस से उसके प्राण बचाने को चिन्तित है और दूसरी ओर वह उसके गोकुल में बीतने वाले मातृ-विहीन जीवन की कल्पना कर दुखी होती है। उसके द्वारा दिये गये उपदेश में वात्सल्य के अजस्र स्रोत के अतिरिक्त मातृ-हृदय की वेदना स्पष्ट प्रतिबिम्बित होती दृष्टिगोचर होती है।[1]

हरीतिका (काजलतीज) का गीत

हरीतिका स्त्रियों का सर्व श्रेष्ठ व्रत समझा जाता है। यह व्रत प्रति वर्ष भाद्र शुक्ल तृतिया को मनाया जाता है। कुंवारी कन्याएं सुयोग्य वर पाने के लिये तथा विवाहित स्त्रियाँ अपना सौभाग्य सुरक्षित रखने की कामना से निर्जला उपवास करती हैं। जब तक उस दिन अर्ध रात्रि को गौर-पूजन नहीं हो जाता और वे पण्डित से व्रत की कथा नहीं सुन लेतीं, तब तक अपने मुँह में जल की एक बूँद भी नहीं डालतीं। पार्वती के द्वारा शिव की प्राप्ति की कथा ही हरीतिका-व्रत की कथा होती है। स्त्रियों का यह दिन तरह-तरह की कथा-कहानियाँ कहने-सुनने और गाने-बजाने में ही बीतता है। हमें इस व्रत पर पूजा के समय गाया जाने वाला एक सुन्दर गीत प्राप्त हुआ है।[2]

गणपति-पूजन का गीत

भाद्र शुक्ल चतुर्थी गणेश चतुर्थी कहलाती है। इस दिन गणेश की स्थापना होती है। इस दिन से कहीं सात दिन तक और कहीं १० दिन तक (अनन्त चतुर्दशी तक) गणेशोत्सव होता रहता है। इस उत्सव में स्त्री-पुरुष सभी

---

१. गीत संख्या ३९। २. गीत संख्या ४०।

सम्मिलित होते हैं, पर भजन आदि प्रायः पुरुषों के द्वारा ही होता है। इसके पश्चात् पौष मास में पुनः एक गणेश चतुर्थी होती है। यह विशेषकर स्त्रियों का ही त्योहार होता है। इस दिन स्त्रियाँ दिन भर उपवास करतीं और रात्रि को चतुर्थी के चन्द्र का उदय होने पर अर्घ्य देतीं और पूजन करती हैं। इस दिन निमाड़ी बहिनें जो गीत गाती हैं, उसमें गणेश जी की वन्दना रहती है। गीत का भावार्थ इस प्रकार है :—

"हे गणपति देव, हमारी सेवा स्वीकार कीजिये। हे सुण्डवाले स्वामी, हमारे हृदय का ताला खोलिये। मैं आपको जो जल चढ़ा रही हूँ वह विशुद्ध नहीं है, उसे मछलियाँ बिगाड़ चुकी हैं। चढ़ाया जाने वाला चन्दन बनिया के द्वारा अशुद्ध किया जा चुका है। फूल भ्रमर-द्वारा अशुद्ध किये जा चुके हैं और मैं आपको चढ़ा रही हूँ। इन पदार्थों के अछूते न होने पर ध्यान न दीजिये और मेरी सेवा स्वीकार कीजिये।[1]"

यह गीत अन्य मंगल कार्यों के आरम्भ में भी गाया जाता है।

सांझी के गीत

वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर विपुल जल-तृप्ता प्रकृति बड़ी सुहावनी जान पड़ती है। उसके अंग-अंग हरित पल्लव-विभूषित हो विविध पुष्पों से आच्छादित हो जाते हैं। प्रकृति का यह सहज शृंगार जन-मन विमुग्ध कर देता है। हरे-भरे खेत, सुकोमल हरित दूर्वा से पूरित वनस्थली, कल-कल करती सरिताएँ, मधुर संगीत की गति लेकर नृत्य करते निर्झर, निरभ्र नीलाम्बर, सभी एक से एक बढ़कर एक सौन्दर्य-स्रोत अनायास ही हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते जान पड़ते हैं। आश्विन मास आरम्भ होता है ओर साँझी-व्रत के मनोमुग्धकारी दिन आ जाते हैं। निमाड़ी प्रदेश की बालिकाएँ नवोत्साह और नव उमंग के साथ व्रत की साधना में तल्लीन हो जाती हैं।

साँझी मुख्यतः कन्याओं-द्वारा किया जाने वाला व्रत है, जिसे वे विवाह के पूर्व तक प्रति वर्ष बड़े उत्साह और आह्लाद से करतीं हैं। यह एक कलापूर्ण त्यौहार है। इस त्यौहार के आरम्भ होते ही बालिकाएँ घर की दीवार गोबर से लीपकर उस पर सांझी की विभिन्न आकृतियाँ बनाती हैं और उन्हें सुन्दर फूलों से सजाती हैं। यह त्यौहार निमाड़ के अतिरिक्त मालवा और पंजाब में भी मानाया जाता है। व्रत-साधना का ढंग सभी स्थानों में प्रायः समान ही है। व्रत-महोत्सव आश्विन कृष्ण प्रतिपदा से आश्विन शुक्ल प्रतिपदा तक चलता रहता है। प्रति दिन दीवार पर नई-नई आकृतियाँ बनाई जाती हैं। विविध

---

१. गीत संख्या ४१।

पुष्पों की पखुरियों से सुसज्जित की जातीं और सांझी के गीत गाकर आनन्द मनाया जाता है। यह "सांझी-पक्ष" कहलाता है।

प्रथम दिन सांझी के स्वागत में बड़ा सुन्दर और भाव-पूर्ण गीत गाया जाता है। गीत में कहा गया है :—

"संध्या हो गई। दीपक से बत्ती मिल गई। ओ मेरी लक्षाधीश गुणवन्ती संध्या आ, तेरा स्वागत है।"

"हे मेरी बहू, प्यारी बहू, मैं तुझ से पूछती हूँ कि तेरा लक्षाधीश पति कहाँ है? ओ मेरी मेघवर्णी गुणवन्ती संध्या आ।"

"मेरा दीनदायल केसरिया वस्त्र धारण किये कचहरी में सरदारी कर रहा है। वह रात होने पर रंगमहल में आ जायगा।"

"हे आम के वन में रहने वाली कोयल, मैं तुझसे पूछती हूँ कि तेरा वह लखपती सोगटा (नर कोयल) कहाँ है?"

"मेरा वह दयालु सोगटा अभी वन के फल खाने में व्यस्त है। वह रात होने पर कोयल के पास आ जायगा।"[१]

संध्या के स्वागत के साथ ही प्रेमी और प्रेमिका के मिलन की स्वाभाविक कल्पना ही इस गीत की विशेषता है। बालिकाएँ जब यह गीत सस्वर गाती हैं, तब गीत की मधुराई कई गुनी बढ़ जाती है और सुनने वालों का ध्यान अनायास ही उस ओर आकर्षित हो भाव और संगीत के माधुर्य में खो जाता है।

द्वितीया सांझी व्रत का दूसरा दिन होता है। इस दिन प्रथम दिवस की आकृति गोबर से लीप कर मिटा दी जाती है और वहाँ द्वितीया के चन्द्र की आकृति तथा चौरस पाट बना दिया जाता है। यह चौरस पाट पूनम पाटलौ कहलाता है। इस दिन गाये जानेवाले गीत में संध्या के द्वारा हरा गोबर, एक टोकनी फूल, आभूषण और मेवा-मिठाई माँगने तथा इन वस्तुओं के दादाजी के द्वारा सड़क, बागीचे, सराफा और हलवाई के यहाँ से लाने की बात कही गई है।[२]

इसी प्रकार प्रतिदिन नई-नई आकृतियाँ बनाकर फूलों से सजाई जातीं और बालिकाएँ समूह में संध्या के नये-नये गीत गाती हैं। सांझी व्रत का सोलहवाँ दिन बड़े समारोह का दिन होता है। इस दिन कुमारी संध्या विवाहित हो रानी बनकर बालिकाओं से बिदा ले ससुराल चली जाती है। अन्तिम दिवस गाये जाने वाले गीतों में से एक गीत बहुत ही भाव-पूर्ण है।[३]

---

१. गीत संख्या ४२। २. गीत संख्या ४३। ३. गीत संख्या ४४।

नवदुर्गा के गीत

सांझी पक्ष समाप्त होते ही नव दुर्गा पर्व आरम्भ हो जाता है। आश्विन शुक्ल द्वितीया विजया दशमी तक नवदुर्गा-व्रत चलता रहता है। सभी व्रतों और त्योहारों के पीछे हमारी एक धार्मिक भावना और सांस्कृतिक परम्परा है, और है उस परम्परा से संलग्न लोकगीतों की एक सुव्यवस्थित शृंखला। इस शृंखला की कड़ियाँ एक-एक निश्चित समय पर झनझनाकर संगीत बखेर देतीं और हमारे व्रत-त्योहारों का आनन्द चौगुना हो उठता है। नवदुर्गा पर्व में गाये जाने वाले अनेक गीत निमाड़ी-लोक-साहित्य में उपलब्ध हैं। इन गीतों में प्रायः सभी गीत राधा-कृष्ण की विविध लीलाओं से सम्बन्धित ही हैं। ऐसा जान पड़ता है कि राधा को जगत्-जननी दुर्गा का प्रतीक मानकर ही ये गीत गाये जाते हैं। खरगोन-निमाड़ में गाये जाने वाले एक गीत में कृष्ण के द्वारा राधिका की गागर भर देने का मनोमुग्धकारी दृश्य उपस्थि किया गया है।[1]

शारदा माता का गीत

दीपावली की लक्ष्मी-पूजन के पश्चात् शारदा (सरस्वती) पूजन किया जाता है। सरस्वती की वन्दना में गाया जाने वाला एक गीत परिशिष्ट में दिया गया है। गीत का भावार्थ इस तरह है—

"हे शारदा माता, तू समुद्र की तरह गंभीर है, मैं तेरे चरणों में प्रणाम करती हूँ। छत्र छाया में बच्चा खेल रहा है, जिसका तेरी कृपा से बाल भी बाँका नहीं होता।"

"हे शारदा माता, तू फूलों से शृंगार किये हुए है और पैरों में सुन्दर पायल है, जिनकी रुनझुन झंकार हो रही है।"

"हे माता, तू मेरे हृदय में प्रवेश कर, हृदय में तेरे पायल की झंकार हो। हे शारदा माता, तू हमारी भूलों को क्षमा कर दे।"

इतनी प्रार्थना के पश्चात् पुजारिन अनुभव करती है कि "शारदा माता उसके हृदय में बैठ गई है। वह अपने हृदय में उसकी पायल की घुंगरुओं की झंकार सुन रही है। उसने उसकी भूलें क्षमा कर दी हैं।[2]"

गनगौर के गीत

गनगौर के गीतों को भी धार्मिक गीतों के ही अन्तर्गत रखना उचित होगा। उत्तर प्रदेश में जिस प्रकार चैता के गीत प्रसिद्ध हैं, उससे कहीं अधिक

१. गीत सं० ४५। २. गीत सं० ४६।

प्रसिद्धी राजस्थान, मालवा और निमाड़ में गनगौर के गीतों की है। धार्मिक विश्वास के अनुसार गनगौर शिव-पार्वती का रूप माना जाता है। गनगौर के साथ 'ईसर' की भी स्थापना की जाती है, जो शिव का रूप माना जाता है। इस प्रकार गनगौर-ईसर को शिव-पार्वती का रूप मानकर उनका पूजन किया जाता और उन्हें प्रसन्न करने के लिये उनके सामने गान-नृत्य का आयोजन किया जाता है। निमाड़ी में गनगौर-ईसर को शिव-पार्वती, ब्रह्मा-सावित्री, विष्णु-लक्ष्मी, चन्द्रमा-रोहिणी अथवा सूर्य-रनु का भी रूप मानते हैं। निमाड़ी-भाषी भू-भाग में गनगौर के प्रायः सभी गनगौर को रमु अथवा रनुबाई कहा गया है और उसके रूप प्रवास आदि की अपने ढंग पर कल्पना कर ली गई है। एक निमाड़ी गीत में गनगौर (रनुबाई) का रूप-वर्णन बड़ा अलंकृत है। इसे लोक कवि का नख–शिख-वर्णन ही कहना चाहिये। इसमें सिर को एक बड़े नारियल और ललाट को उदय हुए सूर्य की उपमा वास्तव ही बड़ी सुन्दर और अपूर्व है। इसी प्रकार उसकी भोहों को देखकर भ्रमरी के भ्रम में पड़ जाने की कल्पना, जिह्वा को कमल की पखुरी तथा दोनों कंधों को दी गई दो कलशों की उपमा भी अनूठी है।[1]

निमाड़ी में यह त्योहार चैत कृष्ण दशमी से चैत शुक्ल तृतीया तक मनाया जाता है। प्रत्येक सम्पन्न गृह में गौर-ईसर की स्थापना की जाती और बड़ी श्रद्धा से उसका पूजन किया जाता है। निमाड़ी भाषी भू-भाग में मनाये जाने वाले इस त्योहार में स्त्रियाँ विशेष उल्लास और आनन्द का अनुभव करती हैं। गनगौर के ये नौ दिन निमाड़ी बहिनों को एक वर्ष में प्राप्त होने वाले विशेष आनन्द के दिन माने जाते हैं। त्योहार की यह अवधि व्रत, उपवास, पूजन-अर्चन और नृत्य-गान में ही व्यतीत होती है।

पहिले दिये गये रूप-वर्णन के गीत के अतिरिक्त गनगौर के भक्ति-पूर्ण गीत भी इन दिनों गाये जाते हैं। इस प्रकार के एक गीत में गनगौर के पावा-गढ़ से आने का उल्लेख है और उससे अपने घर ठहराने की प्रार्थना की गई है।[2]

अन्तिम दिवस गनगौर और ईसर को जलूस के साथ जलाशय पर ले जाने के पूर्व एक बड़ा सुन्दर गीत गाया जाता है। पूर्ण गीत प्रश्नोत्तरी में है।[3]

तीर्थयात्रा के गीत

तीर्थयात्रा हमारी पुरातन परम्परा है। हमारे आज के तीर्थ-स्थान प्रयाग-राज, काशी, बद्रिकाश्रम, केदारेश्वर, पुष्कर, गया, पुरी, रामेश्वरम्, द्वारका

---

१. गीत सं० ४७। २. गीत सं० ४८। ३. गीत सं० ४९।

आदि प्राचीन काल में विद्या के प्रमुख केन्द्र और भगवद्भक्त ऋषि-मुनियों के निवास स्थान रहे हैं। वहाँ तीर्थ-यात्रा के बहाने सहस्रों नर नारी जाकर शिक्षा से लाभ उठाते और ऋषि-मुनियों के दर्शन तथा उपदेशों से अपने जीवन को सफल अनुभव करते थे।

निमाणी में गाया जाने वाला एक यात्रा-गीत परिशिष्ट में देखिये।[1]

ओंकारेश्वर मान्धाता की यात्रा का निमाड़ी-जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। निमाड़ी जनता सहस्त्रों की संख्या में प्रतिवर्ष कार्तिक पूर्णिमा और महाशिवरात्रि के अवसर पर तीर्थ-स्थल में जाती और भगवान ओंकारेश्वर का दर्शन-पूजन कर अपने को धन्य मानती है। इस अवसर पर गाये जाने वाले भी कुछ गीत निमाणी में प्राप्त हैं।[2]

जीवन-गीत

लोक गीतों का जन्म मानव-जीवन के साथ ही हुआ और जैसे-जैसे मानव-जीवन का विकास होता गया, वैसे-वैसे उसके विकास के विभिन्न स्तरों और उन स्तरों से सम्बन्धित भावनाओं को व्यक्त करने वाले गीत भी बनते गये। जीवन-विकास के साथ मानव आदिम अवस्था के विच्छृंखल और अव्यवस्थित जीवन को त्याग कर आगे बढ़ा और उसके पारिवारिक जीवन का निर्माण हुआ। इस जीवन के साथ ही पारिवारिक और सामाजिक जीवन के पारस्परिक व्यवहार को व्यक्त करने वाले लोकगीत बने।

नारी परिवार-चक्र की केन्द्र-बिन्दु और परिवार के अन्य सदस्य उस चक्र की परिधि का निर्माण करने वाले बिन्दु हैं। यदि हम नारी-जीवन की ही विभिन्न स्थितियों के चित्रों पर दृष्टिपात कर लें, तो लगभग पूर्ण परिवारिक और सामाजिक जीवन का चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है।

उसके बाल्यकाल के कुछ भोले दिवस लाड़-प्यार में अवश्य बीतते, पर शैशव के सोपान पर पैर रखते ही वह माता-पिता और परिवार के चिन्ता का कारण बन जाती और इसी दिन से उसके जीवन की साधना आरम्भ हो जाती है।

माता पुत्र का जन्म होते ही अपने आप को एक बड़े संकट से घिरी देखती है। जन्म के दिन ही उसके सामने बालिका के भावी जीवन और उस जीवन से सम्बन्ध कठिनाइयाँ चित्रपट के चित्रों की तरह उपस्थित हो जाती हैं। उसके सामने उस बालिका के विवाह की चिन्ता के साथ ही अपनी आर्थिक

---

१. गीत सं० ५० । २. गीत सं० ५१ ।

कठिनाई और उस कठिनाई के फल-स्वरूप उत्पन्न दुरवस्था का चित्र कल्पना के पर्दे पर उभर जाता है और वह सिहर उठती है। जिस पुत्री को जन्म देकर उसकी बन्ध्यत्व के अभिशाप से मुक्ति हुई और उसका नारी-जन्म सफल हुआ, उसी को वह अपने जीवन का अभिशाप मानने को विवश है। निमाड़ी के एक गीत में यही भावना व्यक्त हुई है।[१]

अविवाहिता पुत्री

बालिका किशोरी भी नहीं होने पाती कि उस पर समाज के बन्धन लगना आरम्भ हो जाते हैं। उसे मन चाहे खेलने-कूदने और बाहर आने-जाने पर भी रोक लगा दी जाती है। निमाड़ी के एक लोकगीत में किशोरावस्था की ओर बढ़ती हुई एक भोली बालिका को अपने पिता से खेलने के लिये बाहर जाने के पूर्व उसे कुछ उपदेश देकर लोक-मर्यादा में बाँध देते हैं।[२]

नारी का गृहिणी-रूप

विवाह के पश्चात् नारी गृहिणी-रूप धारण कर लेती है। उसके पति का घर ही उसका घर हो जाता है। धीरे-धीरे गृह-व्यवस्था का उत्तरदायित्व उस पर आ जाता है। आरम्भ में गृह-स्वामिनी के समस्त अधिकार प्राप्त होते हुये भी वह अपने को एक अधिकार-हीन गृह सेविका के रूप में देखती है। सास, श्वसुर, देवर, जेठ, ननद, पति आदि सभी की उसकी गतिविधियों पर तीक्ष्ण दृष्टि रहती है। छोटी-छोटी त्रुटियों के लिये वह डाँटी जाती है, दंडित की जाती, उपेक्षित होती, अपमानित होती और सब की टीका-टिप्पणी एवं व्यंग्य की शिकार होती है। वह परिवार के सदस्यों को प्रसन्न और सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करती है, पर लाख प्रयत्न करने पर भी अपने को तिरस्कार और प्रतारणा से नहीं बचा पाती। एक निमाड़ी गीत में उसकी इसी स्थिति का चित्रण है।[3]

विवाह होने को थोड़ा भी समय नहीं हो पाता कि घर भर के लोग उसे पुत्रवती देखने को उतावले हो उठते हैं और उनकी इस इच्छा की पूर्ति में ज्यों-ज्यों विलम्ब होता जाता है, त्यों-त्यों नव वधू के प्रति उसकी खीझ बढ़ती जाती है। वह स्वयं भी संतानवती होने में गौरव अनुभव करती है। एक निमाड़ी गीत में वधू की अधीरता का बड़ा भावना-पूर्ण चित्र अङ्कित हुआ है।[४]

नारी का आत्मोत्सर्ग

हमारी समाज की परम्परागत भावना पति को पत्नी का सर्वस्व स्वीकार करती आई है। नारी पति-सेवा में अपने जीवन का उत्सर्ग कर देना ही अपना

१. गीत सं० २४। २. गीत सं० १०। ३. गीत सं० ५२। ४. गीत सं० २।

महान् कर्तव्य मानती है। यही हमारी संस्कृति की विशेषता है। भारतीय नारी का यह जीवनोत्सर्ग किसी भी अभारतीय समाज में दुर्लभ है। पत्नी को अपने पतिगृह में कितना ही कष्ट क्यों न हो, उसका पति कितना ही पतित क्यों न हो और उसके व्यवहार से उसका जीवन नारकीय ही क्यों न बनता जा रहा हो, किन्तु वह उसके अहित की कभी कल्पना नहीं करती। उसका कुछ क्षण का वियोग भी उसकी चिन्ता का कारण बन जाता है और उसका हृदय पति-दर्शन को व्याकुल हो उठता है। एक गीत में एक निमाड़ी नारी की वेदना इस प्रकार व्यक्त हुई है।[1]

प्रेम-कलह

यौवन के मतवाले दिनों में उद्वेलित पति-पत्नी का प्रेम-कलह भी बड़ा आनन्द दायक होता है। एक का रूठना, दूसरे का मनाना, मानकर फिर रूठ जाना नव-नेह की वर्षा-सी करने लगते हैं। लोकगीत मानव जीवन के चित्र हैं, अतः उनमें इस प्रकार के चित्रों का अभाव नहीं है।

तरुण हृदय में अनेक आकांक्षाएँ होती हैं, एक गीत में स्त्री अपने पति से टीकी बनवा देने की प्रार्थना करती है। पति विनोद में उससे कहता है कि "तुम्हें टीकी शोभा न देगी, क्योंकि तुम रूप की साँवली हो।" यह सुनते ही पत्नी की स्नेहपूर्ण मनुहार कटु हो उठती है। वह तिनक कर कहती है :—

"प्रिय हम साँवली हैं। हमारी माँ-मौसी भी साँवली हैं। हमारी कूख का बच्चा भी साँवला है। तुम हमारे घर न आना, नहीं तो तुम भी साँवले हो जाओगे।" कितना स्नेह-सना उत्तर है पत्नी का!

स्त्री के दो ही आश्रय हैं—पति-गृह और पितृ-गृह। जब वह रूठ जाती है, तब वह पति-गृह त्यागकर पितृ-गृह चली जाना चाहती है। एक लोकगीत की नायिका भी यही करती है।

वह घर से निकलकर पितृ-गृह का मार्ग ग्रहण करती है। मार्ग में वह पनिहारे से अपने मायके का रास्ता पूछती है। वह कहता है :—

"हे देवी, हम क्या जाने तुम्हारे मायके का मार्ग कौन-सा है। तुम आगे जाकर के गाय चराने वाले ग्वाले से पूछो, वह तुम्हें बतलायेगा।"

वह आगे बढ़ती है और कहती है :—

"हे धेनु चराने वाले गायों के स्वामी, क्या तुमने मेरे मायके का रास्ता देखा है? मैं क्रोध से बाहर निकल आई हूँ।"

---

१. गीत सं० ३२।

पति से रूठी पत्नी आगे बढ़ती जाती है और वह ग्वाले के पश्चात् हल हाँकते किसान और सूत कातती वृद्धा से अपने पितृ-गृह का पता पूछती है। वृद्धा उसे उत्तर देती है :—

"सामने जो केले-खजूर के वृक्षों से भरा हुआ वन दिखाई देता है, वहीं तुम्हारा मायका है। बेटी गवरल, तुम वहीं चली जाओ।"

पत्नी के गृह-त्याग करने पर पति के होश ठिकाने आ जाते है। वह नहीं जानता था कि छोटे से विनोद का इतना बुरा परिणाम होगा। वह अपनी पत्नी की खोज में निकलता है।

वह आगे जाकर पनिहारिन से पूछता है—"क्या तुमने मेरी गौर वर्णी पत्नी देखी है? मैंने उससे हँसी की थी। वह मेरी हँसी से ही अप्रसन्न होकर घर से निकल आई है।"

वह पनिहारिन के पश्चात् ग्वाले, किसान और सूत काटने वाली वृद्धा से अपनी पत्नी का पता पूछता है। वृद्धा बतलाती है :—

"सामने दिखाई देन वाले केले खजूर से भरे वन में तुम्हारो गौर वर्णी स्त्री है, तुम आगे जाकर उसे देखो।"

अब पति वृद्धा के बतलाये अनुसार वहाँ जाता और अपनी पत्नी से मिलता है।

वह अपनी पत्नी से बोला—"प्रिये, तुम्हें टीकी बड़ी सुन्दर जान पड़ेगी। मैंने तो तुमसे हँसी की थी, इसी में तुम रुष्ट होकर निकल आई।"[१]

इस गीत में हम ग्राम-जीवन का एक स्पष्ट चित्र देखते हैं। ग्राम-कूप से जल भरने वाले पनिहारे और पनिहारिन, गाय चराते ग्वाले, हल चलाते किसान, सूत कातती वृद्धा, ग्राम के बाहर केले और खजूर का वन, सभी का इस गीत में स्थान है। यही तो है हमारा प्राचीन ग्राम-जीवन और ग्राम-व्यवस्था। निमाड़ में केले के वृक्षों के बाग और खजूर के वृक्ष आज भी अधिक दिखाई देते हैं।

पति के रूठने पर पत्नी का झुक जाना और पत्नी के रूठने पर पति का पानी-पानी हो जाना ही तो दो विभिन्न परिवारों में जन्म ग्रहण करने वालों को एक सूत्र में आबद्ध कर जीवन के पथ पर आगे बढ़ाने में समर्थ होते हैं। यदि यह न हो, तो पति-पत्नी के जीवन में न जाने कितनी अस्थिरता आ जावे।

पति को पनिहारिन, ग्वाले, किसान और वृद्धा से अपनी पत्नी का पता पूछते देख हमें अनायास ही गोस्वामी तुलसीदास-द्वारा चित्रित राम के द्वारा पशु-पक्षी और वृक्ष-लताओं से सीता का पता पूछने का स्मरण हो आता है।

१. गीत सं० ५३।

कर्कशा नारी

गृहिणी गृह-संचालिका है, पर हमारे समाज में कर्कशा स्त्रियों का भी अभाव नहीं है। एक निमाड़ी गीत में ऐसी ही एक कर्कशा नारी का चित्र चित्रित किया गया है। बेचारा पति उसकी नादानी से बड़ा दुखी है।[१]

नारी-जीवन का आदर्श

प्रत्येक माता-पिता अपनी पुत्री का ससुराल-जीवन सुखमय देखने के इच्छुक होते हैं और इसीलिये वे विवाह के पूर्व अनुकूल घर और वर ढूंढ़ने का प्रयत्न करते हैं। अपनी बेटी को ससुराल बिदा करते समय उसे वे तरह तरह के उपदेश देकर यह प्रयत्न करते हैं कि वह ससुराल में सब की प्रिय बन कर रहे। इस प्रकार के उपदेश पूर्ण गीतों का भी निमाड़ी-लोक-साहित्य में अभाव नहीं है।[२]

स्त्रियों में लज्जा स्वाभाविक ही होती है। वे बात-बात में लज्जा जाती हैं। गोस्वामी तुलसीदास की ग्रामवधुओं के सीता से पूछने पर "सुमुखि, कहहु को आहिं तुम्हारे ?" उसने लजाते हुए उन्हें अपने नेत्रों के संकेत से राम के अपने पति होने की बात कह दी थी। नारी की यह लज्जाशीलता एक निमाड़ी गीत में भी व्यक्त हुई है।

आढ़े-टेढ़ प्रवाह के साथ नदी बह रही है। समीप ही जामुन की छाया में बच्चा खेलता हुआ, पत्तियाँ तोड़ रहा है। बच्चे की माता डुबकी लगा-लगा कर नदी में नहा रही है। उसे इस तरह नहाती देख उसकी सखि उससे पूछती है कि "सखि, यदि तेरे पति ने तुझे इस तरह नहाते देख लिया, तो तू उसे क्या उत्तर देगी ?"

वह मुस्कराती हुई बोली—"सखि, मैं हाथ जोड़कर सिर झुका दूंगी और अपने नेत्रों के संकेत से उन्हें उत्तर दे दूँगी।[३]"

इस लोकगीत का मनोवैज्ञानिक चित्रण दर्शनीय है।

मातृरूप में नारी

नारी जहाँ कन्या, पत्नी, गृहिणी और बहन है, वहाँ वह माता भी है। मातृत्व में नारी-जीवन का पूर्ण विकास होता है। जिस दिन एक नारी को मातृत्व प्राप्त हो जाता है, उस दिन वह अपना जन्म सफल मान लेती है। इस मातृत्व की प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये वह अपना सर्वस्व त्याग करने,

---

१. गीत सं० ५४। २. गीत सं० ७१। ३. गीत सं० ५५।

अपने समस्त सुखों को बलि देने, अपार कष्टों को सहन करने और विविध साधनाओं में अपने शरीर को होम देने को तैयार रहती है। मातृत्व प्राप्त करने पर उसके जीवन को एक नया मोड़ मिलता है। उसका जो स्नेह अभी तक केवल पति तक ही सीमित था, वह अब सन्तान तक विकसित हो जाता है। नारी हृदय की इस मातृत्व-भावना की अभिव्यक्ति एक निमाड़ी में बड़ी सुन्दरता से चित्रित हुई है।[1]

स्वभाव-चित्रण

एक लोक गीत में एक स्वप्न का चित्रण है। पत्नी के पूछने पर पति-द्वारा उस स्वप्न का अर्थ समझाया गया है। पति-द्वारा समझाये गये अर्थ में एक आदर्श परिवार के स्वभाव का चित्र है। इससे हमारे प्राचीन जीवन के रहन-सहन आदि का भी अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

प्रातःकाल सोकर उठने के पश्चात् पत्नी अपने पति को रात्रि में देखा स्वप्न बताती है और उससे उस स्वप्न का अर्थ पूछती है। वह बतलाती है—"हे प्रिय, मैंने रात को सोते समय एक स्वप्न देखा है, आप उसका अर्थ बतलाइये। मैंने स्वप्न में मानसरोवर देखा है और एक भरा-पूरा भण्डार देखा है। मैंने स्वप्न में बहती गंगा और भरी हुई बावली देखी है। मैंने स्वप्न में श्रावण की तीज भी देखी और कड़कड़ाती बिजली भी देखी है। मैंने स्वप्न में गोकुल का कृष्ण देखा और तरतराता बिच्छू भी देखा। मुझे स्वप्न में गुलाब का फूल दिखाई दिया और एक झिलमिलाता दीपक भी दिखाई दिया। मैंने स्वप्न में केले का एक सुकुमार वृक्ष देखा और अपनी बाड़ी का एक बाँझ वृक्ष भी देखा है। मुझे स्वप्न में एक पीत वस्त्र धारण करने वाली स्त्री दिखाई दी और मैंने उदय होता सूर्य भी देखा है। मेरे भोले पति मुझे इस स्वप्न का अर्थ बतलाइये।"

उपरोक्त गीत में देखे गये स्वप्न का जो अर्थ पूछा जा रहा है, वह ग्रामीण समाज की परम्परागत भावनाओं और धारणाओं का प्रतीक है। पति अपनी पत्नी-द्वारा पूछे गये स्वप्न का अर्थ इस प्रकार बतलाता है :—

"तुमने स्वप्न में जो मानसरोवर देखा है, वह तुम्हारा पिता है और भरे-पूरे भण्डार के रूप में तुमने अपने श्वसुर को देखा है। बहती गङ्गा के रूप में तुमने स्वप्न में अपनी माता और भरी हुई बावली के रूप में अपनी सास के दर्शन किये हैं। तुमने स्वप्न में जो श्रावण की तीज देखी,

१. गीत सं० २४।

वह तुम्हारी बहिन और कड़कती बिजली तुम्हारी ननद है। तुम्हें स्वप्न में तुम्हारा भाई गोकुल के कृष्ण के रूप में और देवर तरतराते बिच्छू के रूप में दिखलाई दिया। तुम्हारा स्वप्न में देखा गया गुलाब का फूल तुम्हारा बालक और झिलमिलाता दीपक तुम्हारा दामाद है। तुमने कोमल केले के वृक्ष के रूप में अपनी कन्या और बाड़ी के बाँझ वृक्ष के रूप में अपनी दासी देखी है। पीत वस्त्र धारण किये दिखाई देने वाली स्त्री तुम्हारी सौत की प्रतीक और उदय होता सूर्य तुम्हारा पति है।"

हिन्दी के अनेक कवियों के काव्य में प्रतीक-प्रयोग मिलता है, पर उक्त गीत का रचयिता भी प्रतीक-प्रयोग में किसी प्रकार पीछे नहीं है। उसने कुछ प्रतीकों के प्रयोग द्वारा कुछ पंक्तियों में ही पूर्ण परिवार-पितृ-गृह और श्वसुर-गृह के समस्त सदस्यों के स्वभाव तथा रहन-सहन और परस्पर के व्यवहार का चित्र बड़ी सुन्दरता से चित्रित कर दिया है। न केवल भावों की दृष्टि से, वरन काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से भी यह गीत अनुपम है।[१]

निर्धन-जीवन

हमने ऊपर निमाड़-वासियों के सुखी होने का उल्लेख किया है, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि इस भूभाग में निर्धनों का अभाव है। जिनके पास पर्याप्त भूमि और पशु सम्पत्ति है, वे निश्चय ही सुखी हैं, पर भारत के अन्य भागों की तरह इस भाग में भी निर्धनों की कमी नहीं है। आधे से अधिक व्यक्ति दूसरों के घर नौकरी अथवा मजदूरी करके अपना निर्वाह करते हैं। एक गीत में ऐसे ही निर्धन जीवन की कठिनाई का उल्लेख है। इस गीत में एक बहिन विवाह के अवसर पर अपने भाई को चूनर लाने का सन्देश भेजती हुई कहती है :—

"हे भाई, तुम्हारी बहिन के आंगन में पीपल का वृक्ष है। यह पहिचान देखकर तुम विवाह में आ जाना। आते समय अपने साथ चूनर ले आना। पर केवल मेरे लिये ही चूनर लाने से काम न चलेगा, यदि लाओ तो सभी के लिये लाना, नहीं तो अपने घर ही रहना, बिना चूनर के विवाह में न आना।"

भाई निर्धन है। वह सबके लिये तो क्या, केवल अपनी बहिन के लिये भी चूनर ले जाने में असमर्थ है। वह उत्तर देता है—

"हे बहिन, मेरे पास धन थोड़ा है और विपत्ति अधिक है, मैं तेरे दरवाजे कैसे आऊं ?"

---

१. गीत सं० ५६।

उत्तर में बहिन कहती है—

"यदि आवश्यकता पड़े तो भाभी की बिन्दी किसी के घर गहन रख देना, पर हे भाई, चूनर अवश्य लाना।"[१]

निर्धन जीवन वैसे ही दुखी होता है, पर जब किसी निकट सम्बन्धी के घर विवाह, जन्मोत्सव आदि होता है और शिष्टाचार-वश वहाँ कुछ भेंट लेकर जाना आवश्यक होता है, तब निर्धन जीवन की वेदना चौगुनी हो जाती है।

(५) अन्य गीत

निमाड़ी के जिन गीतों पर पहिले प्रकाश डाला जा चुका है, उनके अतिरिक्त कुछ गीत ऐसे हैं, जिन्हें हम निश्चित रूप से किसी एक विषय के गीतों के साथ नहीं रख सकते। शिशु गीत, प्रभाती, सांध्य गीत, चक्की का गीत आदि ऐसे ही गीत हैं।

शिशु-गीत

शिशु-गीत जिन्हें अंग्रेजी में नर्सरी सांग्स (Nursery songs) कहा जाता है, अन्य लोकगीतों की तरह ही प्राचीन हैं। मार्कण्डेय पुराण में राजा ऋतुध्वज की रानी मदालसा के द्वारा शिशु गीत गाने का उल्लेख है। कृष्ण की बाललीलाओं के वर्णन भी माता यशोदा के द्वारा उन्हें सुलाते समय शिशु गीतों का गाया जाना बतलाया गया है।

जैनाचार्य शिलांक सूरिजी ने भी 'सुयजहवृत्ति' में शिशु गीतों का उल्लेख किया है। जैन साहित्य में भगवान महावीर की बाल लीलाओं को लक्ष कर शिशुगीत लिखे गये हैं। महाराष्ट्र में भी शिवाजी के बाल-जीवन के आधार पर मराठी में शिशु गीत पाये जाते हैं। यूरोपीय देशों में भी ऐसे गीतों का अभाव नहीं है। सभी भारतीय और अभारतीय भाषाओं के लोक साहित्य में शिशु गीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि अबोध बालक गीत का भाव नहीं समझते; तथापि गीत की स्वर लहरी उसके मस्तिष्क पर आश्चर्यजनक प्रभाव डालने की क्षमता रखती है। वह इसी प्रभाव से निद्रामग्न हो जाता है। एक विद्वान् लेखक का कथन है कि:—

"The best lullably would seem to be that sung naturally by peasant mothers with two or three words and sung on two notes a sort of soothing drive corresponding exactly to the sound of socking cradle and having apparantly the same effect on the nerves of the child".

---

१. गीत सं० ५७।

"सबसे अच्छा शिशु-गीत (लोरी) वह है, जिसे ग्रामीण माता अपनी स्वाभाविकता के साथ दो या तीन शब्दों में गाती है। वह अपने गीत के शब्दों को झूले की गति के अनुसार उसके आगे बढ़ने और पीछे हटने के साथ-साथ दुहराती जाती है। उसकी यह शब्दों की पुनरावृत्ति बच्चे के मस्तिष्क के ज्ञान तन्तुओं पर झूले की तरह ही शान्तिदायी प्रभाव डालती है और वह सान्त्वना अनुभव कर सो जाता है।"

इससे स्पष्ट है कि शिशुगीतों अथवा लोरियों में लय का प्रधान और भाव का गौण स्थान है। यदि हम लोक साहित्य में उपलब्ध शिशुगीतों को देखें, तो हमें उनमें किसी क्रमबद्ध और व्यवस्थित भाव का प्रायः अभाव ही मिलेगा। निमाड़ी के एक शिशु-गीत का भाव इस प्रकार है :—

"हत रे, कुत्ते को हाँक दो और मेरे छोटे रोते हुए बच्चे को चुप कर दो। मेरे छोटे भाई (बच्चा) की एक कपिला गाय है। उसे कौन दुहेगा और कौन जंगल चरने जाने वाली गायों के साथ मिलाने जायगा ? उसे बच्चे का काका दुहेगा और मामा मिलाने जायगा। उसका जितना दही-दूध रहेगा, वह सब हमारा बच्चा खायगा। अरे लड़के-लड़कियो, तुम सब खेलने जाओ, हमारा बच्चा खेलने के लिये जमकर बैठा है। वह जमीन से उठकर बाग में जाता है और बाग के फल तोड़कर खाता है।[१]"

गीत में कुत्ता हाँकने, बच्चे को चुप करने, कपिला गाय को दुहने और मिलाने, दूध दही खाने, लड़के-लड़कियों के उस शिशु के साथ खेलने को आने, और बच्चे के बाग में जाकर फल तोड़कर खाने की बात एक साथ ही कह दी गई है। जब तक बच्चा सो नहीं जाता, तब तक झूले की चर्रकचूँ के साथ वही गीत बार-बार चलता रहता है।

यह गीत पश्चिमी निमाड़ (खरगौन) से प्राप्त किया गया है; अतः इस पर गुजराती भाषा का प्रभाव दिखलाई देना स्वाभाविक है। पूर्वी निमाड़ में गाया जाने वाला एक शिशु गीत भी परिशिष्ट में दिया जा रहा है।[२]

जैसा कि श्री जीवण जी मोर्दा का कथन है—"शिशु-गीतों की भाषा और भाव अत्यन्त सरल होते हैं और उनमें वात्सल्य प्रवाहित होता है।

"The cradle songs of communities whether educated or uneducated all the simplest expressions of parental affection expressed in the most simple language."

---

१. गीत संख्या ५८। २. गीत संख्या ५९।

भाषा और भाव की सरलता ही इन गीतों की विशेषता है। इस सरलता के कारण छोटी-छोटी बहिनें भी ये गीत सरलता से गाकर अपने भाइयों को सुलातीं और इस प्रकार अपनी माँ की सहायता करती हैं।

बच्चों को बहलाने के गीत

बच्चों का स्वाभाव बड़ा विचित्र होता है। वे पल भर में हँसने लगते और पल भर में रोने लगते हैं। रोते बच्चे को समझा लेने में माताएँ और छोटी बहिनें बड़ी चतुर होती हैं। बच्चे के न रोने की स्थिति में भी उन्हें बहलाते रहना आवश्यक होता है, अन्यथा वे रोने लगते हैं। इस प्रकार बच्चों को बहलाने के लिये गाये जाने वाले गीत भी निमाड़ी-लोकसाहित्य में उपलब्ध हैं[१]।

लड़के-लड़कियों के खेल के गीत

लड़के-लड़कियों के भिन्न-भिन्न खेल होते हैं। उन खेलों का गीतों से सीधा सम्बन्ध नहीं होता, पर यदि खेल के साथ गीत का भी समन्वय हो जाय, तो खेल का आनन्द अधिक बढ़ जाता है। निमाड़ी में हमें कुछ ऐसे गीत मिले हैं, जिन्हें लड़के और लड़कियाँ खेलते समय गाकर अपने खेल का आनन्द बढ़ाते हैं।

गीत किसी सार्थक भाव के द्योतक नहीं हैं, उनमें एक तुकबन्दी-मात्र है। एक गीत में लटपट पगड़ी बाँधने, मियाँ की दाल पकाते समय दाढ़ी जलने और बीबी के ताने तोड़ने की बात कहकर हास्य का रंग भर दिया गया है।[२]

चक्की के गीत

चक्की चलाने का समय प्रायः रात्रि का तीसरा पहर है। रात्रि को सोने के पूर्व गेहूँ, ज्वार आदि पीसा जाने वाला अनाज साफ कर रख लिया जाता है और रात्रि के तीसरे पहर में उठकर पीसना आरम्भ कर दिया जाता है। जब दो स्त्रियाँ चक्की के दोनों ओर बैठकर एक साथ चक्की चलाती हुई गाती हैं, तब उन्हें बड़ा आनन्द आता है। चक्की की घुर-घुर के साथ उनकी स्वर-लहरी मिलकर बड़ी आह्लादकारी बन जाती है।

पीसते समय जो गीत गाये जाते हैं, वे पीसने का परिश्रम दूर कर देते हैं। वैसे तो चक्की चलाते समय गाने के कोई गीत निश्चित नहीं होते, पर प्रायः देखा जाता है कि सुखी जीवन व्यतीत करनेवाली स्त्रियों के गीतों में प्रेम की प्रधानता और दुखी स्त्रियों के गीतों में करुणा का प्रवाह रहता है। ऐसा जान पड़ता है मानो वे अपनी हितैषिणी बहिन चक्की को अपनी जीवन-गाथा सुना कर अपने हृदय का भार हलका कर रही हों। पीसते समय गाये जाने वाले

---

१. गीत संख्या ६०। २. गीत सं० ६१।

गीतों में सदाचार और धार्मिक भावना के चित्र भी होते हैं। ये गीत कोमल, मधुर और प्रभावपूर्ण होते हैं। सुनने वाले भी कुछ क्षणों को इन गीतों के प्रभाव में खो जाते हैं। ये गीत लम्बे भले ही हों, पर इनकी कड़ियाँ बहुत छोटी होती हैं। इनका चक्की चलाने की गति और उनकी ध्वनि से इतना निकट सम्बन्ध होता है, मानो पीसने वाली चक्की के वाद्ययंत्र के सहारे ही गा रही हो।

निमाड़ी का एक चक्की का गीत बड़ा सुन्दर है। केवल भावों की दृष्टि से ही नहीं, वरन साहित्यिक सौन्दर्य की दृष्टि से भी यह गीत बड़ा महत्वपूर्ण है।

इस एक ही गीत में रात्रि के सौन्दर्य के साथ ही मही भान और चक्की चलाने का चित्रण एवं भाई के आगमन का हर्ष भी उद्वेलित हो उठा है।[1]

१. गीत सं० १३१।

तीसरा अध्याय

निमाड़ी का कहानी-साहित्य

भारत में प्रचलित कथाएँ तीन रूपों में प्राप्त हैं—धर्मगाथा, लोकगाथा और लोक-कथा। यद्यपि इन तीनों प्रकार की कथाओं का स्वरूप एक दूसरे से भिन्न है; तथापि ये सभी कथाओं के रूप में हमारे यहाँ कही और सुनी जाती हैं। इनमें भिन्नता होते हुए भी एक समानता है, और वह यह कि तीनों में कथा तत्व है। सम्भवतः इसीलिए जन-सामान्य की दृष्टि में उनके सूक्ष्म भेद का स्थान नहीं है। इनमें से हम यहाँ लोककथाओं पर प्रकाश डाल रहे हैं।

लोककथा का स्वरूप

लोक कथा धर्मगाथा और लोकगाथा से सर्वथा भिन्न है। यदि हम यह कहें कि ऐतिहासिक सत्य धर्मगाथा और लोकगाथा से क्रमशः लुप्त होता हुआ लोककथा में बिलकुल लुप्त हो गया, तो हमारा ऐसा कहना अनुचित न होगा। ये जन-साधारण में प्रचलित अनैतिहासिक कहानियाँ मात्र हैं; यद्यपि ये कहानियाँ भी उद्देश्य-हीन नहीं होतीं। मनोरंजन उनका प्रधान गुण होता है, पर साथ ही उनसे किसी न किसी प्रकार की शिक्षा भी अवश्य मिलती है। इस प्रकार मनोरंजन के साथ ही शिक्षा देना इन कथाओं का उद्देश्य है। इनमें उपस्थित चूहे, बिल्ली, लोमड़ी, शेर, कौआ, सर्प आदि तक अपने कार्यों-द्वारा कभी हमें बुरों से सावधान करते, कभी भलों के प्रति सम्मान सिखाते और कभी निर्बलों की सहायता का पाठ पढ़ाते हैं। ला फाउण्टेन कहते हैं :—
"Fables in sooth are not what they appear. Our moralists are mice and such small dens. We yawn at sermons, but we gladly turn to moral tales and so amused we learn".[1]

डॉ० जान्सन ने भी "Life of Gay" में लिखा है :—

"A fable or aplogue seems to be, in its genuine state, a narrative in which beings irrational and sometimes inanimate, are for the purpose of moral instruction, feigned to act and speak with human interest and passions."[2]

---

1. Encyclopaedia Britanica Vol. IX. p. 20
2. Encyclopaedia Britanica Vol. IX. p. 20

इससे यह स्पष्ट है कि नैतिक शिक्षा का समावेश लोककथाओं की विशेषता है, फिर चाहे वे पशु-पक्षियों से सम्बन्धित हों या अन्य कल्पित पात्रों से सम्बन्धित हों। यह देखते हुए हम लोक कथा के बाह्य स्वरूप को उसका शरीर और उसमें निहित नैतिक शिक्षा को उसकी आत्मा कह सकते हैं।

विषय की दृष्टि से निमाड़ी की लोक कथाएँ निम्नांकित आठ भागों में विभाजित की जा सकती हैं--

(१) धर्म-कथाएँ, (२) पशु-पक्षी सम्बन्धी कहानियाँ, (३) परियों और अप्सराओं से सम्बन्धित कहानियाँ, (४) जादू की कहानियाँ, (५) वीरता-विषयक कहानियाँ, (६) साधू-फकीरों की कहानियाँ, (७) ऐतिहासिक कहानियाँ और (८) विविध कहानियाँ।

(१) धर्म-कथाएँ

बोलचाल की भाषा में केवल व्रत से सम्बन्धित कहानियाँ ही 'कथा' कही जाती हैं, शेष कहानियों को 'कथा' न कहकर केवल कहानियाँ ही कहते हैं। जो कहानियाँ केवल धार्मिक दृष्टि से अवसर-विशेष पर कहीं-सुनीं जाती हैं, वे धर्म-कथाएँ कहीं जाती हैं। ऐसी कथाएँ दो भागों में विभाजित की जा सकती हैं---चरित्र कथाएँ और व्रत कथाएँ।

प्रायः सभी लोक भाषाओं में राम, कृष्ण, हनुमान, शिव आदि के चरित्र से सम्बन्धित कथाएँ प्रचलित हैं। इस प्रकार के देवता समझे जाने वाले महापुरुषों की कथाओं को हम चरित्र-कथाओं के अन्तर्गत तथा हरितालिका, गणेश चतुर्थी, गौ बारस आदि के दिन कही-सुनी जाने वाली कथाओं को 'व्रत' कथाओं के अन्तर्गत रख सकते हैं। निमाड़ी लोक साहित्य में ये दोनों प्रकार की धर्म-कथाएँ प्राप्त हैं। चरित्र-कथाएँ स्त्रियों और पुरुषों दोनों के द्वारा कही-सुनी जाती हैं, पर व्रत-कथाएँ केवल स्त्रियों की ही सम्पत्ति है। ये सभी कथाएँ मौखिक हैं, उन्हें अभी तक लिखित रूप प्राप्त न हो सका। यदि इन्हें लिखित रूप दिया गया, तो वे अधिकांश स्त्रियों में शिक्षा का अभाव होने से उनके काम भी न पड़ेंगी। दूसरे मौखिक कथाओं के प्रति ही उनकी श्रद्धा भी है। स्त्रियों-द्वारा किये जाने वाले व्रतों के दिनों में तीन-तीन, चार-चार स्त्रियाँ एक स्थान में बैठ जाती हैं। एक स्त्री उस व्रत के लिये निश्चित कथा कहती जाती है और दूसरी स्त्रियाँ हाँ हाँ (हौं-हौं) कहती हुई या हुँकारा देती हुई सुनती जाती हैं। कथा कहने और सुनने का ढंग बड़ा अनूठा होता है। सभी स्त्रियाँ बड़ी गंभीर बनकर बैठ जाती हैं। कथा कहने वाली स्त्री गंभीर मुद्रा में द्रुतगति से कथा कहती जाती है और सुनने वाली स्त्रियाँ भी उसी गति से हुंकारा देती जाती हैं। एक ही कथा पाँच अथवा सात बार कही-सुनी जाती है। बिना कथा सुने

अभीष्ट व्रत पूर्ण हुआ नहीं माना जाता। स्त्रियों-द्वारा किये जाने वाले सभी व्रतों की एक-एक कथा है। ये कथाएँ उनके व्रत के अंग ही बन गई हैं। निमाड़ी में प्राप्त धर्मराज, हेमराज, छटीमाता, सेली-सातव, बीज बारस आदि की कथाएँ ऐसी ही कहानियाँ है। इन कथाओं में किसी धर्म-पुरुष का चरित्र-चित्रण नहीं है, सभी कहानियाँ कल्पित जान पड़ती हैं और व्रत-विशेष का महत्व बतलाने के लिये ही रची गई हैं। प्रत्येक कहानी में उस व्रत के करनेवाली एक कल्पित स्त्री को कहानी का मुख्य पात्र मान लिया गया है और उस कथा के द्वारा व्रत करने वाली स्त्री को लाभ तथा न करने अथवा व्रत करने में आवश्यक नियमों का पालन न करने वाली को हानि बतलाई है। उदाहरणार्थ धर्मराज की कथा देखिये।

इस कथा में बतलाया गया है कि "एक वृद्धा बड़ी व्रत करने वाली थी। वह व्रत करते-करते मर गई। जब वह मरकर परलोक पहुँची, तब उससे धर्मराज ने कहा कि तूने सब व्रत किये, पर मेरा व्रत नहीं किया; इसलिये तू संसार में वापिस जाकर मेरा व्रत कर, तभी तुझे मुक्ति प्राप्त होगी। वह पुनः संसार में आई। उसने ओंकार महाराज की पूर्णिमा[1] से धर्मराज का व्रत आरम्भ किया। एक वर्ष पूर्ण होने पर एक दिन भगवान ब्राह्मण का वेश लेकर आये। वे गाँव के बाहर वृद्धा को मिल गये। उन्होंने वृद्धा से पूछा—"माँ, तू कहाँ जा रही है ?"

वृद्धा ने उत्तर दिया—"बेटा, मैं धर्मराज के जोड़े को निमन्त्रण देने जा रही हूँ।"

भगवान ने कहा—"तू मुझे ही निमन्त्रण दे दे, मैं वृन्दावन से जोड़े सहित आ जाऊँगा।"

वृद्धा नें उन्हें निमन्त्रण दे दिया। उसका भोजन तैयार होते ही भगवान राधाजी के साथ उसके घर भोजन करने आये। दोनों ने बड़े प्रेम से वृद्धा के घर भोजन किया। भोजन के पश्चात् वृद्धा उन्हें गाँव के बाहर तक पहुँचा कर अपने घर आ गई। इतने में देवलोक से विमान आया और वह उस विमान में बैठकर बैकुण्ठ चली गई।

धर्मराज महाराज जैसे वृद्धा से प्रसन्न हुये वैसे सबसे प्रसन्न हों।[2]"

इस व्रत-कथा से हम निम्न निष्कर्ष पर पहुँचते हैं :—

---

१. कार्तिक पूर्णिमा निमाड़ी भाषी क्षेत्र में ओंकार महाराज की पूर्णिमा कहलाती है। इस दिन नर्मदा तट पर स्थित ओंकारेश्वर मान्धाता में एक बहुत बड़ी यात्रा लगती है। २. परिशिष्ट 'ब' कथा सं० १।

(१) धर्मराज का व्रत न करने के कारण अन्य व्रतों के करने पर भी वृद्धा को पुनः संसार में आना पड़ा। अतः मोक्ष प्राप्ति के लिये धर्मराज का व्रत करना आवश्यक हैं।

(२) धर्मराज का व्रत करने से भगवान भी प्रसन्न होकर धर्मराज के भक्तों को स्वर्ग भेज देते हैं।

(३) वृद्धा भगवान को भोजन करा गाँव के बाहर तक पहुँचा आई। इससे अपने अतिथियो का उचित सम्मान कर उनके जाते समय उन्हें गाँव के बाहर तक पहुँचाने की हमारी प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा का पता लगता है।

(४) कथा के अन्त में कहा गया है—'धर्मराज महाराज जैसे वृद्धा से प्रसन्न हुए वैसे सबसे प्रसन्न हों।' इस वाक्य का वृद्धा की कहानी से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह एक आशीर्वादात्मक वाक्य है, जिसमें लोक-कल्याण की कामना निहित है। इस प्रकार के आशीर्वादात्मक वाक्य हमें निमाड़ी की सभी व्रत-कथाओं के अन्त में मिलते हैं।[1]

कुछ व्रत-कथाएँ ऐसी हैं, जिनमें व्रत के दिनों में पालन किये जाने वाले नियमों का उल्लेख कर उन नियमों के पालन न करने से हानि होना बतलाया गया है। सैली सातव और ओज बारस (गोबारस) की व्रत-कथाएँ ऐसी ही हैं।

"सैली-सातव" शीतला सप्तमी भी कहलाती है। यह भाद्र कृष्णपक्ष की सप्तमी है। इस दिन स्त्रियाँ शीतला माता का पूजन करती हैं। इस व्रत की कथा में इस होती को दिन बासा भोजन करने का विधान है। एक बहू ने इस दिन अपने भाई के आने पर उसे ताजा भोजन तैयार कर खिला दिया। भाई के भोजन करने पर जब उसने झूले से अपने बच्चे को उठाया, तो वह मरा मिला। रात को सास को शीतला माता ने स्वप्न में दर्शन दिये और उससे कहा कि, आज तेरी बहू ने मुझे जला दिया। तू उसे घर से निकाल दे, नहीं तो मैं तेरा नाश कर दूंगी। उसने दूसरे दिन बहू को निकाल दिया। वह मृत बालक को लेकर शीतला माता के चबूतरे पर बैठ गई। वहाँ शीतला का पूजन करने वाली एक स्त्री के बालों से गिरे एक बूंद पानी के बच्चे के मुँह में जाने पर वह जीवित हो गया।

ओज बारस की कथा में भी सन्तानवती स्त्री को इस दिन मूँग और गेहूँ की बनी वस्तुएँ खाने की मनाई की गई है।[2]

(२) पशु-पक्षियों की कहानियाँ

इस वर्ग की कहानियों को पंचतन्त्रीय कहानियाँ कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। यद्यपि लोक भाषाओं में प्रचलित पशु-पक्षियों से सम्बन्धित सभी कहा-

१. परिशिष्ट 'ब' कहानी सं० १। २. परिशिष्ट "ब" कथा संख्या २।

नियाँ पंचतन्त्र से अनूदित नहीं हैं, उनमें से अधिकांश कहानियाँ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती हैं; तथापि उनमें हम पंचतन्त्रीय कहानियों की ही प्रवृत्ति और शैली देखते हैं, इसीलिये हम उन्हें यह नाम दे रहे हैं। संसार की कोई भाषा या लोकभाषा ऐसी नहीं, जिसमें इस वर्ग की कहानियाँ प्रचलित न हों। यह पंच तन्त्र की लोक प्रियता का ही परिणाम है। यह सत्य मेक्डानल, विल्सन आदि पाश्चात्य विद्वानों ने भी स्वीकार किया है।[1] श्री गौरांगनाथ बनर्जी ने भी अपनी "हेलेनिज्म इन एनशिएन्ट इण्डिया" पुस्तक में भारत की पंचतन्त्रीय कहानियों के संसार के भिन्न-भिन्न देशों में पहुँचने की शृंखला पर विस्तृत प्रकाश डाला है।[2] इस वर्ग की सभी कहानियाँ कल्पित हैं, किन्तु उनमें एक उद्देश्य निहित है। वे मनोरंजन के साथ ही विविध उपदेश देने के उद्देश्य से रची गई हैं।

पशुपक्षियों से सम्बन्धित कहानियाँ बड़ी प्राचीन हैं। वे प्राचीनकाल में भी इसी प्रकार कही जाती रही हैं, जिस प्रकार इन दिनों कही जाती हैं। यद्यपि पंचतन्त्र पशु-पक्षियों से सम्बन्धित कहानियों की प्राचीनतम पुस्तक मानी जाती है; तथापि विल्सन का मत है कि इस प्रकार की कहानियाँ पंचतन्त्र की रचना के पूर्व भी प्रचलित थीं। वेदों तक में इस प्रकार की कहानियाँ मिल जाती हैं, जो निश्चय ही उस काल की जनता में प्रचलित रही होंगी।[3] इस सम्बन्ध में ला फाउण्टेन का मत इस प्रकार है :—

"From these beast fables of savages must be derived through some commn store of primitive moralising, the fables of Greece and India. In the latter part of the 5th century B. C. they became connected with the name of Aesop. The first collection we hear of was made about 300 B. C." [4]

ला फाउण्टेन के अनुसार ये पशु-पक्षियों की कहानियाँ आदिम और असंस्कृत मानव की प्रथम सूझ हैं। इन्हीं कहानियों को सन्-ईस्वी से पूर्व पाँचवीं शताब्दी में ईसप की कहानियों की संज्ञा दी गई थी। ईसप की कहानियाँ आज प्रायः सभी भाषाओं में किसी न किसी रूप में प्राप्त हैं।

---

1. (i) Mecdonal: India's Past and Present (Introduction)

(ii) H. H. Wilson: Essays on subjects connected with Sanskrit literature. Part I and II

2. Chapter 14th : Fables and Folklore.

3. Hindu Fiction Vol. IV P. 84 by Harace Hayman Wilson.

4. Encyclopaedia Britanica Vol. IX P. 20-21.

यूरोपीय भाषाओं में ईसप की कहानियों को ले जाने का श्रेय मेरी डी. फ्रांस को है, जिसने सर्व प्रथम तेरहवीं शताब्दी में (Ysopets) के नाम से ईसप की कहानियाँ, इसी प्रकार की कुछ अन्य कहानियों के साथ प्रस्तुत की और फ्रेन्च साहित्यकारों का ध्यान एक नई दिशा की ओर आकर्षित किया। मेरी डी. फ्रांस का यह कहानी-संग्रह प्रकाशित होने पर फ्रेन्च साहित्य के सुप्रसिद्ध लोक कहानीकार लेसिंग (Lessing) को ईसप की कहानियों को आदर्श कहानी मानना पड़ा।[१]

निमाड़ी में प्राप्त इस वर्ग की कहानियों में सर्प, सियार, केकड़ा, शेर, हिरण, गाय, भैंस, बन्दर, चीता, घोड़ा, ऊँट, हाथी आदि पशु तथा कौआ, चील, तोता आदि पक्षियों का उल्लेख है। किन्तु इनका सम्बन्ध केवल उनके अपने जगत तक ही सीमित नहीं है, वे मानव-संसार से भी सम्बन्धित हैं। सियार की गवाही, मनुष्य की स्वार्थपरता, पृथ्वी-आकाश का ब्याह, सौदागर का बेटा आदि इसी वर्ग की कहानियाँ हैं।

सियार से सम्बन्धित निमाड़ी में प्राप्त एक दूसरी कहानी बड़ी मनोरंजक है। इस कहानी में सियार-द्वारा पृथ्वी और आकाश के विवाह का आयोजन होता देख देवता तक काँप जाते हैं और स्वयं भगवान आकर बड़ी कठिनाई से विवाह रोकते हैं।[२]

(३) परियों की कहानियाँ

निमाड़ी में प्राप्त 'दो बहिनें' और 'जादू की आँखें' इसी वर्ग की कहानियाँ हैं। इनमें दो बहिनों की कहानी इस प्रकार है—

"एक राजकुमार और दीवान के पुत्र में बड़ी मित्रता थी। दोनों का चरित्र अच्छा न था। वे प्रतिदिन शिकार को जाते और रास्ते में जो स्त्रियाँ मिलतीं, उन्हें छेड़ते थे। यह शिकायत राजा के पास पहुँची। राजा और दीवान ने अपने-अपने पुत्रों को बहुत समझाया, पर उनकी आदत न सुधरी। राजा ने दोनों को देश निकाला दे दिया। दोनों ने अपने घर से मनमाने रुपये अपने साथ रख लिये और अपने घोड़ों पर बैठकर राज्य से बाहर निकल गये।

दोनों चलते-चलते एक ऐसे जंगल में आये, जहाँ मनुष्य का तो क्या, पशु पक्षियों तक की आवाज सुनाई न देती थी। उस जंगल में उन्हें एक तालाब दिखाई दिया। उस तालाब के किनारे एक बड़ा बड़ का वृक्ष था। वे

---

1. The ideal fable is that of Aesop E. B. Part 9 P. 21.
२. परिशिष्ट 'ब' क. सं. ३।

उसी बृक्ष के नीचे ठहर गये। उन्होंने भोजन किया और दोनों सो गये। बीच में दीवान के लड़के की नींद खुली, तो उसे वीणा की सुरीली आवाज सुनाई दी। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उठकर चारों ओर देखा पर पता न लगा कि वह आवाज कहाँ से आ रही है और कौन वीणा बजा रहा है। कुछ समय के पश्चात् उसे ऐसा लगा कि वह आवाज उस बड़ के वृक्ष से ही आ रही है, पर बहुत प्रयत्न करने पर भी उसे वहाँ कोई दिखाई न दिया। कुछ देर में राजकुमार भी जाग गया। उसने भी बहुत तलाश की, पर वह भी कुछ समझ न सका।

उस वृक्ष पर दो बहिनें रहती थीं। छोटी बहिन की दृष्टि राजकुमार पर पड़ी और वह उसकी सुन्दरता देख कर मुग्ध हो गई। उसने उसीसे अपना विवाह करना निश्चित किया। उसने फूलों का एक सुन्दर हार बनाया और उसे राजकुमार पर फेंक दिया। राजकुमार वह हार देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ, पर वह हार फेंकनेवाली को न देख सका।

दूसरी रात आई। दोनों मित्र भोजन करके सो गये, पर दीवान-पुत्र को नींद न आई। वह वीणा की स्वर-लहरी की प्रतीक्षा करने लगा। आधी रात को दोनों बहिनें वृक्ष से नीचे आईं और तालाब में स्नान करने चली गईं। दीवान-पुत्र उन्हें देखता रहा। वे जैसे ही स्नान कर वापिस आईं, दीवान के पुत्र ने दोनों को पकड़ लिया। राजकुमार भी जाग गया। बड़ी बहिन ने कहा ये भी दो हैं और हम भी दो हैं। हम इन दोनों से विवाह कर लें। बड़ी बहिन ने दीवान के पुत्र से और छोटी ने राजकुमार से विवाह कर लिया। वह बड़ का वृक्ष एक राजमहल के रूप में परिवर्तित हो गया। उसके चारों ओर एक विशाल नगर बन गया। राजा और दीवान के पुत्र अपने अपने महलों में अपनी स्त्रियों के साथ सुख से रहने लगे।[1]"

(४) जादू की कहानियाँ

सभी लोक भाषाओं में प्राप्त जादू की कहानियों में चमत्कार की प्रवृत्ति विशेष रूप से देखी जाती है। अपनी इस प्रवृत्ति के कारण वे बड़ी मनोरंजक बन गई हैं। निमाड़ी में प्राप्त सौदागर के बेटे, एक दिन का राजा, जादू की अंगूठी आदि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। निमाड़ी की इन कहानियों में जादू से होने वाली विचित्र घटनाओं का तो उल्लेख है ही, पर साथ ही उनमें सामाजिक जीवन के कुछ अनुभव भी पिरो दिये गये हैं, जिससे ये कहानियाँ मनोरंजन के साथ ही शिक्षाप्रद भी बन गई हैं।

---

१. परिशिष्ट 'ब' क. सं. ४।

प्रथम कहानी में एक सौदागर अपने पुत्र के लिये एक सुयोग्य लड़की की खोज में निकलता है। मार्ग में वह एक गाँव में तालाब के किनारे ठहर जाता है। गाँव की कुछ लड़कियाँ तलाब से जल भर कर ले जाती हैं। उन लड़कियों में से एक लड़की के सिर पर फूटा घड़ा था। यह देखकर उसकी साथ वाली लड़कियाँ उससे पूछती हैं कि "तू तो एक धनवान की लड़की है, फिर फूटे घड़े से पानी क्यों भरती है?" वह उत्तर देती है कि "मैं अवश्य ही एक धनवान की लड़की हूँ, पर क्या पता मेरा विवाह किसी धनवान के लड़के से होगा या गरीब के लड़के से; इसलिए मैं सुख और दुख दोनों स्थिति में रहने की आदत बना लेना चाहती हूँ"। लड़की का उत्तर सुनकर सौदागर उसे ही अपनी पुत्र-वधू बनाना निश्चित करता है।

वह लड़की के पिता के घर जाकर विवाह का प्रस्ताव करता है और विवाह की बात पक्की हो जाती है। उस लड़की का विवाह सौदागर के बड़े लड़के से हो जाता है। कुछ दिनों के पश्चात् सौदागर अपने चारों लड़कों को सौ-सौ रुपये देकर व्यापार करने को भेज देता है। इन रुपयों से बड़ा भाई एक आइना खरीदता है। इस आइने में यह गुण था कि यदि किसी के घर पर उसकी अनुपस्थिति में कोई मर जाय, तो वह उसमें दिखाई देता था।

दूसरे भाई ने एक ऐसी थाली खरीदी, जिसपर कपड़ा ढाँक देने से मन-चाहा भोजन उसमें आ जाता था। तीसरे भाई ने एक ऐसा चमड़ा खरीदा, जिस पर बैठकर मनुष्य मनचाहे स्थान पर पल भर में पहुँच सकता था। चौथे भाई ने एक जादू की लकड़ी खरीदी। वह लकड़ी यदि किसी मृत मनुष्य को छुआ दी जाय, तो वह जीवित हो जाता था।

चारों भाई अपनी-अपनी मनचाही चीजें लेकर एक तालाब के किनारे आते हैं। जादू की थाली पर कपड़ा ढाँक दिया जाता है और वह थाली स्वादिष्ट भोजन से भर जाती है। चारों भाई भर पेट भोजन करते हैं। इसके पश्चात् ही एक भाई की दृष्टि आइने पर पड़ती है। वह देखता है कि बड़े भाई की स्त्री की मृत्यु हो गई है। चारों भाई जादू के चमड़े पर बैठ पल भर में घर पहुँच जाते है। जादू की लकड़ी बड़े भाई की मृत पत्नी को स्पर्श कराई जाती है और वह जी उठती है। सौदागर अपने चारों लड़कों की लाई हुई वस्तुएँ देखता है और उनकी बुद्धिमत्ता पर बड़ा प्रसन्न होता है।[१]

चारों भाइयों के द्वारा खरीदी गई वस्तुओं का संसार में प्राप्त होना संभव नहीं है, पर उनकी उपयोगिता बतला कर कहानीकार ने जीवनोपयोगी सामग्री

---

१. परिशिष्ठ 'ब' क० सं० ५।

जुटाने में बुद्धिमानी समझने की शिक्षा दी है। इस प्रकार यह कहानी कपोल-कल्पित होने पर भी हमारे सामाजिक जीवन की दृष्टि से महत्वपूर्ण बन गई है।

"जादू की अंगूठी" कहानी में बतलाया गया है कि एक मछुवे के लड़के के जाल में मछलियों के स्थान पर एक सर्प फँस जाता है। जब लड़का उसे मारना चाहता है, तब सर्प उससे कहता है कि यदि वह उसे छोड़ दे तो वह उसके साथ उसकी लड़की का विवाह कर देगा। लड़का उसे छोड़ देता है और सर्प तालाब में से अपनी लड़की को लेकर बाहर आता है। वह दोनों का विवाह कर देता है और दहेज में एक जादू की अंगूठी दे देता है। सर्प-कन्या इस अंगूठी की करामात जानती थी। वह एक साफ-सुथरे स्थान पर एक कपड़ा सात बार मोड़-कर रखती और उस कपड़े को अंगूठी छुवाते ही वहाँ एक सतखण्डा महल बन जाता है। इसी अंगूठी से वह अटूट सम्पत्ति प्राप्त करती और दोनों सुख-सम्पन्न हो जीवन यापन करने लगते हैं।[1]

यह कहानी हमारे समाज में प्रचलित भाग्यवाद की पुष्टि करती है।

(५) वीरता विषयक कहानियाँ

निमाड़ी-लोक-साहित्य में कुछ ऐसी लोक कहानियाँ हैं, जिनमें व्यक्ति विशेष के शौर्य, पराक्रम और पुरुषार्थ का प्रदर्शन है। "बाप का बदला" और "पुरुषार्थी बालक" ऐसी ही कहानियाँ हैं। पहिली कहानी इस प्रकार है :—

"एक गाँव में एक राजपूत अपने परिवार के साथ रहता था। एक दिन जंगल में राजपूत को शेर ने खा लिया। यह जानकर उसके लड़के को बड़ा क्रोध आया। वह धनुष-बाण लेकर उस जंगल में गया, जिस जंगल में उसके पिता को शेर ने खा लिया था। वह एक झील के किनारे धनुष पर बाण चढ़ाकर बैठ गया। कुछ समय के पश्चात् एक सियार झील पर पानी पीने आया। लड़के ने उसे ललकार कर कहा, "खबरदार, यदि पानी पिया; एक ही बाण में काम तमाम हो जायगा।" सुनते ही सियार दुम दबाकर भाग गया।

कुछ समय के पश्चात् एक चीता आया। उसे भी लड़के ने पानी न पीने दिया और डाँटकर भगा दिया। सियार और चीता शेर के पास गये और उससे बोले कि "इस जङ्गल की झील के किनारे एक लड़का बैठा है। वह हम लोगों को झील का पानी नहीं पीने देता। आप हम सबके राजा हैं। वह लड़का आप को भी पानी न पीने देगा।" यह सुनकर शेर को बड़ा क्रोध आया और वह झील

---

१. परिशिष्ट 'ब' क्र० सं० ६।

के किनारे पहुँचा। उसे देखते ही लड़का धनुष पर बाण चढ़ाकर खड़ा हो गया और गरजकर शेर से बोला कि "तू अब न बच सकेगा, तूने ही मेरे पिता के प्राण लिये हैं।" सुनते ही शेर लड़के पर झपटा, पर उसके तेज बाणों से वह न बच सका।

इसके पश्चात् ही लड़के को उसके पिता का शव दिखलाई दिया। वह शव के पास पहुँचकर विलाप कर-करके रोने लगा। आकाश-मार्ग से जाते शिव और पार्वती ने उसे विलाप करते देखा। वे पृथ्वी पर उतरे और लड़के से उसके रोने का कारण पूछा। लड़के ने बतलाया कि उसके पिता को शेर ने मार डाला है; इसीलिये वह रो रहा है। शिवजी ने अपने कमण्डल से अमृत-जल निकाल उसके पिता के शव पर छिड़क दिया। वह तत्काल जीवित हो गया। पिता पुत्र ने शिव-पार्वती को प्रणाम किया और वे अपने घर जाकर सुख से रहने लगे।[1]"

(६) साधु-फकीरों की कहानियाँ

हमारे देश में साधु-फकीर हमेशा से ही विशेष सम्मानीय रहे हैं और हमारा समाज उनमें अलौकिक गुण होने पर विश्वास करता आया है। उसके इसी विश्वास के कारण हमारे लोक साहित्य में इस विश्वास से सम्बन्धित अनेक लोक कथाएँ उपलब्ध हैं। निमाड़ी में प्राप्त छोटे भाई की कहानी तथा मान्धाता के जन्म की कथा ऐसी ही कहानियाँ हैं। इन दोनों कहानियों में परम्परागत धर्म-भावनाओं को भी स्थान मिल गया है। प्रथम कहानी इस प्रकार है :—

"एक राजा के पाँच लड़के थे। राजा सबसे छोटे लड़के को विशेष प्यार करता था। यह देखकर उसके अन्य चारों भाई उससे ईर्ष्या करते थे। एक दिन वे उसे अपने साथ शिकार को ले गये और रात होने पर जंगल में छोड़ आये। घर आने पर उन्होंने कह दिया कि उसे शेर खा गया। हमने बहुत प्रयत्न किया पर उसे न बचा सके।

छोटा भाई भटकता हुआ मधुवन में पहुँच गया। वहाँ सुरई गाय रहती थी। वह उसकी सेवा करता और उसका दूध पीया करता था। एक दिन एक किसान सुरई गाय के कण्डे ले जाने को उसी बन में आया। उसने कण्डों से अपनी गाड़ी इतनी भरली कि बैलों के लिये उसे खींचना कठिन हो गया। उसने राजकुमार से सहायता माँगी। राजकुमार के गाड़ी पर बैठकर बैलों को हाँकते ही वे जोर से भागने लगे। किसान भी दौड़कर गाड़ी पर बैठ

---

१. परिशिष्ट 'ब' क० सं० ७।

गया। घर जाने पर उसने राजकुमार को न आने दिया और उससे अपनी लड़की का विवाह कर देना चाहा। राजकुमार उसके घर कुछ दिन रहा, पर वह उसकी लड़की से विवाह करने को सहमत न हुआ। एक दिन वह भागकर पुनः मधुबन में चला गया।

वहाँ उसन देखा कि सुरई गाय मर गई है और उसकी अस्थियाँ यहाँ-वहाँ पड़ी हैं। वह दुखी होकर दूसरे बन में चला गया। उस वन में अमर-गुरु का आश्रम था। वह आश्रम में रहकर उनकी सेवा करने लगा। बारह वर्ष तक सेवा करने पर अमरगुरु ने उससे बरदान माँगने को कहा। राजकुमार ने कहा कि यदि आप मेरी सेवा से प्रसन्न हैं, तो आप मुझे अमर जल दीजिये। गुरु ने उसे अमरजल दे दिया। वह मधुबन में आया और उसने सुरई गाय की अस्थियाँ एकत्र कर उन पर अमर जल छिड़क दिया। परिणाम-स्वरूप गाय जी उठी और वह पुनः उसकी सेवा करता हुआ वहीं रहने लगा।

एक दिन एक राजा उस बन में शिकार के लिये आया और थक कर एक आम के वृक्ष के नीचे बैठ गया। उसी वृछ पर राजकुमार बैठा आम खा रहा था। इसी समय उसे अपनी माता का स्मरण आया। वह रोने लगा। उसके आँसू नीचे राजा पर पड़ते ही उसने उसे नीचे बुलाया और उससे उसकी सब कहानी सुनकर उसे अपने साथ ले गया। राजा ने उससे अपनी पुत्री का विवाह कर दिया और वह आनन्द से राजमहल में रहने लगा।[1]"

(७) ऐतिहासिक कहानियाँ

लोक साहित्य में ऐसी कहानियाँ भी उपलब्ध हैं, जिनका आधार केवल मानव-कल्पना नहीं, वरन कुछ ऐतिहासिक आधार भी है। यह अवश्य है कि इस वर्ग की कहानियों में ऐतिहासिक सत्य पूर्णरूपेण विद्यमान नहीं है; ऐतिहासिक सत्य ने कुछ विकृत होकर लोककहानियों का रूप धारण कर लिया है। इस वर्ग की कहानियों में रुक्मणि-हरण, सुभद्रा-हरण, द्रौपदी-स्वयंवर, पाण्डव-वन-वास, अश्वत्थामा पलायन आदि महाभारत की कहानियाँ तथा टंटिया मामा और सादुल्ला डाकू की कहानियाँ प्रमुख हैं। इन कहानियों में रुक्मणि-हरण, सुभद्रा-हरण, द्रौपदी-स्वयंवर, पाण्डव-वनवास, ध्रुव, प्रह्लाद, हरिश्चन्द्र और मोरध्वज की कहानियाँ सर्वश्रुत हैं। ये कहानियाँ अन्य लोक भाषाओं में जिस प्रकार कही-सुनी जाती हैं, उसी प्रकार निमाड़ी भाषी क्षेत्र में भी प्रचलित हैं। यदि इनमें कोई अन्तर है, तो वह केवल भाषा सम्बन्धी ही है।

---

१. परिशिष्ट 'ब' क० सं० ८।

अश्वत्थामा-पलायन, टंटिया मामा और सादुल्ला की कहानी निमाड़ी भाषी क्षेत्र की अपनी है और वे इसी क्षेत्र से सम्बन्धित हैं।

'अश्वत्थामा-पलायन' कहानी निमाड़ जिले के प्रसिद्ध ऐतिहासिक दुर्ग असीरगढ़ से सम्बन्धित है। इस कहानी में बतलाया गया है कि अश्वत्थामा द्रौपदी के सातों पुत्रों की हत्या करने के पश्चात् अर्जुन से अत्यन्त भयभीत हो गया और अपना प्राण बचाने के लिये हस्तिनापुर से भाग कर दक्षिण भारत में आ गया। वह विन्ध्याचल के घने वन और नर्मदा को पार कर असीरगढ़ के जंगल में आया और इस स्थान में अपने को सुरक्षित समझ यहीं रह गया। यहाँ उसने एक किला बनवाया और उस किले में एक शिव-मन्दिर बनवाकर शिवजी की उपासना में लग गया। इस कहानी के अनुसार असीरगढ़ दुर्ग अश्वत्थामा का ही बनवाया हुआ है। इस मन्दिर में अभी भी एक शिव-मन्दिर है, जो अश्वत्थामा का मन्दिर कहा जाता है।

कहानी में आगे बतलाया गया है कि द्रौपदी ने उसे अपने पुत्रों की हत्या से क्षुब्ध हो सदैव के लिये महारोग (कुष्ठ) से पीड़ित होने का शाप दिया। तब से वह महारोगी बन कर असीरगढ़ के जंगल में ही निवास करता है। वह कभी-कभी वेश बदल कर समीप के ग्रामों से तेल माँग लाता और उसे अपने शरीर के घावों पर लगाता है। यह अपने घाव जिन वृक्षों के पत्तों से पोंछता वे ही वचनाग के वृक्ष हैं। असीरगढ़ के जंगल में बचनाग वृक्ष होने के कारण लोग अभी भी इस कहानी पर विश्वास करते हैं। महाभारत में अश्वत्थामा को अमर बतलाया गया है, जिससे ग्रामीण जनता का इसकी वर्त्तमान उपस्थिति पर भी विश्वास करना स्वाभाविक है।

(८) नीति और सिद्धान्त सम्बन्धी कहानियाँ

निमाड़ी लोक कथा-साहित्य में कुछ ऐसी कहानियाँ भी उपलब्ध हैं, जिनका आधार परम्परागत हिन्दू-नीति और हिन्दू-धर्म द्वारा स्वीकृत सिद्धान्त हैं। परोपकार का बदला, भगवान से भेंट और ब्राह्मण का अपराध इसी प्रकार की कहानियाँ हैं।

"परोपकार का बदला" कहानी में एक गरीब ग्रामीण के द्वारा प्यासे बन्दर, शेर और सर्प को पानी पिलाने की बात कहकर उसे उपकार के बदले बन्दर से 'अमृत जल' और शेर से 'सोने का हार' मिलना बतलाया गया है। सर्प की सहायता से वह अपने को लगाई चोरी से बचने और राजा के प्राण बचाने में समर्थ होता है। अन्त में उसका विवाह राजकुमारी से हो जाता है और वह सुखी जीवन बिताने लगता है।

इस कहानी-द्वारा हिंसक पशुओं तक के प्रति दयालुता दिखलाने का उपदेश दिया गया है।

"ब्राह्मण का अपराध" कहानी में कहा गया है कि एक ब्राह्मण ने दूसरे गाँव जाते समय मार्ग में कुछ लोगों को एक गाय के बछड़े का मांस पकाकर खाते देखा। उसने बड़े क्रोध से उन्हें कहा कि "तुम लोग बड़े पापी हो। तुमने गाय के समान पवित्र और पूज्य प्राणी का बछड़ा मार डाला और उसे पकाकर खा रहे हो। मैं तुम्हारे गाँववालों को तुम्हारे इस पाप की कहानी बतलाऊंगा और तुम सब कड़ी सजा पाओगे।" यह सुनकर वे सब बड़े भयभीत हुए। उन सबने मिलकर ब्राह्मण को कुछ धन दे संतुष्ट किया और उसे उनका पाप गाँववालों को न बतलाने को राजी किया। ब्राह्मण उस गाँव में गया। लोगों ने उसका बड़ा सत्कार किया और उससे कथा सुनी। ब्राह्मण भोजन करके सो गया। सबेरे लोगों ने देखा कि ब्राह्मण घोर निद्रा में सोया पड़ा है और उसके मुँह में गाय के बछड़े की दो टाँगें हैं। यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने ब्राह्मण को जगाया। उसके जागते ही बछड़े की टाँगें उसके मुँह से लुप्त हो गईं। लोगों ने उससे इस घटना का कारण पूछा। वह लज्जा के कारण कुछ उत्तर न दे सका, पर मन में जान गया कि उसने गाय का बछड़ा खाने वालों से उनका पाप छिपाने को धन ग्रहण किया था, इसी से उसे यह दण्ड मिला। उसने सब बातें गाँववालों को बतला दी और उस दिन से किसी पापी का धन न लेने की प्रतिज्ञा की।

इस कहानी में हिन्दू-धारणा के अनुसार गौ के महत्व पर प्रकाश डाल पापी से धन लेने में भी पाप समझने का उपदेश दिया गया है।

(६) विविध कहानियाँ

इस वर्ग में हम ऐसी लोक कहानियों को स्थान दे रहे हैं, जो उपर्युक्त किसी भी वर्ग के अन्तर्गत नहीं आती और जिनके विषय उक्त कहानियों से भिन्न हैं। आत्मप्रतिष्ठा का शिकार, सोने का हिरण, बिरवा का तालाब, तीसमारखाँ, भिखारी का भाग्य, सौतिया डाह, लड़की की बहक, सबसे बड़ा पैसा, महा ठग, बिना बाप का बेटा, ना समझ मेण्डक आदि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं।

इनमें से "आत्म-प्रतिष्ठा का शिकार" एक राजा की कहानी है। राजा शिकार को जाता है। मार्ग में वह एक वृक्ष के पास पाद देता है। एक बढ़ई इसी वृक्ष की लकड़ी से राजा के लिये तबला और सारंगी बनाकर लाता है। एक रात को राजा के घर गाना होता है। तबले से आवाज निकलती है—"राजा ने पादा, राजा ने पादा"। सारंगी बोलती है—"मैं जानती हूँ, मैं जानती हूँ।" यह सुनकर सब हँसने लगते हैं। राजा अपनी प्रतिष्ठा पर आघात होता समझ दरबार से उठ संन्यासी हो जाता है। रानी को यह बात ज्ञात होने पर नौकरों को उन्हें ढूंढ़ने भेजती है। बड़ी कठिनाई से कई दिनों के पश्चात् मिलने पर वे रात होने पर महल में जाने का वचन देते हैं। वे नौकरों से कह देते

हैं कि वे किसी से राजा के आने की बात न कहें। रात में महल में आने पर पहरेदार उन्हें कोई चोर समझ कर मार डालते हैं।[1]

"भिखारी का भाग्य" एक भिखारी के दानवपुरी से धन प्राप्त कर राजा बनने की कहानी है।

"बिरवा का तालाब" लोकोपकार के लिये आत्मोत्सर्ग करने वाले एक बहू-बेटे की कहानी है। पश्चिमी निमाड़ में खरगोन से जुलवान्या जाने वाली सड़क पर 'बिरवा' नामक एक ग्राम है, जहाँ एक बड़ा तालाब है। यह कहानी इसी तालाब के निर्माण से सम्बन्धित बतलाई जाती है। इस कहानी में बतलाया गया है कि एक बार बिरवा ग्राम के लोगों को पानी का बहुत कष्ट होता देख वहाँ के पटेल ने एक बहुत बड़ा तालाब खुदवाया, पर बहुत प्रयत्न करने पर भी उस तालाब में पानी नहीं आया, जिससे पटेल बड़ा दुखी और चिन्तित रहने लगा। एक रात उसे जलदेवी ने स्वप्न दिया और उससे कहा कि यदि वह अपने एक मात्र पुत्र और वधू को उसे भेंट कर दे, तो वह तालाब जल से परिपूर्ण हो सकता है। दूसरे दिन पटेल ने यह बात घर वालों को बतलाई। अपने पिता की बात सुनकर लड़के और उसकी वधू ने उससे कहा कि यदि हम दोनों के बलिदान से गाँवभर वालों का पानी का कष्ट हमेशा के लिये मिट सकता है, तो हम इसे अपना बड़ा सौभाग्य मानेंगे। आप कोई चिन्ता न कर हम दोनों को जलदेवी को भेंट कर दीजिये। बूढ़ा अपने पुत्र और पुत्र-वधू के प्राणोत्सर्ग की कल्पना से काँप उठा, पर उन दोनों का विशेष आग्रह देख वह सहमत हो गया। एक दिन शुभ मुहूर्त में दोनों पति-पत्नी स्नान कर सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये ग्रामवासियों के साथ उस सूखे तालाब के पास आये। उन्होंने जलदेवी का पूजन किया और उन दोनों ने जैसे ही तालाब में प्रवेश किया, पूरा तालाब जल से भर गया और वे दोनों उसमें समा गये।[2]

निमाड़ी-भाषी इस कहानी में उल्लिखित घटना को एक सत्य घटना कहते हैं, पर इसी प्रकार की एक कहानी हमें डा० सत्येन्द्र द्वारा संकलित ब्रज की लोक-कहानियों में भी मिली है। इससे हमें जान पड़ता है कि लोकोपकार में अपनी सबसे अधिक प्रिय वस्तु के त्याग की भावना के उद्दीपन के लिये ही लोक साहित्य में इस प्रकार की कहानियों का निर्माण हुआ है, जो हमारे परम्परागत महान् त्याग के आदर्श पर प्रकाश डालती हैं।

तीसमारखाँ-द्वारा अपनी शेखी और रात में भूल से गधे के बदले शेर को पकड़ लाने तथा राजा से इनाम पाने की कहानी सभी लोकभाषाओं में सुनी जाती है। यही कहानी निमाड़ी भाषी क्षेत्र में भी प्रचलित है।

---

१. परि० 'ब' क० सं० ९, २. परिशिष्ट 'ब' कथा सं० १०।

"सौतिया डाह" कोई नई बात नहीं है। स्त्रियों के इस स्वभावगत दोष पर लोकसाहित्य में अनेक कहानियाँ देखी जा सकती हैं। निमाड़ी की इस कहानी में एक राजा की छः रानियाँ सबसे छोटी रानी को पुत्र होने पर उसे नदी में फिकवा देती हैं और उसके स्थान पर एक पत्थर रख राजा को छोटी रानी-द्वारा पत्थर को जन्म देने का समाचार देती हैं। राजा क्रोध में आकर छोटी रानी को राजमहल से निकाल देते हैं। अन्त में सचाई प्रकट हो जाती है। राजा रानी को ढुंढवाकर बड़े सम्मान से उसके पुत्र सहित महल में रखते हैं और इन छः रानियों को काला मुँह करके महल से निकाल देते हैं।

"लड़की की बहक" एक राजपूत लड़की की नादानी की कहानी है। इस कहानी में लड़की अपना विवाह संसार के सबसे अधिक बलवान व्यक्ति से करना निश्चित करती और वह ऐसे व्यक्ति की खोज में निकलती है। मार्ग में यह एक राजा को सब लोगों द्वारा प्रणाम करते देखती है और उसे ही सबसे अधिक बलवान समझकर उसके पीछे-पीछे जाने लगती है। कुछ आगे बढ़ने पर वह राजा को एक साधू को प्रणाम करते देखती है। अब वह साधू को राजा से भी अधिक बलवान समझ उसके पीछे जाने लगती है। साधू एक शिव-मन्दिर में जाकर शिवलिंग को प्रणाम करता है। वह समझती है कि शिवलिंग साधू से भी अधिक बलवान है। अतः उसी से विवाह करने को वह मन्दिर में ठहर जाती है। कुछ समय पश्चात् एक कुत्ता शिव-मन्दिर में जाता है और पिंड पर चढ़ाई वस्तुएँ खा वहाँ पेशाब करके चला जाता है। लड़की समझती है कि कुत्ता शिव से भी अधिक बलवान है। वह कुत्ते से विवाह करने के लिये उसी के पीछे चली जाती है। कुत्ता एक घर में चला जाता है और उस घर के मालिक के जवान लड़के के पैरों में लोटने लगता है। अब लड़की ने समझा कि वह लड़का कुत्ते से भी अधिक बलवान है। अतः वह उसी से विवाह कर लेती है।[1]

इस प्रकार की कहानियों को अंग्रेजी में कास्टण्ट साइकिल (Constant Cycle) कहते हैं। 'सबसे बड़ा पैसा' कहानी भी इसी प्रकार की है। इस कहानी में गाय और वायु से झगड़ा हो जाता है। गाय अपने को बड़ी और वायु अपने को बड़ी बतलाती है। इतने में दुःख और निद्रा वहाँ आ जाती हैं। दुःख अपने को गाय और वायु से भी अधिक शक्तिशाली बतलाता है और निद्रा अपने को अधिक शक्तिशाली कहती है। इसी समय सम्पत्ति वहाँ जाती है और अपने को सबसे अधिक शक्तिशाली बतलाती है। गाय, वायु, दुःख और निद्रा हार मानकर चुप हो जाते हैं। यह कहानी संसार पर छाये सम्पत्ति के प्रभाव की ओर संकेत करती है।

---

१. परिशिष्ट 'ख' कथा सं० ११।

"महाठग" कहानी में चार ठग एक महाठग को ठगने का प्रयत्न करते हैं। महाठग क्रम-क्रम से उन सभी को मूर्ख बनाकर उनके प्राण ले लेता है और उनका सब धन प्राप्त कर सुखपूर्ण जीवन बिताने लगता है। यह कहानी "शेर को महाशेर" वाली लोकोक्ति चरितार्थ करती है। निमाड़ी की तरह अन्य लोक-भाषाओं में भी लोकोक्तियों पर आधारित अनेक लोक कहानियाँ मिलती हैं।

हमारे प्राचीन ग्रंथों में बिना स्त्री-पुरुष के संसर्ग के ही कुछ महापुरुषों के जन्म होने की घटनाएँ मिलती हैं। यथा घड़े से कुम्भज ऋषि का जन्म, नाक से नकसीर मुनि का जन्म, वायु-स्पर्श से अंजनी के द्वारा हनुमान का जन्म, हनुमान के स्वेद से मकरध्वज का जन्म, कुन्ती के कर्ण से कर्ण का जन्म आदि। इस प्रकार की घटनाओं पर आधारित अथवा इन घटनाओं की संभावना का समर्थन करने वाली कुछ लोक कहानियाँ प्रत्येक भारतीय लोक भाषा में देखी जाती हैं। निमाड़ी में सुनी जाने वाली "बिना बाप का बेटा" (बिणा बाप को छोरो) भी एक ऐसी ही कहानी है। इस कहानी में एक अविवाहित कन्या धोखे से एक तालाब के जल के साथ वीर्य पान कर लेती है, जिससे वह गर्भवती हो जाती है। वह जन्म होते ही अपने बच्चे को जंगल में छोड़ देती है। उस जंगल में शिकार के लिये आया एक राजा बालक को उठा ले जाता है। वही बड़ा होने पर उसके राज्य का स्वामी बनता है।[1]

"नासमझ मेण्डक" पंचतंत्रीय ढंग की कहानी है। इसमें एक मेण्डक एक पटेल की लड़की को लेकर राजा से मिलने जाता है। राजा लड़की पर मुग्ध हो मेण्डक की मूर्खता से लाभ उठाता है और गर्म जल से उसके प्राण ले उस लड़की से विवाह कर लेता है।[2]

निमाड़ी लोककथाओं की विशेषताएँ

इस अध्याय में हमने निमाड़ी लोक कथाओं को नव वर्गों में विभाजित कर प्रत्येक वर्ग की कुछ कहानियों के उदाहरण दे संक्षिप्त में उनकी विशेषताएँ भी बतला दी हैं। अब हम निमाड़ी भाषा में प्राप्त समस्त लोक कथाओं की विशेषताओं पर सामूहिक रूप से विचार करेंगे। हम निमाड़ी कहानियों में निम्नांकित विशेषताएँ पाते हैं:—

(१) **अश्लीलता का अभाव**—प्रायः देखा जाता है कि जिन कहानियों में प्रेम का स्थान होता है, वे उस कहानी के नायक-नायिका के प्रेम-प्रदर्शन में अश्लील बन जाती हैं। आजकल तो जिस कहानी में अश्लीलता का स्थान न हो, वह

---

१. परिशिष्ट 'ब' कथा सं० १२।

२. पूर्ण कहानियाँ लेखक की "निमाड़ी की लोककथाएँ" भाग १ और २ में देखियें।

प्रेम-कहानी ही नहीं समझी जाती। इतना ही नहीं, कई बार हमें ऐसा लगता है कि कहानीकार ने अश्लीलता को प्रेम की आत्मा ही समझ लिया है, पर अन्य लोक भाषाओं की कहानियों की तरह निमाड़ी की प्रेम-कहानियाँ भी अश्लीलता से सर्वथा सुरक्षित हैं। गत अध्याय में दी गई दो बहिनें, जादू की आँखें, बन्दरिया से विवाह तथा कुछ अन्य कहानियों में भी प्रेम को पर्याप्त स्थान प्राप्त हुआ है, किन्तु उनमें कहीं नाम मात्र की भी अश्लीलता नहीं आ पाई। इन कहानियों में प्रयुक्त प्रेम उच्छृंखलता का प्रतीक नहीं, किन्तु वह प्रेम है, जिसके अभाव में मानव-जीवन मरुभूमि बन जाता है और जो प्रेम मानव के सरस जीवन का निर्माण करता है।

(२) **मानव-प्रवृत्तियों का स्वाभाविक चित्रण**—राग, द्वेष, ममता, क्रोध, लोभ आदि मानव की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं। निमाड़ी की अनेक कहानियों में इन मानव-प्रवृत्तियों को स्थान मिला है, किन्तु इन प्रवृत्तियों के चित्रण में हमें कहीं भी अतिरेकता दिखाई नहीं देती। जिन स्थितियों में ये प्रवृत्तियाँ जिस रूप में और जिस सीमा तक अपने स्वाभाविक स्वरूप में हैं, उसी रूप और सीमा तक उन स्थितियों के साथ इन्हें व्यक्त किया गया है। उदाहरणार्थ 'मनुष्य की स्वार्थपरता' कहानी में मनुष्य की स्वार्थ-वृत्ति के सम्बन्ध में शेर, भैंस और घोड़े के द्वारा कहे गये शब्द सर्वथा स्वाभाविक हैं। "सौतिया डाह" से सम्बन्धित अनेक घटनाएं हम अपने नित्य के जीवन में सुनते और देखते हैं। इस कहानी में छः रानियों-द्वारा छोटी रानी के प्रति डाह-वश किया गया व्यवहार स्वाभाविक है। इसी प्रकार 'बन्दरिया' से विवाह और 'छोटा भाई' कहानी में बड़ी बहिनों का अपनी छोटी बहिनों के साथ और बड़े भाइयों का अपने छोटे भाई के साथ ईर्ष्यावश किया गया व्यवहार भी स्वाभाविक है।

(३) **जाति-गत स्वभाविक चित्रण**—ब्राह्मण और बनिया लोभी होने के लिए प्राचीन काल से प्रसिद्ध हैं। समाज की इस परम्परागत धारणा का समर्थन निमाड़ी की कुछ लोक कहानियों में किया गया है। इस अध्याय में उल्लिखित ब्राह्मण और शेर की कहानी तथा सौदागर के बेटों की कहानी इसी प्रकार की है।

(४) **सत्य की विजय**—"सत्यमेव जयति नानृतम्" हमारे नीतिशास्त्रज्ञों का प्राचीन सिद्धान्त है। हमें निमाड़ी की "सियार की गवाही" और "सौतिया डाह" कहानी में इसी सिद्धान्त का समर्थन मिलता है। प्रथम कहानी में तेली झूठ बोलकर बनिया का घोड़ा ले लेता है, पर न्यायालय में सियार की गवाही से सत्य सामने आ जाता है। बनिया को उसका घोड़ा मिल जाता है और तेली अपनी धूर्तता का दण्ड पाता है। दूसरी कहानी में बड़ी रानियों के षड्यन्त्र से छोटी रानी निकाल दी जाती है, पर अन्त में बड़ी रानियों का असत्यता से पूर्ण

षड्यन्त्र खुल जाता है। छोटी रानी उसके पुत्रों सहित राज महल में बुला ली जाती है और षड्यन्त्रकारी रानियाँ काला मुँह करके निकाल दी जाती है।

(५) **बुरे काम का बुरा फल**—उपर्युक्त कहानियों में तेली को मिलने वाला दण्ड और षड्यन्त्रकारी रानियों की दुर्दशा इस बात का प्रमाण है कि बुरा कार्य चाहे कुछ समय तक छिपाया जा सके और तुरन्त ही उस कार्य का चाहे कोई दण्ड न मिले, पर उसका बुरा फल कभी न कभी बिना मिले नहीं रहता।

(६) **परोपकार के महत्त्व का प्रतिपादन**—भारतीय समाज सदा से परोपकार का महत्त्व स्वीकार करता आया है। उसकी इसी धारणा के कारण परोपकार हमारी संस्कृति का एक अंग ही बन गया है। हमारे नीति-कार, सन्त और कवि दीर्घकाल से परोपकार के गीत गाते रहे हैं, फिर हमारी लोककथाएँ ही इसके महत्व से शून्य कैसे रह सकती थीं। निमाड़ी में प्रचलित टंटिया मामा, परोपकार का बदला, बिरवा का तालाब आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं। महान् डाकू टंटिया केवल परोपकार की भावना के कारण ही निमाड़ी जनता के सम्मान का पात्र बना। "परोपकार का बदला" कहानी में बन्दर शेर और सर्प-जैसे प्राणियों पर भी उपकार करने का उपदेश दिया गया है। "बिरवा का तालाब" कहानी में तो परोपकार का एक महान् आदर्श ही उप-स्थित है।

(७) **मंगल कामना की भावना**—'मंगल कामना की भावना' लोक कथाओं की एक प्रमुख विशेषता है, विशेषकर धर्म-कथाओं में हम यह भावना अधिक स्पष्ट रूप से देखते हैं। जैसा कि हमने पूर्व पहिले बतलाया है, प्रत्येक धर्म-कथा के अंत में उस कथा में बतलाये फल की सबको प्राप्त होने की कामना की गई है।

(८) **भाग्यवाद का समर्थन**—हमें निमाड़ी की अनेक कहानियों में 'भाग्यवाद' का समर्थन मिलता है। भारतीय समाज आरम्भ से ही भाग्यवादी रहा है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि हमें भाग्य पर अटल विश्वास की भावना से अनेक बार भयंकर हानि भी उठानी पड़ी, किन्तु हमारा यह विश्वास निर्मूल न हो सका। वह आज भी किसी न किसी प्रमाण में हमारे साथ बना हुआ है। निमाड़ी की छटी माता की कथा, भिखारी का भाग्य, जादू की आँखें, एक दिन का राजा, विधवा-पुत्र आदि कहानियाँ हमारे इसी विश्वास का समर्थन करती हैं।

(९) **अलौकिकता की प्रधानता**—लोक साहित्य में प्राप्त अनेक कहा-नियाँ अलौकिकता से पूर्ण हैं और इस अलौकिकता के कारण वे विशेष मनोरंजक बन गई हैं। निमाड़ी की 'पृथ्वी और आकाश का विवाह" कहानी में सियार

के द्वारा आयोजित इस विवाह से भयभीत होकर समस्त देवता भगवान सहित पृथ्वी पर आकर सियार की खुशामद करने लगते हैं। 'बन्दरिया से विवाह' कहानी में बन्दरिया रात्रि में अप्सरा बन जाती है और वह अपने मानव पति के साथ देवलोक में जाकर भगवान तक से भेंट कर पुनः पृथ्वी पर लौट आती है। 'दो बहिनें' और 'जादू की आँखें' कहानी भी अलौकिकता से पूर्ण हैं।

(१०) **मानव का मानवेतर प्राणियों से जन्म, विवाह आदि**—निमाड़ी की कुछ कहानियाँ ऐसी हैं, जिनमें मानव का मानवेतर प्राणियों से अप्राकृतिक सम्बन्ध बतलाया गया है। पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्य का अपरलोक की परियों से विवाह तो साधारण बात है, पर इन कहानियों में पशुओं तथा अन्य प्राणियों से मनुष्य का जन्म और विवाह तक दिखलाया गया है। 'जादू की अंगूठी' कहानी में एक वृद्धा के बेटे का विवाह सर्प-कन्या से होता है। 'पुरुषार्थी बालक' कहानी में शेरनी और गाय से मनुष्य के बच्चे का जन्म होता है। 'ना समझ मेण्ढक' कहानी में एक मेण्ढक पटेल की लड़की की सुन्दरता पर मुग्ध हो उससे विवाह करने को आतुर हो जाता है। इस प्रकार की अधिकांश कहानियाँ उद्देश्य-हीन हैं। ऐसा जान पड़ता है कि इनकी रचना केवल मनोरंजन की दृष्टि से ही हुई है।

(११) **विचित्र घटनाओं का समावेश**—विचित्र घटनाओं का समावेश भी निमाड़ी लोक कहानियों की एक विशेषता है। इस प्रकार की कहानियों की रचना मनोरंजन के साथ ही विशिष्ट उपदेश देने की दृष्टि से ही की गई जान पड़ती है। जादू की आँखें, सोने का हिरण, भगवान से भेंट, भिखारी का भाग्य आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं। 'जादू की आँखें' कहानी में विषम परि-स्थिति में बुद्धि-बल से जीवन निर्वाह कर लेने का उपदेश है। 'सोने का हिरण' कहानी पशु-प्रेम की शिक्षा देती है। "भिखारी का भाग्य" बुद्धिवाद का समर्थन करती है। 'मान्धाता' और 'बिना बाप का बेटा' कहानी में बतलाई घटनाएँ भी विचित्रता से पूर्ण हैं।

(१२) **अन्ध परम्पराओं का समर्थन**—लोकसाहित्य मानव-इतिहास के अविकसित काल का साहित्य है। इसका निर्माण उन व्यक्तियों-द्वारा हुआ है, जो वर्तमान ज्ञान के प्रकाश से दूर रहे हैं। अतः उनमें अंधविश्वास होना स्वाभा-विक था। यही कारण है कि हमें अनेक लोक-कहानियों में उसके इसी विश्वास का समर्थन मिलता है। इन कहानियों में 'जादू टोना' का विशेष स्थान है। बन्दरिया रानी के पति को भगवान द्वारा दी गई दुख और सुख की बाँसुरिया, जल-परियों-द्वारा प्राप्त जादू की आँखें, एक दिन का राजा कहानी में राज-कुमारी-द्वारा प्रयोग में लाई गई जादू की रस्सी, सर्प द्वारा प्राप्त जादू का अंगूठी,

सादुल्ला डाकू-द्वारा पशु-रूपधारण और पल भर में सैकड़ों मील चला जाना, सौदागर के बेटों-द्वारा खरीदी गई चीजें—आइना, थाली, चमड़े का टुकड़ा, और जादू की अंगूठी, लकड़ी आदि मानव की अंध विश्वास पूर्ण धारणाओं के प्रमाण हैं। इस प्रकार की कहानियाँ निमाड़ी लोक साहित्य में अधिक प्रमाण में मिलती हैं।

(१३) **नीति-तत्त्वों का समावेश**—निमाड़ी-लोकसाहित्य में अनेक ऐसी कहानियाँ प्राप्त हैं, जो भिन्न-भिन्न उद्देश्यों को लेकर रची गई जान पड़ती हैं, पर हम देखते हैं कि इनमें से अधिकांश कहानियों में हमारी परम्परागत नीति के तत्त्व कहीं प्रत्यक्ष और कहीं परोक्ष रूप से निहित कर दिये गये हैं, जैसा कि हमने ऊपर सत्य की विजय, बुरे कार्य का बुरा फल, परोपकार का महत्व, लोक मंगल कामना की भावना विषयक विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए बतलाया है। उपर्युक्त स्तम्भों में बतलाई गई कहानियों के अतिरिक्त 'ब्राह्मण का अपराध' कहानी में प्रत्यक्ष रूप से गौ का धार्मिक महत्व दिखलाया गया है। 'पुरुषार्थी बालक' कहानी में गाय और शेरनी की मित्रता-द्वारा अहिंसा का समर्थन किया गया है। "बन्दरिया रानी" और "छोटा भाई" कहानी में छोटों और निर्बलों के प्रति विशेष सद्भावना प्रकट की गई है।

(१४) **परिचित पात्र और स्थान**—यदि हम निमाड़ी-कहानियों में प्रयुक्त अलौकिक और विचित्र बातों को छोड़ दें, तो हम देखते हैं कि इन कहानियों में ऐसे पात्रों और स्थानों को ही स्थान दिया गया है, जो ग्रामीणों के सुपरिचित हैं। राजा, रानी, राजकुमार, राजकुमारी, ब्राह्मण, नाई, बढ़ई, सर्प, सियार, मगर, मेण्ढक, गाय, भैंस, हिरण, घोड़ा, चिड़ियाँ, कौआ आदि परिचित प्राणी ही इन कहानियों के पात्र हैं। अनेक कहानियों में तालाब, बावली, नदी आदि जलाशयों का उल्लेख है, जो हमारे नित्य के परिचित हैं। बन्दरिया रानी का पूर्व निवास-स्थान बड़ का वृक्ष है। राजा और दीवान के पुत्रों से विवाह करने वाली दोनों अप्सराएँ भी बड़ के वृक्ष की खोह में ही रहती हैं। छः राजकुमार भी अपना विवाह करके लौटते समय एक तालाब के तट पर स्थित बड़ के वृक्ष के नीचे ही ठहरते हैं। इस प्रकार हम निमाड़ी लोक कहानियों में परिचित पात्र और वस्तुएँ ही अधिक पाते हैं।

(१५) **सुखान्त**—अन्य भारतीय लोकभाषाओं की तरह निमाड़ी में प्रचलित लोक-कहानियाँ भी हम सुखान्त ही देखते हैं। प्रत्येक कहानी का नायक अनेक संघर्षों का सामना करता हुआ अन्त में सुखी-जीवन प्राप्त करता बतलाया गया है। हमें किसी भी कहानी का अन्त दुखद स्थिति में होता नहीं मिलता।

(१६) **मनोरंजक रचना शैली**—मनोरंजक रचना-शैली निमाड़ी लोक-कहानियों की एक प्रमुख विशेषता है। प्रत्येक कहानी की रचना इस ढंग से की गई है, कि उसे सुनने में थकावट अनुभव नहीं होती। एक घटना से दूसरी घटना इस प्रकार सम्बन्धित है कि एक घटना सुनने के पश्चात् उसके आगे की घटना जानने की उत्सुकता बढ़ जाती है और इस प्रकार जब तक पूरी कहानी न सुन ली जाय, जी नहीं मानता।

—:०:—

चौथा अध्याय

निमाड़ी का प्रकीर्ण साहित्य

प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत हमने लोकोक्तियों, मुहावरों और प्रहेलिकाओं को स्थान दिया है। यहाँ उन पर संक्षिप्त में विचार कर लेना आवश्यक है।

(१) लोकोक्तियाँ

'लोकोक्ति' का सामान्य अर्थ लोक-उक्ति है, किन्तु लोगों द्वारा कही जाने वाली सभी बातें "लोकोक्ति" नहीं कहीं जा सकतीं। वर्षों के अनुभव के पश्चात् अनुभवकर्त्ता किसी विशेष वस्तु, स्थान, समय, व्यक्ति या स्थिति के सम्बन्ध में जिस निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचे, वही निष्कर्ष लोकोक्ति के रूप में व्यक्त हुआ है, किन्तु इस निष्कर्ष को लोकोक्ति का रूप लोक-स्वीकृति के पश्चात् ही प्राप्त हो सका। इससे हम कह सकते हैं कि वर्षों के अनुभव का लोक-स्वीकृत निष्कर्ष ही लोकोक्ति है। अर्ल रसेल ने एक व्यक्ति के वाग्वैदग्ध्य और अनेकों के संचित ज्ञान को लोकोक्ति कहा है।[1]

संक्षिप्तांग, सारगर्भिता और सप्राणता लोकोक्ति के प्रमुख लक्षण हैं। अनुकूल अवसर आते ही लोकोक्ति मुख से निकल पड़ती है और उसके द्वारा बहुत बड़ी बात क्षण भर में कह दी जाती है; अत: उसका संक्षिप्त होना अत्यावश्यक है। लोकोक्ति एक गहन और दीर्घकालीन अनुभव का निष्कर्ष होती है अत: उसे सार-गर्भित होना ही चाहिए। हम देखते हैं कि लोकोक्ति में त्वरित प्रभाव डालने की बड़ी शक्ति होती है। जब तक उसमें सप्राणता नहीं, तब तक उसमें यह त्वरित प्रभावी शक्ति सम्भव नहीं है।

लोकोक्तियों का लोक-जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। हावेल ने तो इनकी उपयोगिता देखकर इन्हें ईश्वरोक्ति तक कह दिया है। वे कहते हैं—

"The people's voice, the voice of God we call, and what are proverbs but the people's voice coined first and current made by common choice, then sure they must have-weight and truth with."

"लोकोक्ति ईश्वरोक्ति है, और लोकोक्तियाँ ईश्वरोक्ति के अतिरिक्त और हैं ही क्या ? और जो जनता-जनार्दन की उक्तियाँ हैं, उनकी सत्यता और प्रभाव में कौन सन्देह कर सकता है ?"

---

1. The wisdom of many and the wit of one,

हम हावेल के उक्त मत से बहुत बड़ी सीमा तक सहमत हैं, किन्तु हम लोकोक्ति को पूर्ण सत्य न मानकर सत्य का संकेत मात्र ही मानना अधिक उचित समझते हैं।

समस्त लोकोक्तियों का सम्बन्ध मानव-जीवन से ही है। इनके द्वारा मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं पर अनुभव-पूर्ण प्रकाश पड़ता है। मानव-जीवन का कोई ऐसा तथ्य नहीं, जिस पर लोकोक्तियाँ प्रकाश न डालती हों। यद्यपि इनका निर्माण करते समय किसी उद्देश्य-विशेष का ध्यान न रहा होगा; तथापि हम देखते हैं कि कोई भी लोकोक्ति निरुद्देश्य नहीं है। इसका प्रयोग किसी को शिक्षा देने, सचेत करने, पर्याय से अपना अभिप्राय व्यक्त करने, व्यंग करने, हँसी उड़ाने अथवा अपने कथन की पुष्टि करने के उद्देश्य से किया जाता है।

लोकोक्तियों का वर्गीकरण

काल के अनुसार लोकोक्तियों का वर्गीकरण सम्भव नहीं है। किसी भी लोक-भाषा में प्राप्त लोकोक्तियों को देखकर भाषा के विभिन्न कालीन प्रामाणिक रूपों के अभाव में यह कहना कठिन है कि कौन-सी लोकोक्ति का निर्माण किस काल में हुआ। अतः हम इनका वर्गीकरण निम्न प्रकार करना ही अधिक उपयुक्त समझते हैं—

(१) स्वरूप के अनुसार (२) स्थान के अनुसार और (३) विषय के अनुसार।

(१) रूप के अनुसार

रूप के अनुसार हमें निमाड़ी लोकोक्तियाँ पाँच प्रकार की मिलती हैं—(१) प्राचीन संस्कृत-साहित्य पर आधारित लोकोक्तियाँ, (२) मध्यकालीन हिन्दी कवियों के काव्य पर आधारित लोकोक्तियाँ, (३) अनूदित लोकोक्तियाँ और (४) तुलनात्मक लोकोक्तियाँ।

(१) प्राचीन संस्कृत-साहित्य पर आधारित लोकोक्तियाँ

ऋग्वेद, अथर्ववेद, तथा उपनिषद् आदि प्राचीन ग्रन्थों में अनेक ऐसे अर्धकपाद और अर्धपाद मिलते हैं, जिन्हें हम तत्कालीन लोकोक्तियाँ कह सकते हैं। हमें पौराणिक काल के ग्रन्थों में भी कुछ ऐसी लोकोक्तियाँ मिल जाती हैं, जो भारत की विभिन्न भाषाओं और उनकी बोलियों में प्रचलित वर्तमान लोकोक्तियों की आधार हैं। उदाहरणार्थ निम्नांकित लोकोक्तियाँ देखी जा सकती हैं :—

(१) न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति।

"स्त्रियों की मैत्री (प्रेम) मैत्री नहीं है।" ऐसा कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्रियों के प्रेम में स्थिरता नहीं होती। निमाड़ी में यही धारणा व्यक्त

करनेवाली लोकोक्ति इस प्रकार कही जाती है--"**लुगाई को रपनों, रात को सपनो।**"

(२) अग्निनाग्निः समिद्धते।

"अग्नि से अग्नि प्रज्वलित होती है"। निमाड़ी में ठीक इसी अर्थ की द्योतक एक लोकोक्ति प्रचलित है--"**आग सी आग जऽऽऽ**"।

(३) न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवा।

"ईश्वर परिश्रम न करने वालों का मित्र नहीं होता।" निमाड़ी में यही भाव प्रकट करनेवाली लोकोक्ति इस प्रकार है--"**आळसी-ख परमेसुर बी साथ नी देय।**"

(४) अन्धेनेव नीयमाना यथान्धाः

--कठोप० २।५

निमाड़ी में एक लोकोक्ति कही जाती है--"अन्धो अंन्धा न काई बाट बतावऽ" अर्थात् अंधा अंधे का कैसे मार्ग दिखा सकता है अथवा जो स्वयं निर्बुद्धि है, वह दूसरे को कैसे उचित सलाह दे सकता है। निमाड़ी की इस लोकोक्ति का आधार हमें कठोपनिषद् की उपर्युक्त लोकोक्ति जान पड़ती है।

(५) न हि निम्बात्स्रवेत्क्षौद्रं।

"नीम से कभी मधु (शहद) नहीं झरता"। ऐसा कहने का तात्पर्य यही है कि दुर्जनों से कभी सज्जनता की आशा नहीं की जा सकती। हिन्दी की 'नीम न मीठो होय, चाहे खाओ गुड़-घी से" लोकोक्ति भी इसी अर्थ की द्योतक है। निमाड़ी में यह भाव व्यक्त करने के लिये "**लींम लीम च रहज**" (नीम सदैव नीम ही रहती है) लोकोक्ति कही जाती है।

(६) सन्दीप्ते भवने मद्वत्कूपस्य खननं।

--वैराग्य शतक--७५

घर में आग लगने पर कुँवा खोदने की लोकोक्ति हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषायों में भी प्रचलित हैं। निमाड़ी में यही तथ्य प्रकट करने के लिये "**आग लगना पर कुवा खोदनो**" कहा जाता है।

(७) नातप्त लोहं लोहेन संधत्ते।

"बिना तपाये लोहे से लोहा नहीं जुड़ता।" यह चाणक्य नीति की एक लोकोक्ति है। निमाड़ी में इस लोकोक्ति का अनुवाद हमें इस प्रकार मिलता है--"**बिना तपो लोहो-सी लोहो नी जुड़ऽ**"।

(८) न क्षुधार्तोऽपि सिंहस्तृणञ्चरति।

"सिंह क्षुधा से पीड़ित होने पर भी घास नहीं खाता।" निमाड़ी में सिंह की इस प्रकृति का व्यक्तीकरण इस लोकोक्ति-द्वारा होता है—"सेर-खऽ मास न बैइल-खऽघास।"

(९) श्वः सहस्राद्य काकिणी श्रेयसी।

"उधार के हजार से नकद की कौड़ी भली।" इस लोकोक्ति का भाव व्यक्त करनेवाली लोकोक्तियाँ अनेक भारतीय तथा अभारतीय भाषाओं में भी सुनी जाती हैं। निमाड़ी में इस लोकोक्ति का अर्थ प्रकट करनेवाली दो लोकोक्तियाँ हैं—"(१) उधार का हजार सी घर को एक भलो" "(२) उधारे का चाउर काम नी पड़ऽ।"

(१०) शौण्डहस्तगपयोऽप्यवमन्येत।

"मद्य-विक्रेता (कलार) के हाथ का दूध भी स्वीकार करने योग्य नहीं होता"। निमाड़ी में कहा जाता है—"कलारी को दूद, कीड़ा की ऊद।"

(२) मध्यकालीन काव्य पर आधारित

इस वर्ग की लोकोक्तियों से हमारा तात्पर्य निमाड़ी की उन लोकोक्तियों से है, जिनका आधार हिन्दी के मध्यकालीन कवियों की रचना है। निमाड़ी में ऐसी अनेक लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं, जो इन कवियों की रचनाओं पर आधारित हैं। उदाहरणार्थ निम्नांकित लोकोक्तियाँ देखिये :—

(१) बहतो पानी न रमतो जोगी ख दाग नी लगऽ।

"बहता पानी और रमता (घूमता-फिरता) साधु निष्कलंक होता है।" निमाड़ी के इस कथन का आधार निम्नांकित मध्यकालीन कथन है—

"बहता पानी निरमला, बंधा गंधीला होय।
साधूजन रमता भला, दाग न लागे कोय॥"

(२) न मानता-खऽ दो धक्का।

"जो समझाने से न माने, उसे दो धक्के दे दो।" ठीक यही बात निम्न पंक्तियों में कही गई है—

"बहता को बह जान दे, मत बतलावे ठौर।
समझाये समझे नहीं, धक्का दे दे और॥"

(३) घोड़ा-ख लगाम, न मरद-ख कलाम जरूरी छे।

इस लोकोक्ति में घोड़े को लगाम होना और मनुष्य को अपनी बात का धनी होना आवश्यक कहा गया है। लगभग यही बात निम्नांकित पंक्तियों में भी कही गई है—

"बिना मेह की डाँबरी, घोड़ा बिना लगाम ।
बिना माय को लस्कर, तीनों है बेकाम ॥"

बिना वर्षा की डाँबरी, बिना लगाम का घोड़ा और बिना सरदार की सेना व्यर्थ है ।

(४) जे-खऽ रामजी राखऽ, तेखऽ कोई नी चाखऽ ।

"जिसका रक्षक भगवान है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता ।" निमाड़ी की यह लोकोक्ति निम्नांकित पंक्तियों के अर्थ की द्योतक है—

"जाको राखे साइयाँ, मारि सके नहिं कोय ।
बाल न बाँका करि सके, जो जग बैरी होय ॥"

(५) एक बेटी माथा ठोकी ।

"एक बेटी भी सिर-दर्द है ।" एक लड़की का होना भी अच्छा नहीं होता । यह बात इस मध्यकालीन दोहे में भी कही गई है । इसमें एक बेटी होने के अतिरिक्त एक कोस भी चलना और पिता का भी ऋण होना बुरा बतलाया गया है ।

"चलना भला न कोस का, बेटी भली न एक ।
देना भला न बाप का, जो विधि राखे टेक ॥"

(६) देनो न लेनो, मूंढो लड़ानो ।

"देना-लेना कुछ नहीं, पर मुँहजोरी करने को तैयार ।" निमाड़ी लोकोक्ति के ये भाव निम्न पंक्तियों में भी व्यक्त हुए हैं :—

"दाता थे सो मर गये, रह गये मक्खीचूस ।
देन-लेन को कुछ नहीं, लड़ने को मजबूर ॥"

(७) दाता-का घर-मऽ लछमी को बास ।

"दान-दाता के घर में लक्ष्मी निवास करती है ।" यही बात इस पंक्तियों में भी कही गई है :—

"दाता के घर लच्छमी, ठाढ़ी रहत हजूर ।
जैसे गारा राज को, भर भर देत मजूर ।।"

(८) दया को मूल धरम, पाप को मूल भरम ।

इस निमाड़ी लोकोक्ति में दया को धर्म का मूल और भ्रम को पाप का मूल कहा गया है, जब कि गोस्वामी तुलसीदास के निम्नांकित दोहे में दया को धर्म का मूल बतलाकर पाप का मूल अभिमान कहा गया है ।

"दया धरम का मूल है, पाप मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घट में प्राण ॥"

(३) अनूदित लोकोक्तियाँ

अन्य भारतीय लोकभाषाओं की तरह हमें निमाड़ी में भी अनूदित लोकोक्तियों की संख्या ही अधिक मिलती है। हमारी संगृहीत लगभग सातसौ लोकोक्तियों में लगभग ५५० लोकोक्तियाँ हिन्दी से निमाड़ी में अनूदित ही हैं। इनमें से कुछ लोकोक्तियाँ आगे स्थानानुसार वर्गीकरण में देशीय लोकोक्तियों के अन्तर्गत तथा विषयानुसार वर्गीकरण में यथास्थान दी जा रही हैं।

इन अनुवादित लोकोक्तियों में हमें तीन बातें दिखाई देती हैं, जो भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी हैं, जो पूर्णरूपेण अनूदित हैं, जिससे उनका निमाड़ी-रूप हिन्दी से सर्वथा भिन्न हो गया है। यथा—एक दुबळी, न दुई असाड़; कयणी जसी करणी; लाड़ा-खऽलाड़ी प्यारी, बराती-खऽभात आदि। ये लोकोक्तियाँ हिन्दी की क्रमशः दुबले पर दो असाढ़, कहनी वैसी करनी और दूल्हे को दुलहन प्यारी, बराती को भात की अनुवाद हैं।

दूसरे प्रकार की वे लोकोक्तियाँ हैं, जो नाम मात्र के परिवर्तन के साथ ज्यों की त्यों निमाड़ी में प्रयुक्त होती हैं। यथा—"धरम की गाय के दात काई देखणू", "धोबी को कुतो घर को न घाट को।" हिन्दी की "धरम की गाय के दाँत क्या देखना" और "धोबी का कुत्ता घर का न घाट का" लोकोक्ति के निमाड़ी रूपान्तर हैं। निमाड़ी की प्रकृति के अनुसार प्रथम लोकोक्ति में 'क्या' के स्थान में 'काई' और 'देखना' के स्थान पर 'देखणू' तथा द्वितीय लोकोक्ति में सम्बन्ध कारक की 'का' विभक्ति 'को' मात्र हो गई है। अनूदित लोकोक्तियों में इस प्रकार की लोकोक्तियाँ ही अधिक हैं।

अनूदित लोकोक्तियों में तीसरे प्रकार की वे लोकोक्तियाँ हैं, जिनमें अनुवाद के अतिरिक्त कुछ शब्द भी बदल दिए गए हैं। यथा—जसी हवा चलऽ, तसो तिवायो धरनू, अंधी मुर्गी चक्की का भोवती आदि। प्रथम लोकोक्ति "जैसी चले बयारि पीठि पुनि तैसी दीजै" की तथा दूसरी लोकोक्ति 'अंधी मुर्गी चूल्हे के आसपास' की निमाड़ी अनुवाद है। प्रथम लोकोक्ति में 'पीठि' के स्थान पर 'तिवायो' (अनाज उड़ाने की तिपाई) और दूसरी लोकोक्ति में 'चूल्हे' के स्थान पर 'चक्की' शब्द का प्रयोग हुआ है।

(४) तुलनात्मक लोकोक्तियाँ

निमाड़ी में कुछ ऐसी लोकोक्तियाँ भी हैं, जिनमें एक वस्तु की अथवा एक व्यक्ति की तुलना उसी के समान गुण, कर्म, स्वभाव अथवा रंग की दूसरी वस्तु अथवा व्यक्ति से की गई है। इस तुलना के कारण इस प्रकार की

लोकोक्तियों में स्वाभाविक ही उपमा और रूपक अलंकार का समावेश हो गया है। निम्नांकित लोकोक्तियाँ इसी प्रकार की हैं :—

(१) ओको रंग-रूप कसो ?
भाड़-मऽको कोयला जसो।

इस लोकोक्ति में एक कुरूप स्त्री का रंग-रूप बतलाने के लिए उसे भाड़ के भीतर के कोयले की उपमा दी गई है।

(२) जसा माधव तसा गोपी।

स्त्री-पुरुष का समान स्वभाव देखकर यह लोकोक्ति कही जाती है। इसमें माधव और गोपी को समान स्वभाववाला बतलाया गया है। कहीं-कहीं इस लोकोक्ति में माधव के स्थान में ऊधव शब्द का भी प्रयोग मिलता है। अवधी की 'जैसई उदई तैसई भान' लोकोक्ति भी इसी अर्थ की द्योतक है।

(३) जसी रांड, तसो रंडवा।

यह लोकोक्ति भी स्त्री-पुरुष का समान स्वभाव देख कर ही कही जाती है।

(४) जसा तुम तसा हम।
कूदो धमाधम॥

इस वर्ग की अधिकांश लोकोक्तियाँ तुकान्त हैं, जैसा कि हम उपर्युक्त क्रमांक १, और ४ में देखते हैं।

(२) स्थानानुसार वर्गीकरण

स्थान के अनुसार लोकोक्तियो के तीन प्रकार हो सकते हैं—सर्वदेशीय, देशीय और क्षेत्रीय अथवा स्थानीय।

(१) सर्वदेशीय लोकोक्तियाँ

सर्वदेशीय लोकोक्तियाँ वे हैं, जो देश और विदेश की अनेक भाषाओं में समान भाव अथवा समान उद्देश्य प्रकट करने के लिए कही जाती है। इस प्रकार की लोकोक्तियों में निहित सत्य सर्वमान्य होता है और वे सर्वानुभूत होती हैं।

निम्नांकित लोकोक्तियाँ इसी प्रकार की है :—

(१) निमाड़ी—अपनो बेटो, सब-म मोठो।
हिन्दी—अपना पूत सबको प्यारा।

अंग्रेजी—Every potter praises his pot.

(२) निमाड़ी—अपना मरा सरग नी दीखऽ ।
हिन्दी—अपने मरे स्वर्ग नहीं दिखता ।
अंग्रेजी—If you want a thing well done, do it yourself.

(३) निमाड़ी—अपना मूँ-सी मिया मिट्ठू ।
हिन्दी—अपने मुँह मियाँ मिट्ठू ।
अंग्रेजी—Fool to others to himself a sage.

(४) अन्धा-मऽ काणो राजा ।
हिन्दी—अंधों में काना राजा ।
अंग्रेजी—A figure among cyphers.

(५) निमाड़ी—एक सड़ी मच्छी आखो तलाब बिगाड़ज ।
हिन्दी—एक सड़ी मछली सारे तलाब को गंदा करती है ।
अंग्रेजी—A rotten apple injures its companions.

(६) निमाड़ी—एक दुबळी, न दुइ असाड़ ।
हिन्दी—दुबले पर दो असाढ़ ।
अंग्रेजी—Calamity never comes alone.

(७) निमाड़ी—काटा-सी काटो निकळऽ ।
हिन्दी—काँटे से काँटा निकलता है ।
अंग्रेजी—One nail drives out another.

(८) निमाड़ी—जे गरजऽ वी बरसऽ नी ।
हिन्दी—जो गजरते हैं, वे बरसते नहीं ।
अंग्रेजी—Barking dog seldom bites.

(९) निमाड़ी—तलाब-म रहीन मगर-सी बइर ?
हिन्दी—जल में रहकर मगर से बैर करना ।
अंग्रेजी—It is hard to live in Rome and Strive with Pope.

(१०) निमाड़ी—नाच नी आवऽ आँगन तेढ़ो ।
हिन्दी—नाच न आवे आँगन टेढ़ा ।
अंग्रेजी—A bad workman quarrels with his tools.

(ख) देशीय लोकोक्तियाँ

'देशीय लोकोक्तियों' से हमारा तात्पर्य उन लोकोक्तियों से है. जो भावों की समानता के साथ भारत की अधिकाँश भाषाओं अथवा उनकी विभिन्न

बोलियों में भी प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ, निमाड़ी की कुछ लोकोक्तियाँ देखिए—

(१) निमाड़ी—आपणी माय-ख डाक्कण कुण कयज ?
राजस्थानी—आपरी माँनै डाकण कुण केवे ?
बुन्देली—अपनी महतारी खों डाकन को कहत आय।
छत्तीसगढ़ी—अपन दाईला डाकन कौन किथे ?

(२) निमाड़ी—ऊखल-म माथो दियो, न मुस्सळ-सी काई डरनू।
राजस्थानी—ऊखली में माथौ दियो, पछै घावाँरी कांई गिणनो।
बुन्देली—ओखरी में मूंड दई है, तो मूसरन को का डर।
छत्तीसगढ़ी—बहना में मूंड डारेस, तो मूसर के का डर।

(३) निमाड़ी—एक तवा की रोटी, काई छोटी काई मोटी।
राजस्थानी—एक तवैरी रोटी, काँई छोटी काँई मोटी।
बुन्देली—एक कलने की रोटी, का छोटी का मोटी।
छत्तीसगढ़ी—एक तवा के रोटी, का नान्हीं का बड़का:

(४) निमाड़ी—केरी लियो सो काम, भजी लियो सो राम।
राजस्थानी—कर लियो सो काम, अर भज लियो सो राम।
बुन्देली—कललौ सों काम, भज लौ सो राम।
छत्तीसगढ़ी—करलेईस सो काम, भजलेईस सो राम।

(५) निमाड़ी—करमहीण खेती कर, बइल मर नी तौ बांडी पड़।
राजस्थानी—करमहीण खेती करे, बलध मरे के काल पड़े।
बुन्देली—करमहीन खेती करे, बैल मरे की सूखा पड़े।
छत्तीसगढ़ी—कहाँ जाथस भूखे, जहाँ जावे उहाँ सूखे।

(६) निमाड़ी—गरज सर, न बैद मर।
राजस्थानी—काम सर्‌या दुख बिसर्‌या, बैरी हुयग्या बैद।
बुन्देली—गरज सरे और बैद मरे।
छत्तीसगढ़ी—अपन गरज निकरिसा बैद मरिस।

(७) निमाड़ी—काळो तो रामजी को साळो।
राजस्थानी—काला काला किसनजीरा साला।
बुन्देली—जेते कारे, तेते बाप के सारे।
छत्तीसगढ़ी—जैते करिया, मोर ददा के सरिया।

(७) निमाड़ी—घर को जोगी, न पर गाँव को सिद्ध।
राजस्थानी—घर को जोगी जोगिया, आण गाँव का सिद्ध।
बुन्देली—घर को जोगी, अनगाँव को सिद्ध।
छत्तीसगढ़ी—आपन गाँव के किसान, दूसर जग के गोंठिया।

(९) निमाड़ी—घिव ढुल्यो, न भात-मऽ पड्यो।
राजस्थानी—घी ढुळ्यो तो मूंगा में।
बुन्देली—घी का गओ, खिचड़ी में।
छत्तीसगढ़ी—घिव कहाँ गिस, खिचड़ी-माँ।

(१०) निमाड़ी—जसी हवा चल, तसो तिवायो धरन्।
राजस्थानी—जैसे बाजे बायरा, तैसी दीजे पूउ।
बन्देली—जैसी हवा चले, वैसो तिबाव धरो।
छत्तीसगढ़ी—जैसन हवा बहे, तैसन पिछोरा करो।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह जान पड़ता है कि बोलियो और स्थानों में भिन्नता होने पर भी मानव की भावना, धारणा और अनुभव समान ही रहे हैं, देशीय लोकोक्तियों के जन्म का यही आधार रहा है।

(ग) क्षेत्रीय अथवा स्थानीय लोकोक्तियाँ

भावना, धारणा और विचार-शैली में समानता रहते हुए भी प्रत्येक क्षेत्र की अपनी कुछ विशेषताएँ अवश्य रहती हैं। भौगोलिक स्थिति, ऐतिहासिक परम्परा, रहन-सहन, आचार-व्यवहार, पोशाक, भोजन, जीवन-यापन का क्रम आदि ऐसी बातें हैं, जिनमें हम एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य देखते हैं। इसी भिन्नता के अनुसार उस क्षेत्र की कुछ लोकोक्तियाँ भी ऐसी होती हैं, जो उसकी अपनी होती हैं। निमाड़ी की निम्नांकित लोकोक्तियाँ ऐसी ही हैं—

(१) अपनी भयसी को घिंव बारा कोस पर खाव।

निमाड़ी-भाषी क्षेत्र में ग्वालाओं की अधिकता है। गाय-भैंस का पालन ही उनका प्रमुख व्यवसाय है। उपर्युक्त लोकोक्ति इसी व्यवसाय से सम्बन्धित है और यह अहीरों में ही अधिक प्रचलित भी है। अन्य भारतीय बोलियों में भी हम जातीय व्यवसाय से सम्बन्धित कुछ इसी प्रकार की लोकोक्तियाँ पाते हैं।

उपर्युक्त निमाड़ी लोकोक्ति का तात्पर्य यह है कि जिस वस्तु पर हमारा पूर्णाधिकार हैं, उसका उपयोग हम कभी भी और कहीं भी कर सकते हैं।

(२) आटो-साटो, ते-मऽ काई नवल टोटो।

"आटे-साटे में होने वाली हानि आश्चर्यजनक नहीं है।" ऐसा कहने का तात्पर्य यही है कि आटे-साटे के परिणाम-स्वरूप होने वाले कष्टों की शिकायत व्यर्थ है।

'आटे-साटे' का अर्थ आदान-प्रदान है। कई बार एसा होता है कि एक लड़की का पिता अपनी लड़की का विवाह दूसरे के लड़के से कर देता है और उसकी लड़की से अपने लड़के का विवाह कर लेता है। यह 'आटा-साटा' कहलाता है। इस स्थिति में यदि एक व्यक्ति अपनी पुत्र-वधू को कष्ट देता है, तो उसकी लड़की को उसकी ससुराल में भी कष्ट दिया जाता है। फिर यदि कोई दसरे की शिकायत करे तो उत्तर में उपर्युक्त लोकोक्ति कही जाती है। यह लोकोक्ति निमाड़ी-भाषी क्षेत्र की एक सामाजिक प्रथा का रहस्योद्-घाटन करती है।

(३) आदमी ना की बात, न कुम्हार को चाक।

यह लोकोक्ति प्रायः स्त्रियों के द्वारा ही कही जाती है। उनके ऐसा कहने का मतलव यह है कि पुरुषों की बुद्धि स्थिर नहीं होती, वह सदैव कुम्हार के चके की तरह घूमा करती है। यह निमाड़ी की अपनी लोकोक्ति है, हिन्दी में इस अथ की द्योतक लोकोक्ति नहीं है।

(४) आव नीं जाय, न माथा मऽ खाय।

इस लोकोक्ति का अर्थ अज्ञानता का परिचय देना है। कुछ आता-जाता तो है नहीं, पर व्यर्थ सिर पचाते हैं।

(५) असो धरूँ चाँस, कि भणेल, गुणेल सब आव म्हारा पास।

इस लोकोक्ति में प्रयुक्त चाँस शब्द अंग्रेजी के 'चाँस' शब्द का रूप जान पड़ता है। लोकोक्ति का तात्पर्य एक विशेष मूल्यवान योग प्राप्त करने से है। कहने वाला एक ऐसा अवसर या स्वर्णसंधि प्राप्त करना चाहता है, जिससे पढ़े-लिखे और बड़े अनुभवी भी उसके पास आवें।

(६) कर टण-टण, अन खाय मण-मण।

यह लोकोक्ति कार्य करने में अप्रसन्नता प्रकट करने वालों के लिये कही जाती है। काम बताने पर टनटनाते हैं और खाते हैं एक-एक मन अर्थात् अधिक। इस लोकोक्ति में निठल्ले बैठकर खाने वालों के प्रति एक तीखा व्यंग है।

(७) काणो ठड्डू, हात-मऽ लड्डू।

यह निमाड़ी की लोकोक्ति एक अयोग्य व्यक्ति-द्वारा एक बड़ी कल्पना करने पर या एक अत्यन्त साधारण व्यक्ति को कोई बड़ी वस्तु मिलने पर कही जाती हैं। जैसे यदि किसी कुरूप वर को अत्यन्त रूपवती स्त्री मिल जाय या किसी निर्धन को अनायास धनराशि प्राप्त हो जाय, तब यह लोकोक्ति चरितार्थ होती है। इस ोकोक्ति में हमारे सामाजिक जीवन की एक व्यंग्यपूर्ण भावना है।

(८) गावड्या गाव-मऽ ऊट को तमासो।

पश्चिमी निमाड़ी-भाषी प्रदेश के लिये ऊँट सदा से परिचय का प्राणी है; अतः वहाँ ऊँट दिखाई देना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इस लोकोक्ति का अर्थ है "देहाती गाँव में ऊँट का तमाशा।" ऐसा कहने का तात्पर्य यह है कि अज्ञानियों के लिये एक साधारण चीज भी आश्चर्य-जनक बन जाती है। जब कोई व्यक्ति अपनी अज्ञानता से साधारण-सी वस्तु या कार्य देखकर आश्चर्य प्रकट करता है, तब यह लोकोक्ति कही जाती है। यह लोक-अज्ञानता के प्रति व्यंग्य है।

(९) नवली का नव मायका।

निमाड़ी में 'नवली' के दो अर्थ होते हैं—नई और विचित्र। यहाँ नवली का अर्थ विचित्र वा अनोखी ही है। जब कोई चंचल स्त्री बार-बार यहाँ-वहाँ आती-जाती है, तब उसके चरित्र पर व्यंग्य करने के लिये यह लोकोक्ति कही जाती है।

(१०) मालवा का पाँडा, निमाड़ का ढांडा।

यह लोकोक्ति निमाड़ी-भाषी जनता की अपनी धारणा व्यक्त करती है। निमाड़ी अपने को मालवावालों से अधिक बुद्धिमान समझते हैं। उनकी यही भावना इस लोकोक्ति से प्रकट होती है। इसमें कहा गया है कि मालवे का पंडित निमाड़ के पशु के बराबर होता है। यह निमाड़ियों की एक आक्षेपपूर्ण गर्वोक्ति है।

(३) विषयानुसार वर्गीकरण

विषय के अनुसार निमाडी लोकोक्तियों का विभाजन निम्न प्रकार होगा—

(अ) ऐतिहासिक लोकोक्तियाँ

ऐतिहासिक लोकोक्तियाँ वे हैं, जिनका सम्बन्ध निमाड़ी-भाषी क्षेत्र के इतिहास से है। प्राचीन काल के पश्चात् इस क्षेत्र में क्रमशः मुसलमानों, मराठों और अंग्रेजों का राज्य रहा है। इस बीच इस क्षेत्र में ऐसे व्यक्ति भी हुए हैं, जिन्हें ऐतिहासिक महत्व प्राप्त रहा है। शेख दुल्ला और टंटिया ऐसे ही व्यक्तियों में से हैं। इन दोनों के जीवन की विशेषता बतलाने वाली लोकोक्तियाँ आज भी निमाड़ीभाषी जनता के मुख से सुनी जाती हैं, जो इस प्रकार हैं:—

(१) नीचऽ जमीन उप्पर अल्ला ।
बीच-मऽ फिरऽ शेखदुल्ला ।।

शेख दुल्ला पिंडारियों का सरदार था। वह इतना चालाक था कि अंग्रेज लोग अनेक प्रयत्न करने पर भी उसे न पकड़ पाते थे। कहते हैं उसमें रूप-परिवर्तन की अद्भुत क्षमता थी। वह विभिन्न मानवों और पशुओं तक का रूप धारण कर लेता था और निःशंक घूमता रहता था। उपर्युक्त लोकोक्ति उसकी इसी विलक्षणता पर प्रकाश डालती है।

(२) जे घर-मऽ टंट्यो मामो ।
ऊ घर नी रवऽ रिकामो ।।

टंटिया निमाड़ का एक वीर भील-सरदार था। बड़ो के घर डाका डालना और डाके का रुपया गरीबों, निस्सहायों तथा दीन-दुखियों को बाँट देना उसका नित्य का कार्य था। उपर्युक्त लोकोक्ति उसकी इसी उदारता की परिचायक है। उसे निमाड़ी जनता आदर से मामा कहा करती थी। लोकोक्ति में कहा गया है कि जिस घर में टंटिया मामा चला जाय वह घर खाली नहीं रह सकता अर्थात् वह घर धन-दौलत से भर जाता था।

(३) अंगरेज की नौकरी, नी बन्दर को नचावनो।

यह लोकोक्ति अंग्रेजों से सम्बन्धित है। लोकोक्ति का तात्पर्य यह है कि अंग्रेजों की नौकरी करना और बन्दर का नचाना समान है। बन्दर न जाने कब क्रोध में आकर नचाने वाले को काट खाये या नोच दे। इसी प्रकार अंग्रेज न जाने कब अपने हिन्दुस्थानी नौकर से नाराज होकर उसे बूट की ठोकर मार निकाल दे। यह लोकोक्ति अंग्रेजों के स्वभाव की असंतुलित वृत्ति प्रकट करती है।

(आ) धार्मिक लोकोक्तियाँ

इस वर्ग की लोकोक्तियों का सम्बन्ध निमाड़ी-भाषी जनता की धार्मिक भावना और विश्वास से है। निम्नांकित लोकोक्तियाँ इसी प्रकार की हैं :—

(१) करी लियो ओ काम, भजी लियो ओ राम।

इस लोकोक्ति की "भजी लियो ओ राम" निमाड़ी जनता की विविध देव-पूजन की प्रथा व्यक्त करती है। "जिसे भज लिया वही राम है" कहने का तात्पर्य यह है कि जिस देवता का पूजन-भजन किया जाय, वही पुजारी का भगवान है। पर्याय से इस कथन में विविध देवताओं के एक ईश्वर का ही प्रतिनिधि होने की भावना निहित है।

(२) गोफन्या[1] को गोफन्या, न महादेव को महादेव ।

जिस समाज में जो प्रथा होती है, उसी के अनुसार उसकी लोकोक्तियाँ होती हैं । अधिकांश निमाड़ी-भाषी जनता का व्यवसाय कृषि है । निमाड़ी कृषक अपने खेत के पक्षी उड़ाने के लिये गोफान[2] का उपयोग करता है । यह लोकोक्ति उसके इसी कार्य से सम्बन्धित है । लोकोक्ति का तात्पर्य यह है कि चाहो तो पत्थर को गोफन में रखकर उसका उपयोग पक्षी उड़ाने में कर लो या चाहो तो उसे महादेव का पिंड समझकर उसका पूजन कर लो । भांग घोटनेवालों के बीच इसी प्रकार की एक अन्य लोकोक्ति कही जाती है—"शालिग्राम का शालिग्राम, सिलबट्टा का सिलबट्टा ।"

(३) जे-खऽरामजी राखऽ, ते-खऽ कोई नी चाखऽ ।

ईश्वरीय शक्ति पर दृढ़ विश्वास प्रकट करने वाली यह लोकोक्ति पहिले दी जा चुकी है ।

(४) तेली मारऽ धार-धार, परमेसर मारऽ एक बार ।

इस लोकोक्ति का तात्पर्य यह है कि ईश्वर झूठे और धोखेबाजों को क्षमा नहीं करता । तेली बार-बार बेईमानी करके थोड़ा-थोड़ा तेल बचाता जाता है, पर ईश्वर उसका अनेक बार का बचाया तेल एक ही बार में ढुलका देता है । इसी प्रकार बार-बार बेईमानी करके इकट्ठा किया धन ईश्वर एक ही बार में नष्ट कर देता है । इस लोकोक्ति से निमाड़ी जनता का धार्मिक विश्वास व्यक्त होने के साथ ही बेईमानी करनेवालों को एक शिक्षा भी मिल जाती है । इससे यह लोकोक्ति धार्मिक होने के साथ ही नैतिक भी बन गई है । यह लोकोक्ति अन्य भारतीय भाषाओं में भी प्रचलित है ।

(५) मान तो देव, नहीं तो दग्गड़[3] ।

यह लोकोक्ति भी अनेक भारतीय बोलियों में सुनी जाती है । 'मानो तो देव, नहीं तो पत्थर' कहने का तात्पर्य यह है कि पत्थर को देवता समझकर उसका पूजन करना केवल विश्वास पर निर्भर करता है ।

(इ) नैतिक लोकोक्तियाँ

नीति-विषयक लोकोक्तियाँ इस वर्ग के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं । यथा—

(१) ओछो लड़, न उधार माँग ।

इस लोकोक्ति में दो नीति-विषयक सूत्र एक साथ कह दिये गये हैं । न ओछे

---

१. गोफान का पत्थर । २. रस्सी से बना एक फाँसा, जिसे पत्थर रख कर चलाया जाता है । ३. पत्थर ।

से लड़ो, न किसी से कुछ उधार माँगो। यह लोकोक्ति सामाजिक जीवन के एक गहन अनुभव पर आधारित है। शान्ति और सम्मान-पूर्वक जीवन यापन करने के लिये इस लोकोक्ति में निहित दोनों निर्देशों का पालन अत्यावश्यक है।

(२) कयणी जसी करणी।

इस लोकोक्ति में मानव-जीवन का एक आदर्श निहित है। "जैसा कहो, वैसा करो" यही पुरुषार्थी का लक्षण है। जो मुँह से कहते कुछ और करते कुछ, उनका समाज में कोई सम्मान नहीं होता।

(३) दानू दुसमन काम को, नादान दोस्त नी काम को।

यह हिन्दुस्थानी की "दाना दुश्मन नादान दोस्त से अच्छा" लोकोक्ति के अर्थ की द्योतक निमाड़ी लोकोक्ति है।

(४) न नाथ मिऽठनी दोर, असा आदमी-खऽ छोड़।

'न नाथ मिऽठनी दोर' कहने का तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो अनियंत्रित और उत्तरदायित्व हीन हो। इस लोकोक्ति द्वारा ऐसे व्यक्ति पर विश्वास न करने की बात कही गई है।

(५) पयिल दिन पावणू, दूसर दिन पई
अन तीसरा दिन काइ थारी अक्किल गई ?

इस भाव को प्रकट करने वाली एक लोकोक्ति हिन्दी में भी है—"पहिले दिन पाव्हना, दूसरे दिन पई; तीसरे दिन रहे तो अक्कल गई" एक दिन की मेहमानी ही सम्मान-पूर्ण होती है। किसी तरह दूसरे दिन भी रहा जा सकता है, पर तीसरे दिन भी रहने वाले को मूर्ख ही समझना चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी का भी सम्मान अल्पकाल तक ही होता है। एक विशेष सम्मानीय पुरुष भी अधिक काल तक समीप ही बना रहे तो उसका भी सम्मान घट जाता है। यह निमाड़ी लोकोक्ति मेहमानी-अवधि की ओर संकेत करती है।

(ई) दैनिक जीवन से सम्बन्धित लोकोक्तियाँ

(१) आदा रोटा पर दाल लेज।

यह लोकोक्ति अनावश्यक हस्तक्षेप करनेवालों के प्रति कही जाती है। यह हिन्दी की लोकोक्ति "आधी रोटी पर दाल झेलना" के अर्थ की द्योतक है।

(२) आठ हात काकड़ी, वाको नौ हात बीज।

ककड़ी का बीज उससे कई गुना छोटा होता है, पर इस लोकोक्ति में ककड़ी की लम्बाई आठ हाथ और उसके बीज की लम्बाई नौ हाथ बतलाई गई है। जब कोई व्यक्ति एक छोटी-सी बात को कई गुना अधिक बढ़ा-चढ़ा कर कहता है,

तब उसके प्रति यह लोकोक्ति कही जाती है। इस लोकोक्ति का उद्देश्य उसके कथन को असत्य बतलाना है।

(३) उठई जीब न लगई ताव्ठव।

यह दैनिक जीवन में बिना सोचे-समझे कुछ भी कह देने वाले के प्रति व्यंग्य है। समाज में कुछ ऐसे भी लोग होते हैं, जो अपने उत्तरदायित्व अथवा शक्ति का विचार किये बिना ही चाहे जो बोल देते हैं। यह लोकोक्ति ऐसे ही लोगों पर घटित होती हैं।

(४) काई कुकड़ो[1] बाँग देगा, तवँच[2] याणी[3] होयगा?

"क्या मुर्गा बांग देगा, तभी सबेरा होगा?" ऐसा कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार मुर्गे के बांग न देने पर भी सबेरा होना निश्चित हैं, उसी प्रकार जो कार्य होना है, वह होकर ही रहता है, किसी की अनुपस्थिति अथवा किसी एक व्यक्ति के सहयोग के अभाव में वह नहीं रुकता।

(५) काक-मऽ छोरो, गाँव-मऽ ढिंढोरो।

"बगल में लड़का, गाँव में पुकार" की लोकोक्ति हिन्दी में भी प्रचलित ही है। जब कोई व्यक्ति अपने पास वस्तु के रहते हुए भी उसे पाने के लिये बाहर दौड़ा फिरता है, तब उसकी अज्ञानता पर व्यंग्य करने के लिये यह लोकोक्ति कही जाती है।

(६) कुवा-मऽ उतरिन दोरी काढ्।

"कुँए में उतरकर डोरी काटना।" जब एक व्यक्ति दूसरे को अपनी बातों में फँसाकर आपत्ति में डाल देता है और इसके पश्चात् ऐसा प्रयत्न करता है कि वह कभी भी आपत्ति-मुक्त न हो सके, तब उस व्यक्ति पर यह लोकोक्ति चरितार्थ होती है।

(७) गाव की छोरी, न परगाव की लाड़ीबाई।

"अपने गाँव की लड़की पर गाँव की वधू कहलाती है।" तात्पर्य यह है कि स्थान और काल के अनुसार मनुष्य के मूल्य और महत्व में परिवर्तन हो जाता है।

(८) टोंगव्ठो[4] टोंगव्ठो बाजूच नवज[5]।

"घुटना घुटने की ओर ही झुकता है।" कहने का तात्पर्य यह है कि सबका आकर्षण अपनों की ओर ही होता है। दैनिक जीवन में सब अपनों का ही पक्ष लेते देखे जाते हैं। अँग्रेजी की Blood is thicker than water— लोकोक्ति का भी यही तात्पर्य है।

---

१. मुर्गा, २. तभी, ३. सबेरा, ४. घुटना, ५. झुकता है।

(९) जणऽ[1] गाय, अन कणऽ[2] बइल[3] ।

समाज में ईर्षालु व्यक्तियों का अभाव नहीं है। उपर्युक्त लोकोक्ति ऐसे ही व्यक्तियों पर चरितार्थ होती है। "गाय जनती है, पर बैल काँखता है।" ऐसा कहने का तात्पर्य यह है कि वास्तविक कष्ट तो किसी को होता हैं, पर कष्ट होने का प्रदर्शन कोई दूसरा ही करता है। हिन्दी की "तेली का तेल जले मशालची का दिल जले" लोकोक्ति का भी यही तात्पर्य है।

(१०) मनसूबा-मऽ मारवाड़ डूब्यो।

कई व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो काम कुछ नहीं करते, पर अपने काम का सब समय विचार-विमर्ष में ही व्यतीत कर देते हैं। उपर्युक्त लोकोक्ति ऐसे ही लोगों के प्रति कही जाती है।

(ड) तथ्यपूर्ण लोकोक्तियाँ।

भारतीय भाषाओं में हमें कुछ ऐसी लोकोक्तियाँ भी मिलती हैं, जिनमें हमारे सामाजिक जीवन का तथ्य अथवा सामाजिक जीवन के विविध अनुभवों का निष्कर्ष मिलता है। निमाड़ी में भी ऐसी लोकोक्तियों का अभाव नहीं है। कुछ लोकोक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

(१) जण तो जणजे चाँद, नंई तो रवजे बाँझ।

'यदि जन्म दो, तो चन्द्र की तरह गुणवान पुत्र को, अन्यथा बाँझ रहना ही अच्छा है।' सन्तानहीन व्यक्ति सन्तान पाने को व्याकुल होते हैं, पर यदि सन्तान सुलक्षण न हुई, तो वह सारे जीवन को नर्क-वत् दुखदाई बना देती है। इसीलिये इस लोकोक्ति में कुपूत को जन्म देने से बाँझ रहना ही अच्छा कहा गया है। यह लोकोक्ति मानव-जीवन के गहन अनुभव पर आधारित है।

(२) जणी सो जाणऽ, बाँझ काई जाणऽ।

जिसने कभी प्रसव किया है, वही प्रसव की पीड़ा जानती है, जिसे कभी ऐसा अवसर ही नहीं मिला, उसे इस पीड़ा का अनुभव नहीं हो सकता। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस पर बीती है, जिसने कभी वस्तु विशेष की प्राप्ति के लिए कष्ट उठाया है, उसे ही उस कष्ट का अनुभव है।

(३) न्हार[4] का मुँढ़ा मऽ टोटो जाय, तो काई पछो आवज ?

यह भी निमाड़ी की मौलिक लोकोक्ति है। इसमें कहा गया है कि यदि शेर के मुँह में टोटा चला जाय, तो वह पीछे नहीं आता। अर्थात् बड़ी हानि की पूर्ति कभी सम्भव नहीं है।

---

१. जनती है, २. काँखना, ३. बैल, ४. शेर।

(४) बद्दी का वास्तऽ कई भइस[1] मारणू ?

"क्या बद्दी (चमड़े का नाड़ा) के लिये भैंस मारें ?" जब छोटे-से लाभ के लिये बड़ी हानि उठाई जाती है, तब यह लोकोक्ति चरितार्थ होती हैं। गोस्वामी तुलसीदास की "मारेसि गाय नाहरू लागी" पंक्ति भी इसी लोकोक्ति के अर्थ की द्योतक है ।

(५) बाप का बाप जिवता, तो बाड़ा भरइ जाता।

"यदि बाप के बाप जीवित रहते, तो सब घर और उसका अहाता भी मनुष्यों से ही भर जाता।" यह निमाड़ी की मौलिक लोकोक्ति है । जब मनुष्य छोटे-छोटे खर्चों से भी जी चुराकर पसा जोड़ने का प्रयत्न करता है, तब यह लोकोक्ति कही जाती है ।

(ऊ) कृषि-विषयक लोकोक्तियाँ

ग्रामीणों का जीवन मूलतः कृषि पर अवलम्बित है। लोक-साहित्य में ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित सभी विषयों पर लोकोक्तियाँ प्राप्त हैं, फिर कृषि तो ग्राम्य-जीवन का प्राण ही है। मुझे निमाड़ी में कृषि से सम्बन्धित निम्नांकित लोकोक्तियाँ प्राप्त हुई हैं :—

(१) खांद[2] कुल्हाड़ो[3] माथऽ[4] पाणी[5] ।
सब धंदा-मऽ खेती राणी ॥

इस लोकोक्ति में कृषि को सब व्यवसायों में श्रेष्ठतम कहा गया है, पर उसकी श्रेष्ठता की एक शर्त है। यदि किसान सदा कंधे पर कुल्हाड़ी रखे और सिर पर बरसने वाले पानी की परवाह न कर कृषि-कार्य में जुटा रहे, तो ही खेती का धंधा सब धंधों में श्रेष्ठ अर्थात् सबसे अधिक लाभदायक हो सकता हैं। इस लोकोक्ति में कृषि-व्यवसाय की सफलता का रहस्य ही भर दिया गया है।

(२) स्वाती दिया पर जर, न विसाखा दौड़ऽ गाय।
असो पुकार भाड़लई[6], कि घऊँ[7] गैर[8] जाय॥

यह निमाड़ीकृषकों का कृषि-विषयक विश्वास है । लोकोक्ति में कहा गया है कि "यदि स्वाती में दिया जले अर्थात् स्वाती नक्षत्र में दीवाली हो और विशाखा नक्षत्र में गाय दौड़े, तो उस वर्ष गेहूँ की फसल को निश्चित ही गेरुआ

---

१. भैंस, २. कंधे पर, ३. कुल्हाड़ी, ४. सिर, ५. पानी, ६. ज्योतिषी, ७. गेहूँ, ८. गेरुआ ।

लगता है।" यहाँ गाय दौड़ने से तात्पर्य दीपावली के दूसरे दिन से है, जिस दिन प्रातःकाल निमाड़ में गायों का उत्सव मनाया जाता है।

(ए) स्वास्थ्य-विषयक लोकोक्तियाँ

(१) कुवार को काचरा[1], न भादव को म्हई[2]।
रामजी संदेसो भेजा, मांदो[3] पड्यो कि नई॥

इस लोकोक्ति का तात्पर्य यह है कि यदि कुँवार के महीने में करेले और भाद्रपद में मठे का सेवन किया जाय, तो स्वास्थ्य का बिगड़ना निश्चित है। लोक साहित्य में कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी हैं, जिनमें स्वास्थ्य विज्ञान के अनुभव-पूर्ण सूत्र निहित हैं। उपर्युक्त लोकोक्ति ऐसी ही लोकोक्तियों में से एक है। ऐसी लोकोक्तियों की संख्या बहुत कम है।

(ऐ) ज्योतिष-विषयक लोकोक्तियाँ

ज्योतिष हमारे देश की प्राचीन विद्या है। इस देश की जनता एक दीर्घावधि से इस विद्या से सम्बन्धित बातों पर विश्वास करती आई है। विशेष कर ग्रामीणों की दृष्टि में ज्योतिष विषयक मान्यताओं और धारणाओं पर दृढ़ विश्वास है। लोक साहित्य में उपलब्ध ज्योतिष सम्बन्धी लोकोक्तियाँ उनके इसी विश्वास की परिणाम हैं। निमाड़ी में हमें इस प्रकार की निम्नांकित लोकोक्तियाँ मिली हैं :—

(१) अमोस[4] की पड़वा[5], न पुन्नो[6] की बीज[7]।
बिन पूछ्यो मुहरत, धनतेरस व तीज॥

इस लोकोक्ति के अनुसार प्रत्येक मास की कृष्ण प्रतिपदा, शुक्ल द्वितिया, धनतेरस और तृतीया के दिन कोई भी अच्छा कार्य बिना मुहूर्त बिचारे किया जा सकता है। ग्रामीणों के मतानुसार ये शुभ तिथियाँ हैं।

(२) जे गर[8] करऽ, ते बैरी नी करऽ।

"जो ग्रह कर सकता है, वह शत्रु भी नहीं कर सकता।" अर्थात् ग्रह शत्रु से भी अधिक भयानक है। यह लोकोक्ति निमाड़ी-भाषियों का ग्रहों की शक्ति के प्रति विश्वास व्यक्त करती है।

(ओ) व्यंग्योक्तियाँ

वैसे तो अधिकांश लोकोक्तियों में व्यंग्यार्थ ही प्रधान होता है, पर कुछ लोकोक्तियाँ ऐसे भी होती हैं, जो केवल दूसरों पर व्यंग्य करने तथा उनकी

---

१. करेला, २. मठा, ३. खाट, ४. अमावस्या, ५. प्रतिपदा, ६. पूर्णिमा, ७. द्वितीया, दूज, ८. ग्रह।

हँसी उड़ाने के लिये ही होती हैं। ऐसी लोकोक्तियों में भी कोई तथ्य अथवा जीवनोपयोगी शिक्षा होती है। निम्नांकित लोकोक्तियाँ इसी प्रकार की हैं:—

(१) अधवई को जोगी, अन पाय तक जटा।

किसी नये क्षेत्र में प्रवेश करने वाले व्यक्ति में दिखावा अधिक होता है, जैसे एक नया साधु अपनी प्राचीनता दिखाने के लिये पैरों तक लम्बी जटाएँ बढ़ा लेता है। यह हिन्दी की लोकोक्ति 'नया मुसलमान अल्ला ही अल्ला चिल्लाता है' के अर्थ की द्योतक है।

(२) अंधो कूकड़ो, घट्टो भवतो।

यह हिन्दी की "कान्ही मुर्गी चूल्हे के आसपास" लोकोक्ति के अर्थ की द्योतक निमाड़ी लोकोक्ति है, जिसका तात्पर्य विचारों के एक अत्यन्त सीमित क्षेत्र में रहने से हैं। इस लोकोक्ति में मुर्गी के स्थान पर मुर्गा और चुल्हे के स्थान पर चक्की हो गया है, जो अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है।

(३) कोल्याज गुड़ हागऽ, तो लोग बाड़ क्यों बोवऽ?

यह "कोल्ह्या गुड़ हगे, तो लोग बाड़ी क्यों बोवें?" हिन्दी लोकोक्ति का निमाड़ी रूप है। इसका अर्थ यह है कि यदि बेकारों से काम चल जाय, तो काम वालों की आवश्यकता ही क्यों पड़े? जब कोई अपनी सामर्थ्य से अधिक बड़ा काम करने की डींग हाँकता है, तब यह लोकोक्ति कही जाती है।

(४) घऊँ दळठऽ खसम का, अन गीत गावऽ वीरा का।

यह हिन्दी की लोकोक्ति "खाय खसम का, गाय बीर का" का निमाड़ी रूपान्तर है। दोनों का एक ही तात्पर्य है। जब कोई उपकारी का अनुग्रह न मान अन्य की झूठी प्रशंसा करता है, तब यह लोकोक्ति कही जाती है।

(५) गाय-खऽ धुईन कुता-खऽ पायणू।

यह निमाड़ी की मौलिक लोकोक्ति है, जिसका अर्थ है गाय दुह कर कुत्ते को पिलाना। जब अच्छे का धन बुरे को दिया जाता या अच्छे कार्य से प्राप्त धन बुरे कार्य में खर्च किया जाता, तब यह लोकोक्ति चरितार्थ होती है।

(६) टिटोड़ी-न पाँय उच्चा करन सी काई सरग थोबज?

हिन्दी में भी कहा जाता है "टिटोरी के पैर ऊँचे करने से कहीं आकाश रुकता है?" ऐसा कहने का तात्पर्य यह है कि बड़ा काम छोटा

से होना सम्भव नहीं है; अतः छोटों का बड़ा काम करने का प्रयत्न हास्यास्पद है।

(७) नाव लछमी बाई, न कंडा बेचन जाय।

यह लोकोक्ति नाम के प्रतिकूल काम की द्योतक है। हिन्दी की "आँखों के अंधे नाम नैन सुख" भी ऐसी ही लोकोक्ति है।

(८) भण्यो नी गुण्यो, मुसळ्ठ सई जण्यो।

"पढ़ा न गुण ही प्राप्त किया, बस मूसल की तरह पैदा हो गया है।" कुपुत्र को देखकर यह लोकोक्ति कही जाती है।

(९) भूत घर-मऽ बेटा-बेटी ?

भूत को बेटे-बेटियों से क्या मतलब ? वह तो अकेला रहना पसंद करता है। जब किसी के संतान नहीं होती, तब यह लोकोक्ति कही जाती है। इस कथन में निस्सन्तान व्यक्ति के प्रति एक तीखा व्यंग है।

(१०) माय-खऽ तो माय नी कय, तो मावसी-ख कई माय कयगा ?

"जो माँ को माँ नहीं कहता, वह मौसी को क्या माँ कहेगा ?" मतलब यह कि जो अपनों को अपना नहीं समझता, वह परायों को अपना क्या समझेगा ! यह लोकोक्ति अभिमानी व्यक्ति के व्यवहार को देखकर कही जाती है।

(२) मुहावरे

गया सुल्लुगात (पृ० ४४५) के अनुसार 'मुहावरा' अरबी भाषा का शब्द है, जो "होर" शब्द से बना है। इसके लिये हिन्दी में अभी तक कोई सर्व-सम्मत शब्द प्रचलित नहीं हो सका। अब 'मुहावरा' शब्द ही सर्वग्राह्य हो गया है। 'हिन्दी शब्द सागर' के अनुसार लक्षणा या व्यंजना-द्वारा सिद्ध प्रयोग ही मुहावरा है। प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृत-साहित्य में भी हमें मुहावरों का प्रयोग मिलता है, किन्तु अभी तक मुहावरे का अर्थ व्यक्त करने वाले किसी संस्कृत शब्द का पता न लग सका। अरण्य रुदितं कृतं, धृतोन्धमुखदर्पणो, लोचने मीलयित्वा, हस्तिस्नान, कूप मण्डूकः आदि अनेक मुहावरे संस्कृत-ग्रंथों में देखे जा सकते हैं। हिन्दी के कुछ विद्वान् मुहावरों को 'लक्षणा' के अन्तर्गत मानते हैं। स्व० भगवानदीन जी ने मुहावरे के लिये 'रुढ़ि लक्षणा' शब्द का प्रयोग किया है (व्यंगार्थ मंजूषा—पृ० ११)।

मुहावरे वास्तव में बोलियों की देन हैं, भाषाओं की नहीं। ये पहिले बोलियों में ही आये और ग्रामों में ही इनका प्रयोग होता रहा, पर जब एक बोली का

भाषा के रूप में विकास हुआ, तब उस बोली के मुहावरे भी उस भाषा में आ-गये और इसके पश्चात् इनका धीरे-धीरे साहित्य में भी प्रयोग आरम्भ हो गया। मुहावरे वास्तव में 'वाक्य-खण्ड' हैं। जब इनका प्रयोग किसी वाक्य में किया जाता है, तब उस वाक्य की शक्ति और प्रभाव पूर्वापेक्षा बहुत बढ़ जाता है। मुहावरों की इसी विशेषता ने उन्हें भाषा-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान दे रखा है।

ऐसा जान पड़ता है कि मानव जिन वस्तुओं को देखता आया, जो विचार करता आया और उसने जिन आपबीती तथा परबीती घटनाओं को देखकर बार-बार अनुभव किया एवं इस अनुभव के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले, उन्हीं को उसने कुछ निश्चित शब्दों में आबद्ध कर दिया। ये निश्चित शब्द अथवा वाक्य-खण्ड ही मुहावरे बन गये। उसके ये मुहावरे जीवन और जीवन से सम्बन्धित विविध घटनाओं, गतिविधियों और प्रवृत्तियों पर आधारित थे, इसलिये ये उसके जीवन के साथ उसकी बोली के माध्यम से न जाने कब से चलते आ रहे हैं। ये घटनाएँ, गतिविधियाँ और प्रवृत्तियाँ सार्वजनिक थीं; इसलिये इन पर आधारित मुहावरे भी सार्वजनिक हुए। विविध बोलियों और भाषाओं में समानार्थी मुहावरों के प्रयोग का यही कारण है।

मुहावरों की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं, जो समान रूप से सभी भाषाओं और बोलियों में प्रचलित मुहावरों में देखी जाती हैं। इनकी प्रथम विशेषता यह है कि इन्हें बोलियों में जो रूप प्राप्त हुआ, वह भाषा अथवा उसके उच्च-कोटि के साहित्य में भी सदैव अक्षुण्ण रहा। यथा—एक निमाड़ी मुहावरा "अक्कल को दुश्मन" है, जो हिन्दी में "अक्ल का दुश्मन" प्रयुक्त होता है। उच्च हिन्दी में प्रयोग होने पर भी इसका यही रूप रहेगा, इसके स्थान में "बुद्धि का शत्रु" नहीं होगा।

दूसरे मुहावरों का अर्थ बिना उसका वाक्यों में प्रयोग किये स्पष्ट नहीं होता। यथा—निमाड़ी का एक मुवारा है—"गड़ा मुर्दा उखाड़नो" बिना वाक्य में उपयोग किये इसका अर्थ होगा—"श्मशान की भूमि खोदकर नीचे गड़ा हुआ मुर्दा उखाड़ना" पर इस मुहावरे का वास्तविक अर्थ भूमि खोदकर गड़ा हुआ मुर्दा उखाड़ना नहीं, वरन् एक दबी हुई बात को निकालना है। यह अर्थ इस मुहावरे का वाक्य में उपयोग करने से ही स्पष्ट होगा। यथा—"अब गड़ा मुर्दा उखाड़ना-सी काई फायदो नई छे।" (अब गड़ा मुर्दा उखाड़न से कोई फायदा नहीं हैं।

तीसरे मुहावरा शब्दार्थ को छोड़कर सदैव कोई विशेष अर्थ ही प्रकट करता है। यथा—निमाड़ी मुहावरे—"आखी खुव्ठनो" का अर्थ बन्द आँखों का खुलना नहीं, पर वास्तविकता का ज्ञान होना है।

चौथे मुहावरे का प्रयोग प्रसंग-विशेष पर ही किया जाता है और उस प्रसंग के अनुसार ही उसका अर्थ होता है। यथा—"खटाई पड़नो" मुहावरे का सामान्य अर्थ किसी वस्तु में खट्टी चीज का गिरना है, पर इस मुहावरे के कहने का वास्तविक तात्पर्य "बुराई होना" अथवा "मनोमालिन्य होना" है। इसका यह अर्थ उचित प्रसंग पर प्रयोग करने से ही स्पष्ट हो सकता है।

मुहावरों का वर्गीकरण

निमाड़ी में जो मुहावरे प्राप्त हैं, वे दो वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं—(१) मौलिक और (२) अनूदित। इनमें लोकोक्तियों की तरह अनूदित मुहावरों की संख्या ही अधिक है। यहाँ अनूदित से हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि हम निमाड़ी के जिन मुहावरों को अनूदित कहते हैं वे हिन्दी अथवा अन्य किसी भाषा से अनुवाद करके निमाड़ी में स्वीकार कर लिये गये हैं। हमारा अनूदित मुहावरों से तात्पर्य निमाड़ी के उन मुहावरों से है, जो भारत की प्रायः सभी आर्य भाषाओं और उनकी बोलियों में भी भाषा-परिवर्तन के साथ समान अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। इस दृष्टि से हम निमाड़ी के मौलिक मुहावरों को "क्षेत्रीय" और अनूदित मुहावरों को "देशीय" अथवा 'सार्वजनीन' मुहावरे भी कह सकते हैं।

(१) मौलिक मुहावरे

लोकोक्तियों की तरह निमाड़ी में कुछ ऐसे मुहावरे भी प्राप्त है, जो इसके अपने हैं। इनका प्रयोग अन्य किसी भी भारतीय बोली में नहीं होता। ये सभी मुहावरे सामाजिक जीवन से सम्बन्धित हैं:—

(१) अगिया बैताल (कड़ी मेहनत करनेवाला)
(२) कुप्पा होनो (नाराज होकर बैठना)
(३) जाफत देणो (रक्षा करना)
(४) झूटा को झाड़ (अविश्वसनीय बात)
(५) ढूंढ़ा पड़णो (खोज करना)
(६) दम का दम-म (तुरन्त)
(७) दाव्ठ नी मेव्ठ देती (न पटना)
(८) तीन-मऽ न तेरा मऽ (जिसे कोई न पूछता हो)
(९) धुन्दी जाणो (नशा उतरना)
(१०) बाण देणो (सहारा या हिम्मत देना)
(११) बोर की इव्ठई (पतली और गोरी स्त्री)
(१२) मुक्को बाघ (उन्मत्त स्थिति का मनुष्य)
(१३) रंज टूटनो (क्रोध मिटना)

(३) अनूदित अथवा सार्वजनिक मुहावरे

इस श्रेणी के मुहावरों में हमें जो मुहावरे निमाड़ी तथा अन्य भारतीय भाषाओं और उनकी बोलियों में मिलते हैं, वे चार प्रकार के हैं—मूल संस्कृत से आए हुए, संस्कृत से प्राकृत के द्वारा आए हुए, अंग्रेजी, फारसी आदि विदेशी भाषाओं से आए हुए तथा भारतीय भाषाओं के अपने मुहावरे।

(क) मूल संस्कृत से आये हुये मुहावरे

मूल संस्कृत से आए मुहावरों की जितनी संख्या भारतीय आर्य भाषाओं में हैं, उतनी संख्या उनकी बोलियों में नहीं है। बोली साहित्य की भाषा नहीं पर साहित्य के प्रभाव से दूर रहने वाले ग्रामीणों की नित्य व्यवहार की भाषा है, जिससे संस्कृत-साहित्य में प्रयुक्त मुहावरों का इन बोलियों में अभाव स्वाभाविक ही है। हमें निमाड़ी तथा अन्य भारतीय बोलियों में जो थोड़े-बहुत मुहावरे मिल जाते हैं, वे भाषा-साहित्य से सम्बन्धित और प्रभावित व्यक्तियों के द्वारा ही इन बोलियों में प्रविष्ट हुए होंगे। निमाड़ी में इस प्रकार के मुहावरे निम्नांकित हैं :—

(१) कान देणू या कान लगाणू अथवा कान लगणू—कर्णं लगति।
(२) सिर पर पाव रखणू (नू)—पदं मूर्ध्नि समाधत्ते।
(३) मू देखनो—अधुनामन्मुखमवलोकयसि।
(४) पाव भर नी चल सकनो—पदमेकंचलितुं न शक्नोति।
(५) माथा ठोकनो—शिरस्ताऽयन्।
(६) मुट्ठी भर घास—घासमुष्टिगपि।
(७) गला लगनो—ग्रीवायां लगति।
(८) कान उखाड़नो (उमेटनो)—कर्णमुत्पाटयामि।
(९) मन नी होनो—मनःकथमपि न करोति।

यहाँ यह स्मरणीय है कि किसी भी एक भाषा के मुहावरों का शब्दशः अनुवाद दूसरी भाषा में नहीं किया जा सकता। इतना ही नहीं, एक बोली में प्रयुक्त मुहावरों का अनुवाद उसी बोली की साहित्यिक भाषा में करने से भी मुहावरों का संदर्भ नष्ट हो जाता है। वे जिस भाषा या बोली में जिस रूप में प्रयुक्त होते हैं, उस मूल रूप में ही उनकी व्यंजना वास्तविक अर्थ की द्योतक होती है। यथा 'कमर टूटना' हिन्दी मुहावरे का हिन्दी की साहित्यिक भाषा में 'कटिभंग' कर देने से मूल मुहावरे की वास्तविक व्यंजक शक्ति नष्ट हो जाती है। एक भाषा के मुहावरों का दूसरी भाषा या बोली में भावानुवाद ही हो सकता है और यह भावानुवाद भी तभी सार्थक हो

सकता है जब कि हम उसे अपनी भाषा के प्रयोगों के अनुसार बना लें। उपर्युक्त मुहावरों में हमें शब्दानुवाद तथा भावानुवाद एक साथ ही दिखाई देता है, किन्तु प्रधानता भावानुवाद की ही है। उपर्युक्त संस्कृत मुहावरों का प्रयोग शकुन्तला नाटक में हुआ है।

(ख) संस्कृत से प्राकृत के द्वारा आये हुए मुहावरे

भारतीय आर्य भाषाओं में प्रयुक्त अधिकांश शब्द संस्कृत से प्राकृतों अथवा अपभ्रंशों के द्वारा ही आये हैं। यही स्थिति मुहावरों की भी है। हमें निमाड़ी में कुछ ऐसे मुहावरे मिलते हैं, जो संस्कृत से प्राकृत के द्वारा हिन्दी में आये और हिन्दी से निमाड़ी में गृहीत हुए हैं। उदाहरणार्थ निम्नांकित मुहावरे देखे जा सकते हैं—

	संस्कृत	प्राकृत	निमाड़ी
(१)	अंकं समारोहति	अंकं समारोहदि	गोद-मऽ बठनो
(२)	जलांजलि दीयते	जलंजली दिज्जति	पानी देनो
(३)	भणोन्मुद्रितया जिह्वया	भणउम्मुद्दि आयेजीहाये	खुल्ठी जीब-सी कयणू
(४)	मुखेषु मुद्रा	महसु मुद्दा	मुंढा पर मुहर लगानो, मुंढा पर ताल्ठो देणो

उपर्युक्त मुहावरों में से प्रथम मुहावरे का प्रयोग शकुन्तला नाटक में और शेष मुहावरों का प्रयोग कर्पूरमंजरी नाटिका में हुआ है। इन मुहावरों में भी हम शब्दानुवाद की अपेक्षा भावानुवाद ही अधिक देखते हैं।

(ग) विदेशी भाषाओं से आये मुहावरे

निमाड़ी में विदेशी भाषाओं से जो मुहावरे अनूदित होकर आये हैं, उनमें अंग्रेजी और फ़ारसी के ही मुहावरे हैं, जो निम्न प्रकार हैं:—

अंग्रेजी से अनूदित

(१) एक फत्तर सी दो चिड़ी मारनो—To kill two birds with one stone.

(२) असमान होरी (तक) तारीफ करनो—To praise to the skies.

(३) बुरी रस्ता चलनो (णू)—To take the wrong turning.

(४) अस्तीन को साप—Snake in sleeves.

(५) मरा-ख मारनो—To slay the slain.

(६) दाल्ठ म काल्ठो—Some thing at the bottom.

(७) कुत्ता-बिल्ली सरीका लड़नो—To quarrel like dogs and cats.

(८) मूरख बनानो—To make an ass of.

फ़ारसी से अनूदित

(१) मुवा को दियलो—चिराग सहरी (मरणोन्मुख)

(२) लम्बी जीबवाळो—दराज जबान (बकवासी)

(३) आपा-सी बायेर होनो—अज जामा बेरूं शुदन (पाजामे से बाहर होना)

(४) हात-सी दिल जानो—दिल अज दस्त रफतन (काबू से बाहर होना)

(५) खाल खेचनो (उधेड़ना)—पोस्त कशीदन (खाल खींचना)

(६) बिच्छू को डंख (टेढ़े स्वभाव का आदमी) कजफह

(७) अच्छो नी लगनो (अस्वस्थ्य अनुभव करना) खुशन न भीआयद

(८) आसू पोछनो (झूठा ढाढस बंधाना) अश्कशोई करदन

(९) जीब चलानो—जबांदराजी

(१०) मू खोलनो—लब कुशादन

निमाड़ी में कुछ ऐसे मुहावरों का प्रयोग भी मिलता है, जो वास्तव में न फ़ारसी के हैं और न हिन्दी के ही हैं। ये मुहावरे फारसी और हिन्दी के सहयोग से बने हैं। इस प्रकार के कुछ मुहावरे निम्नांकित हैं :—

(१) हवा बाँधनो—हवा बाँधना (प्रभाव या रोब जमाने का प्रयत्न करना)

(२) हवा होनो—हवा होना (भाग जाना)

(३) हवा खानो—हवा खाना (निराश्रित होना)

(४) हवा बतानो—हवा बताना (कुछ न देना)

(५) खबर लेनो—खबर लेना (ठीक करना, पिटाई करना)

(घ) भारतीय आर्य भाषाओं में प्रयुक्त मुहावरे

इन मुहावरों में अधिकांश विविध अंगों से सम्बन्धित मुहावरे हैं। हमें निमाड़ी में विविध अंगों से सम्बन्धित जो मुहावरे मिलते हैं, वे अन्य भारतीय भाषाओं की तरह पूर्ण शरीर से सम्बन्धित एवं सिर, कान, नाक, आँख, गाल, जीभ, दाँत, मूँछ, कण्ठ, कलेजा, छाती, पीठ, पेट, मन, कमर, हाथ, अँगुली, अँगूठा, नख और पैर से सम्बन्धित हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि इन सभी अंग-उपांगों से सम्बन्धित मुहावरे हमें कुछ विकसित और व्यापक बोलियों में ही मिलते हैं। इससे निमाड़ी का भारत की विकसित और व्यापक बोलियों में से एक होना स्पष्ट है। निमाड़ी के ये मुहावरे निम्नांकित हैं :—

(अ) पूर्ण शरीर से सम्बन्धित

(१) आंग पर लेणू (अपने पर आरोपित करना, उत्तरदायित्व स्वीकार करना)

(२) आंग पर पड़णू (अनिच्छापूर्वक स्वीकार करना)

(३) आंग बचाणू (जी चुराना)

(४) आंग देणू (योग देना)

(५) आंग चोरणू (शरीर छिपाना)

(६) आंग झाकणू (वस्त्राच्छादन करना)

(७) आंग धरनू (शरीर अकड़ना)

(आ) सिर (माथा) से सम्बन्धित

(१) माथा उठनो (सिर दर्द होना)

(२) माथा उठानो (सिर ऊँचा करना, अभिमान करना)

(३) माथा उच्चो करीन चलनो (अभिमान से चलना)

(४) माथा ठोकनो (पछताना)

(५) माथा पचानो (परेशान करना)

(इ) कान से सम्बन्धित

(१) कान उघड़नो (सावधान या सचेत होना)

(२) कान उमटनो (दण्ड देना)

(४) कान झाड़नो (अस्वीकार करना)

(४) कान धरनो (आगे न करने की प्रतिज्ञा करना)

(५) कान पर जुवा नी रेंगनो (कोई प्रभाव न पड़ना)

(६) कान फूकनो (कुछ सिखाना, बहकाना)

(७) कान-सी कान लगानो (गुप्त बात करना)

(ई) नाक से सम्बन्धित

(१) नाक उच्ची करनो (इज्जत बढ़ाना)

(२) नाक काटनो (नीचा दिखाना)

(३) नाक नी रहनो (इज्जत मिटना)

(४) नाक फुलानो (नाराज होना, रिसाना)

(उ) आँख (डोळा) से सम्बन्धित

(१) डोळा उठनो (आँखें आना)

(२) डोळा बठनो (अंधा होना)

(३) डोव्ठा उघड़नो (वास्तविक ज्ञान होना)
(४) डोव्ठा निच्‌चऽ करनो (लज्जित होना)
(५) डोव्ठा मीचनो (ध्यान न देना, मरना)
(६) डोव्ठा-म जीव आनो (मरणासन्न होना)

(ऊ) गाल से सम्बन्धित

(१) गाल उठनो (हृष्टपुष्ट होना)
(२) गाल फुलानो (नाराज होना)
(३) गाल बजानो (बकवास करना)
(४) गाल बठनो (दुर्बल होना)

(ए) जीभ से सम्बन्धित

(१) जीब चलानो (मुँहजोरी करना)
(२) जीब हलानो (कोई बात कह देना)
(३) जीब-म पानी आनो (खाने का जी चाहना)
(४) जीब-म हाड़ नी होनो (चाहे जो बोलना)

(ऐ) दाँतों से सम्बन्धित

(१) दात दिखानो (असमर्थता प्रकट करना)
(२) दात गिरानो (नीचा दिखाना)
(३) दात उखाड़नो (पराजित करना)
(४) दात तोड़नो (पराजित करना)
(५) दात निपोड़नो (लज्जित होते हुए हँसना)

(ओ) मूँछ (मुच्छी) से सम्बधित

(१) मुच्छी उखाड़नो (पराजित करना)
(२) मुच्छी उतारनो (बेइज्जत करना)
(३) मुच्छी नीची करनो (हार मानना)
(४) मुच्छी पर ताव देनो (अभिमान करना)
(५) मुच्छी मरोड़नो (अभिमान दिखाना)

(औ) कण्ठ (गला या गव्ठो) से सम्बन्धित

(१) गव्ठा उप्पर छूरी फेरनो (बड़ी हानि पहुँचाना, प्राण लेना)
(२) गव्ठा छुड़ानो (पीछा छुड़ाना)
(३) गव्ठा उतरनो (बात पसन्द आना)
(४) गव्ठा पकड़नो (प्राण लेने को तैयार होना)
(५) गव्ठा पड़नो (पीछे लगना, जिम्मेवारी आ पड़ना)

(क) कलेजे से सम्बन्धित

(१) कलेजो उड़नो (भय से दिल धड़कना)
(२) कलेजा खाणो (बहुत सताना)
(३) कलेजा फटनो (बहुत दुःख होना)
(४) कलेजा-म लगनो (हृदय में चुभना)
(५) कलेजा होनो (अधिक प्रिय)

(ख) छाती से सम्बन्धित

(१) छाती फटनो (अत्यन्त शोकातुर होना)
(२) छाती फुलानो (अभिमान करना)
(३) छाती ठोकनो (लड़ने को ललकारना)
(४) छाती अड़ानो (साहस से जुट जाना)

(ग) पीठ से सम्बन्धित

(१) पीठ ठोकनो (शाबासी देना)
(२) पीठ पछो (अनुपस्थिति में)
(३) पीठ पेट एक होनो (बहुत दुर्बल होना)
(४) पीठ लगनो (पराजित होनो, नीचा देखना)
(५) पीठ पर हात धरनो (बढ़ावा देना, प्यार करना)

(घ) पेट से सम्बन्धित

(१) पेट आनो (अनुचित गर्भ रहना)
(२) पेट-म समानो (गर्भ में आना, गर्भवती होना)
(३) पेट उतरनो (दस्त लगना)
(४) पेट चलानो (पेट भरने के लिए कमाना)
(५) पेट-म रखनो (किसी को न बतलाना)

(ट) मन से सम्बन्धित

(१) मन-म रखनो (स्मरण रखना)
(२) मन फिरनो (अरुचि होना)
(३) मन मुटाव होनो (वैमनस्य होना)
(४) मन भरनो (पूर्ण सन्तोष होना)
(५) मन लगनो (दत्तचित होना, प्राप्त करने की इच्छा होना)

(ठ) कमर से सम्बन्धित

(१) कम्मर कसनो (करने को तैयार होना)
(२) कम्मर तोड़नो (कोई काम करने योग्य न रखना)

(३) कम्मर टूटनो (निस्सहाय होना)
(४) कम्मर-म जोर होनो (करने की हिम्मत होना)
(५) कम्मर अड़ानो (साहस के काम में जुट जाना)

(ङ) हाथ से सम्बन्धित

(१) हात की बात (बहुत सरल)
(२) हात-म करनो (अधिकार में लेना)
(३) हात टेकनो (हार मानना)
(४) हात-म आनो (अधिकार में आना)
(५) हात देनो (सहायता करना)
(६) हात छोड़नो (मारना)
(७) हात मारनो (प्राप्त करना)

(ढ) अंगुली (बोट) से सम्बन्धित

(१) बोट बत'नो (संकेत करना)
(२) बोट पकड़नो (सहारा लेना)
(३) बोट पर नचानो (अपनी इच्छानुसार चलाना)
(४) बोट मोड़नो (बुरा चाहना, शाप देना)
(५) बोट करनो (चिढ़ाना)

(ण) अंगूठे (अंगूठा) से सम्बन्धित

(१) अंगूठा दिखानो (इनकार करना)
(२) अंगूठा पकड़ानो (कुछ न देना)
(३) अंगूठा देनो (लिखे हुए पर अंगूठे की निशानी करना)

(च) नाखून (नख) से सम्बन्धित

(१) नख गड़ानो (चिमटी लेना)
(२) नख बरोबर (बहुत थोड़ा या छोटा)

(छ) पैर (पाय) से सम्बन्धित

(१) पाय अड़ानो (पीछे न हटना)
(२) पाय उखड़नो (पीछे हटना)
(३) पाय पकड़नो (दीनता दिखाना)
(४) पाय लगनो (पैर छूना)

(ज) टाँग से सम्बन्धित

(१) टांग अड़ानो (बाधा डालना)

(२) टांग घसीटनो (आगे न बढ़ने देना, बिना खड़े हुए चलना)
(३) टांग तोड़नो (पराजित करना)

अन्य मुहावरे

(निमाड़ी में प्रयुक्त कुछ अन्य मुहावरे निम्नांकित हैं :—

(१) अंगार उगळनो (क्रोध में कड़ी बात कहना)
(२) अक्कल आणो (बुद्धि ठिकाने आना)
(३) अक्कल को पुतळो (बहुत बुद्धिमान)
(४) अड़ियल टट्टू (हठी, जिद्दी)
(५) काम आनो (काम पड़ना, सहायक होना)
(६) गाँठ को पूरो (कंजूस धनिक)
(७) घर को रस्तो लेनो (घर भागना)
(८) झक मारनो (व्यर्थ समय नष्ट करना)
(९) डींग मारनो (अपनी झूठी प्रशंसा करना)
(१०) ढिंडोरो पीटनो (अधिक प्रसिद्धि करना)
(११) चम्पत होणो (भाग जाना)
(१२) तीन-पाँच करनो (झगड़े की बात करना, मुंहजोरी करना)
(१३) तूती बोलनो (अधिक नाम होना, इच्छानुसार कार्य होना)
(१४) दिन तेर करनो (दिन बिताना)
(१५) धोका की टट्टी (भ्रम में डालने वाली वस्तु)
(१६) पानी-सो पतळो (तुच्छ)
(१७) बरत लेनो (व्रत करना, कटिबद्ध होना)
(१८) बीड़ो उठानो (प्रतिज्ञा करना)
(१९) रंग जमाणो (प्रभाव डालना)
(२०) लाल-पीळो होनो (क्रोध करना)

(३) प्रहेलिकाएँ

प्रहेली, पहेली अथवा बुझौवल बालक-बालिकाओं के मनोरंजक के साधन हैं। अधिकांश पहेलियाँ हास्यपूर्ण होती हैं, जिससे उन्हें सुनने में बच्चों को बड़ा आनन्द आता है और उनका उत्तर ढूंढ़ने में उनमें बड़ा कौतूहल देखा जाता है। पर प्रहेलिकाओं का महत्व केवल बालकों के मनोरंजन तक ही सीमित नहीं है, उनसे उस समाज का बुद्धि-कौशल और रुचि का भी पता लगता है, जिस समाज में ये प्रचलित हैं। ये मनोरंजन के साथ-साथ कौतूहल, तर्क और कल्पना-शक्ति को भी कुशाग्र करती हैं। आजकल भी बालकोपयोगी

पहेलियों का निर्माण होता है। हम बालकों के लिये प्रकाशित किये जानेवाले सभी पत्र-पत्रिकाओं में नित नई पहेलियाँ देखते हैं, किन्तु ये सर्वथा अर्वाचीन नहीं है। संस्कृत-साहित्य में इन्हें 'ब्रह्मोदय' कहा गया है। वैदिक साहित्य में 'ब्रह्मोदय' शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों में मिलता है। डाक्टर सत्येन्द्र ने लिखा है कि "अश्वमेध यज्ञ में अश्व की बलि देने के पूर्व होतृ और ब्राह्मणों-द्वारा ब्रह्मोदय पूछने की प्रथा थी।[1]" इससे जान पड़ता है कि पहेलियाँ भी हमें अपनी परम्परागत सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हैं और दीर्घकाल से भारतीय लोक-साहित्य में उनका प्रयोग होता आया है। आज भी हमारे यहाँ कुछ ऐसी जातियाँ हैं, जिनमें वर-वधू विवाह के समय परस्पर पहेलियाँ पूछते और उत्तर देते हैं।

सभी भारतीय भाषाओं और बोलियों में अनेक प्रहेलियाँ प्राप्त है। निमाड़ी में भी इनकी न्यूनता नहीं है। यदि सब प्राप्त निमाड़ी पहेलियाँ एकत्र की जावें, तो उनका एक अच्छा संग्रह प्रकाशित किया जा सकता है। लोकोक्तियों और मुहावरों की तरह निमाड़ी की अनेक पहेलियाँ भी हिन्दी की भाषानुवाद मात्र हैं, किन्तु इस लोक भाषा की अपनी मौलिक प्रहेलिकाएँ भी हैं, जो वहाँ के जन-जीवन पर आधारित हैं। निमाड़ी की कुछ पहेलियाँ इस प्रकार हैं :—

(१) **अत्तिस नाड़ा बत्तिस नाड़ा,**
डोंगर-मऽ दरवाजो। (ताला-चाबी)

(२) **अल्लो सो[2] मनीराम, अल्ली बड़ी पूछ;**
ऊ गयो मनीराम, पकड़ लाओ पूछ। (सुई-डोरा)

यह प्रहेलिका हिन्दी में भी कही जाती है, जो इस प्रकार है—

"छोटा-सा मनीराम, बड़ी लम्बी पूछ।
चला गया मनिराम, पकड़ लाओ पूछ॥"

(३) **आमे[3] आवता था, तमे[4] जावता था।**
हम-न हासी करी, तमे रड़ी[5] केम[6] आया? (बिच्छू)

इस पहेली पर गुजराती का बहुत प्रभाव है। इसके पुरुषवाची सर्वनाम शब्द अमे, तमे और प्रश्नवाचक केम गुजराती शब्दों के ही रूप हैं।

यह प्रहेलिका हिन्दी में इस प्रकार कही जाती है :—

हम आते थे, तुम जाते थे।
हमने हँसी की, तुमने रो दिया।

---

१. ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन पृष्ठ ५२०, २. छोटा-सा (इतना-सा), ३. हम, ४. तुम, ५. रोना, ६. क्यों।

(४) उप्पर सी पड़ी, दस न उठाई।
एक न चाखी, चालीस न चाई[1] ।। (फल)

यह प्रहेलिका भी हिन्दी में प्रचलित है, जो इस प्रकार है :—

ऊपर से गिरा, चट से उठाया।
एक ने खाया, चालीस ने चाहा ।।

भाषा की दृष्टि से इस प्रहेलिका के हिन्दी और निमाड़ी रूप में नाम-मात्र का ही अन्तर है।

(५) उच्ची सी काकी, ओ-का बड़ा बड़ा दात। (खजूर का वृक्ष)

यह निमाड़ी की मौलिक प्रहेलिका है, जो राजस्थानी से निमाड़ी में आई जान पड़ती है। यह भी सम्भव है कि जो मारवाड़ से निमाड़ प्रदेश में आकर बसे, उनके द्वारा यह प्रहेलिका निमाड़ी में प्रयुक्त हुई हो; क्योकि खजूर के वृक्ष जितने मारवाड़ में हैं, उतने निमाड़ में नहीं हैं। छींद के वृक्ष को भी खजूर का वृक्ष कहा जाता है, जो न्यूनाधिक संख्या में सभी दूर पाया जाता है।

(६) एक गड्डू[2] मऽ बत्तिस लाड्डू[3] (दाँत)

यह निमाड़ी की मौलिक प्रहेलिका जान पड़ती है।

(७) एक छोरी[4] राम खऽ लोट[5] (बाटी)

यह निमाड़ी की मौलिक प्रहेलिका है ।

(८) एक छोरो फिरतो जाय।
पागड़ी[6] बाँधतो जाय ।। (चर्खे की अटेरन)

यह निमाड़ी की मौलिक पहेली है, हिन्दी में ठीक इसी प्रकार की प्रहेलिका नहीं सुनी गई। निमाड़ प्रदेश में कपास अधिक होता है और चर्खे का भी अधिक प्रचार है, जिससे वहाँ इस प्रहेलिका का बनना स्वाभाविक है।

(९) एक बायको[7] खऽ तीन नऽ घिसाड़ी[8]। (मोट)

यह प्रहेलिका कृषि-कार्य से सम्बन्धित है, जिससे इसका ग्रामीण किसानों में अधिक प्रचलन स्वाभाविक है। 'एक स्त्री के तीन के द्वारा घसीटने की बात' कहने में कुछ भद्दापन तो आ गया है, पर इसके श्लेषार्थी होने के कारण इसमें अश्लीलता नहीं है। इसमें मोट को स्त्री कहा गया है। इसमें 'बायको' शब्द मराठी का है, जो निमाड़ी पर मराठी का प्रभाव स्पष्ट करता है।

---

१. चाही, २. छोटा लोटा, ३. लड्डू, ४. लड़का, ५. मोटा-तगड़ा, ६. पगड़ी (साफा) ७. स्त्री, ८. घसीटी।

(१०) एल्लो[1] सू लीपण[2], सारा घर मऽ लीपऽ। (दीपक)

यह निमाड़ी की मौलिक प्रहेलिका है। एक छोटे से दीपक से सारे घर में प्रकाश होता देख थोड़े से लीपन से पूरे घर के लिप जाने की कल्पना की गई है।

(११) एल्लो सो कारो॥
सबसी न्यारो॥ (रुपया)

यह भी निमाड़ी की मौलिक प्रहेलिका है। "कारो" का अर्थ काला है और रुपया "गोरा" होता है। ऐसा जान पड़ता है कि 'न्यारो' से तुक मिलाने के लिए ही प्रथम पंक्ति में कारो कर दिया गया है।

(१२) कहे गजपति[3] सुन रे हऽठपति
घरनीधर किन्ने मारा ?
चार खंब उप्पर छत्तर,
छत्तर-मऽ छाया, छाया-मऽ नर।
नर का बगल-मऽ नारी
नारी का मूँ-मऽ नर, उन्ने मारा घरनीधर (गोफन का पत्थर)

यह पश्चिमी निमाड़ की एक मौलिक प्रहेलिका है। इस भू-भाग में सुवरों के द्वारा खेत की फसल को बहुत हानि पहुँचती है, जिससे वहाँ सुवरों को मारने का प्रयत्न किया जाता है। इस भाग में बसे भील लोग भाले अथवा बाण से सुवर मारते हैं, पर इस प्रहेलिका में गोफन के पत्थर से सुवर मारने की बात श्लेषार्थ में कही गई है। प्रथम दो पंक्तियों में एक महावत एक सुवर (घरनीधर) को मरा देखकर समीप ही हल चलाने वाले हलवाहे (हलपति) से पूछता है कि यह सुवर किसने मारा ?

कहावत के इस प्रश्न का उत्तर सीधा न देकर बड़ा घुमा-फिराकर श्लेषार्थ में दिया गया है। वह कहता है—'चार खंभों' (मचान के चार पैर) के ऊपर एक छत्र (छाया के लिए बनाया गया टप) है। उस छत्र की छाया में एक मनुष्य (खेत का रखवाला) है। उस मनुष्य के बगल में एक नारी (गोफन-स्त्रीलिंग) है। उस नारी (गोफन) के मुँह में एक नर (गोफन का पत्थर) है। उसी ने इस सुवर को मारा है। निमाड़ी भाषी प्रहेलिकाकार ने इस प्रहेलिका को बनाने में जिस कल्पना और परिश्रम से काम लिया है, वह वास्तव ही प्रशंसनीय है।

---

१. थोड़ा सा, २. लीपना (जिससे घर लीपा जाता है), ३. हलवाहा।

(१३) का‌ऽठी कराय, भूरू पाणी।
ते-मऽ नाचऽ झामा राणी ॥ (रई)

यह प्रहेलिका भी निमाड़ीभाषियों की मौलिक सूझ है। इसमें रई लगाने का वर्णन एक प्रहेलिका के रूप में किया गया है। रई को झामा रानी कहा गया है और उसके काले घड़े (रई लगाने का मटका) में भरे भूरे पानी (छाछ) में नाचने की कल्पना की गई है।

(१४) का‌ऽठी गाय काटा खाय।
पाणी देखीन भड़की जाय ॥ (जूता)

यह पहेली हिन्दी में इस प्रकार कही जाती है:—

'काली गाय काटा खाय।
पानी को देख के भड़की जाय' ॥

इसमें जूते को काली गाय कहा गया है, जो काँटों पर से चले जाते हैं, पर मार्ग में पानी देखकर डर जाते हैं।

(१५) काच-नी सीसी-मऽ, कंचण का दाणा। (अनार का फल)

इस प्रहेलिका में अनार के फल को देखकर काँच की सीसी में सोने के दाने होने की कल्पना की गई है, जो वास्तव ही युक्ति संगत है।

(१६) गाय चलती जाय, दूद पड़तो जाय। (चक्की)

इस निमाड़ी की मौलिक प्रहेलिका में चक्की को गाय की और उसके चलने से गिरने वाले आटे को दूध की उपमा दी गई है।

(१७) गिड़ि गिड़ी[1] गुपुत[2],
किल्य[3] कुपुत[4]।
सू[5] तारा[6] मन-मऽ,
कय[7] मारा[8] कान-मऽ। (नारियल)

यह भी निमाड़ी की मौलिक पहेली है, जिस पर गुजराती भाषा का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। इसमें प्रयुक्त सूँ, तारा, मारा गुजराती के ही रूप हैं। नरेटी के भीतर बजते नारियल को अपने कान से लगाकर उससे उसके मन की गुप्त बात कान में कहने को कहना, बड़ा आह्लादजनक है।

(१८) घेरदार घांघरो, गुलाबदार बूटी।
बजार-मऽ गई, राणाजी-नऽ लूटी ॥ (अधपकी मिर्च)

---

१. गड़-गड़, २. गुप्त, ३. चाबी, ४. कुलुप (ताला), ५. क्या, ६. तेरे, ७. कह, ८. मेरे।

इस पहेली में बाजार में मिलने वाली अधपकी मिर्च को देख कर एक गुलाबी बूटे से युक्त घेरदार घांघरा पहिन कर बजार में जाने वाली स्त्री का राणा जी के द्वारा लूटने की कल्पना की गई है। इस कल्पना में अधपकी (लाल और हरी) मिर्च का रूप-वर्णन तथा उसका बाजार में बिकना एक साथ ही बतला दिया गया है। इस प्रहेलिका में 'राणा' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'राणा' मेवाड़ के शासकों की परम्परागत उपाधि है। इससे यह प्रहेलिका मेवाड़ से निमाड़-प्रदेश में आकर बसने वाले राजपूतों अथवा अहीरों-द्वारा निर्मित जान पड़ती है।

(१९) चार रंग चौरंग।
फूल पड़ऽ एक रंग ॥ (पान का बीड़ा)

पान के बीड़े में पान, चूना, कत्था और सुपारी, ये चार चीजें होती हैं। सबका रंग भी भिन्न-भिन्न होता है, पर उसके चबाने पर केवल एक ही रंग—लाल रंग निकलता है। यही देख कर यह निमाड़ी प्रहेलिका बनाई गई है।

(२०) चार पट्ठा।
जिना[1] पग म बे-बे[2] लट्ठा ॥ (पलंग या चारपाई)

इस प्रहेलिका में पलंग के चार पैरों को चार पट्ठे कहा गया है। प्रत्येक में एक आड़ी और एक खड़ी, इस प्रकार दो-दो ईस (आड़ी-खड़ी लकड़ियाँ) होती हैं।

(२१) छप्पर सी पड्यो पट।
तीनू[3] सुरीर लाल चट ॥ (जामुन)

यह निमाड़ी की मौलिक प्रहेलिका है, पर जामुन के वृक्ष न्यूनाधिक प्रमाण में सभी दूर पाये जाते हैं, जिससे यह भाषा के अनुसार किंचित परिवर्तन के साथ अन्य भागों में भी कही जा सकती है।

(२२) छोटो सो आऽठा[4] म गोपाल नाचऽ ॥ (जीभ)

इसी प्रकार की एक प्रहेलिका हिन्दी में भी कही जाती है—

'छोटी सी कोठरी में बिजली का नाच।'

इस हिन्दी प्रहेलिका में जीभ की चंचलता देख कर उसे बिजली की उपमा दी गई है, जो अधिक स्पष्ट और स्वाभाविक है।

(२३) छोटी सी थैली-मऽ हाय-हाय न बीजा। (मिर्च)

यह प्रहेलिका हिन्दी में इस प्रकार कही जाती है—

'छोटी-सी थैली में हुर हुर के बीजे'

---

१. उनके, २. दो-दो, ३. उसका, ४. आला (ताक)।

हमें 'हुर हुर' के बीजे की अपेक्षा निमाड़ी के 'हाय-हाय' के बीजे अधिक स्वाभाविक जान पड़ते हैं; क्योंकि मिर्च खाने से उसके तीखेपन के कारण मुँह से हाय-हाय शब्द अपने आप ही निकलने लगता है।

(२४) छोटी सी डब्बी, डब डब करऽ। (आँख)

डबडबाई आँखों को देख कर यह कल्पना करना स्वाभाविक है।

(२५) छोटो-सो झाड़-खऽ, लेण्डी अपार। (फलों से लदा चने का वृक्ष)

चने के फलों का आकार देखते हुए उन्हें लेंडियों की उपमा देना असंगत नहीं है, पर खाने की वस्तु को लेंडी कहना अनुचित जान पड़ता है।

(२६) जा रे बजार-मऽ जा।
मारी सूरत-न आदमी ला॥ (आइना)

यह निमाड़ी की मौलिक प्रहेलिका जान पड़ती है। आइने के गुण को देखकर बाजार से अपनी सूरत का आदमी लाने को कहना सुन्दर कल्पना का द्योतक है।

(२७) डेकसा नो डेकसा,
खाय कपूर-सा,
थूकऽ फूल-सा। (गन्ना)

यह भी गन्ने पर निमाड़ी-भाषियों की मौलिक प्रहेलिका है।

(२८) तलाब भरेल छे, हिरन खड़ेल छे।
तलाब सूखी गयो, हिरन भागी गयो॥

यह हिन्दी प्रहेलिका का भाषान्तर मात्र है। हिन्दी में इस प्रकार कहा जाता है:—

'तालाब भरा है, हिरन खड़ा है।
तालाब सूख गया, हिरन भाग गया॥

(२९) तू जा, हऊँ आऊँज। (किवाड़े)

किवाड़े का एक पट लगाने के पश्चात् दूसरा पट लगाया जाता है, इसीलिए कहा गया है 'तू जा, मैं आता हूँ।' हिन्दी में भी ऐसा ही कहा जाता है।

(३०) बाको तेढ़ो बबूल रे, ते पर बठो होलो।
जे न मारी कायनी[1] ताड़े[2], ओके बाप को हर बोलो[3]॥ (करंजी)

इस प्रहेलिका में कहानी न पहिचानने वाले के बाप की हर बोलने की बात कहने से हास्य की पुट मिल गई है।

---

१. कहानी, २. पहिचाने, ३. धिक्कारो।

(३१) सब लोग भागी गया, झापड़ी ना कोंडी गया। (झाड़ू)

घर छोड़ने या खाली करते समय अपने साथ झाड़ू ले जाना अशुभ माना जाता है, इसलिए वह घर में ही छोड़ दी जाती है। नए स्थान में जाने पर नई झाड़ू काम में लाई जाती है। यह पहेली निमाड़ी-भाषी समाज की यही भावना व्यक्त करती है।

(३२) सब लोग भागी गया, उड़दूया[1] बगड़ई गया[2]। (मक्खियाँ)

इस प्रहेलिका में घर में फैली हुई काली मक्खियों को देख कर काले उर्द के बिखरने की कल्पना की गई है।

(३३) साकड़ा[3] कुओ, केड़ो[4] पाणी पिवऽ[5]।
पण चारानी[6] काड़ी[7] नी खाय॥ (गाय के स्तन)

गाय का बच्चा एक सँकरे कुँए से पानी पीता है, पर घास की एक लकड़ी भी नहीं खाता। यह सँकरा कुँवा, जिससे गाय का बच्चा पानी पीता है, गाय का स्तन है। गाय के स्तन को सँकरा कुँवा कहना तर्क संगत है। यह निमाड़ी की मौलिक प्रहेलिका है। इसमें प्रयुक्त 'काड़ी' मराठी भाषा का शब्द है।

(३४) सेर भर सक्कर, तारा सी बी नी गिनाय।
मारा सी बी नी गिनाय॥ (धूल)

एक सेर शक्कर के कणों की गणना करना असंभव है। इस प्रहेलिका में धूल को शक्कर की उपमा देना सुरुचि का द्योतक नहीं है।

निमाड़ी प्रहेलिकाओं की विशेषताएँ

इस अध्याय में हमने निमाड़ी की जो प्रहेलिकाएं दी है, उनमें हमें निम्नांकित विशेषताएँ दिखाई देती हैं :—

(१) इन ३४ प्रहेलिकाओं में केवल दस प्रहेलिकाएँ ही एसी हैं, जो हिन्दी में भी सुनी जाती हैं, शेष निमाड़ी की मौलिक प्रहेलिकाएँ हैं। इससे हमें ऐसा लगता है कि लोकोक्तियाँ और मुहावरों की अपेक्षा निमाड़ी में मौलिक प्रहेलिकाओं की संख्या अधिक है।

(२) भाषा की दृष्टि से हम प्रहेलिकाओं में निमाड़ी का रूप अधिक निखरा पाते हैं।

(३) हम प्रथम खण्ड में 'निमाड़ी का स्वरूप' अध्याय में निमाड़ी पर गुजराती और मराठी का प्रभाव दिखा आये हैं। निमाड़ी की प्रहेलिकाओं की भाषा पर भी हम गुजराती और मराठी का वही प्रभाव पाते हैं।

---

१. उड़द, २. फैला दिये, ३. संकरा, ४. गाय का बच्चा, ५. पीता है, ६. चारे की (घास की), ७. लकड़ी।

(४) लोकोक्तियों और मुहावरों की तरह प्रहेलिकाएँ भी श्लेषार्थी होती हैं। प्रहेलिकाओं की यह विशेषता हमें निमाड़ी की प्रहेलिकाओं में भी मिलती है।

(५) लोकोक्तियाँ और मुहावरे अनुभव-प्रधान होते हैं, जबकि प्रहेलिकाएँ बुद्धि-प्रधान होती हैं। यद्यपि अनेक प्रहेलिकाएँ भी युगों से लोक-भाषाओं में चली आ रही हैं; तथापि एक बुद्धिमान पुरुष नई प्रहेलिका का भी तुरन्त निर्माण कर सकता है। अतः निमाड़ी में प्राप्त प्रहेलिकाओं में से कौन-सी प्रहेलिका परम्परा के साथ आई हुई और कौन-सी नव निर्मित है, यह कहना कठिन है।

(६) निमाड़ी प्रहेलिकाओं की एक विशेषता उनमें से अधिकाँश का पद्य-बद्ध होना भी है।

(७) अन्य भारतीय भाषाओं की प्रहेलिकाओं की तरह निमाड़ी की अधिकांश प्रहेलिकाएँ भी दैनिक जीवन की नित्योपयोगी वस्तुओं पर ही आधारित हैं।

—:०:—

परिशिष्ट

(अ, ब, स)

परिशिष्ट—अ

निमाड़ी के लोकगीत

(१) संस्कार सम्बन्धी गीत

(१)

"सासरो छोड़्यो देवी दूर,
पीयर मेढ़ी रोपयोजी ।
तांबा खण्या रे तलाब,
अमरित अम्बो मवरियो जी ।
रनुबाई हुआ पणिहार,
म्हाँ रोवऽ सासर-वासेण जो ।
की थारो पीयर दूर,
की थारी सासू सौतेली जी ।
नई म्हारों पीयर दूर,
नई म्हारी सासू सौतेली जी ।
हम पर सऊलक[१] को साल,[२]
ते गुन रड़ सासर-वासेण जी ।
हेड़ू थारो सऊक को साल,
बांझ घर पालणो[३] झुलाड़ा[४] जी ।

(२)

बालक को सुक[५] नहीं रे गोदी-मऽ,
बांझ नाव से लोक बक, सायब[६] सुणजे ।
करूँ रे अरदास[७] बालक एक दीजे म-कऽ ।।
मीटऽ[८] बांझ को नाँव सायब,
एक दीजे म-क लंगड्यो लूलो,
बळऽ[९] हिवड़ा मऽसकी[१०] जसो,
बळऽ चारा को एक पूलो ।

१. सौत, २. दुःख, ३. झूला, ४. झुलाऊँगी, ५. सुख, ६. स्वामी, ७. प्रार्थना, ८. मिटे, ९. जलता है, १०. सखि ।

सायब सुणजे करूँ रे अरदास।
घर-घर-मऽ थारी[१] जयजयकार,
क्यों म्हारा करम-मऽ न्हाक्यो[२] धूळो।
सायब, एक बखत झुलाड़ी दीजे[३] झूलो,
सायब, सुणजे करूँ रे अरदास।
पाड़-पड़ोसी मारऽ म-खऽ बोली,
हिरदा-मऽ लागी जाय जसी गोली।
सारा सरी-मऽ[४] धड़िक जाय होळी।
बालपण-सी रही हाऊँ[५] भोळी।
जुवानी जोर भरपूर सकी री[६],
जसा डाळय[७] पर महुआ पाक[८]।
सायब सुणजे करूँ रे अरदास॥

(३)

चतुर साहेब जी गोह्या[९] पर आया
गोह्या पर सुण्यो जंगी ढोल हो।
गोरी, तु-नऽ काई[१०] हो जायो॥ १॥
आपणा गाँव-मऽ याव[११] हो मांड्यो,
ते गुण बाजऽ ढोल हो,
पियाजी, म-नऽकई नई जायो॥ २॥
चतुर साहेब जी पनघट पर आया,
पनघट पर देखी पानी-रेंव[१२] हो,
गोरी, तु-नऽकाई हो जायो॥ ३॥
सावन-भादो को मेहुला[१३] हो बरस्यो,
ते गुण आई पानी रेल हो,
पियाजी, म-नऽकई नी जायो॥ ४॥
चतुर साहेब जी गाँव-मऽ आया,
उड़ी अबिर-गुलाल हो,
गोरी, तु-नऽकई हो जायो॥ ५॥
अपणा गाँव-मऽ मारुजी, होळई[१४] हो खेल्या,

१, तेरी, २. डाल दी, ३. झुला दीजिये, ४. शरीर में, ५. मैं, ६. सखी री, ७. डाली, ८. पकते हैं, ९. गाँव की सीमा, १०. क्या, ११. विवाह, १२. पानी का बहाव, १३. मेह, १४. होली।

ते गुण उड़ऽ अबिर-गुलाल हो,
पियाजी, म-नऽकई नी जायो ॥ ६ ॥
चतुर साहेब जी सेरी-मऽ[1] आया,
सेरी-मऽ आवऽ आजूं[2] बास हो,
गोरी, तु-नऽकाई हो जायो ॥ ७ ॥
आपणी सासूजी को पेट हो दुखऽ,
ते गुण आ-वऽ आँजू बास हो,
पियाजी, म-नऽकई नी जायो ॥ ८ ॥
चतुर साहेब जी आंगणा-मऽ[3] आया,
आंगणा-मऽ आवऽ सोंठ बास हो,
गोरी, तु-नऽकाई हो जाया ॥ ९ ॥
अपणा भाभीजी को माथो हो दुखऽ,
ते गुण आ-व, सोंठ बास हो,
पियाजी म-नऽकाई नी जायो ॥ १० ॥
चतुर साहेब जी खोली-मऽ आया,
हम हार्‌या पियाजी, तुम जीतिया,
पियाजी, हम लाल हो जाया ॥ ११ ॥

(४)

काई बधाई छे[4] जी आज बाबा नंद घर—
कृष्ण-नऽ लियो अवतार।
पयली[5] बधाई लछमीजी लाई।
लाई छे सगळो[6] भण्डार, बाबा नन्द घर—
कृष्ण-नऽ लिये अवतार ॥
दूसरी बधाई ब्रह्माणी जी लाई।
लाया छे वेद-पुरान, बाबा नन्द घर—
कृष्ण-नऽ लियो अवतार ॥
तीसरी बधाई रिधीसिधी[7] लाई।
लाई छे सम्पत भण्डार, बाबा नन्द घर—
कृष्ण-नऽ लियो अवतार ॥
चौथी बधाई पारबती जी लाई।

---

१. गली, २. अजवाइन, ३. आंगन में, ५. हैं, ५. पहिली, ६. सब, ७. ऋद्धि-सिद्धि।

लाई छे पदारथ चार, बाबा नन्द घर—
कृष्ण-नऽ लियो अवतार ।।
पाँचवीं बधाई गवालन लाई ।
लाई छे कारो माट[१] बाबा नन्द घर—
कृष्ण-नऽ लियो अवतार ।।
छटवीं बधाई तमोलन लाई ।
लाई छे डाली भरी पान, बाबा नन्द घर—
कृष्ण-नऽ लियो अवतार ।।
सातवीं बधाई मालन लाई ।
लाई छे फूलन हार, बाबा नन्द घर—
कृष्ण-नऽ लियो अवतार ।।

(५)

श्री रामचन्द्र जन्म लियो, चैत मास नवमी ।
ससराजी नेंग मांगऽ[२] द्रब[३] की लुटाई ।
कौशल्या जी-नऽ गादी दी राम की बधाई ।।
जेठजी नेंग मांग्यो, बाजा लगाई ।
कौशल्याजी-नऽ हती दिया, राम की बधाई ।।
देवरजी नेंग मांग्यो, शक्कर बटवाई ।
कौशल्या-नऽ घोड़ीला दिया, राम की बधाई ।।
नणदई[५] नऽ नेंग मांग्यो, बन्दूक छोड़ाई ।
कौशल्याजी-नऽ नांद्या दिया, राम की बधाई ।।
स्वामीजी नऽ नेंग मांग्यो, पगल्या[६] पहुँचाई ।
कौशल्याजी नऽ राज दिया, राम की बधाई ।।
सासूजी नऽ नेंग मांग्यो, बाल्को[७] नवाही[८] ।
कौशल्याजी-नऽ पालणो[९] दियो, राम की बधाई ।।
जेठाणी-नऽ नेंग मांग्यो, हलुओ[१०] सेकाई ।
कौशल्याजी-न हार दिया, राम की बधाई ।।
देराणी[११] नऽ नेंग मांग्यो, खिचड़ी रंधाई ।
कौशल्याजी-नऽ बेसर दीवी[१२] राम की बधाई ।।

---

१. मिट्टी का बड़ा घड़ा, २. मांगते है, ३. द्रव्य, ४. घोड़ा, ५. नन्दोई (ननद का पति), ६. एक विशेष प्रकार का चित्र, ७. शिशु, ८. नहलाई, ९. झूला, १०. हलवा, ११. देवरानी, १२. दी ।

ननदबाई[1] नऽ नेंग मांग्यो, साती[2] पुराई।
कौशल्याजी-नऽ चूंदड़ दीवी, राम की बधाई॥
दायण[3] बाई-नऽ नेंग मांग्यो, नालो[4] खंडाई।
कौशल्याजी-नऽ दुलरी दीवी, राम की बधाई॥
दासी उन-खऽ नेंग मांग्यो, बाळ्ठो रखाई।
कौशल्याजी-नऽ चोली दीवी राम की बधाई॥
पड़ोसण नऽ नेंग मांग्यो, मंगल गवाई।
कौशल्याजी-नऽ लाडू दिया, राम की बधाई॥

(६)

छठी का गीत

दूब का डांडला[5] अकाव का फूल,
राणी ओ मोठी[6] बऊ अरघ देवाय।
अरघ दईन वर पाविया,
अमुक सरीको भरतार॥१॥
आतुली-पातुली गंगाजल पाणी,
न्हावण करऽ रनुबाई[7] राणी।
रनुबाई, रनुबाई खोलो किवाड़,
पूजन बाळ्ठई[8] उभी[9] द्वार॥२॥
पूजण बाळ्ठई काई[10] मांग,
दूद[11] पूत अव्हात[12] मांग।
हटवाळ्ठो[13] बाळ्ठ[14] मांग,
जरवाळ्ठो[15] भाई मांग॥३॥
बहू को रांध्यो[16] मांग,
बेटी को परोस्यो[17] मांग।
टोंगळ्ठ्या[18] बुड़न्तो[19] गोबर मांग,
पोंवचा[20] बुड़न्तो गोरस मांग।
पूत की कमाई मांग,
धणी[21] को राज मांग॥४॥

---

१. ननद, २. चौक, ३. दाई, ४. नाल (शिशु का), ५. डण्डियाँ, ६. बड़ी, ७. देवी (निमाड़ी लोकगीतों में अनेक स्थानों में देवी को रनुबाई कहा है।), ८. पूजा करने वाली, ९. रबड़ी, १०. क्या, ११. दूध, १२. अहवात (सौभाग्य), १३. हठीला, १४. बच्चा, १५. धनिक, १६. पकाया हुआ, १७. परोसा हुआ, १८. घुटना, १९. डूबना, २०. पहुँचा (हाथ का), २१. पति।

(७)

हाथ-मऽकूची ले ओ-सीऽ[१]
चतुरभुज, खोलोब जरिया किवाड़।
चार पहर चौसठ घड़ी रे,
इन कृष्ण ये लीदो रे अवतार।
झूले पालणा नंदलाल ।।
सुन्ना रूपाना बेंडुला[२],
जसुमति पाणीलऽ[३] जाय।
जल्दी चलो म्हारी सात[४] सहेली,
म्हारो बाळा[५] बिलख्यो जाय।
झूले पालणा नंदलाल ।।
नीळी[६] दर्याई[७] को आंगरू[८],
साँवळो[९] अंग देखाय।
टोपी सिवाळू[१०] मखमली,
माथो कसूमल[११] पाग।
झूले पालणा नन्दलाल ।।
सुन्ना रूपा-न चेंडू[१२] पाटिया[१३],
मोत्यानी[१४] गेंद गुथाय।
सहर[१५] खेलन मति जाओ ललाजी,
सहर-मऽ दुसमन लोग।
झूले पालणा नन्दलाल ।।

(८)

झिलमिल झिलमिल मेहू बरसे,
आंगन कन्हैया भीजे रे।
म्हारा चतुर कन्हैया ।।
माता जसोदा हसि-हसि पू-छऽ,
येवी जनई[१६] कोण पहिर्‌या रे।
म्हारा चतुर कन्हैया ।।

---

१. उससे, २. घड़ा, ३. पानी को, ४. साथ की, ५. बच्चा, ६. नीली, ७. एक रेशमी कपड़ा, ८. अंगरखा, ९. साँवला, १०. खिलाऊँ, ११. रेशमी, १२. गेंद, १३. बुनकर बनाया, १४. मोती से, १५. शहर, १६. यज्ञोपवीत (जनेऊ)।

बिंदरा जो वन-मऽ गुरुजी मिळिया[1],
ये वो जनई पहिर्‌या रे।
म्हारा चतुर कन्हैया ॥
बिंदरा जो वन-मऽ मामाजी मिळिया,
ये वी भिक्षा दीवी रे।
म्हारा चतुर कन्हैया ॥

(९)

(प्रश्न) "जी हो, आज म्हारो देव-मन्दिर सूनो लाग[2],
नहिं आया गणपति देव, हरकत[3] पगरण[4] आरम्भियो।
जी हो, आज म्हारी कचेरी सूनी लाग,
नहिं आया दशरथ बाप, हरकत पगरण आरंभियो।
जी हो, आज म्हारो पालणो सूनो लाग,
नहिं आई कौसल्या माय, हरकत पगरण आरंभियो।
जी हो, आज म्हारो मण्डप सूनो लाग,
नहिं आया राम-लछमन वीर, हरकत पगरण आरंभियो।
जी हो, आज म्हारी रसवई[5] सूनी लाग,
नहिं आई सीता भावज, हरकत पगरण आरंभियो।
जी हो, आज म्हारी आरती सूनी लाग,
नहिं आई सुभद्रा बैण[6] हरकत पगरण आरंभियो।
(उत्तर) जी हो, आज म्हारो देव-मन्दिर खुली रह्‌यो,
आई गया गणपति देव, हरकत पगरण आरंभियो।
जी हो, म्हारी कचेरी खुली रही,
आई गया दशरथ बाप, हरकत पगरण आरंभियो।
जी हो, आज म्हारो पालणो खुली रह्‌यो,
आई गई कौसल्या माय, हरकत पगरण आरंभियो।
जी हो, आज म्हारो मण्डप खुली रह्‌यो,
आई गया राम-लछमन वीर, हरकत पगरण आरंभियो।
जी हो, आज म्हारी रसवई खुली रही।
जी हो, आई गई सीता भावज, हरकत पगरण आरंभियो।
जी हो, आज म्हारी आरती खुली रही।
आई गई सुभद्रा बैण, हरकत पगरण आरंभियो ॥

---

१. मिल गये, २. लगता है, ३. हर्षित होते हुए, ४. शुभ कार्य, मंगल-कार्य, ५. पाकशाला, ६. बहिन।

(१०)

पिताजी की गोदी बठी[1] रनुबाई बिनव[2] ।
कवो[3] तो पिताजी हम, वा रमवा[4] जावाँ ।।
जाओ बेटी रनुबाई, रमवा जाओ ।
लम्बो बजार देखि दौड़ी मत चलजो ।।
उच्चो वटलो देखि, जाइ मत बठजो ।
पराया पुरस देखि हँसी मत बोलजो ।।
नीर देखिन बेटी, आड़ी मत घसजो ।
परायो बाव्ठो[5] देखि, हाय मत करजो ।।
सम्पत देखि बेटी, चढ़ी[6] मत चलजो ।
बिपत देखि बेटी, रड़ी[7] मत बठजो ।
जाओ बेटी रनुबाई रमवा जाओ ।।

(११)

कुंठ न लजावणा सयाणी ।।
अपणा ससरा जी–खऽ बाप करी राखजो ।
ए सास-खऽमाय करी राखजो ।
लक्षानपति बात नी मिलावजो सयाणी ।।
अपण जेठ जी-सऽ झीना-झीना[8] बोलजो,
अपनी जेठानी–सऽ बात नी मिलावजो सयाणी ।।
अपण देवर जी–खऽ भाई करी राखजो,
अपणी देवरानी–खऽ बैण करी मानजो ।
गाँव–मऽ हा–हा[9] न करावजो सयाणी ।।

(१२)

आज दिन सो का भया मेरी सजनी,
सोने का दिन भया ।
सोने का दिन मंगल साज सजाओ मेरी सजनी ।
घिस–घिस चन्दन आंगन लिपाओ,
मोतियन चौक पुराओ मेरी सजनी ।

---

१. बैठकर, २. प्रार्थना करती है, ३. कहो, ४. खेलने, ५. बच्चा, ६. अभिमान करके, ७. रोना, ८. धीरे-धीरे, ९. हँसी ।

सोने की आरती अखेणा[1] सजाओ,
तन को दीप जलाओ मेरी सजनी।
चाँदी की झारी कलश भराओ,
श्रीफल उप्पर ढकाओ मेरी सजनी।
साग सुरण को पाट मंगाओ,
पटौली[2] सी पाट ढकाओ मेरी सजनी।
पाट पर दुल्ला भाई खऽ बिठाओ,
पाँच सुहागन बधाओ मेरी सजनी।

(१३)

जी हो सरग-सी[3] हलदुव्ठी[4] ऊतरी
आई ते पन्होने का माय।
बालम बाव्ठई[5] एस[6] लाड़ी-खऽ सोहे हलदुव्ठी।
जी हो, लाड़ी का काकाजी-नऽ मोल करायो,
काकी-नऽ खरच्या दाम।
बालम बाव्टई एस लाड़ी-का लम्बा केस
लाड़ी-खऽ सोहे हलदुव्ठी।
जी हो, लाड़ी का दादाजी-नऽ मोल करायो,
माय-नऽ खरच्या दाम।
बालम बाव्ठई एस लाड़ी-खऽ सोहे हलदुव्ठी।

आगे काकाजी और दादाजी के स्थान पर अन्य समीपी सम्बन्धियों के नाम लेकर गीत बढ़ाया जाता है।

(१४)

जोसी जो आये सौझ[7] पाये, जाय देखो माण्डवो॥
तिया लाया छे लग्न विचार, अति रंग[8] माण्डवो॥
बजाज जो आये सौझ पाये, जाय देखो माण्डवो॥
तिया लाया छे वस्त्र विचार, अति रंग माण्डवो॥

आगे जोसी और बजाज के स्थान में सुनार, तमोली आदि के नाम आते हैं तथा उनके द्वारा आभूषण, पान आदि लाने का उल्लेख कर गीत बढ़ाया जाता है।

---

१. अखण्ड, २. रेशमी वस्त्र, ३. स्वर्ग से, ४. हल्दी, ५. वाली, कम उम्र, नादान, ६. ऐसी, ७ शुभ मुहूर्त, ८ बहुत सुन्दर।

(१५)

सरग[1] भवंती[2] हो गिरधरनी[3]
एक संदेशो लई जाव ।।
सरग का अमुक दाजी-खऽ[4] यों कयजो—
तुम घर पगरण[5] होय ।।
जेमऽ सरऽ[6] ओ मऽ[7] सारजो हो ।
म्हारो तो आवणो नी होय ।
जड़ी दिया बज्जर किवाड़ ।
अग्गल[8] जड़ी लुहा की जी ।

(१६)

बना, पागा पैरो भारी पेंचा[9] में सुरत हमारी ।
चालो चालो डिगम्बर-सी[10] मिलणा, लाड़ी री बरात आई ।।
बना, कुण्डल पैरो भारी, मोती में सुरत हमारी ।
चालो चालो डिगम्बर-सी मिलणा, बनड़ी-री बरात आई ।।
बना, माला पैरो भारी कण्ठी में सुरत हमारी ।
चालो चालो डिगम्बर-सी मिलणा बनड़ी री बरात आई ।।
बना, बागो पैरो भारी केसर में सुरत हमारी ।
चालो चालो डिगबर-सी मिलणा, बनड़ी-री बरात आई ।।
बना, पोंची पैरो भारी, अंगठी[11] में सुरत हमारी ।
चालो चालो डिगम्बर-सी मिलणा, बनड़ी-री बरात आई ।।
बना, बनड़ी ब्याहो भारी, तेजी में सुरत हमारी ।
चालो चालो डिगम्बर-सी मिलणा, बनड़ी री बरात आई ।।

(१७)

लाड़ीज बाई को टिमण्यो[12] सौइये[13] ।
टिमण्यो साकळई[14] पर हाँ जी ।।

---

१. स्वर्ग, आकाश में, २. रहनेवाली, ३. गिद्धनी, ४. निमाड़ी का वृद्धों के लिए प्रयुक्त एक सम्मान सूचक शब्द, ५. मंगल कार्य (विवाह), ६. जिस प्रकार पूर्ण हो, ७. उस प्रकार, ८. अर्गला । ९. साफे का पेच, १०. शिवजी से, ११. अंगूठी, १२. कण्ठ में पहिनने का एक आभूषण, १३. शोभा देती है, १४. साँकल ।

टिमण्यो साकळ्ठई पर-हाँ जी,
टिमण्यो साकळ्ठई पर हाँ जी ।।
लाड़ी बाई को काँचलई[1] सोइये ।
साड़ी रेशम की कोर हाँ जी ।।
लाड़ीज बाई को लहंगो सोइये ।
लहंगो रेशमी हाँ जी ।।
लहंगो-मऽ सोइये नाड़ो ऊन को,
नाड़ो ऊन को पण हाँ जी ।।
लाड़ीज बाई-खऽ सेजाँ[2] फूल की ।
सेजाँ फूल की पण हाँ जी ।।
सेजाँ-मऽ सोइये बेटा राज का ।
बेटा उमराव का पण हाँ जी ।।

(१८)

साजन आऊँ आऊँ होइरया रे[3],
हाँ जू बन आया छे, कोण मारा[4] साजन रे ।
साजन आया बे[5] जना रे, बेना आया छे चार,
मारा साळ्ठ[6] दाळ्ठ[7] बनससे रे[8],
आमिसू[9] बोल्या नी[10] बोल ।
साजन आऊँ आऊँ होइरया रे ।

आगे साळ्ठ, दाळ्ठ के नाम के स्थान में अन्य भोज्य पदार्थों के नाम लेकर गीत बढ़ाया जाता है ।

(१९)

तेरी सेरी[11] घुगड़ला बाजऽ[12] साहबजादा कुँवर आया छे ।
सासू, लीजे व तू मुसळ्ठ[13], तारा तोरण आया खुसळ्ठ[14] ।
सासू, लीजे व तू तराक[15], तारा तोरण आया बरात ।
सासू, लीजे व तू सुपारी, तारा तोरण आया बेपारी[16] ।
सासू, लीजे व तू कपूर, तारा तोरण आया चतूर ।

---

१. चोली, २. सेज, ३. हो रहे हैं, ४. मेरे, ५. दो, ६. चावल, ७. दाल ८. बन रहे हैं, ९. हमसे, १०. मत बोलो, ११. गली, १२. बजते हैं, १३. मसल, १४. खुशमिजाज, १५. तकुवा, १६. व्यापारी ।

सासू, लीजे व तू लाड़वा[1], तारा तोरण आया बाळुड़ा[2] ।
सासू, लीजे व तू वाटकड़ा[3], तारा तोरण आया लाड़कवा[4] ।

(२०)

ढोळ ढमक वर कन्या हाथ मळ्ठ्[5] ।
ओ री छोड़ मारा नांगड़िया[6] न हात ओ ॥
मारा नांगड़ियो छे नाना नादान ओ ।
चाप चढ़ीलो बळगायो बळ्ठनी जान ओ ॥
सुन्ना-न घड़ीयो न रूपा-नी लेस ।
सीता बाई पानी न संचर्‌या[7] ॥
जळ[8] झकोर्‌या न नीरसा भरिया हो ।
नीरसा भरिया पाळ उप्पर रामचन्द्र उपरण्या[9] ॥
कोणी तू बेटी, ण सूँ[10] तारो नाँव ।
कोण नगर नी कँवारी[11] ॥
जनक नी बेटी, सीता मारो नाँव ।
मिथिला नगर नी कँवारी ॥
कोण तू बेटो, सूँ तारो नाँव ।
कोण नगर राज्यो वई ?
दशरथ न बेटो, न रामचन्द्र नाँव,
अयोध्यापूरी-न राज्यो वई ॥
आज लीलावास वेरड़ा कळ्ठस ।
सीता देवी रामचन्द्र उपरण्या ॥

(२१)

मोरे रामचन्द्र-न धनुस उठाई,
धनुस उठाई सीता वर पाई ।
जानकी मन भाई ॥
मोरे रामचन्द्र-खऽ पागा सोये,
पंचा सवारे जनक जिनके भैया ।
मोरे रामचन्द्र-न धनुस० ॥

---

१. लड्डू, २. बच्चा (अल्पवयस्क वर), ३. कटोरा, ४. लड़का । ५. मिलाते हैं, ६. वर, दूल्हा, ७. प्रवेश करना, ८. जल, ९. खड़े हैं, १०. क्या (गुजराती), ११. कुँवारी, कुमारी ।

मोरे रामचन्द्र खऽ कुण्डल सोये,
मोती सवारे जनक जिनके भैया।
मोरे रामचन्द्र-न धनुस० ॥
मोरे रामचन्द्र-ख वागो सोये,
केसर सवारे जनक जिनके भैया।
मोरे रामचन्द्र-न धनुस० ॥
मोरे रामचन्द्र-ख पोंची सोये,
अंगठी सवारे जनक जिनके भैया।
मोरे रामचन्द्र-न धनुस० ॥
मोरे रामचन्द्र-ख बनड़ी सोये,
तेजी इसावे जनक जिनके भैया।
मोरे रामचन्द्र-न धनुस० ॥

(२२)

इनी[1] धरती आदो[2] नीपज्यो[3]।
आदा चीकणा[4] ते पान जी ॥
इनी कूक[5] दुल्लवजी[6] नीपज्यो।
मांगऽ छे कन्या को दान जी ॥
कन्या को दान तो बाबुल भौत[7] ह्योयरे।
मो-सी दियो न जाय ॥
लड़की काँ-खऽ[8] पाव्ठई[9] रे बाबुल, काँ-खऽ पोसी।
काँ-खऽ पिलायो कच्चो दूद।
माया-खऽ पाव्ठई रे बाबुल, माया-खऽ पोसी।
माया-खऽ पिलायो कच्चो दूद ॥
चरवो[10] बी[11] दियो रे बाबुल, गँगाल[12] बी दीनी।
तो बी नी समझ्या दयाव्ठ जी ॥
घर की मण्डण[13] बेटी अमुक बाई दीनी।
तब जाई समझ्या दयाव्ठ जी ॥

---

१. इसी, २. अदरक, ३. पैदा हुआ, ४. चिकने, ५. कूख, ६. दूल्हा, ७. बहुत, ८. किसलिए, क्यों, ९. पालन किया, १०. बड़ा लोटा, ११. भी, १२. गंगाल, १३. शोभा।

(२३)

बना[1], तुम किनका बुलाया रे जल्दी आया ?
बनी, थारा[2] पिताजी-न लिख्यो कागज भेज्यो ।
बनी, हम उनका बुलाया जल्दी आया ॥
बनी, म्हारा[3] हत्ती[4] झूलऽ द्वार ।
म्हारायाँ[5] घोड़ा नी घुड़साळ ।
म्हारी चाँदणी पर चौसर खेलण आवजो ॥
बना, म्हारो हळदी[6] भर्‌यो आंग[7] ।
म्हारी पाटी-मऽ[8] गुलाल ॥
म्हारी बेणी-मऽ अत्तर ।
बना, म्हारी चाँदणी पर चौसर खेलण आवजो ॥

(२४)

जाग्या जाग्या चारई देव,
कि चन्द्रबदन का रे कूकड़ा ।
येन पयलो गनपति देव जागीया,
कि दूसरो सिव महादेव, कि चन्द्र० ॥
येन तीसरो मान्धाता उंकार देव जागीया,
कि चौथो महाकाल देव, कि चन्द्र बदन० ।
अरु जाग्या चारई देव, कि चन्द्र० ॥
इन मरदान को नयनसिंग जागीया,
इन इकनगाँव को बाबूसिंग जागीया,
इन बीड़ को रूपसिंग जागीया,
इन मूंदी को चयनसिंग जागीया,
जाग्या जाग्या चारई सरदार, कि चन्द्रबदन० ॥
इन दुकान का हरलाल भाई जागीया,
इन कचेरी को रामलाल भाई जागीया,
इन मजलस का चम्पालाल जागीया,
इन इसकुल को रमेश भाई जागीया,
जाग्या जाग्या चारई भाण्ड, कि चन्द्रबदन० ॥

---

१. दूल्हा, २. तोरे, ३. हमारे, ४. हाथी, ५. हमारे यहाँ, ६. हलदी, ७. शरीर, ८. माँग में ।

(२५)

हाऊँ अचला जी मन मऽ जाणती, अम्बा लगावाँ बेऊँ[1] चार
बयना[2] जिन घर आनन्द बधावणो ।।
आई कोयल कैर्याँ लई गई, म्हारो अम्बो परायो होय ।
बयना जिन घर आनन्द बधावणो ।।
हाऊँ अचलाजी मन-मऽ जाणती, बाग लगाऊँ बेऊ चार ।
आई मालण फुलड़ा[3] लई गई, म्हारो बाग परायो होय ।
बयना, जिन घर आनन्द बधावणो ।।
हाऊँ अचलाजी मन-मऽ जाणती, कुंआ खणाऊँ बेऊ चार ।
आई पणिहारी जल लई गई ह्मारो सरवर परायो होय ।
बयना, जिन घर आनन्द बधावणो ।।
हाऊँ अचलाजी मन-मऽ जाणती, पुत्र परणाऊँ[4] बेऊ चार ।
आई बऊवर पुत्र लई गई, म्हारो पूत परायों होय ।
बयना, जिन घर आनन्द बधावणो ।।
हाऊँ अचलाजी मन-मऽ जाणती, छोरी[5] परणाऊँ बेऊ चार ।
आया साजन छोरी लेई गया, म्हारी कूक पराई होय
बयना, जिन घर आनन्द बधावणो ।।

(२६)

बना, थारो[6] देश देख्यो नी मुलुक देख्यो ।
काई थारा देस को रहिवास[7] ?
बनड़ा जी, धीरा चलो, धीरा चलो जी सुकुमार ।।
बनी, म्हारो देस मालवो, मुलुक निमाड़ ।
गाँवड़ा[8] को छें रहिवास ।।
बनी, तुम घर चलो, घर चलो जी सुकुमार ।।
बना, थारो देस देख्यो नी मुलुक देख्यो
काई थारा देस को पणिहार[9] ।
बनड़ाजी, धीरा चलो, धीरा चलोजी सुकुमार ।।
बनी, म्हारा घर-घर कुआ न चौक बावड़ी[10],
गाँव-मऽ रतन तलाव ।

---

१. दो, २. बहिन, ३. फल, ४. विवाहूँ, ५, कन्या, ६. तुम्हारा, ७. रहने का तरीका, ८. ग्राम, ९. पानी की व्यवस्था, १०. बावली ।

बनी तुम घर चलो, घर चलो जी सुकुमार ॥
बना थारो देस देख्यो नी मुलुक देख्यो,
काई थारा देस को जिमणार[1] ?
बनड़ाजी, धीरा चलो, धीरा चलो जी सुकुमार ॥
बनी म्हारा ज्वार तुवर का खेत घणा,
घींव[2] दूध की छे भरमार ।
बनी तुम घर चलो, घर चलो जी सुकुमार ॥
बना थारो देस देख्यो नी मुलुक देख्यो,
काई थारा देस को पैरवास[3] ।
बनड़ाजी, धीरा चलो, धीरा चलो जी सुकुमार ॥
बनी म्हारो घर-घर रहेट्यो[4] चलावण्यो
काचलई[5] लुगड़ा को छे पेरवास ।
बनी तुम घर चलो, घर चलो जी सुकुमार ॥
बना, थारो, देस देख्यो नी मुलुक देख्यो,
काई थारा घर को रिवाज ?
बनड़ाजी, धीरा चलो, धीरा चलो जी सुकुमार ॥
बनी, म्हारी काकी भाभी छे अति घणी,
माताजी को नरम सुभाव ।
बनी, तुम घर चलो, घर चलो जी सुकुमार ॥
बनी तुम घर चलो ॥

(२७)

पाँच बधावो मारा भला ये आया
पाँच न नवी नवी भाग हो ।
पहिलो बधावो मारा बाप बज्ठीला,
दूसरो बधावो मारा सुसरेना ।
तीसरो बधाओ मारा जेठ बड़ेला,
चौथो बधाओ मारा बीरा ना ।
पाँचवो बधाओ म्हारा धनके री कूख—
येनी कूख-मऽ रतन ऊपजो ।
माता समूती सूं सरवर[6] रहसे,

---

१. भोजन, २. घी, ३. पहिराव, ४. चरखा, ५. चोली, ६. प्यारी, प्रिय ।

सासु न वो आपणा ।
सौकन[1] निरासी[2] सूं सरवर रहसे,
कूख ना वो आपणा ।।
स्वामी सपूता सूं सरवर रहसे,
रूप ना बड़ आपणा ।
संसार ना सुख आज देख्या,
पुत्र परणाई घर आविया[3] ।
एक नींद भर आज सूता[4],
धिय[5] बड़ आई सासरऽ[6] ।

(२८)

चलो हंसा सत लोक हमारे,
छोड़ो ये संसारा हो ।।
ये संसार काल छे राजा,
करम को जाल पसारा हो ।।
चौदा लोक बसऽवा मुख-मऽ,
सबको करे अहारा हो ।।
बाल जाल कोयला कर डाले,
लख चौरासी-मऽ डारा हो ।।
ब्रह्मा विष्णु, शिव देह धरिया,
और सकल विस्तारा हो ।।
सुरनर मुनिहोण पचि पचि हारा,
फिरी फिर धरऽ अवतारा हो ।
शब्द रूप जहाँ फूल फूलिया,
हंसा करे अनन्दा हो ।।
ओ को रूप कहाँ लग बरनूं
अनत भान उजियारा हो ।।
बाहि पार एक नग्र बसे रे,
बरसे अमरित धारा हो ।
कहे कबीर सुनो धर्मदासा,
लखो पुरुष दरबारा हो ।।

१. सौत, २. निराश, बाँझ, ३. आये, ४. सोयेंगे, ५. कन्या, ६. ससुराल ।

(२) ऋतु सम्बन्धी गीत

(२९)

दूर गरजी-नऽ[1] नजीक[2] बरसो रे इन्दर राजा,
धरती अबोलो[3] क्यों लियो ?
नाना[4] मोटा[5] रोपा[6] हरियाला[7] करो रे इन्दर राजा,
धरती अबोलो क्यों लियो ?
थारी बहण[8] बिजलइखऽ साथ लाजो रे इन्दर राजा,
धरती अबोलो क्यों लियो ?
तिरिया को लोभी हुई बिलमायो रे इन्दर राजा,
धरती अबोलो क्यों लियो ?
वाष्ट[9] राणी खऽ कोठड़ी-मऽ कोंडो[10] रे इन्दर राजा,
धरती अबोलो क्यों लियो ?
कोठड़ी-कऽ साती ताला देओरे इन्दर राजा,
धरती अबोलो क्यों लियो ?
थारी-डेडर[11] राणी-खऽ बायर[12] निकाळो रे इन्दर राजा,
धरती अबोलो क्यों लियो ?
गऊ का जाया[13] भूख्या[14] हुआ रे इन्दर राजा,
धरती अबोलो क्यों लियो ?
राम-लक्ष्मण का बाण छोड़ो रे इन्दर राजा,
धरती अबोलो क्यों लियो ?
धाम पड़नी धरती तपऽ रे इन्दर राजा,
धरती अबोलो क्यों लियो ?
धवल्या[15] न धूर[16] राळी दिया[17] रे इन्दर राजा,
धरती अबोलो क्यों लियो ?
आ न थारो आवणू आवणू हुई रयो रे इन्दर राजा,
धरती अबोलो क्यों लियो ?
दूर गरजी न, नजीक बरसो रे इन्दर राजा,
धरती अबोलो क्यों लियो ?

---

१. गर्ज कर, २. नजदीक, ३. छोटे, ५. बड़े, ६. रोपे (नवजात पौधे), ७. हरे, ८. बहिन, ९. वायु, १०. बंद करो, ११. मेण्डक, १२. बाहर, १३. पैदा हुए, १४. भूखे, १५. भूरे, १६. धुरी, १७. गिरा दी ।

(३०)

लीम-मऽ लियोव्ठई[1] लागी, सरावण महिनो आयो जी।
मारा हो मीठा भाई, तुम-खऽ नींद कसी आवऽ जी।
थारी तो छोठी बहिण सासरा मऽ झूरजी।
झुर ते-खऽ झुरवा देओ, हम नी झुरवा देवाँजी॥

*　　*　　*

कुण भाई जासे चाकरी,
　　कुण भाई जासे गढ़ रे गुजरात ?
मोठा भाई जासे चाकरी,
　　नाना भाई जासे गढ़ रे गुजरात।
कुण भाई की घोड़ी-खऽ घूंगरु,
　　कुण भाई की घोड़ी-खऽ जड़्यो रे जड़ाव।
मोठा[2] भाई की घोडी-खऽ घूंगरु,
　　छोटा भाई की घोडी-खऽ जड़्यो रे जड़ाव।
कुण भाई लावसे चूंदडी,[3]
　　कुण भाई लावसे दक्खिनेरो चीर[4] ?
मोठा भाई लावसे चूंदडी,
　　छोटा भाई लावसे दक्खिनेरो चीर।

(३१)

गोरी महिनो असाड़[5] नो,
दल बादल चले चारि देस का।
कि हुकमी चाकर इन्दर का॥
पाणी भरे सब समुन्दर का,
कि रुमझुम बरसे—
मोरी जान रुमझुम बरसे।
मोरा पिया बिण जिवऽ[6] तरसे,
जंगल-मऽ होरई हरियाली।
चमक रही बिजली बादल-मऽ।
इन्द्र महाराज खड़ा दल-मऽ॥

---

१. नीम के फल, २. बड़ा, ३. चुनरी, ४. दक्षिण की साड़ी, ५. आषाढ़, ६. प्राण।

साजनी दुसरा महिना—
गोरी महिना सावण का।
मनसुबा सब सहेलिन का—
कि विचार करती,
कोई करती झूला–ना।
झूला नाखूँ रे सयना[1],
पिया सँग झूलूँ मेरी जान—
हात–मऽ[2] फूल गुलाब–ना।
कहीं फूल पड़्या रस्ता–मऽ॥
साजनी तिसरो महिनो,
गोरी महिनो भादो–ना।
पूर चढ़्यो सब नदियन–मऽ।
कासत उतरूँ मोरी जान,
कासत उतरूँ।
म्हारा पिया की खबरा पूछूँ,
या बैरन भई रस्ता–मऽ।
चमक रही बिजली बादल–मऽ।
साजनी को चौथो महिना,
गोरी महिना कुँवार–ना।
धान पक्या सब जमिउन ना।
मोरी जान काल घर कयती,
कोई दुश्मन जब्ठीबब्ठी जाय॥
सरद गई कलगी पाणी–मऽ.
कलगी पाणी–मऽ।
चमक रही बिजली बादल–मऽ॥

(३२)

प्रभुजी अब घर आओ श्याम, सरस राधे बनी।
अदला–बदला[3] गाजिया,
कारी काठ कमाण राग मलार सुनावणे।
प्रभुजी ॥०॥

---

१. सखी, २. हाथ में, ३. छोटे-बड़े बादल।

प्रभु मेरो लगियो मास असाढ़।
येजी लगियो मास असाढ़,
धुराऊ[1] दिसा गाजिया।
ये जी सीतल चले पवन, दवासा दाजिया।
ये जी मीठड़ा[2] बोलऽ भाहर दमके दामनी।
प्रभुजी ॥०॥

(दोहा) सपनो देखो ये सखी, राधा बैठी रीज[3]
प्रीतम आवसे[4] पाहुणा[5] पहिली सरावण तीज[6]।
(दौड़) पहिली सरावन तीज प्रेम रस गावणा,
महँगो अतर मँगाय फुलेल सी नहावणा।
ये जी कर सोलह सिंगार खड़ी राधे कामनी।
प्रभुजी ॥०॥

(दोहा) गरज घटा घिर आवता, न बीज[7] करे मुख बात।
सेज पलंग सूणो पड़ो, प्रभु भर भादव की रात॥
(दौड़) ये जी भर भादव की रात, बिजली हलबले[8] ये।
जी नदी हो नाला भरपूर, गंगा देह थरहरे॥
प्रभु जी किणासे करूं पुकार, सुणो सखि आपुणी॥
प्रभुजी ॥०॥

(दोहा) पछम[9] दिशानी[10] पवन से पंछी करता मोज।
समदर[11] मोती निपजे[12] स्वात बूंद या सोच॥
(दौड़) प्रभुजी स्वात बूंद या सोच, सीप नग[13] नीपजे।
ये जी सब फली-फूल बहार, भवर[14] सुख उपजे॥
प्रभुजी, भवरो बिलम्यो बाग, चमेली अरु मोगरा॥
प्रभुजी ॥०॥

(दोहा) सुकस्याली[15] नीपजे, इन्दर पुरवे आस।
हरि-मन्दिर पूजा करां[16] प्रभु लगियो कातिक मास॥
(दौड़) ये जी लगियो कतिक मास, दिवाली-रा खेलणा।
ये जी मुंगी खड़ी[17] मंगाय, मंदिर बिच ढोलना[18]॥

---

१. भूरी, २. मेण्डक, ३. नाराज, ४. आयेंगे, ५. मेहमान, ६. श्रावण की तीज, ७. बिजली, ८. लहराती हैं, ९. पश्चिम, १०. दिशाकी, ११. समुद्र, १२. उत्पन्न होना, १३. रत्न, १४. भ्रमर, १५. सुखदायक, १६. करें, १७. रांगोळी, १८. फैलाना।

ये जी घर घर दिवाली पुजाय, की मयंदी-रा[१] रचणा ।।
प्रभुजी ।।०।।

(दोहा) ठण्ड रीत आइ ठाकरा[२], ऊँचा घणा रहेवास[३] ।
सिरका लाग सुहावणा, लगियो अगहन मास ।।

(दौड़) ये जी लगियो अगहन मास, शिवालो[४] हाकियो ।
म्हारा प्रभु गया रे परदेस, देसाउर[५] चालियो ।।
प्रभुजी रम्भा राजकुमार-कामनी ।
प्रभुजी ।।०।।

(दोहा) ठण्ड रीत आई सूकरा[६] दीजे कणार[७] दोस ।
जिनका प्रीतम घर नहीं, उन-खऽ मारे पोस[८] ।।

(दौड़) उन-खऽ मारे पोस, अकेली मैं डरूँ ।
मेरे नानो-सो[९] बालक जीव, ठंड-मऽ थरहरूँ ।।
प्रभुजी सदा सुरंगी नार, राधे कामनी ।
प्रभुजी ।।०।।

(दोहा) चढ़ी अटारी चाँदणी, राधा जोवऽ[१०] बाट[११] ।
गिरधारी कब आयसे, लगियो महिनो माघ ।।

(दौड़) ये जी लगियो महिनो माघ, बसन्त बधावणा[१२] ।
ये जी अम्बा का मउर[१३] मंगाय, मुगुट[१४] पर मेलणा[१५] ।
ये जी बसन्त पंचमी आज, श्री कृष्ण बधावणी ।।
प्रभुजीं ।।०।।

(दोहा) हरी रीत घर की करो, ब्रज-मऽ करो रहेवास ।
पान छेड़ नीचा पड़े, लगयो फागुण मास ।।

(दौड़) ये जी लगियो फागुण मास, फागरा[१६] खेलणा ।
अब ब्रज-मऽ भयो हो आनन्द, की कृष्ण लियो बधावणा ।।
ये जी कर केसर मोगरा, खड़ू पट[१७] ओढ़नी ।
प्रभुजी ।।०।।

(दोहा) दातुणे[१८] हलोद[१९] समोन[२०], तिरिया-मुख तंबोल[२१] ।
गोरी व्रत गनगोर को, चइत[२२] मास की चौत ।।

---

१. मेंहदी की, २. सूखी, ३. निवास, ४. शिवालय, ५. देशावर, विदेश, ६. सूखी, ७. किसे, ८. पौष, ९. छोटा-सा, १०. देखती, ११. रास्ता, १२. बधाई गीत, १३. मौर, १४. मुकुट, १५. लगाना, १६. फाग का, १७. वसन्ती, १८. दातून, १९. हलदी, २०. सामान, २१. ताम्बूल, २२. चैत्र ।

(दौड़) ये जी चइत मास की चौत, रमे सब गोरिया[1]।
ये जी पेरो[2] जरी जरतार[3], हेम की डोरिया ॥
प्रभुजी गला बिच नवसरो हार, करेली मोगरिन।
प्रभुजी ॥०॥

(दोहा) कोयल बोली यों कहे, सुन प्रीतम म्हारी बात।
बेगा[4] करो बिछावणा, आई रितु बैसाख ॥

(दौड़) ये जी आई रितु बैसाख, गलीचा-रां पोढ़ना ।
ये जी चोवा चन्दन मंगाय, जिमिण[6] छिटकावणा ॥
प्रभुजी कर केसर मोगरा, कुसुमल ओढ़ना।
प्रभुजी ॥०॥

(दोहा) जेठ मिले जगदीस मिले, राधे हरकित[7] होय।
उछाव चोप जल बरसियो, अब मिलगा हम दोय ॥

(दौड़) गज मोतिन का थाल, सोवरन झारी भर लाई।
ऊधव कहो कुसलात, प्रभु घर आविया[8] ॥
आरती करे हो जसोदा माय, की मंगल गाविया।
ये जी सूरदास बलिहार, की जोड़ी हद बनी ॥
प्रभुजी, अब घर आओ श्याम, सरस राधे बनी ॥
प्रभुजी ॥०॥

(३३)

झुकि आया बादल काव्ठा, पियाजी परदेश गया ॥
सूरज का बैरी हो बादला[9], जल का बैरी जम्माव[10]।
म्हारा बैरी हो सायबा[11], नहीं सन्देशो पठाय ॥
झुकि आया बादल काव्ठा० ॥
हऊँ[12] तो पनघट पर रोवती, जोऊँ पिया की बाट।
देस परायो भूमि आपणी, नहीं मिल जाण-पहिचाण ॥
झुकि आया बादल काव्ठा० ॥
सासूजी घर में आकरी[13], नणद दीसे झो गार[14]।
देवर करसे म्हारी चुगलई[15] म्हारो काई[16] हूसे हाल।
झुकि आया बादल काव्ठा० ॥

---

१. तरुण स्त्रियाँ, २. पहिनो, ३. जरी के वस्त्र, ४. शीघ्र, ५. सोना, ६. जमीन, ७. हर्षित, ८. आयेंगे. ९. बादल, १०. काई, ११. पति, १२. मैं, १३. तेज स्वभाव की, १४. गाली, १५. चुगली, १६. क्या।

जल बिण जसी तळफ माछरई, तळफ-तळफ मरि जाय ।
असो तळफ म्हारो जींवड़ो, नहीं रे खबर काई आव ॥
झुकि आया बादल काळा० ॥

(३४)

इन्द्रपुर से गवों उतरो,
इन्द्राणी-नऽ मोळ्यो[1] ।
आई वनी[2] चौक-मऽ उतरिया,
लोक-धर्म का काज जी ॥
हम तो पेरा कसमल[3] पागा[4],
नई तो सिर उघाड़ाजी[5] ॥
हम तो पेरा केसरिया बागो[6],
नई तो आंग उघाड़ा जी ।
हम तो पेरा पिशोरी[7] जूता,
नई तो फिरा अतवानिया[8] ॥
हम तो बैठा[9] सुपेती[10] घोड़ी,
नई तो पैदल जावाँ जी ।
हम तो जिमा[11] पुन्यासी सीरा[12],
नई तो बार उपास्या[13] जी ।
हम तो परणाँ[14] राजा की बेटी,
नई तो भला कुँवाराजी ।

(३५)

राधे सजी आई आज सुख-चैन-मऽ ॥
प्रेम प्रीति के काज,
सजी ब्रजपति-नार,
आई मँज आधी रात ।
सुख-चैन-मऽ ॥
राधे बाल बाल मोती पुरई आई,
सब मोतियन जेवर पैरी आई,

---

१. उतारा, २. उस, ३. गुलाबी, ४. साफा, ५. खुले, ६. लंबा कोट, ७. पेशावरी, ८. बिना जूते के, ९. बैठेंगे, १०. सफेद, ११. खायेंगे. १२. हलुवा, १३. भूखे, १४. ब्याहेंगे।

कान करण, शीश फूल माथ--
बिन्दी-बिन्दी जाल,
जे नऽ मोह्यो नन्दलाल।
सुख-चैन-मऽ ॥

(३६)

जसोदा-नो[1] नानो छोटो ओ।
दहियाँ लूटऽ बड़ो दिवाणो ओ।
(दोहरा) गोरस मटकी सिर धरी, दूध बेचन कहाँ जाय।
ये हाल कुण-से[2] कहणो ओ।
दहियाँ लूटऽ बड़ो दिवाणो ओ॥
(दोहरा) बहियाँ पकड़ी श्याम-नऽ, नीचे दिई बैठाय।
सखी ओ नजर-मऽ राखऽ[3] ओ।
दहियाँ लूटऽ बड़ो दिवाणो ओ।
(दोहरा) चूंदड़ फाड़ी श्यामनऽ, टूक करे दो चार।
सखि म्हारो पयलां आओ ओ।
दहियाँ लूटऽ बड़ो दिवाणो ओ॥
(दोहरा) दध बेचन चली लाड़ली, बीन बजावऽ श्याम।
दौड़ि सखी म्हारो दहियाँ खायो ओ।
दहियाँ लूटऽ बड़ो दिवाणो ओ।

(३७)

काना धरोरे मुगुट खेलो होरी॥
काँती-आया कुवर कन्हैया,
काँती आई राधा गोरी।
काना धरोरे मुगुट खेलो होरी॥
गोकुल-सी आया कुँवर कन्हैया,
मथुरा-सी आई राधा गोरी।
काना धरोरे मुकुट खेलो होरी॥
केतला बरस ना कुँवर कन्हैया,
केतला बरस नी राधा गोरी।
काना, धरोरे मुगुट खेलो होरी॥

---

१. यशोदा का, २. किससे, ३. रखता है।

बारा बरस-ना कुँवर कन्हैया,
भर जोबन राधा गोरी ।
काना धरोरे मुगुट खेलो होरी ।।
श्याम बरन का कुँवर कन्हैया,
गौर बरन राधा गोरी ।
काना धरोरे मुगुट खेलो होरी ।।

(३८)

होळी कसी खेळऽ हो जान साँवरियो नादान ।।
थारा गुलाल की मार ।
म्हारा भंभर को गया लाल ।। होळी० ।।
थारा गुलाल का मार ।
म्हारी बेसर हो गई लाल ।। होळी० ।।
थारा गुलाल की मार ।
म्हारी माला हो गई लाल ।। होळी० ।।
थारा गुलाल की मार ।
म्हारी चूड़ी हो गई लाल ।। होळी० ।।
थारा गुलाल की मार ।
म्हारी साळू हो गई लाल ।। होळी० ।।

(३९)

काँयन की रे बाळा गेंद बणी रे,
काँय-स देऊँ घड़ाय ।
मोहन थारी गेंद बणी रे ।।
रुप्या की रे बाळा गेंद बणी रे,
सोन्ना-मऽ देऊँ मढ़ाय ।
मोहन थारी गेंद बणी रे ।
पयलीज[१] जो ढोट्ट[२] बाळा ढोट्टियो[३] रे,
गई ते दरवाजा माँय ।
मोहन थारी गेंद बणी रे ।।
दूसरी जो ढोट्ट बाळा ढोट्टियो रे

१. पहिली, २. चोट, ३. चोटी मारी।

गई ते सेरी[1] माँय।
मोहन थारी गेंद बणी रे॥
तीसरी जो ढोट्ट बाव्ठा ढोट्टियो रे।
गई ते बजार माँय।
मोहन थारी गेंद बणी रे॥
चौथी ढोट्ट बाव्ठा ढोट्टियोरे।
गई ते गोयां[2] माँय।
मोहन थारी गेंद बणी रे॥
पाँचवीं ढोट्ट बाव्ठा ढोट्टियो रे,
गई ते जमुना-री पाव्ठ[3]।
मोहन थारी गेंद बणी रे॥
खेलत जो खेलत गेंद गिरी पड़ी रे,
गिरी ते जमना-रा माँय।
मोहन थारी गेंद बणी रे।
गेंद का छमचऽ[4] बाव्ठो कूद्यो रे,
मारा कान्हो कूद्यो जमना-धय रे।
मोहन थारी गेंद बणी रे॥
बाव्ठा गुवाव्ठ्या[5] दौड़्या आया रे,
आया ते जसोदा-रा पास।
मोहन थारी गेंद बणी रे॥
निकव्ठ जसोदा माता भायर[6] ओ,
थारो कान्हो कूद्यो जमना-माँय।
मोहन थारी गेंद बणी रे॥
रड़तीज[7] कुढ़ती माता नीसरी[8] रे।
आई ते जमना-री पाव्ठ।
मोहन थारी गेंद बणी रे॥

नाग[9] सोवऽ[10] न नागेण[11] जागऽ,
जगाव नागेण थारा नाग-खऽ।

---

१. गली, २. गोठान, ३. तट, ४. साथ, ५. ग्वालबाल, ६. बाहर, ७. रोती हुई, ८. निकला, ९. नाग, १०. सोता, ११. नागिन।

घड़ी दुई खेलाँ वाद[१]।
मोहन थारी गेंद बणी रे ।।
की रे बाव्ठा, तू मारग भूल्यो,
की रे बाव्ठ थारी माता-न दुर्‌यो[२]।
की घर खोटी नार ?
मोहन थारी गेंद बणी र ।।
आंगठी जो मोड़ि नाग जगावियो रे।
नाग अवधुत्त[३] जाग्यो,
मची घमघोव्ठ[४]।
बरसी अगनिका[५] लोव्ठ[६],
जेका मुख-मऽ जवाव्ठ[७],
जव्टऽ जमना री पाव्ठ,
खेल नंदा-नु[८] बाव्ठ,
नंदा-नु बाव्ठ भाई——
कंसा-नु-काव्ठ।
मोहन थारी गेंद बणी रे ।।

*   *   *

नाग नाथीन बाव्ठो हुयो असवार रे।
बोली ते नागेण तत्रँ[९]——
म्हारा हात का चूढ़ा की लाज राखो,
म-खऽ जुग-जुग दीजो अन्हात[१०]।
मोहन थारी गेंद बणो रे।।
नाग नाथीन बाव्ठो हुयो असवार रे,
आयो ते जमना-री पाव्ठ।
मोहन थारी गेंद बणी रे ।।
बाव्ठ-गुवाव्ठ्या दौड़्या आया रे,
आया ते जसोदा-रा पास ।
मोहन थारी गेंद बणी रे ।।
निकल जसोदा माता भायेर ओ।
नाग नाथीन बाव्ठो आया थारा द्वार।

---

१. कुश्ती, २. दूर किया, निकाल दिया, ३. भयानक, ४. हाहाकार, उथल-पुथल, ५. अग्नि, ६. प्रवाह, ७. ज्वाला, ८. नन्द का, ९. तब, १०. सुहाग।

मोहन थारी गेंद बणी रे ॥
मोतियन-सीरे थारो बाव्ठो बधाओ,
दूद पिलाव काला नाग।
मोहन थारी गेंद बणी रे ॥

(४०)

देवकी कहे म्हारा बाव्ठा।
साम्लो[1] म्हारी बात।
जसोदा जी-खऽ माता कयजो,
नन्द की चरावजो गाय।
असो दही-दूध बाव्ठा,
तु-खऽ[2] कोण आपसे[3] न,
पीजो म्हारा बाव्ठा व्हाँ[4]—
धौव्ठी गाय की छाछ।

(४१)

सोन्ना की सरवर गऊर पूजाँ हो रनादेव।
माँय न बेटी गऊर पूजाँ हो रनादेव ॥
नणद-भौजाई गऊर पूजाँ हो रनादेव।
देराणी-जेटानी गऊर पूजाँ हो रनादेव ॥
सास न बहू गऊर पूजाँ हो रनादेव।
अड़ोसेण-परोसेण गऊर पूजाँ हो रनादेव ॥
परोसेण पर टूट्यो गरवो मान हो रनादेव।
कसी पत टूट्यो गरवो मान हो रनादेव ॥
दूध-केरी दवणी मँज घर हो रनादेव।
पूत केरो पाव्ठणा चटशाल हो रनादेव ॥
स्वामी सूतऽ सुखलड़ी सेज हो रनादेव।
असीपत[5] टूट्वो गरवो मान हो रनादेव ॥
सोन्ना की सरवर गऊर पूजाँ हो रनादेव ॥

(४२)

सेवा म्हारी मानी लेओ गणपति देवा।
सामी[6] सुण्डाला[7] खोलो म्हारा हिरदा-ना ताव्ठा[8] ॥

---

१. सुनलो, २. तुझे, ३. देगा, ४. वहाँ, ५. इस प्रकार, ६. स्वामी, ७. सूंडवाले, ८. ताला।

जल रे चढ़ाऊँ देवा नहीं रे अछूतो।
यो जल माछळी[१] बिटाल्या[२] जी ॥
चन्दन चढ़ाऊँ देवा, नहीं रे अछूतो।
यो चन्दन बाण्याँ[३] बिटालो जी ॥
फूल रे चढ़ाऊँ देवा नहीं रे अछूतो।
यो फूल भँवरा बिटाल्यो जी ॥
भोजन चढ़ाऊं देवा, नहीं रे अछूतो।
यो भोजन मन-नऽ बिटाल्यो जी ॥
सेवा म्हारी मानी लेवो गणपति देवा ॥

(४३)

सांझ पड़ रे दिन अस्तव[४],
दिया बत्ती हुयो रे मिलाप ॥
ओ म्हारी बादळवन्ती[५] सगुणी[६]
साँजुळी[७] आव ॥
हाऊँ[८] तम-क[९] पूछूँ म्हारी बऊ,
ओ लाड़ी बऊ।
थारो लखपति सायेब काँ छे ?
ओ म्हारी बादळवन्ती सगुणी
साँजुळी आव ॥
दीनदयालो केसरियो कचेरी सिदार,
रात लखपतियो रङ्ग महल-मऽ।
ओ म्हारी बादळवन्ती सगुणी—
साँजुळी आव ॥
हाऊँ तम-क पूछूँ ओ अंबा-बन की कोयल,
थारो लखपति सोगटड़ो काँ छे ?
ओ म्हारी बादळवन्ती सगुणी—
साँजुळी आव ॥
दीनदयालो सोंगटड़ो बन-फळ टोच।
रात लखपतियो कोयल पास।
ओ म्हारी बादळवन्ती सगुणी—
साजुळी आव ॥

---

१. मछली, २. खराब कर दिया, ३. बनिया, ४. अस्त हुआ, ५. बादलों के रङ्गवाली, ६. गुणवान, ७. सन्ध्या, ८. में, ९. तुम्हे।

(४४)

सन्ध्या तो माँगे हरो-हरो गोबर,
काँ से लाऊँ बाई हरो-हरो गोबर ?
क थारा दादाजीग ल्ली-मऽ जाय,
लऽ ओ सन्ध्या हरो-हरो गोबर।
सन्ध्या तो माँगे टोपली भर फूल,
काँ से लाऊँ बाई टोपली भर फूल ?
क थारा दादाजी बगीचा-मऽ जाय,
लऽ ओ सन्ध्या टोपली भर फूल।
सन्ध्या तो मांगे गहणो-गाठो,
काँ से लाऊँ बाई गहणो-गाठो ?
क थारा दादाजी सराफा जाय,
लऽ ओ सन्ध्या गहणो-गाठो ।।
सन्ध्या तो माँगे मेवा मिठाई,
काँ से लाऊँ बाई मेवा-मिठाई ?
क थारा दादाजी हलवाई हाँ जाय।
लऽ ओ सन्ध्या मेवा मिठाई ।।

* * *

सन्ध्या आज जीम लऽ परात भरी फूल लऽ।
एक फूल घटी गयो, सन्ध्या माता रूसी गई ।।

(४५)

सूता की जागो लाड़ी बाई का दादाजो,
आंगन संज्या हो फूली।
आंगण उभ्यो रायवर केसरियो,
उन सारू दायजो बिसाओ।
आंगन संज्या हो फूली।
गढ़ रे नवऽ परवत रे नवऽ,
रायवर काँय को नवऽ ?
नवऽ रे लाड़ी बाई का दादाजी,
तम घर कन्या कुँवारी।
सूता को जागो लाड़ी बाई का दादाजी।
आंगन संज्या हो फूली ।।

(४६)

गोरी तम-कऽ हो वालेरो[1] कोण ?
परथम वाली म्हारी माता जी,
दूसरावण हो पिताजी रा लाड़।
तीसरावण हो वाली म्हारी बयन्दुली[2]
चवथा हो माड़ी[3] जाया बीर ॥
इनी जो बोली का गोरी कारणा,
तम पर लावाँ हो सवकनि[4] साल।
हासी-रुठी पिउजी पूछऽ बात।
गोरी तुम-कऽहो वालेरो कोण ?
परथम वाली म्हारी सासूजी,
दूसरावण ससरा जी की लाज,
तीसरावण वाली म्हारी नणदुली[5]।
चवथावण नणद को बीर।
इनी ओ बोली का गोरी कारणा।
घड़ावाँ हो चन्द्रा वल्यो हार[6]।

(४७)

म्हारा मेंदी रचा न दुई हात[7]।
घागर म्हारो भरी रे दीजो।
भरि दीजो रे नंदजी का लाल,
घागर म्हारी भरी रे दीजो ॥
(दोहा) घागर भरि माथा धरो, न संग-मऽ चलो आप।
भक्ती सी मोहबत करो, न मूरख समझे पाप।
(दौड़) म्हारा माथा का बोझ उतार,
घागर म्हारी भरी रे दीजो ॥
(दोहा) मत समझो काना[8] एकली[9] सखियां म्हारी सात[10]।
प्रेम पीयली लालजी, न गुजरण म्हारी जात।
(दौड़) आज जिनगी[11] को होवे उधार[12]।
घागर म्हारी भरी रे दीजो ॥
(दोहा) बरसाने की गूजरी, न जमना जू न घाट।
आप मिल्या नंदलाल जी, न बिंदरावन-नी बाट[13]।

१. सहार, २. बहिन, ३. माता, ४. सौत, ५. ननद, ६. चन्द्रहार, ७. हाथ ८. कान्हा, कृष्ण, ९. अकेली, १०. साथ, ११. जिन्दगी, १२. उद्धार, १३. मार्ग।

(दौड़) गहेरी गहेरी या जमना की धार रे,
घागर म्हारी भरी रे दीजो ।।
(दोहा) हऊँ तो कवारी न रही, ब्याही गई परदेस,
एक पुरुख की नार मैं सुन्दर म्हारो भेस ।
(दौड़) याको तुम करो रे विचार,
घागर म्हारी भरी रे दीजो ।।

(४८)

सारदा माता ए, तो ने जा समन्दर,
लागूँ हऊँ भवानी तारा पाँव ।
तारा भवन-मऽ लड़का खेलऽ,
जेको बाल नी बांको होय ।
सारदा माता ए ।।
ये सारदा माता न सणगार लियो,
मुख हार डाला मुख लार ।
छेवड़-छेवड़[1] ये तारा घूंघरा,
जेके नवण-झवण झणकार ।
सारदा माता ए ।।
ये मारी माता घट संचरियो,
घट रुणझुण बठी भवानी सारदा ।
म्हारा भूल्या न आखर[2] दीजे,
सारदा माता ए ।।
हिवड़ा तो बठी माता संचरी,
ये हिवड़ो रुणझुण होय ।
म्हारा भूल्या न आखर दीजे,
सारदा माता ए ।।

(४९)

हाँ ये म्हारी[3] गोरल[4], सीस बगड़ियो[5] नारेल[6] ये ।
तलवाट[7] उग्यो सूरज गोरोल न ईसर सावळो[9] ।
मुखड़े तो चन्द्र पवासिया[10]
नाक सुवा की चोच ये ।

---

१. छोटे-छोटे, २. अक्षर, ३. मेरी, ४. गौर, गनगौर, गौरी (पार्वती), ५. बड़ा, ६. नारियल, ७. ललाट, ८. उदय, ९. साँवला, १०. पूर्णिमा ।

हाँ ये म्हारी गोरल, भँवरा[1] तो भँवर[2] भँबी[3] रह्या।
आँख अम्बा[4] की फाक ये, गोरी गोरल न ईसर साँवळो॥
जीभ कमल की फाकड़ी[5]
दाँत दाड़िम का बीज ये।
हाँ ये म्हारी गोरल, दाँता तो मिस्सी रची रई,
मुखड़ो रच्यो ए तमोल[6] गोरी गोरल न ईसर साँवळो।
खांदा[7] कलस[8] ढुली रह्या[9],
हात चम्पा री डाळ[10] ये।
हाँ ये म्हारी गोरल पेट पवन का पान ए।
हिवड़ा[11] तो संचे[12] ढालिया, गोरी गोरल ईसर सांवळो।
मूंगली-सी आंगली,
पोंचो सो झीनी लोघ ए।
हाँ ये म्हारी गोरल, जांघ देउल[13] का खम्ब ए।
पिड्या[14] तो बेलन बेलिया, गोरी गोरल ईसर साँवळो।

(५०)

पावा ते गढ़-सी उतरी भुवानी माय।
माता आई धरमपुरी सेर[15] भुवानी माय।
धरमपुरी का अमुक भाई[16] आड़ा पड्या भुवानी माय।
माता रवो[17] रवो दिन दो चार भुवानी माय।
हम कसाँ[18] रवाँ[19] भोला मानवी, भुवानी माय।
म्हारो आखीदल[20] कहाँ रे समाय, भुवानी माय।
आखीदल उतारूँ अम्बा आमली[21] भुवानी माय।
माता तम-खऽ[22] रे ठंडा मन्दिर पावा वाली वो।
रवो तो राँदाँ[23] खीचड़ी भुवानी माय।
माता रवो तो नख छोल्या भात, भुवानी माय।
माता रवो तो चुन्दड़ ओड़ावसाँ[24] भुवानी माय।
माता जाओ तो दखणी रो चीर पावा वाली वो।

---

१. भ्रमर, २. भौहें, ३. भ्रम में डाला, ४. आम, ५. पखुरी, ६. पान (ताम्बूल), ७. कंधा, ८. कलश, ९. ढुलक रहा, १०. डाली, ११. हृदय, १२. साँचा, १३. मन्दिर, १४. पिंडलियाँ, १५. शहर, १६. गृह-स्वामी का नाम, १७. रहो, १८. कैसे, १९. रहें, २०. पूरा दल, २१. बाग, २२. तुम्हें २३. पकावें, २४. उढ़ायेंगे।

(५१)

ईसर जी, तम[1] कायन[2] का मयना-मऽ[3] आया ?
पारवती हम चेत का मयना-मऽ आया।
गवरा देवी-नऽ ले जासाँ[4] जी राज।
ईसर जी म्हारी गवरा देवी-रो सीस धमक[5]।
गवरा देवी-नऽ ना भेजाँ जी थारा राज।
पार्वती हम सठवाँ सोठ बुलावाँ।
गवरा देवी-नऽ ले जासाँ जी म्हारा राज।
ईसर जी म्हारी गवरा-न धान न झिम्या राज।
गवरा देवी कऽ ना भेजा जी थारा राज।
पार्वती हम हलवाई को लड़को तेड़ावो राज।
गवरा देवी-नऽ ले जासाँ जी म्हारा राज।
ईसर जी म्हारा गवरा-न चुन्दर न नादियाँ राज।
गवरा देवी-न ना भेजा जी थारा राज।
पार्वती हम बजाज को लड़को तेड़ावाँ राज।
गवरा देवी-कऽ खड़-खड़ ले जासाँ म्हारा राज।

(५२)

झिरमिर झिरमिर मेहलू[6] बरस[7],
भींजऽ मारी साव्ळू[8] केरी[9] कोर[10]।
गंगाजी-नी जय बोलो।
कोणसा[11] भाई जी न भीम सरे सँगवी[12],
काई छे ताराहो नाँव ?
गंगाजी-नी जय बोलो ॥
रामदास भाई ना भीम सरे सँगवी,
किसना जी मारो नाँव।
गंगाजी-नी जय बोलो ॥
कोण सी बाई-रा[13] बीर छे रे संगवी,
कोण-सी बऊ-नऽ[14] भरतार।
गंगाजी-नी जय बोलो ॥

---

१. तुम, २. किस, ३. महीने में, ४. ले जायेंगे, ५. धमकना, दर्द होना ६. पानी, ७. बरसता है, ८. रेशमी साड़ी, ९. की, १०. किनार, ११. कौन से, १२. साथ में, १३. बाई का, १४. बहू का।

नर्बद बाई-रा बीर छे रे सँगवी,
सीता बऊ-न भरतार ।
गंगाजी-नी जय बोलो ।।
हात आरती गंगाजी-मऽ जाई ठाड़ा रह्या,
जोवऽ[1] छे पौवा-नी[2] बाट[3] ।
गंगाजी-नी जय बोलो ।।
हात लाकड़ी, पग पावड़ी
माथऽ[5] छे कसूमल पाग ।
कम्मर कटारी हात बासड़ी,
गंगाजी-नी जय बोलो ।।

(५३)

मन रे मान्धाता बिच रमी रयो ।
पचमढ़ी पण्डव बसे, पाँची करे असनान ।
छत्तीस मुरत जाँ रमि रया, ओ को अम्मर नाम ।
मन रे० ।।
असीगड़ बीच बागचो, वाकी सीतल छाव ।
जाँ रे महादेव तप करऽ, घर बठ्या दरसन पाव ।
मन रे० ।।
गढ़ पर हत्ती जोखिया, गढ़ पर मांड्यो छै रोट,
अबीर कँवर माँसी निसरना, गढ़ पर भई घमालोट ।
मन रे० ।।
रेवा तिनके घर रमे, जिन घर कपला हो गाय,
मुख-मुख अमरत वाँ झरे, झरे गंगा माय ।।
मन रे० ।।

जीवन-गीत

(५४)

डावों[6] हाथ तेल फुलेल, जवणा[7] हाथ आरती जी,
धणियेर राजा सोया सुख-सेज, रनुबाई डोल बींझणोजी[8] ।
डोळतज-डोळतज[9] आई गई झप[10], हाथ को बींझणो भुई गिरयोजी,

---

१. देखते, २. यात्रियों की, ३. रास्ता, ४. खड़ाऊ, ५. सिर पर, ६. बायाँ, ७. दहिना, ८. पंखा, ९. डुलाते-डुलाते, १० नींद ।

धणियेर राजा की खुली गई नींद, तड़ातड़ मार्‌या ताजणाजी[1] ।।
रनू बाई-खऽ लागी बड़ी रीस[2], आसन छाड़ी भुँई[3] सुनाजी,
खुटी-मऽ को चीर कोम्हलाय, असा कसा रोष भर्‌याजी।
बेड़ुला को नीर झोकलाय[4] असा कसा रोष भर्‌याजी ।
पाळणारो[5] बाळो[6] बिलखाय, असा कसा रोष भर्‌याजी ।।

(५५)

रनुबाई धनियेर[7] जी सू[8] बिनव[9],
पियाजी हम-खऽ टीकी घड़ाव ।
टीकी का हम सांदुला[10] ।।
रनुबाई तुम-खऽत टीकी न साज ।
तुम रूप का साँवळा ।।
पियाजी हम साँवळा,
हमारी माय-मावसी सो भी साँवळई।
पियाजी हम साँवळा,
हमारी कुक बालुड़ो सो भी साँवळो।
पियाजी म्हारा मन्दिर तुम आओ,
तो तुम भी होओगा साँवळा ।

* * *

व्हाँसी देवी गवरल नीसरी,
आगऽ आईन पणिहारा खऽ पूछ, बताओ हमारो मायक्यो।
हम काई जाणा वो देवी गवरल,
आगऽ जाईन, गुवाल्या खऽ पूछ, उ बताव तुम्हारी मायक्यो ।
धेनु चरावत हो भाई गऊधन्या,
देखी म्हारी पियरा री बाट हम रोष भर्‌या संचरियाजी।
हम काई जाणा जी देवी गवरल,
आगऽ जाइन किसाण खऽ पूछउ, बताव तुम्हारो मायक्यो ।
हाल हाँकत्या जी भाई किरसाण,
देखी म्हाणी पियरा री बाट, हम रोष भर्‌या संचरियाजी ।
हम काई जाणाजी देवी गवरल,
आगऽ जाई न डोकरी खऽ पूछउ, बताव तुम्हारो मायक्यो ।
सूत कातती ओ बाई डोकरी,

---

१. सेली, २. क्रोध, ३. जमीन, ४. छलकता है, ५. झूलेका, ६. बच्चा, ७. पति, ८. से, ९. प्रार्थना करतीं हैं, १०. शौक ।

देखी म्हारा पियरा री बाट, हम रोष भरया संचरिया जी।
केल खजूर का बन भर्‌या जी, व्हां, छे तुम्हारो मामक्यो,
जाओ, बेटी गवरल।
व्हाँ सु भोला घणियेर निसर्‌या आगऽ जाइन पणिहारा सूँ पूछ,
पाणी भरती हो पणिहारिन, देखी म्हारी गवरल नार ?
हम हसत विणसिया जी।
केल खजूर का बन भर्‌या जी, व्हाँ छे थारी गवरल नार
आगऽ जाइन देखी गवरल नार।
धणियेर बोल्या जी, टीकी सोह गवरल नार
हम हसत विणसिया जी।

(५६)

आदमी बेचारो काई करऽ[१],
घर-मऽ करकसा नार।
घर घट्टी[२] घर ऊखळी[३],
घर-घर पीसण जाय।
अड़ोसेण-पड़ोसेण सी बात बणाव,
आटो कुत्तो[४] खाय।
माथा को लुगड़ो कम्मर-पऽ जाय,
घोया[५] पऽ लड़ण-खऽ[६] जाय।

(५७)

बाकी[७] बलेण[८] नद्दी बहे म्हारी सई[९] हो।
सेला जामुन के री छाँय।।
व्हाँ[१०] रे बालुड़ो[११] पाती तोड़ऽ,
रनुबाई डूबि-डूबि न्हाव।।
न्हावत-न्हावत धणियेर[१२] जी न देख्यो,
कसीपत[१३] दीसाँ[१४] हो जवाणा[१५]।
हाथ जाड़ीन सीस नवाँ म्हारी सई,
नैण-सी दीसाँ जवाणा।।

---

१. करे, २. चक्की, ३. ऊखल, ४. कुत्ता, ५. गाँव के बाहर का स्थान, ६. लड़ने को, ७. तेढ़ी, ८. गति, धारा, ९. सखि, १०. वहां, ११. बच्चा, १२. पति, १३. कैसे, १४. देगी, १५. उत्तर।

(५८)

सूती न हो[१] धणियेर सपनो हो देख्यो ।
सपना को अरथ बताओ भोला धाणियेर ॥
मान सरोवर म-नऽ सपना-मऽ देख्यो ।
भरो तुर्‌यो[२] भण्डार म-नऽ सपना-मऽ देख्यो ॥
बहती-सी गंगा म-नऽ सपना-मऽ देखी ।
भरी तुरी बाबड़ी म-नऽ सपना-मऽ देखी ॥
सरावन तीज[३] म-नऽ सपना-मऽ देखी ।
कड़कती बिजलई म-नऽ सपना-मऽ देखी ॥
गोकुल को कान्हा म-नऽ सपना-मऽ देख्यो ।
तरवरतो[४] बिच्छू म-नऽ सपना-मऽ देख्यो ॥
गुलाब को फूल म-नऽ सपना-मऽ देख्यो ।
झपलक दीपलो म-नऽ सपना मऽ देख्यो ॥
कवलारी[५] केव्ठ[६] म-नऽ सपना-मऽ देखी ।
बाड़[७] उप्पर की बाँझुव्ठी[८] म-नऽ सपना-मऽ देखी ।।
पैला बालई[९] नार म-नऽ सपना-मऽ देखी ।
उगतो-सो सूरज म-नऽ सपना-मऽ देख्यो ।
सपना को अरथ बताओ भोला धणियेर ॥
मानसरोवर थारो[१०] बाप हो रनादेव ।
भर्‌यो-तुर्‌यो भण्डार थारो सासरो रनादेव ॥
बहती-सी गंगा थारी माँय हो रनादेव ।
भरी-तुरी बावड़ी थारी सासू हो रना देव ॥
सरावण-तीज थारी बइण[११] हो रनादेव ।
कड़कती बजिलई थारी नणद हो रनादेव ॥
गोकुल को कान्ह थारो भाई हो रनादेव,
तरवरतो बिच्छू थारो देवर हो रनादेव ॥
गुलाब को फूल थारो बाव्ठो[१२] हो रनादेव ।
झपलक दीपलो थारो जवई[१३] हो रनादेव ॥
कवलारी केव्ठ थारी कन्या हो रनादेव ।
बाड़ उप्पर की बाँझुव्ठी थारी दासी हो रनादेव ॥

---

१. सोये हुए, २. भरापूरा, ३. श्रावण की तीज, ४. तरतराता, ५. कोमल, ६. केली, ७. बाड़ी, ८. बांझ, ९. पीले वस्त्र वाली, १०. तेरा, ११. बहिन । १२. बच्चा, १३. दामाद ।

दैला वालई नार थारी सौत हो रनादेव ।
ऊगर्ता-सो सूरज थारो स्वामी हो रनादेव ॥

(५९)

बइण का आंगणी मऽ पिपळ्ठई,
रे बीरा चूनर लावजे ॥१॥
लाव तो सब सारु लावजे रे बीरा,
नई तो रहेजे अपणा देस ॥
माड़ी जाया चूनर लावजे ॥२॥
संपत थोड़ी, बिपत घणी हो,
बइण कसी पत आऊँ थारा द्वार ॥
माड़ी जाई, कसी पत आऊँ थारा द्वार ॥३॥
भावज री बिन्दी गयण मेल जे रे बीरा, चूनर लावजे।

(६०)

विविध गीत

हात रे कुतरा हाकी दऽ ।
मारा नाना रड़तो राखीदऽ ॥
नाना जऽ भाई-नऽ कपला गाय ।
कोण धुव ण कोण मिळ्ठवा जाय ॥
काको धुव ण मामो मिळ्ठवा जाय ।
जितो दहि-दूद मारो नानो खाय ॥
आओ न पोरा-पोरी रमवा-नऽ ।
नानो मारो बठो जमवा नऽ ॥
जमीच उठीन नानो बाड़ी-मऽ जाय ।
बाड़ी-नऽ बनफळ्ठ तोड़ीने खाय ॥

(६१)

हात रे भाई हात रे भाई ॥
नाना की माय पाणी-खऽ गई,
घर-मऽ कुत्रा कोंडी गई ।
कुत्रा भूखसे[1] होलई पर,
नाना म्हारो सोबसे झोलई[2] पर ।

१. भूखेगा, २. झूला ।

आओ चीड़ी बाई दौड़ी करी,
नानो म्हारो सोवसे ओढ़ी करी।
आओ चीड़ी बाई परात-मऽ,
नानो म्हारो जासे बरात-मऽ।
आओ चीड़ी बाई करूँ थारो याव[1],
कथील की मूंदड़ी न जुरुग को हार।
बाजरा को खीचड़ो न मसूर की दाल,
आओ चीड़ी काई करूँ थारो याव।
हात रे भाई! हात रे भाई!

(६२)

म्हारा नाना का ठुमक्या पाँय[2]।
ठुमकत ठुमकत बाड़ी-मऽ जाय॥
बाड़ी का बनफळ तोड़ी तोड़ीन खाय।
आई गई इतरा-मऽ मालेण[3] माय॥
ओनऽ छुड़ाइ लिया झगा न झूल।
छुड़ाइ लिया हाथ का बाळा का फूल॥
रस्ता-मऽ मिली गई भूआ माँय।
क्यों रड़ रे म्हारा नाना भाई?
नाना भाई नऽ तोड़्या फल न फूल।
मालेण नऽ लइ लिया झगा न झूल॥
लइलऽ मालेण थारा[4] फल फूल।
दऽ[5] म्हारा नाना का झगा न झूल॥

(६३)

सल की सटपट,
पागड़ी बाँधू लटपट।
डोंगा को तीर,
सल्लो बोले कोण रे।

* * *

---

१. विबाह, २. छोटे पैर, ३. मालिन, ४. तेरे ५. दे दे।

जूपरी पऽ जूपरी,
मिया पकावऽ दाळ्ठ।
मिया की दाढ़ी जली गई,
बीवी तोड़ऽ तान।
सल्लो बोले कोण रे।

(६४)

चन्द्रमा निरमलई रात,
तारो कँव ऊगसे ?
तारो ऊँग से पाछली रात,
पड़ोसेण जाग से जी ॥
घमक से मही केरो माट,
घमक से घट्टीलो जी।
बीराजी घर आवसे,
रनुबाई-खऽ आरती जी ॥

---

*निमाड़ी के अन्य गीत मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्-द्वारा प्रकाशित "निमाड़ी लोकगीत" पुस्तक में देखिये।

परिशिष्ट 'ब'

(१) धर्मराज की कथा

एक डोकरी थी। बरत नेम धरम करती थी। करत करत मरी गई। भगवान घर गई। व्हाँ धर्मराज-न वो-ख पूछ्यो कि तू-नऽ बरत कर्‌या, पण धरमराज को बरत तो कर्‌यो नी। येकासी तू पछी जाइन म्हारो बरत कर। डोकरी वापिस आई। ओंकार महाराज की पुन्नो-सी बरत लई लियो। दरोज वार्ता कया कर। बारा मयना पूरा हुआ। एक दिन बाह्मन को भेस लईन भगवान गोह्या पर उभ्या था। एतरा म डोकरी पोईची। भगवान-न पूछ्यो माय, तू काँ जाई रईन। कयो बेटा, हऊँ धरमराज का जोड़ा-खऽ न्यूतो देण जाई रईज। भगवान-न कयो हम-ख न्योतो दईज, हम बृंदावन-सी अई जाऊँगा। डोकरी तब 'हौ' कईन वापस आई गई। रोटी-पाणी करी। भगवान राधाजी-खऽ साथ-मऽ लईन डोकरी घर जीमण आया। जीमण का बाद डोकरी न संपूरण बाण दियो। डोकरी वो का बाद पाच पाय जाईन भगवान खा पोयचई आई। घर आईन बठी थी न विमाण आयो। विमाण म बठीन गई न बैंकुंठ-मऽ चली गई। वो-खऽ धरमराज महाराज तुष्टवान हुआ, वसा सब-खऽ होय।

(२) वोज बारस की कथा

एक डोकरी थी। वो की एक बवु थी। कार्तिक को महिनो आओ। वोज बारस को दिन थो। सासू न बवू-खऽ कयो हऊँ तो खेत-मऽ जाऊँज तु आज खेत-मऽ गहुँ मूँग को खिचड़ो रांधी न खेत-मऽ लावजे। बवु का सुणणा-मऽ फरक पड़्यो न गंगल्या मुंगल्या (छोरो न केड़ो गाय को)-खऽ रांधीन लई गई। सासू न पूछ्यो इतरी देर कसी हुई तु-ख ? बवु न कयो काई करूँ कयकी गंगल्या का पकड़ूँ तो मुंगल्यो भा-गऽ, न मुंगल्या-खऽ पकड़ू तो गंगल्यो भा-गऽ। सासू-नऽ कयो ओ हत्यारीन काई कर्‌यो कयकी तू न। सासू खूब रड़ती गगई न घर अवती रहई, न गंगल्या मुंगल्या की रांधेव हंडी-खऽ रुखड़ा पर गाड़ी आई। संजा हुई, गाय घर आई। बछड़ा-खऽ नई देखी न खोब ऐंड़ान लगी। येतरा-मऽ सासू-न कयो असो असो हुई गयोज मातेसरी। थारा-मऽ सत होय तो तू इन-खऽ जीवाड़। गाय न सिंगोटी लगई न गाड़ेल जगह का पास सात कावा फिरी की केड़ो म्हाँ-म्हाँ करीन उठी बठ्यो। डोकरी न कयो मातेसरी म्हारा-खऽ बी जिंदो करी दऽकयकी। गाय न सात फेरा फिरया की वोको छोरा

बी जिवतो हुई गयो। बस उन दिन सी कव्टुम चालू हुयोज की कार्तिक की वोज बारस का दिन खास करीन छोरो की माँय-न उन दिन गहूँ मूँग की रोटी नी खाणू। गाय न केड़ा की पूजा करीन चवड़ा व ज्वार का रोटा करीन खाणू।

(३) पृथ्वी को आकाश-सी याव

एक दिन एक कोल्या न चारी बाजू देख्यो। याणी की सुहावणी बखत थी। दिन की किरण ना धरती पर चारी बाजू अल्यांग-वल्यांग फैली रही थी। ठंडी-ठंडी हवा धीर धीर चल रही थी। कोल्यो यह देखीन खुश हुयो। ओकी घरवाली बी ओकी संगात हुती। ओनऽ बड़ा प्यार सी कयो प्यारी, संसार का सब जीवना को याव होज, मनुस, ढोर, पखेरु अरु झाड़ना तक को याव होज। हमारो भी याव हुई गयो, पर अभी तक इनी धरती को याव नी हुयो। यदि हम एको याव आकाश का संगात करी देवाँ तो बड़ो आनन्द हुई जाय।"

कोल्या की बयरू यह सुणीन खोव खुश हुई। दुईना-नऽ याव की तैयारी शुरू करीदी कोल्या न याव को सब प्रबन्ध आपणी घर वाव्ठी सौपी दियो, न खुद बाहूयर का इन्तजाम-म लगी गयो। ओनऽ ऊपर माथो उठायो न आकाश की बाजू देख्यो। वोकऽ असो मालूम पड़यो कि आकाश म्हारा मन की बात समझी न खुश छे। कोल्यो बाजावालानाका ह्याँ गयो न उनकऽकयो कि "म्हारा घर धरती को आकाश का संगात याव छे, ऐकासी तुम बाजा बजाइन-कऽ आवजो। तुम ढोल बजाड़जो न तुम्हारो छोरो सयणई बजाड़गा। याव-मऽ बड़ा-बड़ा लोग होण आवगा। न रुप्या लूटावगा। तू बड़ो पैसावव्ठो धनवान हुई जायगा।

बाजावालो कोल्या की बातना सुणीन खुशी हुयो। न वोनऽ याव-मऽ वाजा बजाइनो मंजूर करी लियो। कोल्या-नऽ ओकासी कायो "अरू देख, थारा साथ-मऽ बाँस को वणेल एक पंखो लावजे न लाड़ा-लाड़ी का बट्यालेण एक चटाई वणईन लावजे। तूखऽएका अलग सी दाम देवोंगा। वाजावाला-नऽ सब बात ना मानी ली। कोल्यो लुहार, सुतार, सुनार अरु कपड़ावालाना का घर बी गयो। न उनकासी बी याव-मऽ मदद लेण की बातना मंजूर कराड़ीली। याव को दिन नक्खी हुई गयो। वोनऽ जंगल का ढोर-ढंगर पंखेरुतक बी याव-मऽ आवण को निवतो दियो। याव का दिन सब एकट्टा हुई गया। ढोली को ढोल वाजण लगी गयो। कोल्या की जात वाला खूब कूदण लग्या। याव का समय आया जान आकाश-धरती की बाजू आवण लग्यो। यह देखीन देवता घबरई उठ्या। धरती पर का लोग बी घबरई उठ्या। देव दौड़ता कोल्या का पास आया न वोका-सी कयो, तुम बड़ा समझदार (हो) छे।

समझदारनान कोई बी काम बिना सोची समझीन नी करनू चायजे। यदि तुम-न आकाश धरती को याव करी दियो तो दुई जण मिली जायगा। उनको मिलाप होतज जमीन पर का सब जीव मरी जायगा। न यह जमीन उजड़ी जायगा। एकासी तुम इनको याव मत करो।

कोल्यो बड़ो चलाक हुतो। वोनऽ कयो, पर यदि मँ यह याव रोकी देऊँ तो आप म-कऽ क्या देवोगे ? सब देवता भगवान की बाजू देखण लग्या। भगवान-नऽ कोल्या-सी कयो यदि यह याव तुम रोकी देवो तो हऊँ तुम-कऽ सारी धरती को राज दई देऊँगा।

असो सुणीन कोल्यो खुश हुयो। न वोनऽ याव रोकी दियो। कोल्या-नऽ आपणी जातवालानाक खूब आवभगत करी, न वोनऽ उना दिन-सी धरती का हर भाग-मऽ राज करन-कऽ भेजी दिया। सब लोग चली गया अरु सारी धरती-कऽ आपणी अवाज सी गुंजई दिया, न आज भी गुंजई रह्याज। धरती को कोई भाग आज असो नी छे, जहाँ कोल्या नी होय। ये उन दिन की खुशी-मऽ खूब 'हुआ हुआ' चिल्लाया करज।

(४) दो बईणना

एक राजा का अरु दीवान का लड़का-मऽ खूब दोस्ती हुती। दुई का चाल-चलन अच्छी नी हुती। वो रोज शिकार खेलण-कऽ जाता था व रस्ता-मऽ जो बाईना मिलती थी ना उनको आपलो करता था। जब इनी शिकायत राजा का पास पहुँची, राजा अरु दीवान आप आपणा छोराना-खऽ खूब समझाया, पर उनकी बुरी आदत नी सुधरी। राजा-न दुई-कऽ देश निकालो दई दियो। दुई जोणना-नऽ आपणा घर सी मनमाना रुपया-पैसा पास धरी लिया। न आपण २ घोड़ानापऽ बठीन राज का बाह्यर चली गया।

दुई जोण चलता-चलता एक असा जंगल-मऽ आया जहाँ मनुस तो कई पण चिड़्या-चिड़ीना को बोल बी नी सुणातो थो। उनकऽ उना बड़ा भारी जंगल-मऽ एक तलाब देखायो। उना तलाब की धड़मऽ एक बड़ो भारी बड़ को झाड़ लगेल हुतो। वो उनाज झाड़ का निचऽ जईन उतर्‌या। उननऽ रोटी बणई खई न दुई जन सोई गया। इचमऽ दीवान का लड़का की नींद खुली। वोकऽ वीणा की सुरीली अवाज सुणाई दी। वोकऽ बड़ो अचरज हुयो। ओनऽ उठीन चारी बाजू देख्यो पर ओकऽ कोई नी देखायो। थोड़ी देर जात ओकऽ मालुम पड़्यो कि ओ अवाज कई सी नईं आई रहीज, ओ तो बड़ का झाड़ सीज आई रहीज। उनी अवाज वाला-कऽ देखण-कऽलेण ओनऽ खूब कोशीश करी, पर ओकऽकई नी देखायो। ओन भी खूब ढूंढ्यो पर वो भी कई नी समझी सक्यो।

उना झाड़ पर दो बइण ना रह्यती थी। छोटी बइण की नजर राजकुमार पर पड़ी न ओ की सुन्दरता देखीन मोहित हुई गई। ओनऽ ओका-सी आपणो याव करनो पक्को सोची लियो। वोनऽ फूलना को सुन्दर हार बनायो न उना हारकऽ राजकुमार पर फेकी दियो। राजकुमार उनो हार देखीन खूब खुश हुयो। पर हार कोनऽ फेक्यो इनी बात नी समझी सक्यो।

दूसरी रात आई। दुई दोस्त रोटी खाइन सोई गया, पर दीवान का लड़का कऽ नींद नी आई। वो बीणा का स्वर की राह देखण लग्यो। आधी रात-कऽ दुई बईण ना झाड़ का नीचऽ आई अरु तलाब-मऽ न्हावण चली गई दीवान को छोरो उनकऽ देखतो रह्यो। वो जसी न्हाइन आईना दीवान को छोरा-नऽ पकड़ी ली। राजकुमार बी जागी उठ्यो। बड़ी बइण न क्यो कि ऐ बी दुई जोण छे, न हम भी दुई जोण छे। हम याव करी लेवाँ। बड़ी नऽ दीवान के छोरा-सी अरु छोटी नऽ राजकुमार सी याव करी लियो। व बड़को झाड़ राजमहल बणी गयो, ओका च री वाजू बडो भारी नगर बसी गयो। राजा ण दीवान का लड़का आपणी बयरूना का साथ आपणा-आपणा मह्यल मऽ सुख-सी रह्यण लग्या।

(५) सौदागर को बेटो

एक सौदागर का चार बेटा हुता। जब वो खई-पीन बड़ा याव करन सरीखा हुई गया, तब सौदागर उनका याव करन कलेण बऊना ढूंढण कऽलेण निकल्यो। चल्तो चल्तो वो एक सयर-मऽ आयो। व्हाँ एक तलाब की धड़मऽ झाड़न का गयरा छावला-मऽ (ठयरयो) उतरयो। जराक बार जात उना सयर की मुकतीज छोरी ना तलाब पर पाणी भरन अई। उनका मऽ एक छोरी जो सयर-मऽ सबसी ज्यादा धनवान हुतो ओकी वी हुती। वो छोरीना न तलाब सी पाणी भरीन अपणा अपणा घर जाण लगी ना। सब छोरी ना का माथा पर सुन्दर अच्छा-अच्छा घड़ा हुता, पर उन धनवान सौदागर की छोरी का माथा पर एक फुटेल घड़ो हुतो। साथ वाली छोरीना-नऽ क्यो कि का ओ बईण, थारो बाप तो सब सी ज्यादा धनवान छे फिरी तू फुटेल घड़ो क्यों बापरज ?

धनवान सौदागर की लड़की-नऽ जुवाब दियो कि सच्चीज म्हारो बाप धनवान छे पर कई म्हारो याव कोई धनवान का साथ होगया या गरीब का साथ होयगा, या कोई बतई थोड़ो सकज। एकसी हऊँ याव-कऽ पहिलज सुख-दुख-मऽ रहिणू सीखी जाऊँ। साथ की सब छोरी ना मुंडो बणईन आगऽ चली गई ना। तलाब पर बठेल सौदागर उनी छोरी को जुवाब सुणीन मन ज मन खुश हुयो अरु असी छोरी-कऽ बऊ बणवण को सचण लग्यो। वो सौदागर

उनी छोरी का पाछ-पाछ वोका बाप का घर गयो अरु वो-का-सी अपण मन की मुराद कई सुणई। वो सौदागर बी अपणी कन्या कालेण एक अच्छा बर की तलास-मऽ हुतो, वोनऽ छोरी देणू कबूल करी लियो। अन याव की बात पक्की हुई गई।

घर आईन सौदागर-नऽ आपणा चारी छोराना-खऽ बुलाया अरु उनका ना-सी पूछयो कि म-कऽ एक छोरी मिलीं गई, पर तुम चार भाई छे, के का साथ याव करूँ य मकऽ बताओ।

सब सी छोटा छोरा-नऽकयो कि वो को याव सब सी बड़ा भाई का संगात कर देवो हम तीनीं जण वकऽ भाभी कवांगा।

बड़ा बेटा को याव हुई गयो। थोड़ा दिन जात सौदागर-नऽ यह देखणू चाह्यो कि चारीना-मऽ सबसी ज्यादा कूण (बुद्धिमान छे) अकल वालो छे? व-नऽ चारी बेटाना-कऽ सौ-सौ रुप्या दईन कयो कि बजार-मऽजईन चाय जो चीज मोल लई लेवो।

चारी भई आपणा २ रुपया लईन-घर-सी चल्या। उनकऽ रस्ता-मऽ एक तलाब मिल्यो। वो वहाँ ठहरी गया। चारी भई नऽ वहाँ रोटी बणई खईन फिरी बजार-मऽ मनचाही रकम लेण-कऽ चल दिया।

सब सी बड़ा भाई-नऽ एक आइनों मोल लियो। उना आइना-मऽ ये गुण थो कि यदि कोई का घर कोई मरी जाय तो वह बलमऽ उना आइना मऽ देखाता थो। दूसरा भाई-नऽ एक थाली मोल ली। थाली-मऽ गुण हुतो कि एक सफा जगऽ वकऽ धरीन एक साफ कपड़ा-सी ढाकी दे की अच्छो भोजन बणेलो आई जाय।

तीसरा भई-नऽ एक चामड़ो मोल लिया। चामड़ा-मऽ गुण हुतो कि ओका उपर बठतज वो हवा-मऽ उड़न लगी जातो थो अरु बठनवाला-नऽ-क डोळ्या की मिचकावणी-मऽ जाँ चाव वाँ जईन छोड़ी देती थो। सब सी छोटा भई-नऽ एक जादू की लाकडी मोल ली। उनी लाकड़ी को गुण हुतो कि वो कोई मरेल आदमी-कऽ लगई दे, तो वो जीवतो हुई जाती थी।

चारी भई उनाज तलाब पर एकट्ठा हुआ। अन सबना-नऽ अपणी-अपणी रकमना बताई ना। पतीयारो लेण-कऽ थाली पर कपड़ो ढाकी दियो। कपड़ो उघाड़ीन कई देखज की थाली पाँची पकवान सी भरी छे। चारी भईना-नऽ प्रेम का साथ हिली-मिलीन भोजन करोज। बाद-मऽ एक भई-नऽ आइनो उठईन देख्यो। ओका-मऽ वकऽ देखायों कि बड़ा भाई की घरवाली मरी गईज। सब रड़न लग्या। तीसरा भई-नऽ कयों कि रडों मत, आओ तुरत इन चामड़ा

पर बठी जाओ। एक आँख की मिचकावणी-मऽ घर पोंचयी देगा। सब जोण बठी गया न थोड़ी देर-मऽ घर आया। छोटा भाई-नऽ अपणी मंतर-जंतर वाली लाकड़ी भाभी-कऽ लगइं। वह जीवती हुई गई। घर भर-मऽ खुशी मनाई। सबनान चारी भाईना की लायेल रकम न देखी। सौदागर आपणा बेटान की अकल देखीन खूब खुश हुयो।

(६) जादू की आंगठी

एक गाँव-मऽ एक डोकरी रह्यती थी। वोको एक बेटो थो। दिन उनी डोकरी-नऽ आपणा भाई का संगात आपणा बेटा-कऽ जंगल-मऽ बास लावण-कऽ मोकल्यो। रस्ता-मऽ वोको भाई लड़का-सी नराज हुई गयो न वोकऽ एकलोज छोड़ी दियो। लड़को थोड़ा-सा बास लईन घर आयो। माय बेटानऽ मच्छीना पकड़न का लेण एक टोपली वणई। दूसर दिन लड़को आपणा मामा की साथ-मऽ मच्छीना पकड़न कालेण गयो। दुईना-नऽ आपणी-आपणी टोपलीना मच्छीना पकड़न-कऽलेण नदी-मऽलगाई दी न वो जंगल-मऽलक्कड़ लावणक जाती रह्या। जब वो पछा आया तो कई देखज की लड़का की टोपली मच्छीना-सी भरई गईज, पर वोका मामा की टोपली-मऽ एक भी मच्छी नी हैं। यह देखीन मामा-कऽ खूब गुस्सो आयो। वोनाऽलड़का-सी कयो कि "तू-नऽइचमऽ आईन म्हारी टोपली की मच्छीना आपणी टोपली-मऽनाखी ली।" दुई नामऽ लड़ई हुई गई।

दूसर दिन एकलोज लड़को दूर की बड़ी नदी-मऽमच्छीना मारन-कऽ गयो। व्हाँ वोनऽ आपणी टोपली पाणी-मऽ लगाई दी। वोनऽ देख्यो कि म्हारी टोपली-मऽ मच्छीना नी आई, पर एक बड़ो मोटो साप आई गयोज। लड़का-नऽउना साप-कऽ मारन कालेण एक मोटो दग्गड़ उठायो। यह देखीना साप-नऽ उना छोरा सी कयो "तू म-खऽ मत मार म्हारी एक बहुत सुन्दर लड़की छे। हऊँ थारो याव ओ का साथ-मऽकरी देऊँगा। तुम यहाँज रहो, हऊँ ओ-कऽ लईन आऊँज।

थोड़ी देर जात साप ओ की छोरी-कऽ लईन आयो। साप की लड़की-नऽउना लड़का-सी कयो—"जब म्हारो बाप याव होण का पाछ तुम-कऽ कई माँगण-कऽकय तो तुम ओका-सी ओकी जादू की आंगठी मांगजो, अऊ दूसरी कई रक़म नी।

साप-नऽ याव को संच लगायो। न आपणी लड़की को उना लड़का-सी याव करी दियो। लड़का-नऽउनी लड़की का कयण सी आपणा ससरा-सी दायजा-मऽ उनी आंगठी मांगी। साप-नऽ दूसरी रकमना मांगण-कऽकयो, पर लड़का-नऽ एक बी बात नी सुणी। अन्त-मऽ साप-नऽ इनी शरत पर आंगठी दी कि हऊँ इनी आंगठीना छः महीना-मऽ पछी लई लेऊंगा।

लड़का आपणी घरवाली-कऽ लईन गाँव-गाँव फिरतो रह्यो। एक दिन वो एक पायड़ी (पहाड़ी) का पास आया। वो बड़ो लुभावणी जगऽ थी। वोकी घरवाली-नऽ उनी जगह सफा करीन वो-कऽ गोबर-सी लिपी दी। ओनऽ एक कपड़ो लईन, उना कपड़ा की सात पुड़ना करी दी, उनी जगह धरी दियो। लड़का-नऽ साप सी लियेल आंगठी उना कपड़ा-कऽ लगई कि व्हाँ एक सात खण्यो मह्यल बणी गयो। फिर उनी आंगठी-सी मुकतोज धन लियो। ६ महिना जात साप व्हाँ आयो न वोका-सी आपणी आंगठी माँगी लई गयो। दुई धणी-बयरु सुख-सी रह्यण लग्या।

(७) बाप को बदलो

एक गाँव-मऽ एक रजपूत रह्यतो थो। वोकी घरवाली बी थी अरु ओको एक छोरो थो। एक दिन जंगल-मऽ उना रजपूत-कऽ न्हार-नऽ म्हारी नाख्यो। यह देखीन वोका छोरा-कऽ खूब गुस्सो आयो, न आपणा तीर-कामठी लईन उना शेर (न्हार)-कऽमारन चल्यों। रस्ता-मऽ वकऽ एक बड़ो भारी तलाब देखायो। थकी जाण सी वकी धड़-मऽ जईन बठी गयो, जाँ वका बाप-कऽ न्हार-न मारी नाख्यो थो। वनऽ व्हाँ बठी ना कामठी पर एक खूब तीखी धारवालो तीर लईन चढ़ायो अरू न्हार आवण को रस्तो देखतो रह्यो। एतरा-मऽ एक कोल्यो व्हाँ पाणी पींणा-कऽ आयो। छोरा-नऽ खूब ताकत-सी गगईन कयो कि "खबरदार पाणी पियो तों एकज बाण-मऽ कलथाड़ी देऊँगा। एतो सुणणो थो कि कोल्यो जान लईन भाग्यो।

जरा बखत जात एक चीतलो पाणी पीण आयो। वकऽ भी छोरा-नऽ डाटीन भगाड़ी दियो। कोल्या अरु चीतला-नऽ जईन न्हार-सी कयो कि तलाब पर एक छोरो बठ्योज वो कोईकऽ आज पाणी नहीं पीण देतो। तुम-कऽभी नई पीण देगो। तुम हम सब का राजा छे। तुम्हारो काम हमारो दुख दूर करन को छे। एतो सुणणो थो कि न्हार-कऽ खूब गुस्सो आयो न झील (तलाब) पर पाणी पीण-कऽ चल्यो। न्हार-कऽ देखतज छोरो अपणा तीर-कामठी लईन मुच्छी पर हाथ फेरतो खड़ो हुई गयो अऊ गर्जीन कयो अब तू नई बचीन जई सकतो, तू-नज म्हारा दादा (बाप)-कऽ मार्योज, तू मकऽ कई समझज।

यह सुण्णों थो कि न्हार गुस्सा-मऽ भरेलो छोरा पर दौड़्यो, पर छोरा का बाण (तीर)-न-सी भी वो नहीं बची सक्यो। न्हार तीर खईन धरती पर धड़ाम सी जई पड़्यो। एता-मऽ वकऽ जरासी दूर पर अपणा बाप की लास पड़ेल देखाई पड़ी। वो लास पास जईन माथो पकड़ी रड़न लग्यो। उपर बादला-मऽ महादेव-गौरा जई रह्या था कैलास पर। उननऽ उना छोरा को रड़नो सुन्यो। नीचऽ अईन छोरा-सी पूछ्यो तू क्यों रड़ज? छोरा-नऽ कयो कि म्हारा दादा-कऽ

न्हार-नऽ मारी नाख्यो, ऐका सी म्हारा बाप का लेण रड़ी रह्‌योज। यह सुणी न महादेवजी-नऽ अपना तुम्बा-सी अमरत निकाली ओका बाप का सरीर पर छिड़क्यो। अमरतसी ओको बाप जीवतो हुई उठ्यो। बाप-बेटा नऽ महादेव-गौरा का पाँय लग्या। महादेव-गौरा अपणी जगह पर चली गया और छोरो आपणा बाप-कऽ लई घर आयो। इनी तरह सी बाप-बेटा खुसी मजा-सी रह्‌यण लग्या।

(८) छोटो भाई

एक राजा का पाँच बेटा हुआ। राजा सबसे नान्हा बेटा-कऽ सबसे ज्यादा प्यार करतो थो। यह देखीन वोका चारी भई वोक-सी मनज मन कुढ़न लग्या। एक दिन उना छोटा छोरा-कऽ जंगल-मऽ लई जईन मारी नाखणूँ, इनी बात चारी भईना-नऽ नक्खी करी। वो सबी जोण शिकार खेलण-कऽ जंगल-मऽ गया। साथ-मऽ फुसलईन अपणा छोटा भाई-कऽ बी लई गया। चारी भईना-नऽ अपणा छोटा भई-कऽ एक बड़ा भारी जंगल-मऽ लई जईन भूल पाड़ी दियो। अन वकऽ व्हाँ छोड़ीन घर पछा चली आया। राजा का पूछणा पर सबना-नऽ कई दियो कि वकऽ न्हार-नऽ मारी नाख्यो। हम-नऽ वकऽ बचावण कालेण खूब जोर लगायो, पर वकऽ बचई नहीं सक्या।

छोटो भाई फिरतो-फिरतो ठेट मधुबन जाई पहुँच्यो। वहाँ एक सुरई गाय रह्‌या करती थी। वो रोज उनी गाय को दूध पीवऽ न वोकी सेवा-चाकरी कर्‌या करतो। एक दिन एक आदमी आपणा गाड़ी-बैल लईन गायना-का कंडा एचण आयो। वनऽ कंडाना-सी गाड़ी भरी ली, पर वा गाड़ी एतरी भारी हुई गई कि बैलना-सी खैंचई नी। वनऽ फिर उना राजकुँवर से मदद माँगी। वो राज-कुँवर जईन गाड़ी पर बठ्यो कि गाड़ी का बइल तेजी का साथ चलन लग्या। यह देखीन वो आदमी भी दौड़तो जईन उनी गाड़ी पर बठी गयो। उना आदमी के एक कन्या हुती। वो राजकुँवर-कऽ अपणी कन्या-सी याव करन-कलेण जबर-जस्ती आपणा घर लई गयो। राजकुँवर वोका घर रह्‌यण लग्यो। पर वोकी कन्या से याव करन-कऽ राजी नई हुयो। फिरी एक दिन घर-सी भागीन मधुबन-मऽ आवती रह्‌यो। वहाँ वो जईन कई देखज कि सुरई गाय मरी गईज अरु ओका हाड़का अल्यांग-वल्यांग (यहाँ-वहाँ) बगर्‌याज। एतरो देखत ओखऽ भौत दुख हुयो अन डोला ना बाट आसूना की धार लगी गईज। फिरी वो वहाँ-सी दूसरा बन (जंगल)-मऽ चली गयो। उना जंगल-मऽ एक अमर गुरु की मढ़ी हुती। वो वहाँ रहीन अमर गुरु की सेवा करन लग्यो। बारह बरस का पाछ अमर गुरु खुश हुया न कयो कि बरदान मांग। राजकुँवर न कयो कि महराज आप खुश छे तो मखऽ अमरजल देओ। गुरु-नऽ वोकऽ अमरजल दई

दियो। अमरजल लईन वो मधुवन,मऽ आयो अन सुरई गाय का बगव्ठेल हाड़-काना-कऽ एकट्ठा कर्‌या अरु ओका पर अमरजल छिट्टी दियो। सुरई गाय जीवती हुई गई अरु वो वोका साथ खुशी मजे-मऽ रह्‌यण लग्यो।

एक दिन एक राजा वहाँ आयो न एक गह्‌यरा झाड़-कऽ नीचऽ जाईन बठी गयो। वा घड़ी उनो राजकुँवर उनाज झाड़ पर बठीन आंबा तोड़ी-तोड़ीन खई रह्‌यो थो। वोकऽ एकदम वोकी माय की याद आई, न वो जोर-जोर सी रड़न लग्यो। ओका डोव्ठाना-सी आसू की एक बूंद नीचऽ बठेल राजा पर जई पड़ी। राजा-नऽ ऊपर देख्यो अन वकऽ नीचऽ आवण खऽ कयो। नीचऽ उतारी न राजा न वोकऽ जबरदस्ती आपणा रथ-मऽ बठाड़ी लियो अन वोकऽ आपणा घर लई गयो। अन घर लई जईन अपनी छोरी-सी ओको याव करी दियो। वो राजकुँवर राज मयल-मऽ सुख सी रह्‌यण लग्यो।

(६) सरम साट जान गई

एक दिन एक राजा जंगल-मऽ शिकार खेलण-कऽ गयो। वोका साथ-मऽ एक घोड़ो अरु एक नौकर हुतो। रस्ता-मऽ वकऽ पाद आवण-कऽ करी। राजा-नऽ शरम का मारे खूब जोर लगाईन पाद-कऽ रोकीन घोड़ा परसी उतरीन दूर एच झाड़ का नीचऽ पाद छोड़ी अरु उना झाड़ सी कई दियो कि इनी बात कोई-कऽ मत कयजे।

संझा-कऽ राजा अपणा घर आयो। वोनऽ दूसर दिन एक सुतार-कऽ बुलईन कयो कि म-खऽ एक जोड़ तबला अरु सारङ्गी बणई-कऽ लाई दऽ। सुतार राजा को कयणू सुणीन लक्कड़ लेणक जंगल-मऽ गयो। सुतार-न जंगल-मऽ जईन उनोज झाड़ काट्यो जिना झाड़ कऽ पास राजा-नऽ पादो थो। लक्कड़ लईन सुतार-नऽ तबला अरु सारङ्गी बणईन राजा-क दई दी। राजा-नऽ अपना मह्‌यल-मऽ रात की बखत नाचणू-गावणू राख्यो। राजा का बड़ा-बड़ा कार-बारी आईन बठ्या। गावणू-बजावणू शुरू हुयो। तबला-सारङ्गी बाजण लग्या। तबला-मऽ सी अवाज आवण लगी "राजा-नऽ पाद्‌यो, राजा-नऽ पाद्‌यो"। सारङ्गी बाजण लगी "इनी बात हऊँ जणूज"—यह सुणीन सब लोग खूब हँसण लग्या। राजा-कऽ बुरा लगण लग्यो न शरम का मारे बिना कोई-सी बोल्यो-चाल्यो गुपचाप मह्‌यल सी निकलीन साधू (जोगी) को भेस लईन जंगल-मऽ चली गयो।

जब इनी बात राणी-कऽ मालुम पड़ी वह राजा की याद करी-करीन खूब करुणा सी रड़न लगी। वकऽ नहीं मालुम पड़्यो राजा क्यों घर छोड़ीन जाती रह्‌यो। दूसर दिन सुतार-कऽ बुलईन पूछ्यो। सुतारनऽ सब हाल सुणई दिया।

सब हाल सुणीन राणी-नऽ एक नौकर का संगात राजा-कऽ ढूंढण वास्तऽ भेज्या ।

साधू का भेस-मऽ राजा अल्यांग वल्यांग फिरतो-फिर्‌यो। वकऽ एक दिन अपनी राणी की याद आई। वनऽ घर जाणू की सोची, न घर की बाजू चल्यो। रास्ता-मऽ वकऽ सुतार अरु नौकर भी मिली गया। एक दूसरा-कऽ देखीन खूब खुशी हुया। दिन डूबन का बाद इंधारा-मऽ राजा-नऽ पयल सुतार-खऽ अरु नौकर खऽ घर भेजी न खुद घर की बाजू-मऽ गयो। रात ज्यादा होण सी सब लोग मह्‌यल-मऽ सोई गया था। पहरेदार लोग जागता हुता। राजा-कऽ देखीन समझ्या कि कोई चोर भरई गयोज, जइन राजा-कऽ मारी नाख्यो न वकी लास-कऽ नदी-मऽ फेकी दी।

दूसर दिन सुतार अरु नोकर राजा-कऽ मिलन चल्या। जब उनकऽ रात की सारी बातना मालुम हुई तब बड़ा पछताया, न जसी की वसी सब बातना राणी-कऽ सुणई दी। राणी सुणीन फक उड़ी गई। खूब जोर-जोर सी रड़ती-गगाती नदी की बाजू दौड़ती गई। वो-नऽ वहाँ राजा की लासकऽ वळखी ली। जब वनऽ कोई उपाय नहीं देख्यो तब वा बी नदी-मऽ कूदी पड़ी न प्राण दई दिया।

(१०) बिरला को तलाव

निमाड़ जिला की सेगांव तयसील-मऽ खरगुन सी जुलवान्या जाणवाली सड़क पर बिरलो नाँव को गाँव छे। याँ एक बड़ो जंगी तलाब छे। वो ४-५ कोस की गरद-मऽ पाणी सी भर्‌यो रहज। तलाब-कऽ देखीन हिम्मत छुटज, जवँ हवा चलज तवँ बड़ी-बड़ी झबरन उठज तँव इनो तलाब की रंगत काई कयणू!

इनो तलाब कसो वण्योज, क्यों वण्योज, एको बाईन एक गावणो गावज, न इना गावणा को नांव छे—'कुलवंती बहु'। उना गावणा-कऽ सुनीन उना तलाब की एक कथा समझमऽ आवज कि पयल जमाना का हमारा निमाड़ लोग केतरा भला था, दूसरान को भलो करना-मऽ जरा बी पाछा नी पड़ता था। अपण भाई-नऽ को भलो होय, अवल्याद-कऽ आराम मिलऽ असा बड़ा-बड़ा काम उननऽ कर्‌योज। इना बिरला का तलाब की कथा को गीत 'कुलवन्ती बहू' बाईनका मुंडासी एक दिन सुण्यो की—

बिरला का पास तलकपुरो न अरू भी नाना-नाना चार-पाँच गावड़ा अब भी छे। उना गाँवन का पास नदी, खोदरो कई नी हाँई। उना जमाना-मऽ जा अवँ तलाव छेवाँ एक बावड़ी थी, जेको पाणी चार-पाँच गाँव का लोग पेता था। यांणीम, व्हाँ पाणी की बख़्त बावड़ी पर खूब भीड़ जमी जाती थी।

काई का वासण न काई की चोमव्ठन बदलई जाती थी, ते का बहल बाइ। बाईन मऽ खूब लड़ईन होय। देखाँज कि आज बी अपणा निमाड़ की बाईन कथंई नी समाय, न भरोसो नी आव तो पणघट पर जाईन अवँ भी देखी सकोज

एक दिन गाँवको पटिल बावड़ी का पास गयो, सब बात न देखी। तो वो बड़ो अनमनो हुई गयो। इचारन लग्यो कि इना पाणी का दुख-कऽ कसो मिटावणु। म्हारा पुरखाननऽ भी नवा कुवा खोदाड्या पण पाणी नी निकल्यो। बावड़ी-क भी खोदाड़ी, पण पाणी नी बध्यो। इना इचार-मऽ वो रात-कऽ सोथो, तो ओका सपना-मऽ हल हजूर देवी आई न ओका सी कयो-सुण रे पटिल---कदी तू थारा छोरा न बावड़ी कऽ इनी बावड़ी-मऽ समाड़ी दयऽ तो पाणीज पाणी हुई जायगा'। यांणी मसी पटिल उठ्यो पण अनमनो थो। उन-कऽ अनमनो देखी न बावड़ी नऽ कयो 'ससराजी, म्हारा न तमारा छोरा का समई जाणसी सब गाँव वालान को पाणी को दुख मिटज तो हऊँ एक पाय पर राजी छे। कदी भी तो मरणुज तो असा पराया भला का काम-मऽ हम मरा तो असी बखत कवँ मिलसे। तमारा छोरा का आई जाण पर आजज इनी बात पक्की करी लेवाँ। जुवारा बखत-कऽ खेतमसी छोरो आयो। पटिल-नऽ सब बात ओखऽ भी कई। बवड़ी-न भी धणीकऽ समझायो। ओ भी सुनतो थो। बोल्यो 'बापको कयणो' सब भाईन को भलो होय इना बड़ काम-मऽ हम आवाँ तो मकऽ बड़ी खुशी छे। बात अब पक्की हुई गई। गाँव-गाँव इनी बात लोगन नऽ सुनी की अमुक दिन पटिल को छोरो न ओकी बवड़ी बावड़ी-मऽ समायगा। तवँ उना दिन सब लोग हितु भाई एकट्ठा हुई गया।

पटिल को छोरो अरु बावड़ी नहाई-धोईन पूजा की थाल हाथ-मऽ लईन निकल्या। छोरो घोड़ा पर बठ्यो अन कुलवन्ती बहू गाड़ी-पर। सब गावता-बजावता बावड़ी-पर गया, पूजा करी। न बावडी-मऽ दुई जोण जोड़ा-सी गया। पटिल दाजी ममता का मारे खूब रड़न लग्यो। तवँ बवडी-नऽ कयो ससराजी, तम मत रड़ो, तम-कऽ खुशी होणु चायजे। मकऽ रोज हाक मारजो तो हऊँ म्हारा हात सी तम-कऽ भोजन की थाल दिया करूँगा। असो कईन जसा जसा ओ पाणी-मऽ गया हाथ जोड्या कि बावडी को पाणी बढ़न लग्यो। देखता-देखता सब दूर पाणी-पाणी हुई गयो। लोग भागी निकल्या, पण ओ दुई जण वाँ गुपुत हुई गया। जेको आज बडो जंगी तलाब छे।

पटिल दाजी रोज तलाब-पर आईन कय, "बेटी कुलवन्ती बहू, भोजन दऽ", तो पाणी-मऽ सी एक हाथ थाल लईन निकव्ठऽ अरु, पटिल दाजी थाल लई ले। अब भी उना तलाब की ऊंगणू चड़प दगडा-पर घोड़ा की टाप न गाड़ी की चकरी को निशाण छे। जे की पूजा होज। ओकऽ देखीन तलाब की

सब कथा नजर का सामनऽ नाचण लगी जाय। हमारा निमाड़ वाला नऽ को माथो उच्चो हुई जाज कि कसा कसा बाप, बेटा, न बवडो न हमारा मसी हुई गयाज। जो खुद समई गया, पण अपणा नाँव नक अम्मर करी गयाज।

हम निमाड़ वाला असा जूना गावणानक सुण, कथा नक सुण, अरु ओ-पर इचार कराँ तो हमकऽ कई नवी-नवी बातन मालूम हुई सकज।

(११) छोरी की बहक

एक गाँव-मऽ एक ठाकुर रह्यतो थो। ओकी एक छोरी थी। उनी छोरी-नऽ इनी बात पक्की करी कि हऊँ ओकी-सी याव करूँगा, जो सब की ज्यादा भादर होयगा। एक दिन ओका गाँव-मऽ एक राजा-नऽ आईन डेरो नाख्यो। उनी छोरीन देख्यो कि गाँव का सब रह्यणवाला उना राजा-कऽ झुकी झुकीन पाँय लागी रह्याज। वोनऽ एकासे राजा-कऽ सब सी ज्यादा भादर समझ्यो अरु ओका हाथी का पाछ-पाछ चली गई। रस्ता-मऽ ओकऽ साधु मिल्यो। राजा-नऽ हाथी पर सी उतरीन उना साधू का पाँय लाग्या। उनी छोरी-नऽ मनमऽ सोच्यो कि राजा सी भी साधू ज्यादा अक्कलवालो अरु बलवान छे। ओनऽ राजा की संगात छोड़ीदी न साधू की सात-मऽ हुईगई। आगऽ जाण पर एक महादेव को मन्दिर मिल्यो। वहाँ साधू मंदिर-मऽ गयो, अन शिवजी की मूर्तिक दण्ड भरीन हाथ जोड़्या। एतरो देखीन छोरीन सोच्यो कि महादेव साधू सी बड़ो छे। वोनऽ महादेव सी याव करन-कऽ साधू-कऽ छोड़ीन मन्दिर-मऽ रही गई।

जरा क जात एक कुतरो मन्दिर-मऽ आयो न वो महादवजी पर चढ़ाएल समान खई गयो अरु उच्ची टांग करीन उनका पर मूती दियो। छोरीन देख्यो कि कुत्तो महादेवजी सी भी बड़ो छे।

वो कुत्ता सी याव करन-कऽ ओका पाछ-पाछ जाण लगी। वो कुत्तो एक ठाकुर का घर-मऽ चली गयो। अरु वो कुतरो ठाकुर का जुवान छोरा का पाँयना-मऽ बठीन चाटन लग्यो न लोटन लगयो। असो देखीन उनी छोरी-नऽ सोच्यो कि यो जुवान छोरो कुत्ता सी भी बड़ो छे। न ओका पास चली गई न ओका सी याव करीन सुखसी रह्यण लगी।

(१२) बिन बाप को छोरो

एक जंगल-मऽ एक कुँवारी लड़की रह्यती थी। वोकऽ तीस लगी। न वो पाणी ढूंढनकऽ निकली। घाम खूब तेज पड़ी रई थी। नदी तलाब सब सूखी गया था। वोकऽ कहीं बी पाणी की जगा नी देखाई दी। वखऽ एक पता पर कई पाणी सरीखो देखायो। वोनऽ वोकज पी लियो। थोड़ा दिन-मऽ

ओकऽ मालुम पड़्यो कि वो गरभ सी छे। वोकऽ बड़ो अचरज हुयो। गरभ पूरो होण पर वोकऽ एक सुन्दर छोरो पैदा हुयो। वोनऽ सोच्यो कि बालक बड़ो सुन्दर छे, पर यदि एकऽ हऊं लईन आपणा गाँव चली जाऊँगा तो लोग म्हारा चरित्र पर शंका करगा। वोनऽ वोका बालक-कऽ वहाँज छोड़ी दियो न वो आपणा घर चली गई।

दूसर दिन उना राज को राजा उना जंगल-मऽ शिकार खेंलण आयो। वो-का नौकर नाकी नजर उना बालक पर पड़ी। उननऽ यह बात राजा सी कई। राजा-नऽ बालक देख्यो। वो बड़ो सुन्दर थो। राजा की कोई सन्तान नी हुती। वोनऽ ईश्वर-कऽ धन्यवाद दियो अरु वो बालक को उठईन घर लई गयो। जब लड़को बड़ो हुई गयो, तब एक दिन राजा उना लड़का-कऽ लईन उनाज जंगल-मऽ आयो। इना समय उना लड़का की कुवारी माय आपणा लड़का को पतो लगावण-कऽ आई थी। वोनऽ जसोज इना लड़का-कऽ देख्यो वोका थानना सी दूध की धार लगी गई न वो धार उड़ीन उना लड़का का मूंढा-मऽ चली गई। यह देखीन राजा खूब खुशी हुयो। वोनऽ समझी लियों कि एज वोकी माय आय। लड़को आपणी माय-कऽ देखतज वोकऽ दौड़ीन लपटी गयो। राजा-नऽ उना लड़का की माय-सी वोकऽ जंगलमऽ छोड़ी आवण को कारण पूछ्यो। वोनऽ सच्ची घटना कई सुणाई। राजा वोक आपणा साथ राज मह्‌यल-मऽ लई गयो, न वोकासी याव करी लियो। राजा का मरन का बाद उना राज कों मालिक वोज छोरों हुयो, न सुखसी रह्‌यण लग्यो।

—o—

परिशिष्ट 'स'

निमाड़ी का संक्षिप्त शब्दकोष

(अ)

अइग	आगई
अगनी	अग्नि
अगल	अलग (मा०)
अग्गल	अर्गला, काड़ी
अंगीठी	अंगूठी
अगाड़ी	आगे
अड़भंग	विचित्र
अजाण्यो	अनजान
अतर	इत्र
अतको	व्यर्थ, आलसी
अद्दर	ऊपर
अँदाड़ी	अनाड़ी
अँधार	अँधकार
अँधारी	अँधेरी (मा०)
अन	और
अनमनो	उदास (मा०)
अमरित	अमृत
अम्बो	आम
अम्बर	अमर
अमोस	अमावस्या
अरघ	अर्घ्य
अरदास	प्रार्थना
अराम	आराम
अल्यांग	इधर
अवधुत्त	भयानक, नग्न
अवतज	आतेही
अलूणी	बिना नमक की
अवँ	अब
अवल्याद	औलाद, वंशज
अवात	अहवात
अयाणी	प्रभात
असो	ऐसा
असोज	ऐसा ही
अहीवन	अभिमन्यु
अहेलड़ी	आनेवाली

(आ)

आइजाजो	आजाना
आकरी	तीखी, तेज मिजाज की
आखा	पूरा
आख्याँ	आँखें
आगऽ	आगे
आगिल	आगेवाला
आंगरु	अंगरखा
आंगलई	अंगुली (मा०)
आंगली	अंगुली
आंगठो	आंगूठा
आंगण	आंगन (मा०)
आंगडू	आंगन
आछ	अच्छा
आड़ो	आड़ा, एड़ी
आणी	लाई (मा०)
आतुली	पान-पत्ते
आदो	अदरक

आपणा	अपने
आपेसे	देगा (गुज०)
आफू	अफीम
अमीसू	हमसे (गुज०)
आम्बा	आम (पका)
आयू	आया
आरण	अरण्य
आलो	गीला (मा०)
आव्हो	आला, ताक
आवणो	आना
आवड़े	भावे (म०)
आवसे	आयेंगे (गुज०)
आवसरी	अवश्य ही
आविया	आये
आंवलियो	आँवला
आविला	आया है

(इ)

इच-मऽ	बीच में
इचारन	विचारने
इतरा	इतना
इतरा-मऽ	इतने में
इतरी	इतनी
इतरई	फूहड़पन
इण	इस (राज०)
इद्या	विद्या (मा०)
इंधारा	अंधेरा (मा०)
इनजा	ई सी
इम	इस प्रकार

(ई)

ई	ये
ईधन	जलाने की लकड़ी

(उ)

ऊंग्यो	उदय हुआ
उठीन	उठकर
उठिजासे	उठ जायेगा (राज०)
उच्चो	ऊँचा
उजव्ठा	सफेद (म०)
उजव्ठई	उजाला, उजियाली
उण-सऽ	उनसे
उन-खऽ	उन्हें (मा०)
उना	उस (पु०)
उनी	उस, उसने (स्त्री)
उन्हाव्ठा	गर्मी (म०)
उन्द्रा	चूहा (म०)
उपरण्या	अनाज उसाना
उपाणी	बिदा हुई
उभेल	खड़ी हुई
उभी	खड़ी (म०)
उभ्या	खड़े (म०)
उभेल थो	खड़ा था
उमराव	प्रतिष्ठित व्यक्ति
उलीचो	बाहर फेंको
उस्टी	जूटी (म०)

(ऊ)

ऊ	वह
ऊखव्ठ	ऊखल
ऊंग	उगना, निकलना, नींद
ऊंग आई	नींद आई
ऊण्डो	गहरा (मा०)
ऊंढो	उल्टा, औंधा
ऊनीं	उस
ऊँगसे	निकलेगा
ऊभा	खड़ा (म०)

(ए)

एकली	अकेली
एकलड़ी	अकेली (रा०)
एकाई	एकही
एकाई एक	अकेला, एक ही, एकाएक
एचण	बीनने, चुनने (म०)
एड़ी	पागल (ख्रा०)
एणे	इस प्रकार
एतरा	इतना (मा०)
एतरा-मऽ	इतने में
एता	इतना, इतने
एल्लासो	छोटासा, जरासा

(ऐ)

ऐचीऐची	खींचतान
ऐड़ान	जोर से चिल्लाना

(ओ)

ओ	वह
ओका	उसके
ओ-क	उसे
ओटला	(बाहर की बैठक)
ओदा	अदरक

(औ)

औघड़	कठिन, बेढब
औलाद	वंश (फा०)

(अं)

अँगा	कोट (अंगरखा)
अंगिया	चोली (मा०)
अंगीठी	अंगूठी, सिगड़ी

(क)

क	को
कइं	कुछ, क्या
कऊँ	कहूँ
कटको	टुकड़ा
कठण	कठिन (मा०)
कड़	गोद, किनार (म०)
कड़ियन	गोद में
कड़ी-नऽ	गोद का
कथई	कहीं
कतई-सी	कहीं से
कद	कब
कदर	इज्जत, मूल्य
कदी	यदि, कभी
कमाण	कमान
कय	कह
कयण	कहने
कयणी	कहनी, कहावत (मा०)
कयजो	कहना
कयाकर	कहता रह
करडो	कड़ा
कवलारी	कोमल, सुकुमार (मा०)
कवळी	कोमल (म०)
कवेरी	काबेरी नदी
कवो	कहो
कवँ	कब
करऽ	करता है
करम	भाग्य, काम
कराड़ी	कराई
करी-दऽ	कर दे
कलगी	सिर के ऊपर का मौर
कळई	कली
कळस	कलश (म०)
कसी	कैसी
कसीपत	किस तरह
कसुंभ	कुसुंभी, लाल

कसूमल	रेशमी, लाल रंग की
कंचोड़ा	कंचन
कृपाछूं	प्रसन्न हूँ
काँ	कहाँ
काँई	क्यों (राज०)
काँ-ती	कहाँ से
काँ-सी	कहाँ से
काकरी	कंकड़, छोटा पत्थर
काखई	कंघी
काठी	लकड़ी (म०)
काणू	कान्हा (काणा)
काटे	किनारे
कान्हो	कृष्ण
काचलई	चोली (मा०)
काचली	केंचुली
काजव्ठ	काजल (म०)
काजव्ठी	काली, कजराली
कामठी	कमठी, कमान, धनुष
कामव्ठ्यो	कम्बल
काय	क्या (मा०)
कायनी	कहानी (मा०)
काय-खऽ	किसलिये
कायन-की	किस चीज की
काल	कल (म०)
काव्ठ	समय (म०)
काव्ठी	काली (म०)
काव्ठो	काला
कावली	चूड़ी
कावा	चक्कर (मा०)
किच्चड़	कीचड़ (मा०)
किदा	किया (गु०)
किदी	की (गुज०)
किवाड़	दर्वाजे के पट
किरसाण	किसान (मा०)
कीदा	किया
कुटुम	कुटुम्ब (मा०)
कुड़ची	कुर्सी
कुंडव्ठ	कुंडल (म०)
कुण	कौन
कुण-खऽ	किसे
कुण-नऽ	किसने
कुतड़ा	कुता
कुंतमा	कुन्ती (पांडवों की माता)
कुबज	टेढ़ामेढ़ा
कुराड़ी	कुल्हाड़ी
कुव्ठ	कुल, वंश (म०)
कुक	कूख
कूकड़ो	मुर्गा
के-खऽ	किसे
केड़ो	गाय का बच्चा
केतला	कितने
केतरो	कितनी
केम	क्यों (गुज०)
केरी	की
केव्टई	केली
केरी	कच्चा आम
केवट्या	नाविक
कोण	कौन (म०)
कोतमीर	हरी धनिया
कोमलाय	कुम्हलाता है
कोर	किनार
कोरडो	सूखा (म०)
क्रोड़	करोड़
कोव्ठसा	कोयला (म०)
कोल्हा	सियार

(ख)	
खऽ	को
खई	खाई
खईली	खाली
[illegible]ला	स्त्री, पत्नी
[illegible]वाड़ी	खिलाकर
खवाळजे	खिलाना
खाटला	खटिया
खाटो	खट्टा
खासड़ा	जूता
खासदार	प्रिय सेवक (फा०)
खासदारनी	प्रिय सेविका (फा०)
खिर	गिरना, झड़ना
खीचा	खीसा, जेब
खुराड़ी	कुल्हाड़ी
खुसळ	खुश मिजाज
खेळ	खेल (म०)
खेळन	खेलने
खोदरा	नाला, गड्ढा
खोदाड़्या	खुदवाये
खोब	खूब (मा०)
(ग)	
गऊर	गौर,
गगई-नऽ	गर्जकर
गड़ू	छोटा लोटा
गत	ढंग, दशा
गधड़ा	गधा (मा०)
गळो	गला, कण्ठ
गय-गय	बहुत आनन्द
गयरा	गहरा, आलसी
गयेरी	गहरी
गर	ग्रह
गवलेण	ग्वालिन

गवा	गवाह
गवाळ्या	ग्वाल
गहिलो	ग्रसित
गाड़गो	मिट्टी का छोटा लोटा
गाडर	भेड़
गाड़िला	गाड़ी
गाड़ेल	गाड़ी हुई
ग्यारी	पूंजी विशेष
गाल	गाली
गालई	गाली
गावण-खऽ	गाने को
गावणो	गाना
गावड़ा	गाँव
गावड़ी	गाय
गिळ, गिळई	निगलना
गिरधरनी	गृद्धिनी
गीळो	गीला
गुधाड़	गुहाना
गुळवाणी	गुड़ की लपसी
गुप्त, गुपत	गुप्त
गुवाल	ग्वाला
गेरदी	निकाल दी
गेरव	गेरुवा
गैब	परोक्ष, अप्रत्यक्ष, ब्रह्म
गोंठड़ी	गोठान, पशुओं के बैठने की जगह
गोफन्या	गोफन का पत्थर
गोरल	पार्वती (गौरा)
गोरड़ी	गोरी
गोलकी	अंटी
गोह्या	गाँव के बाहर का स्थान, सीमा स्थान
गौरा	पार्वती

(घ)

घगंबर	वाघंबर
घरनी	स्त्री
घणो	बहुत
घणा	बहुत
घट्टी	चक्की (मा०)
घट्टो	बड़ी चक्की
घहूँ	गेहूँ
घाटो	दलिया, पेज
घाट	पानी का किनारा
घाटा, घाटो	पतली पेज, नुकसान
घाण	बर्बाद, नाश
घाम	धूप (मा०)
घिंसाड़ी	घसीटी
घींव	घी
घुगड़ला	उल्लू सरीखा
घुरड़ला	घोड़ा
घुमटा	घूंघट
घुस्सा	गुस्सा
घूमणी	घूमना
घेघेन	घंगूले, फफोले
घेर घमक	घेरदार
घोक	रट
घोळ	लेप, घोल

(च)

चढ़ायो	चढ़ाया
चढ़्या	चढ़ा
चन्द्रलेळ्हा	चन्द्रमा सरीखा सुन्दर, चन्द्ररेखा
चवढ़ो	कमर में मरोड़, दर्द, चौड़ा
चवरी	विवाह की वेदी (मा०)
चारन	चराने
चलाकी	चालाकी (मा०)
चाटू	चटुवा (मा०)
चाप	तिल्ली
चाळ	चाल (मा०)
चपड़ासी	चपरासी
चामड़ा	चमड़ा
चाल्या	चली
चाल्यो	चला
चायजे	चाहिये
चायजो	चाहना
चारी	चारों
चावण	चाहने
चीकण	चिकने
चिड़ी	चिड़िया (मा०)
चितळो	चीता
चुंग	चुगना
चुड़ीलो	चूड़ा
चुक्या	चूकें
चुंदर	चूनर
चेंडू	गेंद (म०)
चोखा	अच्छा साफ
चोटी गयो	चिपक गया
चोमळ	चुम्मर, सिरपर गागर के नीचे रखने का कपड़ा

(छ)

छमच	सहित (समेत)
छंद	बुरा शौक (म०)
छान	छप्पर
छावल	छाई हुई, छाया
छावली	छाया (मा०)
छिट्टी दियो	छिड़क दिया

छे	है (गु० रा०)
छेड़ा	घूंघट
छौड़ बछेदी	चंचल घोड़ी
छोड़	टहनी, सिरा
छोड़ई लिया	छुड़ा लिया
छोरी	लड़की (रा०)
छोरो	लड़का (रा०)
छाछ (च)	मठा

(ज)

जगाइजे	जगाना
जगाविरो	जगाया
जण्यो	जना, पैदा किया
जन्मिया	जन्मा
जयो	जैसा (गु०)
जनेई	जनेऊ (मा०)
जमुनादय	जमुनादह
जलम्या	जन्मे
जव्ठ	जल (म०)
जव्ठऽ	जलता है
जव्ठेल	जला हुआ
जल्यांग	जिस ओर
जवँ	जब
जवणा	दाहिना
जवाल	ज्वाला
जसा	जैसा
जाई	जाकर
जाई रहोज	जा रहा है
जसी	जैसी
जाड़ा	मोटा (मा०)
जाणवाव्टी	जाने वाली
जाणी	जानी, समझी
जाणो	जाना हुआ
जाज	जाता है
जादा	अधिक
जामुण	जामुन (एक फल)
जापत	रक्षा (मा०)
जाफा	अधिक
जावा	जाती
जिण	जिस (गु०)
जिव	प्राण
जिवजो	जीना, जिओ
जिवाड़ी	खिलाई, जीवित की
जिमऽ	भोजन करता है
जीमणार	ज्योनार, भोजन के पदार्थ
जीमसे	भोजन करेंगे
जीब	जीभ
जीवती	जीवित
जुवाब	जवाब
जूड़ो	वेणी
जेठा	बड़ा
जॅमसर	जैसे तैसे
जेबी	जिसकी (गु०)
जोई	देखी (मा०)
जोऊँ	देखूँ
जोवत	देखता हूँ
जोवसे	देखेगा
ज्योति	जोशी, कर्मकाण्डी
जोती	ज्योति

(झ)

झप	नींद
झकोद्या	झकोरा दिया
झकोल्या	डाला, मिलाया
झुवरन	लाट, ऊँची लहर
झाव्ठी	झारी

झामुरिया	पायल, छोटा कुँवा
झिरमिर	रिमझिम
झीना	पतला
झाकव्ठाय	झकझोरना, बर्तन से बाहर गिराना
झुबूक	तोरन, बंदनवार
झुलाड़सां	झुलाऊँगी (रा०)
झुलाड़ी	झुलाई(रा०)
झुलणा	झूला
झूलसां	झूलेंगे
झेर	जार
झोलई	झूला
झर	सोता (पानी का)

(ट)

टका	टाँका, पैसा, आना
टठाव्व	तालू
टाट	बिछावन, जूट का कपड़ा
टाटल्यो	दुर्बल
टिटोड़ी	टिटोरी (एक प्रकार की चिड़िया)
टूटी जाजो	टूट जाना, झुक जाना
टोंगड़्या	घुटना (मा०)

(ठ)

ठपकई	ठहरना
ठापुर	टाप (घोड़े के)
ठाय	स्थान
ठुमक्या	छोटे ठुमुकठुमुक कर चलने वाले
ठच्चर	हँसीं उड़ाना
ठेकाणू	ठिकाना (रा०)

(ड)

डंगरा	खरबूजा
डलफो	टुकड़ा
डंडुव्ठ	मुंह
डांडला	डंठल
डाबो	डब्बा (रा०)
डामो	बाँया
डाव्ठ	डाव्ठी (मा०)
डेक्सा	लकड़ी सरीखा
डेडर	मेण्डक
डेरू	डेरा
डेव्ठ	ड्योढ़ी
डोक	मछली की एक जाति
डोकरी	बूढ़ी स्त्री (मा०)
डोंगर	पहाड़ (मा०)
डोकर	बाँस
डोंग्या	छोटी नाव
डोव्ठतज	डोलते ही
डोला, डोव्ठा	आँख (म०)
डोलवसे	डुलावे

(ढ)

ढांडा	पशु, कम अक्ल
ढोकव्ठा	चूड़ियाँ
ढाट्ट	चोट
ढोट्टियो	चोट लगाई

(ण)

ण	और

(त)

तई	तपी
तड़ाय	पहिचानी जाय (गु०)
तणाय	तानकर (गु०)
तणे	पास जाना (गु०)
तणो	तन जाना (गु०)
तपला	तबला

तपेली	छोटा गंज
तुंबड़ा	तम्बू, डेरा
तमे	तुम्हें (गु०)
तमे	तुम्हारे (गु०)
तमोल	खाने का पान
ताम्बोल	ताम्बूल
तरऽ	तरह
तरस	तरह
तरवरतो	तेजी से जाता हुआ
तराक	तेजी, तकुआ
तरे	तरह
तवँ	तब
तलाब	तालाब
तलबाट	पगडंडी
तलास	तलाश, खोज
तळाई	तलाई
तोड़ीन	तोड़कर, खोलकर
ताजणा	सेली, लकड़ी, मुकुट, घोड़े का सामान
ताता, तातो	गर्म
तारा	तेरा (गु०)
तारो	तेरा, तारा
ताण	खिंचाव
त्यार	तैयार
त्यारे	तेवर, उस समय (गु०)
तिणो	उसको (गु०)
तिया	उसने
तिवायो	तिहा, अनाज उड़ाने के समय खड़े रहने का मंच
तीं	से
तीस	प्यास (मा०)
तुई	तू ही
तु-खऽ	तुझे
तु-नऽ	तूने
तुली रही	तुल रही, छा रही
तुव्ठई दिया	बिछा दिया
तुष्टवान	प्रसन्न, संतुष्ट
तेकी	उसकी
ते गुण	उस कारण
तम	तुम (गु०)
ते-ना	उसने
तेरकरी	बितादी
तोबी	तोभी

(थ)

थट्टा	हँसी (मा०)
थरी	मलाई, ऊपरी तह
थारा	तेरे, तुम्हारे (रा०)
थारी	तुम्हारी (रा०)
थारा	तुम्हारा
थाळी	थाल (म०)
थाळो	थाला (म०)
थांबी	रोक दी, रोकी (म०)
थांबई गयो	रुक गया

(द)

दगड़ दग्गड़	पत्थर (मा० म०)
दण-दण	दन-दन
दमामा-मो	नगारा
दरसण	दर्शन (रा०)
दरियाई	समुद्री, गंभीरता
दपड़ाई	छिपा दिया
दण्डियो	सजा का पात्र, साधू
दरोज	प्रतिदिन
दवड़ी	दौड़कर
दवणी	दोहनी, मटकी (मा०)
दक्षिणारो चीर	दक्षिणी साड़ी

दागदार	ऋणी, अहसानमंद
दगदग	झंझट, चिंता
दाणा	दाने, बीज
दाजी	बूढ़ों के लिए आदर सूचक शब्द
दातारी	दाता, दानी
दानू	दाना
दायजू	दहेज
दाव्ठ	दाल (म०)
दारू	शराब
दिण	दिन
दिण्य	देनेवाला
दिस	दिन, दिखाई देना (म०)
दिसटी	दृष्टि
दीधो	दिया (गु०)
दीठा	देखा (गु०)
दीठी	दृष्टि, देखा (रा०)
दीदा	दिया (गु०)
दीवलो	दीपक
दीवी	दी (गु०)
दीसा	देगा (रा०)
दीसे	देगी, दिखाई देता है।
दीहेच	दुहिता, कन्या (मा०)
दुई	दो
दुअई	दोनों
दुईन का	दोनों का
दुर्‌यो	दूर किया, निकाल दिया
दुल्लव	दूल्हा, वर, पति
दुलीची	आसन
दुहिरा	दुहरे
दुहेलड़ी	दुलहिन, वधू
दूणी	दूनी
दूद	दूध
दूखवा	देखनें को
देख्या	देखा
देवव्ठ	मन्दिर
देवाड्यो	दिया
देवाड्जो	दे देना
दोयड़ो	डोर
दोस	दोष, मित्र
दौड़ीकरी	दौड़कर

(ध)

धड़	किनार, किनारे, अच्छा
धणी	धनी, पति
धणियेर	धनी ने, पति ने
धरगा	पकड़ेगा
धर्‌यो	रखा
धवाड़	स्तन से दूध निकालना
धरनीधर	शेषनाग
धिंगाणू	उपद्रव, ऊधम
धीर	धीरे
धीरा	धीरे
धीहड़, धीयड़	बेटी (रा०)
धुई	धोकर, दुहकर
धुंदी	नशा
धुवण	दुहना
धोवाड़ी	धुलाकर, धुलाई
धोंगड़ी	साड़ी
धोरी	सफेद
धोल्यो	सफेद, भूरा

(न)

न	ने, से, और, नहीं
नई	नहीं
नवली	पक्का, पक्की, नई
नणद	ननद, पति की बहिन

नणदळ्ठ ननद
नत नथ
नन्दी, नद्दी नदी (मा०)
नन्हाड़ी नहलाकर
नराज नाराज
नवन झुकता है
नवल नया, नवीनता
नवा नया, नये
नवी नई, झुककर
नवेलड़ी नई
नहार शेर
ना ने, नहीं, का
न्ना नहीं
न्नाकारी इनकार किया
नाख डाल, फेंक
नाखीदऽ फेंकदे
नाँग नाग (मा०)
नाखूँ डालूँ
नाँगड़ियो गरीब, कंगाल, सीधा
नागेण नागिन
नटे अस्वीकार करे (मा०)
नात नाथ (बैल की नाक में डालने की रस्सी)
नान्दी नँदी, निभी
नाना, नान्नो छोटा बच्चा
नान्हो छोटा बच्चा
नाखी डाल दी
नारेल नारियल (मा०)
नाव नाम (मा०)
नाँव नाम
नावी नाई (म०)
न्हाटो गयो
न्हाथणी शेरनी, नहाने का स्थान
न्हार शेर
न्हाव नहाता
न्हावण नहाने को
न्हावाँ नहाना, नहाने
निच्चऽ नीचे
निच्चय निश्चय
नितरण निथरा हुआ
निमोलई निबोरी, नीम के फल
निरमळ्ठ निर्मल
निरमळ्ठई निर्मलता
निळ्ठई नीली
निवतार निमंत्रित
निवाणो नीची सतह वाला
निसाण निशान
नीपजो पैदा हुआ
नीसरो निकली
नीहुई नहीं है
न्यूतो न्योता, निमंत्रण (मा०)
नेड़ा नजदीक
नेवर हाथ का एक आभूषण
नो का (गु०)

(प)

पऽ पर
पहल पहिले
पई स्त्री (मा०)
पख पंख (मा०)
पग पैर
पगरण शुभ कार्य
प्रगट्या प्रकट हुये
पछ, पछा पीछे
पटिल पटेल
पड़वा प्रतिपदा (मा०)
पड़ेल पड़ी हुई

पड़ोसेण	पड़ोसन
पणघट	पनघट
पणिहार	पनिहार
पणिहारी	पनिहारिन
पतियारो	विश्वास, परीक्षा
पंदर	पन्द्रह
पयल	पहिला
पयलो	पहिला
परगास	प्रकाश
परणई	व्याही
परणपोळी	पूरन की पुरी (म०)
परणी	व्याही
परण्या	परिणय किया
परणायो	व्याह दिया
परमेसरी	परमेश्वरी
परवार	निवृतकर
परात	बड़ी थाली
पियर	पीला, मायका
परचो	परिचय
पिराणी	बैल हाँकने की लकड़ी
पर्योसो	परोसा
पलो	पला, आधापाव (मा०)
पवासिया	पूर्णिमा
पहर्या	पहनी
पहिलाज	पहलाही
पहुँचो	पहुँचा, कलाई
पहेल	पहले
पन्हैया	जूते (मा०)
पाग	पगड़ी
पाँगुली	लंगड़ी
पाटला	लकड़ी का पटिया
पाटलिया	मढ़ी हुई
पाटलू	पदल
पाटी	मांग, लम्बा चौड़ा खेत, पट्टी
पाटो	पटा
पांड्या	ब्राह्मण, कार्यकारी पंडित, पटवारी
पाणी	पानी (म०)
पातळ	पतला (म०)
पातलई	पतली
पातली	पतली
पातलियो	प्रिय
पायड़ा	बोदा
पालई	पालन पोषण किया
पायड़ी	बगार, सीढ़ी
पालना	झूला (म०)
पाळ	किनारा, तट
पाळी-पाळी	बारी-बारी (म०)
पावड़ा	बोदा
पावड़िया	खड़ाऊ
पावड़ी	खड़ाऊ, चरणपादुका
पावणू	मेहमान
पाँवं	पैर
पाविया	पाया
पिंड्या	पिंडलियाँ
पिवाणी	पिलाकर
पित्रु	पितृ
पुछटी, पुछट्टी	पूँछ
पुण्यरूँ	पुण्याई
पुण्यो	पूर्णिमा
पुन्नो	पूर्णिमा
पूँजा	पूजन
पुरीवे	पूरी करे
पूठ	पीठ
पू-छऽ	पूछता
पूछणलाग्या	पूछने लगा

पूछड़ी	पूँछ
पेता	पीते
पेरवास	पहिराव
पेरो	पहिरा
पेरावणी	पहिनाने की चीज
पैराव	पहिनाव
पला	पहिला, पीला
पैला, वालई	पीले वस्त्र वाली
पैळ्ठई	पीली
पैळ्ठो	पीला
पैवाळ्ठजे	पिलाना
पोईंची	पहुँची
पोपट	तोता (म०)
पोपड़ी	जमीन की तह
पोयचो	पहुँचा
पोयचईन	पहुँचाकर
पोर	लड़का (म०)
पोर-पोरी	लड़का-लड़की
पोहा	तीर्थयात्री

(फ)

फक्त	केवल
फट्या	फटे, सूखे डंटल
फजर	सबेरा (मा०)
फळ्ठ	फल (म०)
फळ्ठकट	कामान्ध
फळ्ठऽ	फले, सफल हो
फसायलो	फँसा हुआ
फाटऽ	फटता है
फाटक फाट	बुरी दशा होना, वैमनस्य, फूट
फाड़ी-नाखी	फाड़ डाली
फिरयाद	फ़र्याद, शिकायत (फा०)
फुटेल	फूटा हुआ
फुतळ्ठ्या	पुतलियाँ, गुड़िया
फुलड़ा	फूल
फेकाड़ी दिया	फेक दिया
फोड़ाड़ी	फुड़वाई
फोतरा	छिलका (म०)

(ब)

बयल	बैल
बऊ	वधू (मा०)
बईण	बहिन
बखत	समय
बखाणो	वर्णन किया
बग	बगुला
बगल	बाजू
बठी	बैठी
बठ्या	बैठे
बठाड़ी	बिठादी
बड़	बड़ा, वटवृक्ष
बर्णान	बनकर
बड़बड़	बकवास
बड़बेली	डाला हुआ
बण्या	बना
बच्छा	बछड़ा
बंचो	बाँचा, पढ़ा
बजर	वज्र
बजरिया	बज्र या भारी
बजारी	व्यापारी
बज्यो	प्रसिद्ध हुआ
बणई	बनाई, बनाकर
बतई	बतलाई
बतको	बताशा
बतावाँ	बतलाते हैं
बंदड़ा	दूल्हा

बदलई जाती	बदल जाती
बंदरा	बंदर
बद्दी	चमड़े की डोरी या नाड़ा
बधन लाग्या	बढ़ने लगा
बधावण	बधाई देने को
बधावो	बधाई, एक विवाह का गीत
बँधाणी	बंधी
बँध्यो	बँधा, वश में आया
बन्ना, बना	दूल्हा
बपक्यो	प्रकट हुआ, अधिक जोर से बोला
बफैयो	पपीहा
बयड़ी	पहाड़ी
बयंदण	बैरिन, स्त्री
बयलड़ी	सुन्दर
बयरू	स्त्री
बयीण	बहिन
बये	बहे
बरीस	वर्ष
बलेंडा	छत की म्याल
बलदियो	बैल
बव्ठई	जलना
बव्ठी	बली, जली
बव्ठी गई	जल गई
बवड़ी	वधू, बहू
बहृण	बहिन
बहानो	बहाना
बंस	वंश
बाइरा	बाईका
बाखला	ग्रास
बागड़	रुँधान
बागड़ियो	बड़ा, पागल
बागण	शेरनी
बागो	दूल्हे के पहिनने का लम्बा कुरता
बाट	रास्ता
बाड़ी	छोटा बाग
बाण	तीर
बाँचजो	पढ़ना
बाँझुव्ठी	बाँझ
बाद	कुश्ती, शर्त
बादव्ठ	बादल
बादव्ठई	बदली
बान्नो	दर्वाजा
बाँदरा	बन्दर
बाँदरो	बंदर
बान्नू	दर्वाजा
बाफ	भाप
बायको	स्त्री (म०)
बायर	बाहर
बारई	बारहों, बरई
बालुड़ो	बच्चा
बाव्ठ	शिशु, बच्चा
बाव्ठई	छोटी, बारी
बाव्ठाना-कालेण	जलाने के लिये
बाव्ठईदी	जलादी
बावड़ी	बावली
बाहृरी	झाड़ू
बासड़ी	बाँसुरी
बासण	बर्तन
बिखे	विषय में
बिमाण	विमान
बियाणी	जनी
बिरिया	समय (ब्रज)
बिलख्यो	व्याकुल हुआ (ब्रज)
बिलमणो	बिलमना, रुकना

बीज	बिजली
बूड़न्तो	डूबता हुआ
बुध	बुद्धि
बुरको	बुरका, छेद (फा०)
बुलाड़ी	बुलवाई
बे	दो (गु०)
बेगळ्ठो	अलग
बेड़ुला	बड़ा
बैन	बहिन (गु०)
बैरजा	झंझट
बैठ्या	बैठे
बंबड़	सौत
बोकड़ी	बकरी
बौत	बहुत
बौतकी बौत	बड़ी भारी, बहुत अधिक
बोणई	बहनोई
व्योपार	व्यापार

(भ)

भई	भाई, हुई
भगति	भक्ति
भखो	खाओ, कहो
भड़जी	पुरोहित, अजान ब्राह्मण
भणन	पढ़ने को
भणीन	पढ़कर
भण्यो	पढ़ा हुआ
भरकोड़ा	भूरा कुम्हड़ा
भरमण	भ्रमण
भरस	भरोसे
भरिया	भरी हुई
भर्‌यो	भरा हुआ
भरियो	भरा हुआ
भर्‌यो-पूरो	समृद्धिपूर्ण
भरम	भ्रम
भवरा	भ्रमर
भविरसा	भ्रम में पड़ा
भवर गुफा	ब्रह्मरन्ध्र
भलो	भला
भंशी	भैंस
भाका	भाषा, कता
भागण	भाग्यवान स्त्री (रा०)
भाँगरिया	लंगोटी
भाँजिया	भंग किया, फोड़ा
भाँडा	बर्तन (म०) दुर्बुद्धि
भादर	बहादुर
भायर	बाहर
भूक्या	भूखा
भेल	बीच में, मिलावट
भोर	सवेरा
भोरई	भूरी
भोरी	भोली

(म)

मऽ	में, मैं (मा०)
म-कऽ	मुझे
म-खऽ	मुझे
मगजी	किनार, गोठ
म्हारे	हमारे (रा०)
म्हाने	मुझे (रा०)
मंगतो	भिखारी
मंडब	मण्डप
मंडी	जमकर बैठी
मणवा	मनाने को
मच्छी	मछली
मंजारी	बिल्ली
मलकमऊ	निठल्ला
म-नऽ	मैंने

मनसूबो	सलाह	मालवो	मालवा
ममसाव्ठ	मामा का गाँव	मालेण	मालिन
मयल	महल	माल	माला (म०)
मयँगी	महँगी	माव्ठ्या	मचान
मरसे	मरेगा (रा०)	मिनू	बिल्ली
मरी गई	मर गई	मिलई	मिल गई
मरेलो	मरा हुआ	मिलावा	मिलाने के लिए
मलऽ	मलता है	मुकती	मुक्ति
मळूं	मिलूं	मिव्ठ्या	मिल गये
मसलो	सलाह	मीटऽ	मिटे
म-सी	मुझसे	मुगत	मुक्ति
म्हसी	भैंस (म०)	मुगतो	बहुत
मसल	कहावत	मुगुट	मुकुट
माऊली	माता	मुँड ई	बिना सींग की
माकड़ो	खटमल	मूको	गूंगा
माखा	मक्खियाँ (रा०)	मुच्छो	मूँछ
माट	घड़ा (म०)	मुद्दाम	खास (म०)
माण्डण	शोभा	मुलहारा	लकड़ी की मोली बेचने वाला
माँड्यो	जमाया, मंडन किया		
माँड्वो	मण्डप	मुसव्ठ	मूसल
माड़ी	माता	मूँग	मूँगफली
माँजरी	बिल्ली	मूँढी	मुँह
माँची	चारपाई	मुंदड़ो	अंगूठी
मातेसरी	मातेश्वरी	मूव्ठो	मूला
माथा, माथो	सिर	मेढ़ो	छज्जा
मादेव	महादेव	म्हयल	महल (रा०)
मामो	मामा	मेलजे	रखना
माय	मा, माता	मेली	निकली
मारसे	मारेगा (गु०)	मेल्यो	छोड़ा, रखा
मारा	हमारा (गु०)	मेवलो	मेह
म्हारा	हमारा (रा०)	मेहव्ठू	मेह
म्हारी	हमारी	मेहू	मेह
म्हारोज	हमारा ही	मोठा	बड़ा (म०)

मोठी	बड़ी (म०)
मोतीड़ा	मोती का
मोला	मुझे (छ०)
मोळ्ईवाळ्ा	मोलीवाला
मोळ्ी	मोली (लकड़ी का गट्ठा)
मौर	बौर

(य)

या	यह
याणी	सबेरा
याव	विवाह
येकासी	इससे, इसलिये
या-सी	इससे
येकाळ्ेण	इसके लिये, इसलिये
ये-नी	इसकी
येवढ़ो	इतना (म०)
येवा	ऐसा
येवी	यह, इतनी

(र)

रँग्या	रँगे हुये
रड़	रोता (म०)
रड़तीज	रोती हुई
रड़तो	रोता हुआ
रड़ी-रड़ी	रो-रोकर
रजपूत	राजपूत
रनुबाई	पार्वती, पुत्री
रपक्यो	दौड़कर आया, फिसला
रमवा	खेलने का मैदान
रमैयानाथ	रमानाथ (विष्णु-भगवान)
रयती	रहती
रसवई	रसोई
रवन्ना	रवाना
रवि	रमण
रस्ता	रास्ता
रहई	रह रही
रहणवाळ्ा	रहने वाला
रहवास	रहना
रव्हाँ	रहते
रहिसे	रहना, रहेगा
रहेजे	रहना
रहेसे	रहेगी
रहाट्यो	रहट, चर्खा
रा	का, के (रा०)
राकस	राक्षस
राखीदऽ	रखदे, चुप करदे
राज्योवई	राजकुमार
राँधनी	रसोई घर
राँधी	पकाई
राँधेळ्	पकाया हुआ
राँध्यो	पकाया
रिकामो	खाली
रिखी	ऋषि
रिस	क्रोध
रुमणा	रंगना
रुसि	ऋषि
रुढ़ो	अच्छा
रूले, रव्ठे	उलझ गये
रूपा	चांदी
रूळ्	रूल, नंबरदारी
रूसियो	रूठा
रेळ्	बहाव
रैनी	रात
रेयगा	रहेगा
रेहज	रहता है

(ल)

लऽ	ले, लेले
लइजा	लेजा

लाइंजा-से	ले जायेंगे
लखी	देखी (ब्रज)
लई-नऽ	लेकर
लगावसे	लगायेंगे
लगीण	लग्न
लटका	नखरा
लट्या	लटें
लछमी	लक्ष्मी, धन-दौलत
लाकड़ी	लकड़ी
लाड़	प्यार
लाड़ा	दूलह, वर
लाड़ी	दुलहिन (मा०)
लाड़का	प्यारा
लाड़ू	लड्डू (म०)
लायेल	लाई हुई
लार	साथ
लाविया	लाया
लिखेल	लिखा हुआ
लिमोव्ठई	नीम के बीज, निंबोरी
लिल्हार	भाग्य
लीदो	लिया (गु०)
लीम	नीम
लीसा	लेंगे
लुगड़ा डो	साड़ी
लूम रह्यो	छा रहा
लेण	लेना
लेण-कऽ	लेने को
लोटो	लोटा
लोभाण्या	लुभाया, मोहित हुआ
लोव्ठ	धारा, प्रवाह

(व)

वऊ	वधू
व-खऽ	उसे
वखच	उसे ही
वदिकव्ठी	बटकी, कटोरी
वटलो	बाहर की बैठक
वजावनो	बजाना
वण	बाग, निशान
वण्योज	बना
वन्नड़-खऽ	वरण करने को
वन्या	विवाहा
व-नऽ	उसने
वय	उम्र (म०)
वरसाड़	चटक
वल्यांग	उस ओर
वव्ठगायो	घूम गया
वव्ठनी	घूम गई
वव्ठनी आयो	डाल आया, टाँग आया
वसा	वैसा
वाँ	वहाँ
वाइंदी	बोंदी
वाको	टेड़ा
वाट	रास्ता (म०)
वाटकी	कटोरी
वाणियों	बनिया (रा०)
वाणी-म-सऽ	उनमें से
वाण्यो	बनिया
वादला	बादल
वार	समय, दिन
वार-प-वार	कभी-कभी
वाव	बीज
वाव्ठई	वाली
व्हाँ	वहाँ
व्हाँसी	वहाँ से
वासुक	वासुकी नाग

वासेण	बास करने वाली
विंझणो	पंखा
विण	बिना
वूज	वही
वेड़्या	पागल (म०)
वो-खऽ	उसे
वोड़इ दियो	उड़ा दिया
वो-णऽ	उसने
वोज बारस	गौ बारस
वो-नऽ	उसने
वरण	वर्ण, रंग

(स)

सई	समान, सखि
सईपण	सखी भाव
सऊक	शौक, सौत
सँगवी	साथ, साथ में
सगपण	सगापन
सड़ाँद	सड़ी, गंध
सड़ेल	सड़ी हुई
संचर्‌या	गई, प्रवेश किया
संचण	सींचने
संचे	साँचे में
संजा	सन्ध्या
सबद	शब्द
सबसारू	सब के लिये
समरत	समर्थ
समाड़ीदऽ	डुबादे, बराबर करदे
समान	सामान
सयर	शहर
सयणई	शहणाई
सयाणी	चतुर
सरग	स्वर्ग
सरवर	मिलाकर, प्रेमपूर्वक, सरोवर
सरावण	श्रावण
सरी	समान
सहसई	सहस नाग, शेषनाग
सहेलिये	सहेलियों में
सम्हालई	सम्हाली
साई	स्वामी
साकडो	सकरा
सांझ पड़्या	सन्ध्या होने पर (मा०)
सहेलड़ी	सहेली
साठ	के लिये
साठ्या	विक्रय करने वाला
साजी	हिस्सेदार
सांजुळ्ठी	सन्ध्या
सात	साथ
सांदव	निशान
सणसार	संसार (रा०)
साबका	मुकाबला
सावळ्ठ	साँवले, कृष्ण
सामरत	सामर्थ्य
सायब	साहब, स्वामी
सायबा	साहब, पति (रा०)
सारजो	पूर्ण करना
सारा	सब
सारु	के लिये
स्रावण	श्रावण
साल	दु:ख
साळ्ठ	पका भात, चाँवल
साळ्ठी	साली
साळ्ठू	रेशमी साड़ी
सावळ्ठो	साँवला
सासर	ससुराल

सिंघासण	सिंहासन (रा०)
सिघारो	उद्धार करो
सिंदी	छिंदी, छींद (म०)
सिंदेण	छींदकी, के
सिनसार	संसार
सिवाळू	सिलाऊँ
सी	से
सीजऽ	पकता है (म०)
सुक	सुख
सुकमन	सुषुम्ना (एक नाड़ी)
सुण	सुन
सुणजे	सुनिये, सुनना
सुणण-मऽ	सुनने में
सुण्यो	सुना
सुणजो	सुनो, सुनना
सुणाविया	सुनावे
सुतार	बढ़ई (म०)
सुती	सोती
सुतीज	सोती है
सुन्न	शून्य
सुन्ना	सोना, स्वर्ण (मा०)
सुवरन	स्वर्ण
सुमरिया	स्मरण किया
सुरता	समझदार, बुद्धिमान्
सुवा-री	सुवे (तोते) की (रा०)
सुसरो	श्वसुर (रा०)
सुहवणी	सुहावनी
सूता	सोता
सूती	सोती
सूरमिल	सूर्य
सेंग	फली (म०)
सेंगलई	फली
सेरी	गली
सेला	किनारा
सेली	दुपट्टा
सेयर	सखियाँ
सोझ	मुहूर्त
सोत	सौत
सोनी	सुनार
सोबत	संगति, साथ
सोबरन	स्वर्ण
सोयड़ा	सुवर
सोयड़ी	सुवरनी
सोयलड़ो	शुभ अवसर
सोरठ	गुजरात
सोळा	सोलह
सोळा	सोलह (म०)
सोड़करी	छोड़कर
सोंदारसी	सबेरे से
सौदो	सौदा, मोल

(ह)

हई	है
हम्मार	हुंकार, रँभाना
हव	हाँ
हवे	इसलिये
हरकत	हानि
हरकतो	हर्षित होता
हरतलई	हरतालिका
हरयालई	हरियाली, हरी
हरूं	बकरी
हंसली	हंस की तरह
हाऊ	मैं
हाँकता	हाँकने वाला
हाँक मारनो	पुकारना (म०)
हाकी-दऽ	हाँक दे
हाड़	हड्डी

हाड़का	हड्डियाँ
हाड़ाराव	हाड़ा वंश के राजा
हाड़ी	कुत्ते को भगाने के लिये कहा जाने वाला एक शब्द
हाड़्या	कौआ (म०)
हाँडली	हंडी
हायव्ठू	हृदय
ह्व्याँ	यहाँ
हतरे	कुत्ते आदि को भगाने के लिये उच्चारित किया जाने वाला शब्द
हाल	हल
हा-लऽ	हिलता
हासनापुर	हस्तिनापुर
हा-ही	हंसना
हिंगुव्ठ	हिंगुल, इंगुर
हिंडनो	घूमना
हिंदड़ा	कमजोर
हिया	हृदय
हिवड़ा	हृदय
हुजर्‌या	नौकर
हुता	थे
हुया	हुआ
हुयो	हुआ
हुश्यार	होशियार
हुसे	होगा (रा०)
हेड़नो	निकालना
हेड़ूं	निकालूँ
हेलगा	भैंसी
होलई	होली
होसी	होगी

—:o:—